देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला—१७

मुग़ल-दरबार

या

मआसिरुल् उमरा

(अकबर से मुहम्मदशाह के समय तक के सर्दारों की जीवनियाँ)

भाग ४

अनुवादक—
ब्रजरत्नदास बी० ए०, एल-एल. बी.

प्रकाशक—
नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

प्रकाशक—

नागरीप्रचारिणी सभा, काशी

प्रथम संस्करण १००० प्रतियाँ सं० २००६ वि०

मूल्य ६)

मुद्रक—

महताब राय

नागरी मुद्रणालय, काशी

माला का परिचय

जोधपुर के स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ इतिहास और विशेषतः मुसलिम-काल के भारतीय इतिहास के बहुत बड़े ज्ञाता और प्रेमी थे, तथा राजकीय सेवा के कामों से वे जितना समय बचाते थे, वह सब वे इतिहास का अध्ययन और खोज करने अथवा ऐतिहासिक ग्रंथ लिखने में ही लगाते थे। हिंदी में उन्होंने अनेक उपयोगी ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे हैं जिनका हिंदी संसार ने अच्छा आदर किया।

श्रीयुत मुंशी देवीप्रसाद की बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि हिंदी में ऐतिहासिक पुस्तकों के प्रकाशन की विशेष रूप से व्यवस्था की जाय। इस कार्य के लिए उन्होंने ता० २१ जून १९१८ को ३५०० रुपया अंकित मूल्य और १०५०० रु० मूल्य के बंबई बंक लि० के सात हिस्से सभा को प्रदान किये थे और आदेश किया था कि इनकी आय से उनके नाम से सभा एक ऐतिहासिक पुस्तकमाला प्रकाशित करे। उसीके अनुसार सभा यह 'देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला' प्रकाशित कर रही है। पीछे से जब बंबई बक अन्यान्य दोनों प्रेसीडेंसी बंकों के साथ सम्मिलित होकर इंपीरियल बंक के रूप में परिणत हो गया, तब सभा ने बंबई बंक के हिस्सों के बदले में इंपीरियल बंक के चौदह हिस्से, जिनके मूल्य का एक निश्चित अंश चुका दिया गया है, और खरीद लिए और अब यह पुस्तकमाला उन्हींसे होनेवाली तथा स्वयं अपनी पुस्तकों की बिक्री से होनेवाली आय से चल रही है। मुंशी देवीप्रसाद का वह दान-पत्र काशी नागरी प्रचारिणी सभा के २६ वें वार्षिक विवरण में प्रकाशित हुआ है।

———

विषय-सूची

मुग़ल दरबार

अथवा

मआसिरुल् उमरा

१. पायन्दः ख़ाँ मोग़ल

यह हाजीमहम्मद खाँ कोका का भतीजा और कोका के भाई बाबा कशका का पुत्र था, जो बाबर का एक बड़ा सरदार था। हाजीमहम्मद बहुधा चढ़ाइयों में हुमायूँ के साथ रहता था। बंगाल की चढ़ाई में उस बादशाह के साथ यह भी था। उक्त प्रांत के विजय होने पर जब बादशाह जिन्नताबाद (गौड़) में रहने लगे और शेर खाँ सूर ने बनारस पर अधिकार कर जौनपुर के आस-पास विद्रोह किया तब हाजीमहम्मद खाँ बादशाह के यहाँ से भाग कर मिर्जा नूरुद्दीन महम्मद के पास पहुँचा, जो कन्नौज में था। इसने मिर्जा हिंदाल को यह सुझाया कि वह अपने नाम खुतबा पढ़ावै। जब शेर खाँ सूर से दो युद्धों में बादशाही सेना परास्त हो गई और हुमायूँ ठट्टा और भक्कर के पास से असफल होने पर कंधार के पास पहुँचा और वहाँ भी मिर्जा असकरी से वैमनस्य होने के कारण जब न ठहर

सका तब एराक जाने का निश्चय कर उस ओर चला गया। इसके सीस्तान पहुँचने पर हाजीमहम्मद मिर्जा असकरी से अलग होकर हुमायूँ के पास पहुँचा। एराक की यात्रा और कंधार तथा काबुल को चढ़ाइयों में इसने बादशाह के साथ रह कर बहुत काम किया। अंत में जब इसकी बुरी इच्छा प्रगट हुई तब इसको इसके भाई शाह महम्मद के साथ, जो विद्रोह और दुष्टता का उस्ताद था, पकड़ कर मरवा डाला। कहते हैं कि हाजीमहम्मद साहस में एक था। शाह ने कई बार कहा था कि बादशाहों के सेवक ऐसे ही होने चाहिएँ। निशानेबाजी के दिन इसने निशाना मारा और बादशाह से पुरस्कार पाया।

अकबर के राज्य के ५वें वर्ष में पायंद: खाँ मुनइम खाँ खानखानाँ के साथ काबुल से आकर सेवा में उपस्थित हुआ। उसी वर्ष के अंत में अदहम खाँ के साथ मालवा विजय करने भेजा गया। १९वें वर्ष मुनइम खाँ खानखानाँ के साथ बंगाल विजय करने पर नियत हुआ। २२वें वर्ष राजा भगवंतदास के साथ राणा प्रताप को दंड देने पर नियत हुआ। अब्दुल् रहीम खानखानाँ और मुजफ्फर गुजराती के बीच जो युद्ध हुआ था, उसमें यह हरावल का सरदार था। ३२वें वर्ष में घोड़ाघाट में जागीर पाकर उस ओर गया।

---

२. पीर मुहम्मद ख़ाँ शरवानी, मुल्ला

यह अकबर के समय का पाँच हजारी मंसबदार था। यह बुद्धिमान तथा विद्वान था। आरंभ में कंधार में बैराम ख़ाँ का नौकर हुआ और अकबर के राजगद्दी पर बैठने के बाद उक्त ख़ाँ के द्वारा अमीर तथा सर्दार होकर उक्त ख़ाँ की ओर से वकील नियत हुआ। हेमू पर विजय प्राप्त होने के अनंतर युद्ध में विशेष प्रयत्न करने के उपलक्ष में नासिरुल्मुल्क की पदवी पाई। क्रमशः स्थायित्व बढ़ा, जिससे सभी देशीय तथा कोष संबंधी कार्यों को यह स्वयं कर डालता मानों वही साम्राज्य का वकील हो। उसकी शानो शौकत यहाँ तक बढ़ी कि साम्राज्य के स्तंभ तथा चगत्ताई वंश के सर्दारगण उसके गृह पर जाकर बहुधा भेंट न होने पर लौट आते थे। यह सचाई तथा दुरुस्ती से किसी का हिसाब नहीं रखता था प्रत्युत् इसकी कड़ाई तथा कठोरता से दूसरे ही हिसाब में रहते थे। जब कुछ लोग इतनी शान को सहन न कर सके तब ईर्ष्यालु अदूरदर्शियों ने द्वेष से बैराम ख़ाँ में अयोग्य बातें कह कर इसकी ओर से घृणा पैदा करा दी। ४थे वर्ष दैवात् नासिरुल्मुल्क कुछ दिन बीमार पड़ गया और बैराम ख़ाँ खानखानाँ उसे देखने गया। दरबान तुर्क दास ने इसे न पहिचान कर कहा कि ठहरो, खबर देता हूँ। खानखानाँ आश्चर्यचकित हुए। मुल्ला पीर मुहम्मद इस बात को सुनकर घर से बाहर निकल आया और बहुत नम्रता तथा लज्जा से क्षमायाचना करते हुए कहा कि इस दास ने

नवाब को नहीं पहिचाना। खानखानाँ ने कहा कि तुम्हीं हमको कितना पहिचानते हो कि वह पहिचाने। इस पर भी बैराम खाँ भीतर गया पर साथियों के प्रबंध की अधिकता से थोड़ी देर ठहर कर चला गया। खानखानाँ बहुत दिनों तक रुष्ट रहा। अवसर पाकर उन कहने वालों ने इसका मन और भी उसकी ओर से फेर दिया, जिससे इसने संदेश भेजा कि हमने तुमको साधारण से सर्दार बना दिया पर कम हौसला का होने से एक प्याले ही में तू बेखबर हो गया। अब यही उचित है कि एकांत-वास करो। मुल्ला स्वतंत्र प्रकृति का था इससे प्रसन्नता के साथ अलग हो बैठा। शेख गदाई कंबू तथा अन्य बुरा चाहनेवालों के प्रयत्न से कुछ दिन बाद बैराम खाँ ने मुल्ला को बयानः दुर्ग में भेज कर कैद कर दिया और फिर हज्ज करने की आज्ञा दे दी।

मुल्ला गुजरात की ओर रवानः हुआ पर मार्ग में अदहम खाँ आदि सर्दारां का लेख मिला कि वह जहाँ हो वहीं ठहर जाय और गुप्त कार्य की प्रतीक्षा करे। मुल्ला रणथंभौर के पास रुक गया। जब बैराम खाँ को इसकी सूचना मिली तो कुछ आदमियों को भेजा कि उसको कैद कर लावें। मुल्ला मारकाट के बाद अपना सामान व वस्तु छोड़ कर तथा थोड़ा साथ ले निकल गया। वास्तव में बैराम खाँ ने अदूरदर्शियों तथा द्वेपियों के बहकावे में पड़ कर ऐसे कार्यदक्ष पुरुष को अपने से दूर कर दिया और अपने हाथ से अपने पैरों पर कुल्हाड़ो मारो। इस घटना का विवरण अकबर को बहुत नापसंद हुआ। मुल्ला गुजरात नहीं पहुँचा था कि उसे बैराम खाँ के प्रभुत्व के नष्ट

होने का समाचार मिला। वह फुर्ती से बादशाह की सेवा में पहुँच कर ख़ाँ की पदवी, झंडा व डंका पाकर संमानित हुआ। इसके अनंतर अदहम ख़ाँ के साथ मालवा विजय करने पर नियत हुआ। जब ६ठे वर्ष अदहम ख़ाँ कोका दरबार बुला लिया गया तब मुल्ला को मालवा का शासन स्थायी रूप से मिला। बाज़बहादुर की इससे निभ न सकी इसलिए ७वें वर्ष में अवास की सीमा पर सेना एकत्र कर उसने विद्रोह कर दिया। पीर मुहम्मद ने सेना सुसज्जित कर उसपर चढ़ाई कर दी और थोड़े ही प्रयत्न पर उसे परास्त कर भगा दिया। इसके बाद बीजागढ़ दुर्ग लेने का साहस कर उसे बलपूर्वक एतमाद ख़ाँ से, जो बाजबहादुर की ओर से उसका दुर्गाध्यक्ष था, छीन लिया और साम्राज्य में मिला लिया। खानदेश के शासक मीरान मुहम्मद शाह फारूक़ी ने बाज़बहादुर की सहायता देने की तैयारी की इसलिए पीर मुहम्मद ख़ाँ एक सहस्र अनुभवी सैनिकों को लेकर धावा करते हुए एक रात्रि में बुर्हानपुर से चालीस कोस पर पहुँचा क्योंकि वह दुर्ग आसीर में था और उसे लूट लिया। इसके बाद कतलआम की आज्ञा दी, जिसमें बहुत से सैयदों तथा विद्वानों को अपने सामने गर्दन कटवा दी। बहुत-सा लूट लेकर जब लौटते समय इसने सुना कि बाज़बहादुर मार्ग में बहुत पास आ गया है तब इसने युद्ध की तैयारी की। लोगों ने युद्ध की संमति न देकर पहले हंडिया चलना उचित बतलाया पर पीर मुहम्मद ख़ाँ की बुद्धि तथा नीति साहस से दब गई थी इसलिए इसने कुछ न सुन कर युद्ध ही का निश्चय किया। साथियों

ने मित्रता पूरी तौर न निबाही और थोड़े ही प्रयत्न पर न टिक सके। कुछ हितैषी इसके घोड़े को पकड़कर इसे बाहर निकाल लाए। जब नर्मदा के किनारे पहुँचे तब संध्या हो गई थी। लोगों ने कहा कि शत्रु दूर है इसलिए आज रात्रि यहीं व्यतीत करना चाहिए पर इसने कुछ न सुना और घोड़ा नदी में डाल दिया। दैवयोग से ऊँटों की पंक्ति बीच नदी में से जा रही थी, जिससे इसके घोड़े को धक्का लगा और यह उससे अलग हो गया। पासवालों ने राई से इसे निकालने के लिए कुछ भी सहायता नहीं की, जिससे वह डूब गया। शैर—

जब दिन ने अंधकार की ओर मुख फेरा।
संसार देखनेवाली दोनों आँखें चकित हो गईं॥

बुर्हानपुर के निर्दोषों के रक्तपात ने अपना असर दिखलाया। शैर—

हाथ आने पर भी नाहक़ खून मत कर।
कहीं उसका बदला न पैदा हो जाय॥

यह घटना सन् ९६९ हि० (सन् १५६२ ई०) में हुई थी। अकबर ने ऐसे योग्य, कार्यदक्ष तथा वीर और साहसी सेवक के चले जाने पर बहुत शोक किया। कहते हैं कि पीर मुहम्मद ने ऐश्वर्य तथा सम्मान इतना संग्रह कर लिया था कि प्रतिदिन एक सहस्र थाली भोजन की आती थी। घमंड और अहंकार के होते भी दयालु था। कई बार एक दिन में पाँच सौ घोड़े लोगों को दिए थे। परंतु जो कुछ हो वह क्रोध का रूप था। सैनिक घमंड को बड़प्पन के साथ मिलाकर बहुत ऐश्वर्य और संपत्ति संचित कर लिया था। इसके सिवा क्या कहा जा सकता है।

जिस समय यह साम्राज्य का मदारुलमुहाम था उस समय दरबार से खानजमाँ शैबानी के यहाँ धमकाने के लिए गया, जो ऊँटवान के पुत्र शाहिम को अपना माशूक मानकर 'मेरे बादशाह मेरे बादशाह' कहा करता था। आज्ञा थी कि उसे दरबार भेज दे या अपने यहाँ से दूर कर दे। खानजमाँ ने अपने विश्वासी नौकर बुर्जअली को बादशाही क्रोध को शांत करने और समझाने के लिए दरबार भेजा। वह पीर मुहम्मद खाँ के पड़ाव पर आकर कुछ ही संदेश कह पाया था कि मुल्ला ने क्रोध कर उसको लकड़ी में कसवा दिया और दुर्ग के बुर्ज से नीचे फेंकवा दिया तथा ठठाकर हँसते हुए कहा कि अब इस आदमी ने अपने नाम को प्रगट कर दिया।

पुरदिल ख़ाँ

इसका नाम बीरा या पीरा था और यह दिलावर ख़ाँ बिरंज का पुत्र था, जो शाहजहाँ के समय के पुराने सरदारों में से था। शाहज़ादा शाहजहाँ के दुर्भाग्य तथा बुरे दिनों में अपनी स्वामिभक्ति के कारण बराबर अच्छी सेवा करते रहने से उक्त शाहज़ादे के हृदय में इसने स्थान कर लिया था और यह उस चुने हुए समूह में से था, जो सभी बादशाही सेवकों से पार्श्ववर्ती तथा विश्वसनीय होने में बढ़ कर थे। राज्य के आरंभ में चार हज़ारी २५०० सवार का मनसब पाकर मेवात का फौजदार नियत हुआ। इसके अनंतर इसे जौनपुर जागीर में मिला। ४ थे वर्ष अपने पुत्र बीरा के साथ जौनपुर से आकर तथा बुर्हानपुर में बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर संमानित हुआ। उस समय शाही सेना निज़ामशाह को दमन करने और उसके राज्य पर अधिकार करने के लिए नियत हो चुकी थी, उसीमें यह भी नियुक्त किया गया। इसके मनसब में सवारों की संख्या ज़ाती मनसब के बराबर बढ़ा दी गई और उसके पुत्र का मनसब बढ़ाकर एक हज़ारी कर दिया गया तथा पुरदिल ख़ाँ की इसे पदवी मिली। परंतु आकाश ने इतना समय नहीं दिया कि वह कुछ दिन तक ऐश्वर्य और सुख का उपभोग कर सके। उसी वर्ष दिलावर ख़ाँ की मृत्यु हो गई।

पुरदिल ख़ाँ बादशाह की कृपा और गुणग्राहकता से, जो वे अपने पुराने सेवकों पर सदा बनाए रहते थे, बराबर तरक्की पाते

हुए १० वें वर्ष में दो हजारी २००० सवार का मनसबदार हो गया और राजा जगतसिंह के स्थान पर पाईं बंगश का थानेदार नियत हुआ। १७ वें वर्ष अजीजुल्ला खाँ के स्थान पर दुर्ग बुस्त का अध्यक्ष नियत हुआ। २० वें वर्ष एक हजार सवार की तरक्की मिली। जब ईरान के शाह अब्बास द्वितीय ने कंधार विजय करना निश्चित किया और स्वयं साहस कर फराह से इस और आया तब मेहराब खाँ को बुस्त दुर्ग घेरने को भेजा। उस समय जब अलीमर्दान खाँ ने इस प्रांत को बादशाह को सौंपा था और मेहराब खाँ बुस्त का दुर्गाध्यक्ष था तब कुलीज खाँ ने उस दुर्ग को इससे छीन कर तथा क्षमा कर ईरान भेज दिया था। मेहराब खाँ ने बुस्त के नए दुर्ग को, जिसे शाहजहाँ ने पुराने दुर्ग के पास बनवाया था, उसकी दृढ़ता के कारण तोड़ना कठिन समझ कर और पुराने दुर्ग पर अधिकार करना सुगम समझ कर इसे ही मोर्चे बाँध कर घेर लिया। पुरदिल खाँ स्थान स्थान पर अपने संबंधियों को मोर्चों के सामने रक्षा के लिये नियत कर अपने स्थान से निरीक्षण करता रहा। तोप और बंदूक की आग से बहुत से शत्रु मारे गए। घेरे के आरंभ से ५४ दिनों तक मार काट जारी रही और दोनों ओर के कुछ आदमी मारे गए और कुछ घायल हुए। पुरदिल खाँ के अधीनस्थ छ सौ सवारों में से तीन सौ आदमी और कजिलबाशों में से बहुत से मारे गए। अंत में १४ वीं मोहर्रम सन् १०५९ हि० को पुरदिल खाँ जीवन की रक्षा का वचन लेकर अधीनता स्वीकार करने के लिए मेहराब खाँ के पास गया। उस अन्यायी ने अपना वचन तोड़ना

ठीक समझ कर तीन सौ आदमियों में से, जो इसके साथ रह गए थे, कुछ को, जो शस्त्र सौंपने के समय उन्हें हाथों में लेकर अड़ गए थे, मरवा डाला और इसको बचे हुए आदमियों तथा परिवार के साथ क़ैद कर शाह के पास कंधार लिवा गया। शाह इसको अपने साथ ईरान ले गया। यद्यपि पुरदिल ख़ाँ का ईरान जाने तथा बाद का कि वह कहाँ गया, कुछ वृतांत ज्ञात नहीं है पर जीवन भर वह लज्जा, संबंधियों के मुँह छिपाने और परिचित तथा अपरिचित के तानों से दूर रहा। यदि वह हिंदुस्तान में आता तो कंधार के दुर्गाध्यक्ष दौलत ख़ाँ तथा उस ओर के दूसरे सरदारों के समान दंडित होकर विश्वास तथा सेवा से दूर किया जाता।

पेशरौ ख़ाँ

इसका नाम मेहतर सआदत था और यह हुमायूँ का एक दास था, जिसे ईरान के शाह तहमास्प ने दिया था। इसका तबरेज़ में पालन हुआ था। यह हुमायूँ की सेवा में बराबर रहा और उसकी मृत्यु पर यह अकबर की सेवा में काम करता रहा। इस बादशाह के राज्य के १९वें वर्ष में यह बंगाल प्रांत के सरदारों से कुछ आज्ञा कहने के लिए भेजा गया। इस कार्य में शीघ्रता आवश्यक थी, इसलिए यह नाव पर सवार होकर गंगा जी से रवाना हुआ। बिहार प्रांत के एक प्रसिद्ध जमींदार गजपति के राज्य की सीमा पर पहुँचते ही यह उसके आदमियों द्वारा पकड़ा गया। जब गजपति के दृढ़तम दुर्ग जगदीशपुर पर अधिकार हो गया और वह परास्त हो गया तब भाग्य की विचित्रता ने पेशरौ ख़ाँ की इस बला से छुट्टी दिलाई। कहते हैं कि उस विद्रोही के यहाँ बहुत से मनुष्य कैद थे, जिनमें से बहुतों को उसने मरवा डाला। इसी विचार से पेशरौ ख़ाँ को भी उसने किसी को सौंप दिया था पर वह इसे मारने का साहस न कर सका और तब उसने दूसरे को सौंप दिया। उसने भी अपनी तलवार निकालने का बहुत जोर किया पर वह मियान से बाहर न निकली। निरुपाय होकर गजपति के संकेत पर, जो उस समय भाग रहा था, वह पेशरौ ख़ाँ को अपने हाथी पर बैठा कर रवाना हो गया। दैवयोग से यह हाथी बदमाश और बिगड़ैल था, इस कारण वह आदमी उस पर से उतर पड़ा। वह हाथी उसे एक लात मार कर और चिंघाड़ कर भागा तथा

इस भयानक आवाज से दूसरे सब हाथी भी इधर उधर भाग गए। जिस हाथी पर उक्त ख़ाँ सवार था वह एक जंगल में पहुँचा। पेशरौ ख़ाँ ने चाहा कि रस्सी से बँधे हुए अपने दोनों हाथों को महावत के गले में डालकर उसे मुरेड़ दे पर महावत बहुत प्रयत्न कर नीचे कूद पड़ा और भागने ही में अपनी भलाई समझी। सबेरा होते होते हाथी सुस्ताने बैठ गया तब उक्त ख़ाँ नीचे कूद पड़ा और इस बला से छुट्टी पाकर इसने अपना रास्ता लिया। इसी समय इसका परिचित एक सवार मिला, जो इसे ढूँढ़ रहा था। वह इसे अपने घोड़े पर सवार कराकर चल दिया। २१वें वर्ष में पेशरो ख़ाँ बादशाह की सेवा में पहुँचा। कुछ दिनों के अनंतर दक्षिण के निज़ामुल्मुल्क को समझाने के लिए यह नियत हुआ, जो मनुष्यों से मिलना छोड़कर एकांत में जीवन व्यतीत कर रहा था। २४वें वर्ष में उसके सेवक आसफ ख़ाँ को भेंट के साथ लिवा लाया। इसके अनंतर आसीरगढ़ के शासक राजे अली ख़ाँ के पुत्र बहादुर ख़ाँ को समझाने के लिए भेजा गया पर जब उसने नहीं माना और बादशाह ने उक्त दुर्ग को घेर लिया तब मालीगढ़ दुर्ग को विजय करने में इसने अच्छा प्रयत्न किया। ४०वें वर्ष तक इसका मंसब साढ़े तीन सदी तक पहुँचा था। अकबर की मृत्यु पर जहाँगीर बादशाह का कृपापात्र होने से इसका मनसब बढ़कर दो हजारी हो गया और फर्राशखाने की सेवा इसे मिली। ३रे वर्ष सन् १०१६ हि० में यह मर गया। बादशाह ने इसकी सेवा का विचार कर इसके लड़के को पेशखाने की सेवा दे दी।

शाह फखरुद्दीन

यह मूसवी तथा मशहदी था और मीर कासिम का लड़का था। सन् ९६१ हि० में हुमायूँ के साथ हिंदुस्तान आकर बादशाह का कृपापात्र हुआ। इसके अनंतर जब अकबर बादशाह हुआ तब इसे ऊँची सरदारी मिली। ९वें वर्ष अब्दुल्ला खाँ उजबक का पीछा करनेवाली सेना के साथ नियत होकर इसने बहुत प्रयत्न किया। १६ वें वर्ष खानकलाँ के अधीन गुजरात की ओर जाती हुई अग्गल सेना में नियत हुआ। जब बिजयी सेना पत्तनगुजरात पहुँची, तब बादशाह ने इसको आज्ञापत्रों के साथ एतमाद खाँ और मीर अबूतुराब के यहाँ भेजा, जिन्होंने बराबर प्रार्थना-पत्र भेज कर गुजरात पर चढ़ाई करने के लिए कहलाया था। यह मार्ग में मीर से मिलकर एतमाद खाँ के पास गुजरात गया और उसे सांत्वना देकर बादशाह की सेवा में लिवा लाया। इसके बाद खानआजम कोका के सहायकों में गुजरात प्रांत में नियत हुआ। इसके अनंतर बहाने से बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर उन सरदारों के साथ, जो गुजरात के धावे पर आगे भेजे गए थे, उस ओर रवाना हुआ। वहाँ से उज्जैन का शासन पाकर विश्वासपात्र हुआ और नकाबत खाँ की पदवी पाई। २४ वें वर्ष तरसून महम्मद खाँ के स्थान पर पत्तनगुजरात का हाकिम नियत हुआ। यह दो हजारी सरदार था।

फजलुल्लाह ख़ाँ बुखारी, मीर

यह बुखारा के सैयदों में से है। हिंदुस्तान आने पर सौभाग्य से योग्य मंसब पाकर जहाँगीर की कृपा से एक सर्दार हो गया। जहाँगीरी सर्दारों में यह ऐश्वर्यवान तथा सेनावाला होकर बादशाह की कृपा तथा विश्वास का पात्र हो गया। इसे 'सफाअत' विद्या का शौक हो गया और कीमिया बनाने के फेर में पड़ गया। हिंदुस्तान में जिस स्थान में ऐसे जानकार को सुना और ऐसे कार्य के खोजियों का पता लगा यह उनके पास पहुँचा और बहुत धन व्यय कर डाला। कहते हैं कि 'क़मरी' का कार्य इसके हाथ आ गया था, जिससे आवश्यकता-नुसार चाँदी बना लेता था और अपने घर ही में सिक्के ढाल-कर सेना का वेतन देने तथा जागीर के व्यय में काम लाता था। जिस प्रकार यह इस कार्य में प्रयत्नशील था उससे ज्ञात होता था कि यह शीघ्र 'शम्सी' अमल भी जान जायगा पर मृत्यु ने समय न दिया और यह मर गया। इस दस्तकारी के सिलसिले में इसे कई आश्चर्यजनक काम ज्ञात हो गए थे जैसे पारे को इस प्रकार कर लेता था कि उसका एक दाना चावल बराबर दसगुना भूख और वीर्य बढ़ा देता था। इसका पुत्र मीर असदुल्ला प्रसिद्ध नाम मीर मीरान तरबियत ख़ाँ बख़्शी का दामाद था। जिस समय शाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर पहिली बार दक्षिण के प्रांतों का शासक नियत हुआ उस समय यह शाहजहाँ की आज्ञा से शाहज़ादे की सरकार का बख़्शी नियुक्त किया

फ़जलुल्लाह खाँ

गया। जिस समय शाहजादा बल्ख की चढ़ाई पर भेजा गया तब यह उक्त कार्य से इस कारण अलग हो गया। इसके बाद खानदेश प्रांत के अंतर्गत रहनगाँव व चोपरः की फौजदारी तथा जागीरदारी पर नियत होकर बहुत दिन वहाँ व्यतीत किए। इसका मंसब छ सदी ६०० सवार का था।

दूसरी बार दक्षिण की सूबेदारी के समय जब शाहजादा ने ३१वें वर्ष में हैदराबाद के सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह पर चढ़ाई कर गोलकुंडा को, जो तैलंग देश की राजधानी थी, घेर लिया तब उक्त मीर भी दक्षिण के मोर्चे में नियत हुआ। इसके अंनतर एक करोड़ रुपए पेशकश देकर तथा उक्त सुलतान की पुत्री का औरंगजेब के बड़े पुत्र सुलतान मुहम्मद से निकाह हो जाने पर संधि हो गई तब सभी मोर्चवालों को खान खोदने तथा लड़ाई करने की मनाही हो गई। मीर असदुल्ला अपने मोर्चे से निश्चिंत हो बाहर निकल कर घूम रहा था कि एकाएक दुर्ग से एक गोली उसे लगी और वह खत्म हो गया। इस पर पहिले ही से शाही कृपा थी इसलिए मीर असदुल्ला शहीद पदवी हुई। औरंगजेब के बादशाह होने पर इसकी औलाद छोटो बड़ों पर योग्य बादशाही कृपा हुई। इसके पुत्रों में से जलालुद्दीन खाँ को शाहजादा मुहम्मद आजमशाह की सेना की बख्शीगिरी और बीदर की दुर्गाध्यक्षता दरबार से मिली, जिससे यह शीघ्र बराबरवालों से विश्वास में आगे बढ़ गया। मृत्यु ने अवसर न दिया और इसकी मृत्यु हो गई। दूसरा पुत्र मीर यहिया था, जिसका निकाह मीर बख्शी सर बुलंद खाँ की पुत्री से हुआ था। मीर यहिया का पुत्र मीर

ईसा ख़ाँ था, जो बहुत दिनों तक चांदवर तथा संगमनेर का दुर्गाध्यक्ष रहा। इसकी मृत्यु पर इसका नाती वहाँ का दुर्गाध्यक्ष हुआ।

मीर असदुल्ला के अन्य पुत्रों में, जो तरबियत ख़ाँ की पुत्री से हुए थे, मीर नूरुल्ला सैयद नूर ख़ाँ प्रसिद्ध नाम 'बाघमार' एक था, जो सदा थालनेर और खानदेश के दूसरे पर्गनों की फ़ौजदारी तथा किलेदारियों पर नियत रहा। छोटा मंसब रखते हुए भी ऐश्वर्य, सामान, हाथी व सेना बहुत एकत्र कर रखा था। पर निडरता तथा असतर्कता के कारण छोटे मंसब ही पाकर दंडित रहा। तब भी ऐसा होते खानाजादी के विश्वास के कारण देश की जो हालत लिखता वह स्वीकार हो जाता। जिस समय शाहजादा मुहम्मद अकबर भागकर अवास प्रांत लाँघ-कर खानदेश आया उस समय खानजहाँ बहादुर उसे पकड़ने के लिए शीघ्रता से धावा करता हुआ पास पहुँच कर इसलिए ठहर गया, कि वह बगलानः के पार्वत्यस्थान में चला जाय। किसी का भी साहस ऐसा लिखने का नहीं होता था पर इसने यह बात बादशाह को लिखकर खानजहाँ को दंडित कराया तथा पदवी छिनवा दी। इसका सहोदर भाई मार रहमतुल्ला था, जिसका खानदौराँ लंग की नतिनी से निकाह हुआ था। इसके पुत्र मीर नेअमतुल्ला का अमानत ख़ाँ मीरक मुईनुद्दीन ख़ाँ की पुत्री से निकाह पढ़ाया गया था। दूसरे पुत्र तथा पौत्र बहुत थे। सरकार कालना का पर्गना बोड़ बहुत दिनों से इसके संतान के लिए जागीर में नियत था और ये सब वहीं निवास करते थे। नवाब आसफजाह के अधिकार के आरंभ ही से वह महाल

सरकार में जब्त हो गया। वे सब भी दूसरे नगरों तथा कस्बों में चले गए। यदि कोई बच गया हो तो वह साधारण जनता के समान बसर करता होगा।

फजायल खाँ मीर हादी

यह शाहजादा मुहम्मद आजम शाह के दीवान वजीर खाँ मीर हाजी का बड़ा पुत्र था। यह अच्छी योग्यता रखता था तथा सच्चरित्र था और शेख अब्दुल्अजीज अकबराबादी से विद्या तथा गुण सीखे थे। शाहजादे के यहाँ इसका संमान बहुतों से बढ़कर था। २७ वें वर्ष के आरंभ में जब शाहजादा महम्मद आजम पहिली बार बीजापुर की चढ़ाई पर गया, तब बादशाह उक्त मीर से किसी कारणवश क्रुद्ध हो गए और आतिश खाँ रोज-बिहानी को आज्ञा दी कि शाहजादा की सेना में जाकर इसको दरबार लिवा लावै। पहिले यह रूहुल्ला खाँ की रक्षा में और उसके अनंतर सलाबत खाँ की रक्षा में रखा गया। २५ रमजान महीने को उक्त वर्ष में आज्ञा के अनुसार दौलताबाद दुर्ग में कैद किया गया। इसके अनंतर बादशाह की आज्ञा पाकर यह आगरे गया और वहाँ एकांत में रहते हुए विद्यार्थियों को पढ़ाता रहा। अंत में इसका भाग्य पलटा और इसपर कृपा हुई। यह दरबार में बुलाया गया और इसने जाकर चौखट चूमा। इसे मीर मुंशी का और पुस्तकालय के दारोगा का खिल-अत मिला। ४४ वें वर्ष खोदाबन्दः खाँ के स्थान पर बयूतात़ी का कार्य मुंशीगीरी के साथ इसे मिला। इसके अनंतर उक्त सेवाओं के साथ साथ सहायक खानसामाँ का कार्य भी इसे दिया गया। ६ जीकदः को ४७ वें वर्ष सन् १११४ हि०, १३ मार्च सन् १७०३ ई० को यह मर गया।

यह अपनी बुद्धिमानी और अनुभव से अपने समय का एक ही था। अपने विषय में यह कहता था कि 'बन्दा हाज़िर काम बतलाओ।' बादशाह इसके विषय में कहते थे कि सहायक खानसामाँ का कार्य इस प्रकार इसने किया कि मानों घर रोशन हो गया। जब यह दारुल् इंशा का अध्यक्ष था तब इसने एक दिन बादशाह से कहा कि हिन्दी भाषा तथा हिन्दी लिपि में 'हा' के लिए कोई अक्षर नहीं है और यद्यपि अलिफ उन अक्षरों में मिला हुआ है, जो इस भाषा में एकदम मतरूक है उसके बदले में और ऐन तथा हमज़ा के ऐसा एक अक्षर है जिसे शब्द के आरंभ, मध्य तथा अंत में लगाते हैं परंतु बारह स्वरों में से जिनका कि प्रयोग होता है और अक्षरों को जोड़ने में काम में लाया जाता है, एक को काना कहते है जिसे शब्द के अंत में लगाते हैं। यह सूरत और उच्चारण में अलिफ के समान है। इसलाम के पहिले अनुवाद करनेवाले तथा फारसी लिखनेवाले भूल से इस अलिफ के स्थान पर हा लिखते थे जैसे बंगाला और मालवा के बदले बंगालः (मालवः) लिखते थे। बादशाह ने जो सर्वज्ञ तथा हिन्दी के जानकार थे, इसे पसन्द कर दफतर वालों को आज्ञा दी कि इन शब्दों को अलिफ् के साथ लिखा करें।

उक्त खाँ का दौहित्र मीर मुर्तजा खाँ गंभीर तथा सैनिक स्वभाव का युवक था और अपने वंश का यादगार था। कुछ दिनों तक हैदराबाद के नाजिम मुबारिज़ खाँ के साथ उक्त प्रांत के अंतर्गत मेदक का फौजदार था। इसके अनंतर नवाब आसफजाह की सेवा में पहुँचा। एलकंदल सरकार का आमिल

नियुक्त होकर शमशी के जमींदार पर, जो काला पहाड़ के नाम से प्रसिद्ध था, चढ़ाई की। यह जल्दी कर स्वयं अकेले गढ़ी के पास पहुँच गया और एक गोला छाती में लगने से मर गया। कहते हैं कि यह सरकारी बहुत सा रुपया खा गया था, इसलिए इसने आत्महत्या कर ली।

फतह खाँ

यह प्रसिद्ध मलिक अम्बर हबशी का पुत्र था। अपने पिता के जीवन-काल ही में वीरता, साहस तथा उदारता में विख्यात हो चुका था। उसकी मृत्यु पर निजामशाही वंश का प्रबंधक होकर इसने मुर्तजा निजामशाह द्वितीय के हाथ में कुछ भी अधिकार नहीं रहने दिया। मुर्तजा निजामशाह ने निरुपाय होकर उपद्रवियों के कहने तथा बहकाने पर फतह खाँ को कैद कर जुनेर भेज दिया। कहते हैं कि एक चुड़िहारिन की सहायता से एक रेती से अपने पैर की बेड़ी काट कर भाग गया और अपनी सेना में पहुँचकर अहमद नगर की ओर चला गया। मुर्तजा शाह ने एक सेना इसपर भेजी। दैवयोग से युद्ध में घायल होकर यह फिर पकड़ा गया और दौलताबाद में कैद हुआ। निजामशाह को कुछ दिन बाद मालूम हुआ कि तुर्की दास मुकर्रब खाँ, जो फतह खाँ के स्थान पर मीर शमशेर तथा सेनापति नियत हुआ था, और प्रधान-मंत्री हमीद खाँ हबशी दोनों अपना काम ठीक तौर पर नहीं कर रहे हैं। तब फतह खाँ को पहिले की तरह प्रधान मंत्री और सेनापति नियत किया। कहते हैं कि इस बार उसको बहिन के कहने पर, जो निजामशाह की माँ थी, छुट्टी मिली थी और वह सैनिक ढंग पर जीवन व्यतीत कर रहा था। हमीद खाँ की मृत्यु पर इसे राज्यकार्य का अधिकार मिला।

फतह खाँ ने पहिले की घटनाओं से उपदेश ग्रहण कर अम्बरी हबशियों को शिक्षित कर अपनी ओर मिला लिया। अब इसे मालूम हुआ कि आवश्यकता के कारण ही इसको छुट्टी मिली थी और जब वह कपटी निजामशाह स्वस्थचित्त हो जायगा तब फिर क़ैद कर देगा, इसलिये इसने पहिले ही सन् १०४१ हि०, सन् १६३२ ई० में यह प्रसिद्ध कर कि निजामशाह को उन्माद रोग हो गया है, उसे उसी प्रकार क़ैद कर दिया, जिस प्रकार उसके पिता ने कैद में रक्खा था। पहिले दिन पचीस पुराने विश्वासी सरदारों को मरवा डाला और शाहजहाँ को लिख भेजा कि निजामशाह अदूरदर्शिता तथा दुष्टता से शाही सेवकों का विरोध करता है इसलिये उसे कैद कर दिया है। जवाब में यह शाही फर्मान गया कि यदि इस बात में सचाई है तो संसार को उसके लाभहीन जीवन से साफ कर दो अर्थात् मार डालो। फतह खाँ ने उसको मारकर यह प्रसिद्ध कर दिया कि वह अपनी मृत्यु से मरा। उसके दसवर्षीय पुत्र हुसैन को उसके स्थान पर गद्दी पर बैठाया। जब दूसरी बार यह सब वृत्तांत बादशाह को लिख भेजा तब शाहजहाँ ने आज्ञा भेजी कि निजामशाह के कुल हाथी, अच्छे जवाहिरात और जड़ाऊ बर्तन भेज दो। फतह खाँ नम्रता तथा आज्ञाकारिता के होते भी उन सब वस्तुओं को भेजने में विलंब करता रहा। इसपर ५वें वर्ष में बुरहानपुर से वज़ीर खाँ दौलताबाद विजय करने के लिए भेजा गया। फतह खाँ ने शीघ्रता से अपने बड़े पुत्र अबुल् रसूल को जवाहिरात और हाथियों के साथ, जिसकी कुल क़ीमत आठ

लाख रुपया थी, भेंट के रूप में भेज दिया। जाफर खाँ उसका स्वागत कर बादशाह की सेवा में ले गया और ऐसा करने के कारण बादशाही क्रोध से इसकी रक्षा हो गई। फतह खाँ अकेले ही राज्य का सब प्रबंध कर रहा था इस कारण बीजापुर के नरेश आदिलशाह ने विचार किया कि इसको हटाकर स्वयं दौलताबाद पर अधिकृत हो। उसने फरहाद खाँ के अधीन भारी सेना इसपर भेजी। फतह खाँ ने दक्षिण के सूबेदार महाबत ख़ाँ को लिखा कि 'मेरे पिता की यह आज्ञा है कि बीजापुर राज्य के प्रभुत्व से तैमूरी वंश के बादशाहों की सेवा अधिक अच्छी है, इसलिए आदिलशाही सेना के आने के पहिले आप पहुँच जायँ। इसका वृत्तांत महाबत ख़ाँ की जीवनी में विस्तार से दिया गया है। उक्त ख़ाँ के बुरहानपुर से आ पहुँचने पर फतह ख़ाँ, जिसके वचन तथा कार्य में कुछ भी विश्वास न था, बीजापुर के सरदारों की चापलूसी में आकर दुर्ग में घिर गया। जब रसद अपव्यय करने के कारण चुक गया तब इसे शीघ्र ही अधीनता स्वीकार कर दुर्ग कुछ शर्तों पर सौंप देना पड़ा। यह निजामुल्मुल्क लड़के तथा उस वंश के सेवकों को, जिस वंश का उस देश में एक सौ पैंतालीस वर्ष राज्य रहा था, लेकर ख़ाँ के साथ रवाना हो गया। महाबत ख़ाँ ने बिना कारण ही प्रतिज्ञा तोड़ कर फतह ख़ाँ को जफर नगर में कैद कर दिया और उसके सब सामान को जब्त कर लिया। आज्ञानुसार इसलाम ख़ाँ गुजरात की सूबेदारी से बदल कर बुरहानपुर आया और उक्त ख़ाँ तथा नष्ट हुए परिवार को बादशाह के पास लिवा गया। निजामुल्मुल्क ग्वालियर में कैद

किया गया और फतह खाँ पर कृपा की गई। अभी इसे अच्छे मनसब देने का विचार हो रहा था कि स्यात् एक घाव के कारण, जो इसके सिर पर लगा था और जिससे इसका दिमाग़ खराब हो गया था, इसने अनुचित बातें कहीं, जिससे यह दृष्टि से गिर गया पर इसका सामान इसे लौटा दिया गया और इसे दो लाख रुपये की वार्षिक वृत्ति दी गई। यह लाहौर में बड़े सुख और आराम से बहुत दिनों तक एकांतवास करता रहा और वहीं अपनी मृत्यु से मरा। कहते हैं कि यह अरब के लोगों से बहुत बातचीत करता था और उन्हें धन देता था। इसका भाई चंगेज इसके पहिले २रे वर्ष में सेवा में पहुँच कर ढाई हजारी १००० सवार का मनसब और मंसूर खाँ की पदवी पाकर संमानित हो चुका था। उसके बहुत से संबंधियों ने योग्य मनसब पाया।

मलिक अंबर ने बादशाही नौकरी स्वीकार नहीं की था, इसलिये उसका वृत्तांत इस ग्रंथ में नहीं दिया गया है पर वह अपने समय का एक प्रधान पुरुष था इसलिये उसका वृत्तांत यहाँ दे दिया जाता है। वह बीजापुर का एक दास था और कई साहसी हबशियों के साथ निजामशाह के दरबार में सेवक होकर उसने साहस तथा योग्यता के लिए प्रतिष्ठा प्राप्त की। जब मल्का चाँद सुलतान सन १००९ हि०, सन १६०० ई० में अदूरदर्शी दक्षिणियों के द्वेषरूपी तलवार से मार डाली गई और बादशाह अकबर का अहमदनगर दुर्ग पर बलात् अधिकार हो गया तथा बहादुर निजामशाह पकड़ा जाकर ग्वालियर दुर्ग में कैद हो गया तब निजामशाही राज्य में पूरी निर्बलता आ

गई, जो बुरहानशाह के समय से ही निर्बल हो रहा था। कोई भी प्रभुत्वशाली सरदार उस राज्य में नहीं रह गया था। मलिक अंबर और राजू मियाँ दक्षिणी ने दृढ़ता का झंडा खड़ा किया। तिलंग की सीमा से अहमदनगर से चार कोस और दौलताबाद से आठ कोस तक इधर पहिले के अधिकार में आया और दौलताबाद के उत्तर गुजरात की सीमा तक और दक्षिण में अहमदनगर से छः कोस इधर तक दूसरे ने अपने अधिकार में कर लिया। शाह अली के पुत्र मुर्तजा निज़ामशाह द्वितीय के लिए औसा दुर्ग और उसके व्यय के लिए कुछ ग्राम छोड़ दिया। इन दो सरदारों में हर एक दूसरे की जमीन ले लेना चाहता था, इसलिए वे सदा एक दूसरे से लड़ते रहते थे। सन् १०१० हि०, सन् १६०१–२ ई० में नानदेर के पास मलिक अंबर और खानखानाँ अब्दुलर्रहीम के पुत्र मिर्ज़ा एरिज के बीच घोर युद्ध हुआ, जिसमें मलिक अंबर घायल हो जाने पर मैदान से उठा लाया गया। खानखानाँ ने, जो उसके विचारों को जानता था, प्रसन्न होकर संधि कर ली। मलिक अंबर ने भी इसे गनीमत समझकर खानखानाँ से भेंट की और एक दूसरे से प्रतिज्ञा कर संधि कर ली। मलिक अंबर प्रायः राजू मियाँ से पराजित हो जाता था, इसलिये अब उसने खानखानाँ की सहायता से उसको परास्त कर दिया और मुर्तजा निजामशाह को अपने हाथ में कर जूनेर में नजरबंद कर रक्खा। इसके अनंतर राजू पर फिर सेना भेज कर उसे कैद कर लिया और उसके देश पर भी अधिकार कर लिया। उत्तरी भारत में बहुत सी घटनायें, जैसे शाहजादा सुलतान सलीम का विद्रोह, अकबर की मृत्यु

और सुलतान खुसरू का बलवा करना सब थोड़े ही समय के बीच बीच हुआ था, इसलिये मलिक अंबर आराम के साथ धीरे धीरे अपनी शक्ति बढ़ाता गया और बहुत सेना एकत्र कर ली तथा बहुत से बादशाही महालों पर भी अधिकार कर लिया। खानखानाँ समय देखकर यह सब सहता गया। जब जहाँ-गीर की बादशाहत जम गई तब उसने इसपर बराबर सेनाएँ भेजी। मलिक अंबर कभी हारता और कभी जीतता था पर उसने युद्ध करना कभी नहीं छोड़ा। इसके अनंतर जब युवराज शाहजादा शाहजहाँ दो बार दक्षिण में नियत हुआ और उस प्रांत के सभी सुलतानों ने अधीनता स्वीकार कर ली तब मलिक अंबर ने भी विजय किए हुए महालों को बादशाही वकीलों को सौंप दिया और अधीनता में अंत तक दृढ़ रहा। मलिक अंबर आदिलशाही तथा कुतुबशाही सुलतानों से बराबर जमीन के लिये लड़ता रहा और बराबर विजय भी पाता रहा। साथ ही यह नाल बंदी में धन वसूल करता रहा। सन् १०३५ हि०, सन् १६२६ ई० में ८० वर्ष की अवस्था में यह मर गया। यह दौलताबाद के रौजा में शाह मुनाजिबुद्दीन जरबख्श और शाह राजूय कत्ताल की दरगाहों के बीच में गाड़ा गया। रौजा ऊँचे गुंबद और दीवार से घिरा है। इतने उलटफेर हो जाने पर भी अब तक उसके लिये भूमि लगी हुई है, जिससे रोशनी का प्रबंध हो जाता है। यह युद्धकौशल, सरदारी, राजनीति के ज्ञान तथा योग्यता में अपने समय का अद्वितीय था। इसने कज्जाकी की प्रथा को पूरी तरह समझ लिया था, जिसे दक्षिण में बर्गी गिरी कहते हैं और उस देश के उपद्रवियों तथा दुष्टों को बराबर शान्त रखता था।

इसने प्रजा के आराम और देश के बसाये रखने में बड़ा प्रयत्न किया था। इतने उपद्रव और लड़ाइयों के होते हुए, जो मोगल और दक्षिण की सेनाओं में निरंतर होता रहता था, इसने दौलताबाद से पाँच कोस पर स्थित खिरकी ग्राम में जो अब खुजस्ता बुनियाद औरंगाबाद के नाम से प्रसिद्ध है, तालाब, बाग, तथा बड़ी इमारतें बनवाईं। कहते हैं कि यह खैरात बाँटने में, अच्छे काम करने में तथा न्याय करने और पीड़ितों को सहायता देने में बड़ा दृढ़ था। यह कवियों का आश्रयदाता था। एक शायर ने इसकी प्रशंसा में कहा है। शैर—

दर खिदमते रसूले खोदा एक बिलाल था।
बाद एक हजार साल मलिक अंबर है आया॥

फतह जग ख़ाँ मियाना

इसका नाम हुसेन खाँ था, और यह बीजापुर के आदिल-शाही राजवंश का प्रसिद्ध सरदार था। यद्यपि यह प्रसिद्ध बहलोल ख़ाँ मियाना का संबंधी न था पर यह अपने उच्चवंश तथा ऐश्वर्य के कारण बीजापुर के प्रसिद्ध पुरुषों में से था। आदिलशाह के घरेलू सेवकगण अपने बादशाह को कुछ नहीं समझते थे और विद्रोह कर आपस में लड़ने के लिये सदा तैयार रहते थे, इसलिये उस राज्य का कार्य बिगड़ता गया और शत्रुता बढ़ती गई। औरंगजेब कुतुबशाही और आदिलशाही राजवंशों को नष्ट करना बहुत पहिले ही निश्चय कर चुका था और जब बहुत दिनों क बाद उसे दक्षिण बादशाह हो जाने पर आना पड़ा तब अपने पुराने विचार को उसने फिर से दृढ़ किया। फतहजंग दूरदर्शिता से और अपने सौभाग्य के मार्ग-प्रदर्शन से उचित समझ कर बादशाह की सेवा में चला आया और २६वें वर्ष में औरंगाबाद दुर्ग में सेवा में उपस्थित हुआ। बादशाही आज्ञा से आतिश ख़ाँ रोजविहानी ने गुसलखाने के द्वार तक जाकर इसका स्वागत किया और अशरफ खाँ मीर आतिश चबूतरः तक जाकर इसे लिवा लाया। इसे पाँच हजारी ५००० सवार का मनसब, झंडा, डंका, फतह जंग खाँ की पदवी और चालीस सहस्र रुपया पुरस्कार में मिला। इसके भाई तथा दूसरे संबंधियों में से हर एक ने खिलअत और योग्य मनसब पाया।

इसी समय एक विचित्र घटना हुई। शाहज़ादा मुहम्मद आजमशाह, जिसे बीजापुर की ओर जाने की आज्ञा मिल चुकी थी, नीरा नदी के किनारे से दरबार बुला लिया गया। जब यह नगर के पास पहुँचा तब यह एक दिन घोड़े पर सवार होकर आ रहा था कि एकाएक फतहजंग खाँ का हाथी बिगड़ कर उसकी सेना की ओर दौड़ता हुआ शाहजादे के पास पहुँचा। उसने एक तीर चलाया पर वह और पास आया। सवारी का घोड़ा बिगड़ रहा था, इसलिये शाहज़ादा उस पर से उतर पड़ा और सामना कर हाथी के सूँड़ पर एक तलवार मारी। इसी समय साथ के रक्षकों ने, जो अस्तव्यस्त हो गए थे, घातक चोटों से हाथी को मार डाला। जब उक्त शाहज़ादा बीजापुर की चढ़ाई पर नियत हुआ तब फतह जंग खाँ भी उसके साथ नियत हुआ। मोरचों के पास युद्ध में वहाँ इसने बहुत प्रयत्न किए और अपने को घावों से सुशोभित किया। इसके अनंतर यह राहिरी का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ और बहुत दिनों तक वहीं रहा। वहाँ इसने कई बार मराठों से युद्ध किया पर एक बार यह कैद कर लिया गया। संभाजी ने संमान के साथ इससे बर्ताव किया और इसे राहिरी पहुँचवा दिया। वहीं यह मर गया। यह सीधा-सादा आदमी था और अपने कार्यों को मन लगाकर करता था। इसके पुत्रों में से, जिनमें अधिकतर इसके जीवन-काल ही में मर गए थे, कुदरतुल्ला तालीकोट का फौजदार था। ५०वें वर्ष में तालीकोट बीजापुर की सूबेदारी के साथ हुसैन कुलीज खाँ बहादुर को मिल गया और कुदरतुल्ला मेहकर का फौजदार नियत हुआ, जो बालाघाट

बरार के अंतर्गत है। इसके समय में मराठों ने धावा कर बस्ती को लूट लिया। इसके भाइयों में से यासीन ख़ाँ करर का थानेदार था और उस जिले में इसे फौजदारियाँ भी मिली थीं। बहादुरशाह के समय में इसके स्थान पर पुरदिल ख़ाँ अफ़ग़ान भेजा गया, जिससे तहसील करने में झगड़ा हो गया और युद्ध में यासीन ख़ाँ मारा गया।

फतेहजंग खाँ रुहेला

इसका पिता जिकरिया खाँ उसमान खाँ रुहेला का भाई था, जो बहुत दिनों तक दक्षिण के सहायकों में नियत था। छोटा मनसब होते भी इसका संमान तथा विश्वास लोगों में काफी था। शाहजहाँ के १३वें वर्ष में यह खानदेश का फौजदार नियत हुआ और वहाँ के कार्य में बहुत से अच्छे नियमों को जारी कर तथा रुहेलों का अधिक पक्षपात कर इसने प्रसिद्धि अर्जित किया। ३०वें वर्ष में इसको मृत्यु हो गई। यह एक हजारी ९०० सवार का मनसबदार था। जिकरिया खाँ भी अपने साहस और वीरता के लिए प्रसिद्ध था। फतेह खाँ अपने पिता तथा चचा से आगे बढ़ गया और अपने प्रयत्नों तथा उत्साह से इसने शाहजहाँ के समय अपने चचा का मनसब प्राप्त कर लिया। २६वें वर्ष यह खानदेश में टोंडापुर का फौजदार नियत हुआ, जो बालाघाट का मुख्य है, और इसके अनंतर उसी प्रांत के अंतर्गत चोपड़ा का फौजदार नियत हुआ। इसका मनसब एक हजारी ८०० सवार का हो गया। कहते हैं कि यह बहुत ही अच्छो चाल का था और छोटा मनसब होते भी यह अमीरों के समान रहता था और अपनी योग्यता से अधिक साज सामान तथा नियमों का विचार रखता था। यह भाग्यशालो था तथा उदार व दानो था। यद्यपि यह बुद्धिमानी और विद्वत्ता से खाली न था पर इसकी नम्रता और मिलनसारी ऐसो थी कि यह छोटे आद-

मियों से भी काम पड़ जाने पर उसके घर जाकर उसकी इतनी चापलूसी करता कि लोग आश्चर्य करते। यह अपने जातिवालों के पालन करने में अद्वितीय और सेनाध्यक्षता में प्रसिद्ध था। अपने भाई तथा जवान भतीजों के पालन पोषण का भार इसने अपने कंधे पर ले लिया था, जो सभी वीरता तथा साहस में एक से एक बढ़कर थे। इसने शाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर की सेवा में, जो दक्षिण का सूबेदार था, स्वामिभक्ति तथा विश्वास के काम किए। उस चढ़ाई में जब दुर्ग बद्रौ कल्याण पर शाही अफसरों का अधिकार हो गया था तब शाहज़ादा ने इसको मीर मलिक हुसेन कोका के साथ नीलंगा पर भेजा, जिसको इन लोगों ने शीघ्र विजय कर लिया। जिस समय शाहज़ादा ने साम्राज्य के लिये उत्तरी भारत जाने का निश्चय किया उस समय यह अपने भाइयों तथा दामादों के साथ युद्ध करने के लिये कमर बाँधकर संग हो लिया। बुरहानपुर से आगे बढ़ने पर इसे ख़ाँ की पदवी मिली। महाराज जसवंतसिंह से युद्ध होने के अनंतर इसे फतहजंग ख़ाँ की पदवी, झंडा व डंका मिला और ढाई हजारी हजार सवार का मनसब पाकर यह संमानित हुआ। इसके बाद साम्राज्य के लिये अन्य लड़ने वालों के साथ जो युद्ध हुए उन सबमें अपने भाइयों के साथ इसने बराबर प्रयत्न किया। खजवा युद्ध के अनंतर मोअज्जम ख़ाँ खानखानाँ के साथ शुजाअ का पीछा करने पर नियत हुआ और उस सेनापति के हरावल में रहकर इसने बहुत अच्छा काम दिखलाया। राज्यगद्दी के वर्ष के अंत में खानखानाँ अकबरनगर (राजमहल) से सूती की ओर, जो जहाँगीर नगर से चौदह

कोस पर है गया और बहादुर सैनिकों को प्रसिद्ध आदमियों के साथ नावों में बैठाकर नदी के उस ओर भेजा, जहाँ शत्रु के मोरचे थे। कुछ ही लोग उतरे थे कि युद्ध होने लगा और शत्रु के बेड़े के कुछ जंगी कोसे आक्रमण कर युद्ध करने लगे। बहुत से बिना लड़े लौट आए। इसके भाई हयात ख़ाँ उर्फ़ जबरदस्त ख़ाँ ने, जो अपने कुछ मित्रों के साथ एक नाव में था, बहुतों को मारा और घायल किया। स्वयं उसे गोली से एक और तीरों से दो घाव लगे और तब वह लड़ता हुआ शत्रु के नावों से निकल आया। इसके भाई शहबाज़ तथा शरीफ और इसके भतीजे रुस्तम तथा रसूल बहुत से संबंधियों और अनुयायियों के साथ दूसरे नाव में थे। ये सब नाव से उतरे नहीं थे कि शत्रु इनको रोकने को आ पहुँचे। हाथी की चोट से शहबाज मारा गया और रुस्तम तथा रसूल अन्य लोगों के साथ आक्रमण करते हुए मारे गए। बचे हुए घायल होकर कैद हो गए। इसके अनंतर जब ख़ानख़ानाँ ने मुख़लिस ख़ाँ को अकबरनगर का फौजदार नियत किया तब इसको जबरदस्त ख़ाँ के सहित उक्त ख़ाँ के साथ छोड़ दिया। शुजाअ का कार्य निपट जाने पर यह बंगाल से दरबार आया। यह दक्षिण में रहना चाहता था इसलिये वहीं के सहायकों में नियत हुआ। बीजापुर की चढ़ाई में मिर्ज़ाराजा जयसिंह के साथ सेना के बाएँ भाग का यह अध्यक्ष नियत हुआ। जब बीजापुर के पास पहुँचा तब शरजा ख़ाँ महदवी और सीदी मसऊद बादशाही राज्य में आकर उपद्रव करने लगे। दैवयोग से उसी समय फतहजंग का भाई सिकंदर उर्फ़ सलाबत ख़ाँ राजा की सेना में मिलने के लिये परिन्दा से

चार कोस पर आ पहुँचा था। शरज़ा ख़ाँ ने छ सहस्र सवारों के साथ उस पर आक्रमण किया। इसने अपने सनमान की रक्षा के लिये शत्रु के आगे से भागना उचित न समझा और ४० निजी सवारों के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया। इसके हर एक भाई साहस, वीरता तथा बहादुरी के लिये प्रसिद्ध थे। परगना जामेज़ा, जो खानदेश में था, इसकी जागीर थी। वहाँ के बहुत से गाँवों का मोकद्दमा इसने अपने हाथ में ले लिया और मौजा पैपरी को अपना निवासस्थान बनाया। यह फरदापुर से आठ कोस पर बुरहानपुर के मार्ग पर है। इसने उसे बसाने का प्रयत्न किया और इसके संतान वहीं बस गए। औरंगजेब के राज्य के अंत में इसका पुत्र ताज ख़ाँ जीवित था और इसका प्रभुत्व भी था पर उसके अनंतर यह प्रभाव जाता रहा और प्रायः १० वर्ष हुए कि इनकी अयोग्यता से वह मौजा जागीर में से निकाल लिया गया परंतु ये जमींदार की तरह अधिकृत हैं। उसका दामाद अलहदाद ख़ाँ मंगलोर (शाह बदरुद्दीन) कसबा में रहने लगा और अपनी हवेली के फाटक को बड़ी शान से बनवाया। उसके वंशवाले अभी तक वहीं हैं।

ख्वाजा फतहुल्ला

यह हाजी हबीबुल्ला काशी[1] का पुत्र था, जिसको उसकी योग्यता तथा बुद्धिमानी के कारण २०वें वर्ष जलूसो में अकबर बादशाह ने कोह[2] बंदर भेजा था कि वहाँ से वह अच्छी वस्तु लावे। २२वें वर्ष में वहाँ की अमूल्य वस्तुओं को लेकर यह दरबार में उपस्थित हुआ। शेख अबुल् फजल ने अकबरनामा में लिखा है कि उस प्रांत की चीजों में एक अर्गन बाजा था, जिसे बादशाही महफिल में अच्छी तरह बजाते थे। उक्त हाजी ३९वें वर्ष में मर गया।[3] उक्त सज्जन फतहुल्ला अकबर बादशाह के खास सेवकों में से था और अच्छा संमान रखता था। जिस वर्ष बादशाह अजमेर दर्शन करने गए उस वर्ष इसे कुतुबुद्दीन अतगा को लिवाने भेजा और आज्ञा दी कि उसे मालवा के मार्ग से लिवा लावे, जिसमें वह योग्य आदमियों को भेज कर खानदेश के शासक को मुजफ्फरहुसेन मिर्जा को भेजने के लिये भय तथा आशा देकर बाध्य कर सके। यह वहाँ पहुँच कर तथा आदेशानुसार काम करते हुए अपनी चालाकी से साथ भेजे गए लोगों को लिए बुर्हानपुर पहुँचा। यहाँ से बिना

---

१. काशान देश का निवासी।

२. कोह वर्तमान गोआ है। अकबरनामा भाग ३ पृ० १४६।

३. अकबरनामा पृ० २२८। आईन अकबरी, ब्लॉकमैन जीवनी सं० ४६९ पर फतहुल्ला का वृत्तांत दिया गया है।

बादशाही आज्ञा के हिजाज को चल दिया। इसके अनंतर अपनी इस चाल से दुखी होकर बेगमों[1] के साथ, जो हज से लौटी हुई थीं, आकर २७वें वर्ष में उन्हींकी सिफारिश से क्षमा प्राप्त कर सेवा में भर्ती हो गया।

२९वें वर्ष में यह बंगाल के सर्दारों पर नियत हुआ, जो बादशाही कामों में स्वास्थ्य की कमी के कारण ढिलाई कर रहे थे। ३०वें वर्ष में, जब खानआजम कोका दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुआ तब यह भी उसके साथ सेना का बख्शी होकर गया। ३७वें वर्ष में शेख फरीद बख्शी के साथ मिर्जा युसुफ खाँ रिजवी के चचेरे भाई यादगार को दमन करने पर नियत हुआ, जिसने कश्मीर में उपद्रव मचा रखा था। ४५वें वर्ष में जब बादशाही सेना बुर्हानपुर में थी तब यह मुजफ्फर हुसेन मिर्जा के साथ ललंग दुर्ग लेने भेजा गया। जब उक्त मिर्जा उन्माद के कारण, जिसका हाल उसके वृत्तांत में दिया गया है, भाग गया तब यह सेना के साथ उक्त दुर्ग के पास पहुँचा। दुर्गवालों ने भोजन के सामान की कमी से किले की कुंजी इसे सौंप दी। यह खानदेश के कुछ सैनिकों को, जिन्होंने अधीनता स्वीकार कर ली थी, वचन देकर बादशाह के पास लिवा लाया। इसी वर्ष के अंत में यह नासिक की ओर भेजा गया। जब दुर्ग कालना के पास पहुँचा तब वहाँ का ताल्लुकादार सआदत खाँ, जो बहुत दिनों से अधीनता मानने की इच्छा रखता था, इसके पास मिलने आया और

---

१. गुलबदन बेगम अन्य बेगमों के साथ हज्ज को गई थीं।

दुर्ग सौंप दिया। ४८वें वर्ष शाहजादा सुल्तान सलीम की प्रार्थना पर, जो इलाहाबाद में था, इसे एक हजारी मनसब देकर शाहजादे के पास नियत कर दिया। जहाँगीर की राजगद्दी पर इसे बख्शी का पद मिल गया।

फतहउल्ला खाँ बहादुर आलमगीर शाही

इसका नाम महम्मद सादिक था और यह बदख्शाँ के अंतर्गत खोस्त का एक सैयद था। यह एक वृद्ध अनुभवी सैनिक था और तलवार चलानेवाले बहादुरों का सरदार था। यह आरंभ में खाँ फीरोजजंग के साथ रहते हुए बादशाही मनसब पाकर संमानित हुआ। यह वीरता तथा द्वंद्व-युद्ध में बहुत प्रसिद्ध हुआ। २७वें वर्ष में जब खाँ फीरोजजंग मराठों पर बराबर आक्रमण तथा घोर युद्ध करने के उपलक्ष में शहाबुद्दीन के स्थान पर गाजीउद्दीन खाँ बहादुर के नाम से संबोधित हुआ तब फतहउल्ला खाँ को, जिसने उन युद्धों में प्रसिद्धि प्राप्त की थी, सादिक खाँ की पदवी मिली। इसने बहुत दिनों तक खाँ फीरोजजंग के साथ रहकर बहुत अच्छे काम किए और फतहउल्ला खाँ की पदवी से प्रसिद्ध हुआ। इसके अनंतर उक्त खाँ का साथ छोड़ कर बादशाही कृपा से सरदार हो गया और बराबर शत्रुओं के देश में घूमने और दंड देने में लगा रहा। ४३वें वर्ष में इसलामपुरी में चार वर्ष ठहरने के बाद जब बादशाह शंभाजी के दुर्गों को विजय करने निकला तब फतहउल्ला खाँ ने भी दुर्ग लेने के कामों, जैसे मोर्चे तथा खान खोदने में बड़ी फुर्ती दिखलाई। सितारा दुर्ग के घेरे में, जो पहाड़ के एक पुश्ते पर बना हुआ है और जिसकी चोटी सुरैया तक पहुँची है और जिसकी जड़ पृथ्वी के नीचे तक गई है, रूहुल्ला खाँ द्वितीय के साथ दुर्ग के फाटक के

सामने मोर्चाल बनाने में लगा। यह अपने उत्साह तथा वीरता से दुर्ग के फाटक के पास पहुँच कर चाहता था कि एक मुक्का मार कर उसे तोड़ डाले। इसके रोब तथा अन्य मोर्चाओं के पास पहुँचने से भय के कारण दुर्ग विजय हो गया। परली दुर्ग के विजय में, जो चौड़ाई तथा ऊँचाई में सतारा के बराबर था, यह भी साथ रहा। जब सितारा विजय हो गया तब फतहउल्ला परली पर चढ़ाई करनेवाली सेना का हरावल नियत हुआ। औरंगजेब स्वयं तीन दिन में वह दूरी समाप्त कर दुर्ग के फाटक के सामने जा उतरा। फतहउल्ला ने उस दुर्ग की दृढ़ता को विचार में न लाकर पहाड़ पर तोपखाना लगाने और तोपें चढ़ाने में बहुत बड़ा परिश्रम किया, जिससे सालों का काम कुछ दिनों में पूरा हो गया। यहाँ तक कि इसने एक तोपखाना एक बहुत बड़े पत्थर के नीचे लगाया, जो नीचा होता हुआ दुर्ग के छोटे फाटक की ओर चला गया था। पर इस पत्थर पर चढ़ना बहुत ही कठिन था। यदि इस चट्टान पर अधिकार हो जाय तो दुर्ग का लेना सुगम हो जाय। फतहउल्ला खाँ कुछ बहादुरों के साथ उस चट्टान पर वीरता तथा साहस से निकल आया और उस मैदान में, जो दुर्ग के फाटक तक फैला था, शत्रुओं पर आक्रमण किया। शत्रु सामना करने का साहस न कर फाटक की ओर भागे और मोगलों ने पीछा किया। उक्त खाँ ने दुर्ग के भीतर घुसने का विचार नहीं किया था, प्रत्युत वह चाहता था कि सैनिकों को चट्टान पर नियत कर तथा तोप लाकर दुर्ग की दीवार को तोड़ डाले। शत्रुओं ने दरीचे को दृढ़ कर दीवाल पर से गोलियाँ और टुकड़ों की वर्षा

करना आरंभ किया। उन्होंने उस बारूद में आग लगा दी, जिसे ऐसे ही दिन के लिए दुर्ग के निकलने के मार्ग में फैला रखा था। फतहउल्ला खाँ का पौत्र फकीरुल्ला खाँ सड़सठ आदमियों के साथ मारा गया। उस चट्टान पर कोई रक्षा का स्थान न था, इसलिये ये वहाँ ठहर न सके और नीचे उतर कर पुराने स्थान पर चले आये। परंतु इस युद्ध से शत्रु डर गए और उनका अहंकार मिट गया तथा उन्होंने संधि की प्रार्थना की। डेढ़ महीने के अनंतर ४४वें वर्ष में दुर्ग विजय हुआ। इस विजय की तारीख 'हजा नसरुल्ला है' (यह विजय अल्लाह को है) से निकलती है। यह दुर्ग इब्राहीम आदिलशाह के बनवाए हुए इमारतों में से था और इसकी नींव सन् १०३५ हि० (सन् १६२६ ई०) में पड़ी थी। आदिलशाह हरएक नई वस्तु को बनवा कर उसका नाम नवरस-शब्द संयुक्त रखता था, इसलिए बादशाह ने इस दुर्ग का नाम नवरस तारा रखा। उक्त खाँ ने मनसब में तरक्की पाकर अपनी सेना की कमी पूरी करने के लिए औरंगाबाद जाने की छुट्टी पाई। परनाला के घेरे के समय दरबार आनेपर इसे आज्ञा मिली कि एक ओर तरबियत खाँ मीर आतिश तोपखाना लगावे और दूसरी ओर फतहउल्ला खाँ शाहजादा बेदारबख्त की अध्यक्षता में तैयार करावे तथा इसके बाद मुनइम खाँ के साथ एक और मार्ग बनावे। इस आज्ञाकारी ने एक महीने में पथरीली जमीन को मिट्टी के समान काट कर एक गली दीवाल तक पहुँचा दी, जिससे गली बनानेवाले चकित हो गए। दुर्गवाले डर गए और संधि की प्रार्थना की। इसको बहादुर की पदवी मिली।

जब बादशाही सेना परनाला से खतावन की ओर चली, जहाँ खेती अच्छी होती है और अन्न काफी मिलता है, कि वहीं छावनी डाले तब इस बहादुर को दरदाँगढ़ लेने के लिये आगे भेजा, जो उस मौजा से दो कोस पर था। उस गढ़ की सेना ने इसके भय से उसे खाली कर दिया और अपनी जान बचा लेने को ग़नीमत समझा। इस दुर्ग का नाम इसके नाम पर सादिकगढ़ रखा गया। खतावन से एक सेना बख्शीउलमुल्क बहर:मन्द ख़ाँ के अधीन नन्दगिर, चन्दन और मंडन लेने के लिये भेजी गई। थोड़े ही समय में तीनों दुर्ग के सैनिक संधि कर या भागकर चले गए। पहिले का नाम गीरु, दूसरे का मिफ़्ताह और तीसरे का मफ़तूह रखा गया। ४५वें वर्ष में शाही सेना सादिकगढ़ से खेलना दुर्ग की ओर रवाना हुई, जो कुल पहाड़ी था और घने जंगलों तथा काँटेदार झाड़ झंखाड़ से भरा हुआ था। कुछ दिनों में यह लोग उसके पास पहुँच कर ठहर गए। पथरीली जमीन और ढालू रास्ते तथा गड्ढों के कारण वह दुर्गम हो रहा था। अधिक कर चार कोस का मार्ग था, जिसमें चलने की कठिनाई से लोग डर गए थे पर फतहउल्ला ख़ाँ के प्रबंध तथा प्रयत्न से तथा फावड़ेवाले और संगतराशों के परिश्रम से यह कठिनाई दूर हो गई। उक्त ख़ाँ को एक खास तूणीर पुरस्कार में देकर बादशाह ने इस पर कृपा की और यह अमीरुल् उमरा जुम्लतुल्मुल्क असद ख़ाँ की अध्यक्षता में तथा हमीदुद्दीन ख़ाँ, मुनइम ख़ाँ और राजा जयसिंह के साथ खेलना दुर्ग के घेरे पर नियत हुआ। उसी दिन इस साहसी ख़ाँ ने क़िले के पुश्ते को शत्रुओं से छीनकर उस पर तोपें

लगा दीं। इन तोपखानों को आगे बढ़ाने और मार्ग को चौड़ा करने में ये बराबर प्रयत्न करते रहे। फरहाद के समान परिश्रम करते हुए उस पहाड़ी पर पटे हुए मार्ग बुर्ज के मध्य तक पहुँचा दिए गए और चारों ओर कूचे दौड़ा दिए गए। दिन भर सोना बाँटा जा रहा था और यह मजदूरों के साथ स्वयं काम करता था। दुर्ग से बराबर सौ तथा दो सौ मन के पत्थर फेंके जा रहे थे। एकाएक एक पत्थर चौड़ी छत पर गिरा और उसे तोड़ डाला। फतहउल्ला खाँ सिर पर चोट खाने से लुढ़कता हुआ एक गहरे खड्ड की ओर जाने लगा पर एक गिरे हुए कजावा के बीच में रुक गया। आदमियों में बड़ा शोर गुल मचा और सब लोगों में निराशा फैल गई। यह बेहोश उठा लाया गया, जिसके बहुत देर बाद इसे होश आया। इसके सिर और कमर में इतनी चोट लग गई थी कि वह एक महीने तक खाट पर पड़ा रहा। फिर उसी कार्य पर पहुँच कर इस विचार में पड़ा कि क्या उपाय करे कि बुर्ज की ओर से आक्रमण कर सके। इसी समय शाहजादा बेदारबख्त के प्रयत्नों से दुर्ग विजय हो गया। फतहउल्ला खाँ को जड़ाऊ जीगा पुरस्कार में मिला और आलमगीर शाही की पदवी मिली।

यद्यपि फतहउल्ला खाँ ने दुर्गों के लेने तथा शत्रुओं के नष्ट करने में जो सेवा की थी वह किसी दूसरे से न हो सकी थी पर औरंगजेब ने राजनीतिक कारण तथा दूरदर्शिता से इसे मनसब में योग्य तरक्की तथा पद नहीं दिया। बादशाह इसकी वीरता, साहस तथा निर्भयता के कारण इसे एक अच्छा सरदार मानता था। एक दिन इसने प्रार्थना की कि यदि उसे

पाँच हजार सवार मिलें तो वह दक्षिण में मराठों का नाम निशान मिटा दे। बादशाह ने आज्ञा दी कि पहिले वह अपने समान एक दूसरे सरदार को पाँच सहस्र सवारों के साथ अपने पास रख ले तब उसे पाँच सहस्र सवारों की सरदारी मिले। इन कारणों से फतहउल्ला खाँ उदासीन होकर दरबार में नहीं रहना चाहता था और इस पर इसने काबुल में नियत किए जाने के लिये कई बार प्रार्थना की, जो उसका देश था। ४७वें वर्ष में तीन हजारी १००० सवार का मनसब पाकर काबुल जाने की छुट्टी पाई। ४९वें वर्ष में उस प्रांत में अल्लाहयार खाँ के स्थान पर लोहगढ़ का थानेदार नियत हुआ और २०० सवार इसके मनसब में बढ़ाए गए। औरंगजेब की मृत्यु पर जब शाहजादा बहादुरशाह उस प्रांत के सब सहायक सरदारों के साथ पेशावर से रवाना हुआ तब फतहउल्ला खाँ को आने को आज्ञा भेजी, जो अपने निवास-स्थान को चला गया था। लाहौर के पास यह सूचना मिली कि उस आज्ञा पर भी फतहउल्ला खाँ ने साथ देने से जान बचाई। शाहजादे ने कहा कि जाननिसार खाँ, जो बहादुरी में फतह-उल्ला खाँ से कम नहीं है, आगरे में भारी सेना के साथ पहुँच गया होगा, चाहे फतहउल्ला खाँ आवे या न आवे। बहादुरशाह के राज्य के आरंभ में यह मर गया। यह सच्चा सैनिक था और निडर होकर कड़वी बात भी कह देता था। एक दिन औरंग-जेब ने किसी कार्य पर खफा होकर एक ख्वाजासरा से इसके पास भर्त्सनापूर्ण संदेश भेजा, जिस पर उसने उत्तर में कह-लाया कि बुद्धिमान मनुष्य अस्सी वर्ष की अवस्था तक पहुँचने

पर अपनी बुद्धि खो बैठता है। मैं अपने खुदा से सौ फर्सख दूर हो सिपाही बन बैठा हूँ और व्यर्थ ऐसे कार्य में जान दे रहा हूँ। जब ख्वाजासरा ने उसके भाषा की कड़ाई बतलाई तब इसने नम्रता से क्षमायाचना की।

फतहउल्ला शीराजी, अमीर

यह अपने समय के अध्ययन योग्य तथा उपयोगी कार्यगत विज्ञानों में अद्वितीय योग्यता रखता था। यद्यपि इसने ख्वाजा जमालुद्दीन महम्मद, मौलाना जमालुद्दीन शेरवानी, मौलाना करद और मीर गयासुद्दीन शीराजी की पाठशालाओं में बहुत ज्ञान प्राप्त किया था पर विद्या में यह उनसे बढ़ गया। अबुल्‌फजल इस प्रकार कहता है कि यदि विज्ञान के पुराने ग्रंथ नष्ट हो जाँय, तो वह नई नींव डाल सकता है और तब पुराने की कोई आवश्यकता न रह जायगी।

आदिलशाह बीजापुरी ने इसको हजारों प्रयत्न कर शीराज से दक्षिण बुलाया और अपना प्रधान अमात्य बनाया। आदिलशाह की मृत्यु पर अकबर के बुलाने पर यह २८ वें वर्ष सन् ९९१ हि० में फतहपुर में पहुँचा। खानखानाँ और हकीम अबुल्‌फतह ने इससे मिलकर बादशाह के सामने इसे उपस्थित किया। बादशाही कृपा पाकर थोड़े ही समय में यह बादशाह का अंतरंग मुसाहिब बन गया। यह सद्र नियत किया गया और मुजफ्फर खाँ तुरबती की पुत्री से इसका निकाह हुआ। कहते हैं कि यह तीन हजारी मंसब तक पहुँचा था और ३० वें वर्ष के जुलूस पर इसे अमीनुल्‌मुल्क की पदवी मिली थी। आज्ञा हुई कि राजा टोडरमल मीर की राय से देश के कोष-विभाग का सब कार्य ठीक करे और उन पुराने मामिलों को,

जिनकी मुजफ्फर खाँ के समय से जाँच नहीं की गई है, ठीक करे। मीर ने कुछ ऐसे नियम बनाए, जिनसे कोष-विभाग की उन्नति हो और प्रजा को आराम मिले। ये नियम स्वीकृत हुए। इसी वर्ष अज़ीजुद्दौला की पदवी पाकर खानदेश के शासक राजे अली खाँ को समझाने भेजा गया। वहाँ से असफल हो लौटकर खान-आजम के पास पहुँचा, जो दक्षिणियों पर आक्रमण करने और उस प्रांत के सर्दारों को दंड देने के लिये नियत हुआ था। वह शहाबुद्दीन अहमद खाँ तथा अन्य सहायक अफसरों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था, इसलिये वहाँ का कार्य संतोष-जनक न रहा। ३१ वें वर्ष में मीर दुखी होकर खानखानाँ के पास दक्षिण गुजरात चला गया।

कहते हैं कि मीर दक्षिण के काम को पूरा करने के लिये भेजा गया था पर आजम खाँ कोका और शहाबुद्दीन खाँ के बीच एकता न रही, इस पर राजे अली खाँ ने, यह वैमनस्य देख कर, दक्षिण के सेनापतियों को मिलाकर युद्ध की तैयारी की। मीर ने बहुत चाहा कि उसको रास्ते पर लावें पर कोई उपाय नहीं बैठा। निरुपाय होकर यह गुजरात खानखानाँ के पास गया कि उसे सहायता के लिये ले आवे पर उसने भी इन्हीं कारणों से हाथ नहीं लगाया तब यह दरबार चला गया। ३४वें वर्ष सन् ९९७ हि० में जिस समय बादशाह काश्मीर से लौट रहे थे उस समय यह बीमार होकर शहर ही में रह गया। हकीम अली उसको दवा करने में असफल रहा। बदायूनी लिखता है कि वह स्वयं हकीम था और हकीम मिश्री

के कहने को न मानकर ज्वर को हरीश से अच्छा करना चाहा, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। यह मीर सैयद अली हमदानी के खानकाह में मरा था। बादशाह की आज्ञा से सुलेमान पहाड़ पर उसका शव गाड़ा गया, जो बहुत ही अच्छा स्थान है। इसकी तारीख 'फिरस्तबूद' से निकलती है। अकबर ने मीर के मरने पर बहुत दुखी हो कहा था कि मीर हमारा मंत्री, दार्शनिक, वैद्य और ज्योतिषी एक ही में था। हमारे शोक का कौन अनुमान लगा सकता है। यदि वह फिरंगियों के हाथ पड़ता और वह उसके बदले कुल कोष माँगते तब भी हम उसे सस्ता सौदा समझते और उस उत्तम मोती को सस्ते में खरीदा समझते। शेख फैजी ने उसके शोक में एक अच्छा कसीदा लिखा, जिसके कुछ शैर यहाँ दिए जाते हैं। (अनुवाद नहीं दिया गया है)

तबकात में लिखा हुआ है कि अमीर फतहउल्ला सब विद्याओं में ईरान और हिंदुस्तान बल्कि सारी दुनिया में अपना जोड़ नहीं रखता था। जादूगरी और तिलस्म भी बहुत जानता था। उसने एक मशीन बनाया था, जो सतह पर चल कर आटा पीसती थी। उसने एक आइनः बनाया था जिसमें दूर और पास की विचित्र शक्ल दिखलाई पड़ती थी। एक चक्कर था, जिससे १२ बंदूकें भरी जाती थीं और साफ भी होती थीं। बदायूनी लिखता है कि मीर इतना दुनियादोस्त था कि इतने ऊँचे पद पर पहुँच कर भी पढ़ाने से हाथ नहीं रोका। अमीरों के घर जाकर उनके लड़कों को साधारण शिक्षा देता था और अपनी विद्या की प्रतिष्ठा का ध्यान नहीं करता था। बादशाह के साथ कंधे पर बंदूक रख और कमर में थैला बाँध पैदल

दौड़ता था। मल्लयुद्ध में वह रुस्तम के समान था। प्रसिद्ध है कि मीर इतनी विद्या के रहते भी बादशाह के विषय में कहता था कि यदि मैं अनेकता तथा एकता के पुजारी की सेवा में न पहुँचता तो ईश्वर को पहचानने का मार्ग न जान पाता। मीर ने सन् ९९२ हि० में तारीख-इलाही नियत किया। अकबर बहुत दिनों से विचार में था कि हिंदुस्तान में नया शाका और महीना चलावे क्योंकि हिजरी शाका अपनी प्राचीनता के कारण अप्रचलित हो रहा था और उसका आरंभ शत्रुओं की प्रसन्नता और मित्रों के शोक से होता है। परंतु बुद्धिमानों के झुंड के इस विचार से कि शाकाओं का बदलना धर्म से संबंध रखता है इसलिये कोई रद्दोबदल नहीं हुआ। मीर और उसके ही समान विद्वानों ने, जिन्होंने दीन इलाही स्वीकार कर लिया था, इस शाका को आरंभ किया और सब प्रांतों को फर्मान भेजे गये कि इस शाका को चलावें, जिसका आरंभ अकबर के राज्य के आरंभ से मनाया गया और यह पत्रे पर तैयार किया गया। इसका वर्ष और महीना सौर रखा गया और लौंद महीना उड़ा दिया गया। महीना और दिन का नाम फारस ही का रहा।

फरहत ख़ाँ

इसका नाम मेहतर सकाई था और यह हुमायूँ के विशिष्ट सेवकों में से था। मिर्जा कामराँ के युद्ध में जब धोखेबाज सरदारगण कपट से मिर्जा कामराँ के पास चले गए और बेग बाबाई कोलाबी ने पीछे से आकर हुमायूँ पर तलवार चलाई, जो न लगी, तब फरहत ख़ाँ ने पहुँच कर एक ही चोट में उसको भगा दिया। जिस समय हुमायूँ सिकंदर सूर से लड़ने के लिये लाहौर से सरहिंद को रवाना हुआ तब इसे लाहौर का शिकदार नियत किया। जब शाह अबुल्मआली उस प्रांत में नियत हुआ तब उसने इसको बिना आज्ञा के उस पद से हटाकर अपने आदमी को उस कार्य पर नियत कर दिया। इसके अनंतर जब शाहजादा अकबर उस प्रांत में भेजा गया तब फरहत ख़ाँ शाहजादे की सेवा में पहुँच कर प्रशंसा का पात्र हुआ। अकबर के राज्यकाल में यह कस्बा कोड़ा[1] का जागीरदार रहा। जब पूर्व की ओर से बादशाह लौट रहे थे तब इसके गृह पर गए और इसका निमंत्रण स्वीकार कर इसका सनमान बढ़ाया। मुहम्मद हुसेन मिर्जा के युद्ध में अहमदाबाद के पास इसने बहुत अच्छी सेवा की। जब मिर्जा पकड़ा गया और उसने पीने के लिये पानी माँगा तब फरहत ख़ाँ ने अत्यंत क्रुद्ध होकर दोनों हाथ से उसके सिर पर चपत लगाई और कहा किस नियम के अनुसार

---

१. इसका नाम कोड़ा तथा कड़ा भी है और इलाहाबाद में है।

तुम्हारे ऐसे विद्रोही को पानी दिया जाय। बादशाह ने इस पर विरोध किया और अपना खास पानी मँगाकर पीने को दिया। १९वें वर्ष में यह अन्य लोगों के साथ रोहतास दुर्ग पर अधिकार करने भेजा गया[1], जो दुर्ग दुर्गमता तथा दृढ़ता में अद्वितीय है और जिसमें पहाड़ पर इतनी खेती होती है और पानी के इतने सोते हैं, कि वे दुर्ग-रक्षकों के लिये काफी हैं। जब घेरा डाल दिया गया और कुछ दिन बीत गए तब बादशाही आज्ञापत्र मुज़फ्फर ख़ाँ के नाम, जो उस समय फरहत ख़ाँ के अधीन इसलिये नियत किया गया था कि उसका घमंड टूट जाय, भेजा गया कि वह विद्रोही अफग़ानों को दंड दे, जो बिहार में उपद्रव मचा रहे थे और इस प्रकार वह फिर कृपा का पात्र हुआ। मुज़फ्फर ख़ाँ और अफगानों के बीच के युद्ध में फरहत ख़ाँ बाएँ भाग का अध्यक्ष था। जब राजा गजपति ने आरा कसबा के पास विद्रोह किया, जो फरहत ख़ाँ की जागीर में था, तब यह युद्ध करना ठीक न समझ कर दुर्ग में जा बैठा। जब फरहत ख़ाँ के पुत्र फरहंग ख़ाँ ने अपने पिता के दुर्ग में घिर जाने का समाचार सुना तब वह सहायता को आया। युद्ध में किसी सैनिक के तलवार से उसका घोड़ा मारा गया और वह भी पैदल लड़ता हुआ काम आया। फरहत ख़ाँ यह शोकजनक घटना सुनकर पुत्र-स्नेह के कारण दुर्ग से बाहर

---

१. अकबरनामे में इस दुर्ग के घेरने तथा अफगानों से युद्ध करने का विवरण विस्तार से दिया है, जहाँ से यह अंश लिया ज्ञात होता है। इलि० डाउ० भाग ६ पृ० ४९–५०।

निकल आया और मारा गया। यह घटना २१वें वर्ष सन् ९८४ हि० सन् १५७६–७७ ई० में हुई थी।[1]

---

१. अदहम खाँ को बाँधकर बुर्ज पर से फेंकनेवालों में फर्हत खाँ खासखेल का भी नाम आया है। यदि यह वही है, तो इसका उल्लेख इस जीवनी में नहीं हुआ है। मआ० उ० हिंदी भाग २ पृ० ७। आईन अकबरी, ब्लॉकमैन सं० १४५ पर इसकी जीवनी में भी इसका उल्लेख नहीं है। नौ सदी मंसबदारों की सूची में इसका नाम दिया गया है।

फ़रीद शेख मुर्तजा ख़ाँ बुखारी

एकबालनामा[1] में लिखा है कि यह शेख मूसवी सैयदों में से था और यह बात वैचित्र्य से खाली नहीं है। बुखारा के सैयदों से सैयद जलाल बुखारी[2] से क्या संबंध है, यह स्पष्ट है और इनका इमाम हुमाम अली नक़ी अलहादी तक सात पीढ़ी का संबंध पहुँचता है। कहते हैं[3] कि चौथे दादा शेख अब्दुल ग़फ्फ़ार देहलवी ने अपने पुत्रों को वसीयत किया था कि धार्मिक वृत्ति लेकर कालयापन करना छोड़ दें और सैनिक सेवा कार्य करें। इस कारण शेख छोटी अवस्था में अकबर बादशाह की सेवा में पहुँचा और अपने अच्छे स्वभाव तथा योग्य सेवा से कृपापात्र होकर मुसाहेब हो गया और बुद्धिमानी, वीरता तथा साहस से इसने नाम कमाया। २८वें वर्ष जब खान-आज़म बंगाल के जलवायु के अनुकूल न होने के कारण बिहार लौट आया और वहाँ की सेना का प्रबंध वज़ीर ख़ाँ को मिला तथा जब कतलू लोहानी उड़ीसा में विजयी होकर और विद्रोह कर अपना अधिकार बढ़ाने के लिये उद्यत हुआ तब निरुपाय होकर बंगाल के भी कुछ महाल उसे दिए गए। यह

---

१. कामगार हुसेनी भी यही बतलाता है। २. मखदूम जहाँनियाँ जहाँ गश्त। ३. प्राइस कृत जहाँगीरनामा पृ० २३।

४. अकबरनामा भाग ३ पृ० ३९०–५। खानआज़म की बंगाल की चढ़ाई पर शेख फ़रीद भी दरबार से सहायक सेना के साथ भेजा गया था।

निश्चय हुआ कि शेख फरीद नियत स्थान पर भेंट कर संधि के शर्तों को दृढ़ करे परंतु वह विद्रोही भेंट करने को उपस्थित नहीं हुआ। शेख भलाई चाहने के कारण और सिधाई से मीठा बोलनेवालों के कहने में आकर उसके घर पर गया। कतलू बड़ी चापलूसी से मिला और वह इस विचार में था कि जब सब लोग अपने स्थानों पर जाकर आराम करने लगें तब शेख को पकड़ कर कैद कर दे तथा उसको कैद से वह स्वयं सफलता प्राप्त करे। शेख को पता लग गया और उसने रात्रि के आरंभ ही में चलने की तैयारी की। द्वार पर घोड़े नहीं रहने पाये थे और कई जगह मार्ग रोक दिया गया था इसलिये युद्ध होने लगा। इसी बीच शेख एक हाथी पर सवार होकर बाहर निकला। भाग्य की विचित्रता से हाथी आज्ञा मानना छोड़कर बेराह चला। शेख नदी तक पहुँच कर उतार की खोज में था कि एकाएक कुछ आदमियों ने पहुँचकर तीर चला इसे घायल भी कर दिया। शेख अपने को एक ओर कर धीरे से निकल भागा। वे सब समझते रहे कि शेख अम्बारी में है। इसी समय एक नौकर घोड़ा लेकर आ पहुँचा और यह उस पर सवार होकर पड़ाव में चला आया।[1] निश्चित हुई संधि टूट गई। कतलू इस विद्रोह के कारण बराबर लड़ते तथा भागते हुए असफल रह गया।

---

१. यह वृत्तांत अकबरनामा के अनुसार है, देखिए अकबरनामा भा० ३ पृ० ४०६। निजामुद्दीन (इलि० डाउ० जि० ५ पृ० ४२९) और बदायूनी इसका विवरण देते हैं कि कतलू ने यह उपद्रव नहीं किया था। उसने शेख फरीद को बिदा कर दिया था पर मार्ग

शेख ३०वें वर्ष में सात सदी मनसब पाकर ४०वें वर्ष तक डेढ़ हजारी मनसब तक पहुँच गया। भाग्य-बल से यह मीर बख्शी नियत हो गया। बख्शी होने पर दीवान की अयोग्यता से उस दीवाने-तन के कार्य को, जो दीवान के विभाग का काम था, अपने हाथ में लेकर जागीर के महाल को लोगों को वेतन में बाँट दिया। बाद को[1] अकबर की मृत्यु पर भी इन दोनों भारी कार्यों को शेख करता रहा, जिससे इसका विश्वास और संमान साम्राज्य के बराबर वालों प्रत्युत सभी सरदारों से बढ़ गया था।

जब जहाँगीर ने अपनी शाहजादगी में विद्रोह कर इलाहाबाद में अपने नौकरों को पदवी और मनसब देकर जागीर

में बहादुर गौडिया ने इस पर आक्रमण किया और यह बचकर निकल गया। नुरुलहक के जुब्दतुत्तवारीख में बहादुर का नाम नहीं दिया है और यह घटना बर्दवान जिले में हुई बतलाई गई है। यह इतिहास तथा शेख अलहदाद का अकबरनामा शेख फरीद की आज्ञा पर लिखे गए थे।

१. ३१व वर्ष के अंत में यह मावरुन्नहर के राजदूत तथा अन्य सर्दारों को लिवा लाने अफगानिस्तान भेजा गया (इलि० डा० भा० ५ पृ० १५२)। इलि० डा० भा० ६ पृ० ६९, १३५-७ पर लिखा है कि ४५वें वर्ष में आसीर की चढ़ाई में यह अबुलफजल के साथ था। पृ० १२५ पर वर्णन है कि ३८वें वर्ष सन् १००३ हि० में बादशाह ने शेख फरीद को अन्य सर्दारों तथा दृढ़ सेना के साथ जम्मू तथा रामगढ़ लेने के लिये भेजा था और इसने दोनों कार्य पूरा किया। इसके अनंतर सिवालिक प्रांत के अन्य कई स्थानों के विद्रोहियों को दमन कर यह लाहौर लौट गया, जहाँ बादशाह थे।

बाँटने लगा तब अकबर ने उसके बड़े पुत्र सुलतान खुसरो पर विश्वास बढ़ाया, जिससे लोगों को उसके युवराज होने की आशंका हो गई। इसके अनंतर जब शाहजादा बादशाह के पास पहुँचा तब उसका मस्तिष्क शंका से खाली नहीं था। बादशाह आलस्य तथा सुस्ती में समय बिता रहा था। शाहजादे के सेवकगण गुजरात चले गए थे[1] क्योंकि उन्हें हाल में वहीं जागीरें मिली थीं, इसलिये अकबर ने अपनी बीमारी में संकेत कर दिया कि शाहजादा दुर्ग के बाहर जाकर अपने घर में बैठ रहे, जिसमें विरोधीगण विद्रोह न कर बैठें। मिरजा अज़ीज़ कोका और राजा मानसिंह ने सुलतान खुसरू से संबंध रखने के कारण उसकी बादशाहत के विचार से दुर्ग के फाटकों को अपने आदमियों को सौंप दिया और खिजरी दरवाजा को अपने आदमियों के साथ शेख फरीद को सौंपा। शेख सेनापति था, इसलिये उसको यह बात बुरी मालूम हुई और वह दुर्ग से बाहर निकला तथा शाहज़ादे के पास पहुँचकर साम्राज्य पाने की प्रसन्नता की बधाई में आदाब बजा लाया। यह सुनकर सरदारगण हर ओर से आने लगे। अभी अकबर जीवित था कि राजा मानसिंह बंगाल प्रांत में बहाल होकर चले गए। जहाँगीर दुर्ग में पहुँच कर गद्दी पर बैठा और शेख को साहेबुस्सैफ व अलकाम की पदवी और पाँच हजारी मनसब देकर मीरबख्शी नियत किया।

---

१. जहाँगीर कभी गुजरात का अध्यक्ष नहीं नियत हुआ था पर अकबर के अंतकाल में इसे एक लाख रुपए वार्षिक खंभात की आय से मिले थे।

इसके अनंतर जब सुलतान खुसरू के दिमाग़ में खुशामदिओं की बात सुन कर बादशाहत का विचार जोश खाने लगा तब वह अपने पिता के राज्य के प्रथम वर्ष सन् १०१४ हि० (सन् १६०६ ई०) के ज़ोहिज्जा महीना में रात्रि के समय भागा और मार्ग में लूटता हुआ आगरे से लाहौर की ओर चल दिया। शेख बहुत से सरदारों के साथ पीछा करने पर नियत हुआ। जहाँगीर स्वयं भी शीघ्रता से रवाना हुआ। अमीरुल् उमरा शरीफ खाँ और महाबत खाँ ने, जो शेख फ़रीद से वैमनस्य रखते थे, बादशाह से प्रार्थना की कि शेख जानबूझ कर कम प्रयत्न करता है और पकड़ने की इच्छा नहीं रखता। इस पर महाबत खाँ ने जाकर बादशाह की ओर से प्रयत्न करने के लिये कहा। शेख ने अपने स्थान से बाहर न आकर योग्य उत्तर भेज दिया। सुलतान खुसरू ने सुलतानपुर की नदी के पास शेख के पहुँचने का समाचार सुनकर लाहौर के घेरे से हाथ हटा लिया और बारह सहस्र सवारों के साथ, जो इन्हीं कुछ दिनों में एकत्र हो गये थे, युद्ध करने के लिये लौटा। शेख सेना के कम होने पर भी युद्ध के लिए तैयार होकर व्यास नदी पार कर युद्ध के मैदान में पहुँचा। घोर युद्ध हुआ, जिसमें बुखारा तथा बारहा के बहुत से सैयद वीरता दिखलाकर मारे गए। सुलतान खुसरो अपनी बहुत सी सेना कटाकर भागा। शेख ने एक मैदान आगे बढ़कर पड़ाव डाला।[1]

---

१. इलि० डा० भा० ६ पृ० २९५-७ पर इस युद्ध का विवरण तारीख सलीमशाही या तुज़ुके-जहाँगीरी से और पृ० २६१-८ पर वाकेआते जहाँगीरी से दिया गया है। फरीद की सेना खुसरो की सेना से अधिक थी।

उसी दिन दो तीन घड़ी रात बीतने पर जहाँगीर ने फुर्ती के साथ पहुँच कर शेख को गले लगा लिया और उसी के खेमा में ठहर कर उस स्थान को, जो परगना भैरोंवाल में था, शेख की प्रार्थना पर एक परगना बनाकर और फतेहाबाद नाम रखकर शेख को दे दिया। साथ ही मुर्तजा खाँ की पदवी और गुजरात का शासन दिया। २रे वर्ष शेख ने गुजरात से एक बदख्शी लाल की अंगूठी भेंट में भेजी, जो एक ही लाल के टुकड़े में काटकर नगीना, नगीने का घर और घेरा सब बनाया गया था और जो अच्छे पानी व रंग का था तथा तौल में एक मिसक़ाल व पन्द्रह सुर्ख का था। इसका मूल्य पचीस हज़ार रुपया आँका गया। शेख के भाइयों के बरताव तथा चाल से गुजरात के आदमियों ने विरुद्ध होकर दरबार में प्रार्थनापत्र भेजा, तब यह बुलाया जाकर ५वें वर्ष में पंजाब का सूबेदार नियत हुआ। सन् १०२१ हि० सन् १६१० ई० में उस प्रांत के अंतर्गत काँगड़ा की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ। ११वें वर्ष सन् १०२५ हि० (सन् १६१६ ई०) में पठान कसबे में मर गया। इसकी कब्र दिल्ली में इसके पूर्वजों के मकबरे में है। इसकी वसीयत के अनुसार एक इमारत बनी, जिसकी तारीख 'दाद खुरद बुर्द' (सन् १०२५ हि०) से निकलती है। इसके पास से कुल एक हज़ार अशर्फ़ी निकली।

स्थान का नाम भैरोंवाल न देकर गोविंदवाल दिया गया है परंतु प्रथम में लिखा है कि इसी युद्ध में खुसरो पकड़ा गया था। द्वितीय में उसके भागने का वृत्त दिया है कि वह चिनाब नदी के किनारे सुधारा ग्राम में नदी पार करते समय पकड़ा गया था।

शेख वाह्य तथा अंतर दोनों से सच्चा था। वीरता के साथ उदारता भी इसमें थी। इसका दान इस प्रकार चलता रहता था कि जो कोई इसके पास पहुँचता वह किसी तरह निराश नहीं लौटता था। यह दरबार पहुँचने तक दरवेशों को कम्मल, चादर, कपड़े आदि बाँटता जाता था। अशर्फी, रुपया आदि अपने हाथ से देता था। एक दिन एक दरवेश सात बार शेख से ले गया और जब आठवीं बार आया, तब इसने धीरे से उससे कहा कि जो कुछ सात बार तू ले गया है उसे छिपा रख, जिसमें दूसरे दरवेश तुझसे ले न लें। मुल्लाओं, फकीरों तथा विधवा स्त्रियों को दैनिक से वार्षिक तक वृत्तियाँ बाँध रक्खी थी, जो उसके सामने या पीछे बिना सनद या आज्ञापत्र के उन तक पहुँच जाया करती थीं। इसकी जागीर में अधिकतर सहायक वृत्तियाँ थीं। इसकी नौकरी में जो लोग मर गए थे उनके लड़कों के लिये महीना बँधा हुआ था और वे लड़के शेख के आसपास उसके पुत्रों की तरह खेला करते थे और शिक्षकगण पढ़ाने को नियत थे। गुजरात में यह सैयदों के, पुरुष या स्त्री के, नाम लिखवाकर उनकी संतान के विवाह का सामान अपने व्यय से देता था, यहाँ तक कि गुर्विणी स्त्रियों के लिये धन अमानत में दे दिया था, जिससे इसके अनंतर जो पैदा हुआ उसके विवाह का सामान भी इसी धन से हुआ। परंतु यह भाटों तथा गायकों को कुछ नहीं देता था। इसने बहुत से मुसाफिरखाने और सराय बनवाए। अहमदाबाद में बुखारा नाम का महल्ला बसाया। शाह वजीहुद्दीन का मकबरा और मसजिद इसीने बनवाया था। यह दिल्ली में

फरीदाबाद[1] इमारत व तालाब सहित अपना स्मारक छोड़ गया। लाहौर में भी एक मुहल्ला बसाया और वहाँ चौक में बड़ा हम्माम घर इसीका बनवाया है। शेख साल में तीन बार अच्छे खिलअत बादशाही आदमियों को देता था, जिससे उसका काम रहता था और कुछ को नौ बार। अपने नौकरों को वर्ष में एक बार एक खिलअत और पैदलों को एक कंबल और हलालखोर को एक जूता देता था। ऐसा इसका साधारण व्यवहार था, जिसमें जीवनभर फर्क न डाला। अपने किसी-किसी मित्र को, जिनके पास जागीर भी थी, एक लाख वार्षिक पहुँचा देता था। अच्छे घोड़ों पर तीन सहस्र चुने हुए सवार तैयार रखता था। अकबर के समय से जहाँगीर के राज्य तक हवेली में न जाकर सदा पेशखाने में उपस्थित रहता था। इसने तीन चौकी नियत की थी और प्रति दिन पाँच सौ आदमियों के साथ स्वयं भोजन करता था और अन्य पाँच सौ आदमियों को भोजन भेजवा देता था। सैनिकों का वेतन अपने सामने दिलाता था और आदमियों के शोरगुल से अप्रसन्न नहीं होता था।

कहते हैं कि शेर खाँ नामक एक अफग़ान इसका परिचित नौकर था। यह गुजरात से छुट्टी लेकर अपने देश चला गया और ५-६ वर्ष तक वहीं रह गया। जब शेख़ काँगड़ा की चढ़ाई पर नियत हुआ तब यह कलानौर में सेवा में हाजिर हुआ। शेख ने अपने बख़शी द्वारकादास से कहा कि इस आदमी को

---

१. यह दिल्ली के दक्षिण में है। इसके लेख से ज्ञात होता है कि फरीद का पिता सैयद अहमद था।

खर्च दे दो, जिसमें अपने घरवालों को दे आवे। बख्शी ने उसके वेतन का हिसाब लिखकर तारीख देने के लिये शेख के हाथ में दिया। शेख ने क्रुद्ध होकर कहा कि नौकर पुराना है, यदि किसी कारण से देर को पहुँचा, तो हमारा कौन काम बिगड़ गया। जिस तारीख से उसका वेतन बाकी था हिसाब करके ७०००) रुपया दे दिया।

सुभान अल्लाह, यद्यपि दिन-रात का वैसा ही चक्र और नक्षत्रों तथा आकाश का वैसा ही फेरा है परंतु इस काल में यह देश ऐसे आदमियों से खाली है, स्यात् दूसरे देश में चले गये हों। शेख को पुत्र नहीं था। एक पुत्री थी, जो निस्संतान मर गई। शेख के दो दत्तक पुत्र महम्मद सईद और मीर खाँ थे, जो बड़ी शान से दिन बिता रहे थे और खूब अपव्यय करते थे। यहाँ तक कि अपने घमंड में बादशाही संमान का विचार नहीं करते थे, तब सरदारों की क्या बात थी। बादशाही झरोखा के सामने यमुना नदी के किनारे बहुत से मशाल और फानूस दिखलाते चलते थे। कई बार मना किया गया पर कोई लाभ न निकला। अंत में जहाँगीर ने महाबत खाँ को संकेत कर दिया। उसने अपने विश्वासपात्र नौकर राजे सैयद मुबारक मानिकपुरी से कहा कि परदा उठाना है, इसलिये उसको बीच से उठा दो। एक रात्रि मीर खाँ दरबार से उठकर आ रहा था कि सैयद ने उसको मार डाला और स्वयं भी उसके हाथ से घायल हुआ। शेख ने इस खून के बदले महाबत खाँ के विरुद्ध दावा किया। वह बादशाह के सामने विश्वासपात्र आदमियों को लिवा लाया (साक्षी दिलाया) कि मीर खाँ को मारनेवाला

महम्मद सईद है, उससे खून का बदला ले। शेख मजलिस की यह हालत देखकर ठीक मतलब समझ कुछ न बोला और खून का दावा उठा लिया।

फरेदूँ ख़ाँ बर्लास, मिर्जा

यह मिर्जा मुहम्मद कुली ख़ाँ बर्लास का पुत्र था। पिता की मृत्यु पर अकबर की कृपा होने से इसे योग्य मंसब मिला। जलूस के ३५वें वर्ष में यह खानखानाँ अब्दुर्रहीम के साथ ठट्टा की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ और इसने वहाँ अच्छा प्रयत्न किया। जब ठट्टा प्रांत पर अधिकार हो गया तब ३८वें वर्ष में सर्दार हो यह जानी बेग के साथ दरबार को रवानः होकर सेवा में उपस्थित हुआ। ४०वें वर्ष तक पाँच सदी मंसब तक पहुँचा था। इसके अनंतर जब जहाँगीर ने राजसिंहासन की शोभा बढ़ाई तब २रे वर्ष में इलाहाबाद प्रांत में जागीर पाकर एक हजारी १००० सवार का मंसबदार हुआ। ३रे वर्ष इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी १३०० सवार का और फिर उसके बाद २००० सवार का हो गया। ८वें वर्ष में सुल्तान खुर्रम के साथ राणा अमर-सिंह की चढ़ाई पर नियत हुआ। इसके बाद इसकी मृत्यु हो गई। स्वत्व के ज्ञाता बादशाह ने इसके पुत्र मेह्र अली को एक हजारी १००० सवार का मंसब दिया।

फाखिर खाँ

यह बाकर खाँ नज्मसानी का पुत्र था। शाहजहाँ के राज्य के ३रे वर्ष में, जिस समय बादशाह दक्षिण में थे, यह एक जड़ाऊ कमरबंद और कुछ रत्न अपने पिता की ओर से, जो उड़ीसा का शासक था, भेंट लाकर दरबार में उपस्थित हुआ। इसे योग्य मनसब मिला। पिता की मृत्यु पर इसका मनसब बढ़कर दो हजारी १००० सवार का हो गया। थोड़े दिनों बाद किसी दोष के कारण इसका मनसब और जागीर छिन गई। २१वें वर्ष में इसका मनसब बहाल हो गया और खाँ की पदवी पाकर नवाजिश खाँ के स्थान पर मीर तुजुक नियत हुआ। बादशाही इच्छा के विरुद्ध कुछ काम करने के कारण इसे कुछ दिन तक कोरनिश करने की आज्ञा नहीं मिली। २७वें वर्ष में सुलतान दारा शिकोह की प्रार्थना पर इसे पुराना मनसब पुनः मिल गया। २९वें वर्ष पाँच सदी ज़ात इसके मनसब में बढ़ाया गया। यह सामूगढ़ के युद्ध में दारा शिकोह की सेना के बाएँ भाग का अध्यक्ष था और भागते समय यह भी लाहौर की ओर चला गया। जब औरंगजेब आगरा के पास पहुँचा तब यह सेवा में उपस्थित हुआ और मनसब के छिन जाने पर राजधानी में वार्षिक वृत्ति पाकर रहने लगा। २३वें वर्ष तक यह जीवित था और उसके बाद अपने समय पर मरा। इसके पुत्र

इफ्तखार का शाहजहाँ के ३१वें वर्ष में सात सदी १२० सवार का मनसब था। इसके अनंतर जब आलमगीर बादशाह गद्दी पर बैठा तब ५०वें वर्ष इसको मफ़ाखिर खाँ की पदवी मिली। ९वें वर्ष इसका मनसब एक हजारी ४५० सवार का हो गया। यह असद खाँ का दामाद था।

फाजिल खाँ

इसका आक़ा अफ़ज़ल इस्फ़हानी नाम था और यह पारस से हिंदुस्तान आया। इसने शेख फरीद मुर्तजा खाँ से संबंध जोड़ा। शेख ने इसकी योग्यता और बुद्धि के अनुसार इसका सनमान बढ़ाया और एक लाख रुपया वार्षिक नियत किया। शेख साहस कृपा और गुणग्राहकता का समुद्र था और बहुतों को एक लाख या अस्सी हजार वार्षिक वृत्ति देता था। इसी प्रकार फाजिल खाँ के भाई अमीर बेग को अस्सी हजार रुपया देता था। जब पंजाब के शासन पर बादशाह जहाँगीर ने शेख को नियत किया तब शेख ने आका अफजल को लाहौर की सूबेदारी पर अपना प्रतिनिधि बनाया। इसने उक्त कार्य को बड़ी योग्यता तथा समझदारी से किया। शेख की मृत्यु पर उक्त प्रांत एतमादु-द्दौला को जागीर में दिया गया तब उसने भी फाजिल खाँ को अपना प्रतिनिधि बनाकर पहिले की तरह रहने दिया, जिससे इसका विश्वास बढ़ता गया। इसके अनंतर यह शाहजादा सुलतान पर्वेज का दीवान नियत हुआ। इसके बाद बादशाह की ओर से इसे योग्य मनसब और फाजिल खाँ की पदवी मिली। जब सुलतान पर्वेज महाबत खाँ की अभिभावकता में युवराज शाहजहाँ का पीछा करने पर नियत हुआ तब उस सेना की बख्शीगिरी और वाकिया-नवीसी फाजिल खाँ को

मिली। २०वें वर्ष में इसे डेढ़ हजारी १५०० सवार का मनसब मिला और एक घोड़ा तथा एक हाथी पुरस्कार में देकर दक्षिण का दीवान नियत किया। उक्त प्रांत के अध्यक्ष खानजहाँ लोदी से अपने सांसारिक अनुभव के कारण यह अच्छी तरह मिल गया और राजनीतिक तथा कोष-संबंधी कार्यों में सम्मति देने में उसका साथी रहा। जब जहाँगीर की मृत्यु हो गई तब शाहजहाँ ने, जो उस समय दक्षिण जूनेर में रहता था, जाननिसार खाँ को उक्त प्रांत की खानजहाँ की अध्यक्षता की बहाली का फर्मान देकर भेजा और उसमें यह सूचना दी की वह उसी मार्ग से आ रहा है। फाजिल खाँ ने, जिसका भाई सुलतान शहरयार के साथ था, खानजहाँ की राय को बदलते हुए कहा कि बादशाही सरदारों ने दावरबख्श को गद्दी पर बैठा दिया है और शहरयार लाहौर मे अपनी सल्तनत का डंका पीट रहा है और अपनी सेना में खूब रुपया बाँट रहा है। इस कारण बड़े बड़े सरदार शाहजहाँ से सशंकित हो रहे हैं कि गद्दी पर बैठने पर स्यात् वह बदला न ले। आप एक गरोह के सरदार हैं और बादशाही सेना के अध्यक्ष हैं। इन में से जो कोई हिंदुस्तान की गद्दी पर बैठेगा, आप उसी के नौकर हों। शाहजहाँ ने आपके इतने वर्षों की सेवा का कुछ भी विचार न करके कल महाबत खाँ को इतने दोषों के पहाड़ के रहते हुए और उसके सेवा में पहुँचते ही आपके बदले सिपाहसालार की पदवी दे दी। इन बातों ने खानजहाँ लोदी पर इतनी बुद्धिमानी तथा गम्भीरता के रहते हुए ऐसा प्रभाव डाला कि उसने जान-निसार खाँ को बिना लिखित उत्तर दिए बिदा कर दिया। शाह-

जहाँ ने इसपर बुरहानपुर का मार्ग छोड़ दिया और गुजरात के मार्ग से आगरे को रवाना हुआ।

साम्राज्य की गद्दी पर दृढ़ता से बैठ जाने और आवश्यक राजकार्यों के पूरे हो जाने पर खानजहाँ और फाजिल खाँ के नाम दरबार में उपस्थित होने के लिए आज्ञापत्र भेजा गया। फाजिल खाँ नर्बदा नदी के किनारे हंडिया उतार से खानजहाँ से अलग होकर आगे रवाना हो गया। उस समय बादशाही सेना जुझारसिंह बुंदेला पर नियत हो चुकी थी और शाहजहाँ भी ग्वालियर दुर्ग तक सैर करने को आ रहा था। जब उक्त खाँ नरवर पहुँचा तब यह आज्ञा के अनुसार कैद किया गया और इसका सामान जब्त कर लिया गया। यह कुछ दिन तक कड़े कैद में रहा। जिस समय खानजहाँ बादशाह के दरबार में उपस्थित हुआ तब फाजिल खाँ के छुटकारे के लिए छ लाख रुपया दंड निश्चित हुआ। बहुत से सरदारों ने अपनी शक्ति के अनुसार सहायता की। खानजहाँ ने भी एक लाख रुपया दिया। यह बहुत दिनों तक दंडित रहा और मनसब तथा संमान से गिरा रहा। इसके अनंतर गुजरात प्रांत में बड़ौदा का जागीरदार नियत हुआ। ९वें वर्ष जब शाहजहाँ दौलताबाद से राजधानी लौट रहा था तब उसने फाजिल खाँ को दरबार आने की आज्ञा भेजी। यह गुजरात प्रांत से फुर्ती से रवाना होकर बुरहानपुर में दरबार में उपस्थित हुआ। इसपर फिर से कृपा हुई और इसे एतमाद खाँ की पदवी और दक्षिण की दीवानी मिली। १५ वें वर्ष यह बंगाल का दीवान और उस प्रांत के अध्यक्ष शाहजादा मुहम्मद शुजाअ की सरकार का दीवान

नियत हुआ। उसी जगह २१ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। डेढ़ हजारी ६०० सवार का मनसबदार था। इसका पुत्र मिर्जा दाराव बुद्धिमान था और बराबर बादशाह की सेवा में लगा रहा।

फाजिल ख़ाँ बुर्हानुद्दीन

यह फाजिल ख़ाँ मुल्ला अलाउल्मुल्क तूनी का भतीजा था। अपने चचा की मृत्यु के समय के कुछ ही पहिले यह ईरान से ताजा हिंदुस्तान में आया था। इसके अनंतर जब फाजिल ख़ाँ मर गया और उसे कोई संतान न थी, इसलिये औरंगजेब ने, जो स्वामिभक्ति का कद्र करनेवाला और राज्य-भक्तिरूपी रत्न का पहचानने वाला था, बुर्हानुद्दीन पर कृपाकर और उसे खिलअत देकर शोक से उठाया तथा आठ सदी १५० सवार का मनसब दिया। बुर्हानुद्दीन में आध्यात्मिक गुण बहुत थे और यह शीलवान तथा निर्दोष था। यह अनुभवी तथा न्यायशील और योग्य तथा विश्वसनीय था। बादशाह ने थोड़े ही समय में इसका मनसब बढ़ा दिया और काबिल ख़ाँ की पदवी दी। १८वें वर्ष में जब डाक तथा दारुल् इनशा के दारोगा महम्मद शरीफ को, जो पुराने मुंशी वालाशाही अबुल् फतह काबिल ख़ाँ का भाई था, उसके विचार से काबिल ख़ाँ की पदवी दी गई तब बुर्हानुद्दीन को एतमाद ख़ाँ की पदवी मिली। २२वें वर्ष में दूसरी बार जब बादशाह ने अजमेर जाने का निश्चय किया तब इसे राजधानी दिल्ली का दीवान बनाया और इसके बाद इसे दीवाने-तन का खिलअत मिला। ३२वें वर्ष यह कामगार ख़ाँ के स्थान पर बादशाही खानसामाँ नियुक्त हुआ और इसका मनसब पाँच सदी १०० सवार बढ़ाए जाने पर दो

हजारी ४०० सवार का हो गया और इसे यशम की कलगी मिली। इसी वर्ष इसने फाजिल खाँ की पदवी पाई। इसके अनंतर पाँच सदी १०० सवार इसके मनसब में बढ़ाए गए। ४१वें वर्ष में खानसामाँ के पद से छुट्टी पाकर अमीरुलउमरा शायस्ता खाँ के पुत्र अबूनसर खाँ के स्थान पर कशमीर का अध्यक्ष नियत हुआ। ४४ वें वर्ष बादशाही आज्ञा हुई कि शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम का प्रतिनिधि होकर यह लाहौर का प्रबंध करे। इसने यह स्वीकार न कर दरबार में आने के लिये प्रार्थनापत्र भेजा। आज्ञानुसार आते समय बुरहानपुर पहुँचकर सन् ११११२ हि० (सन् १७०० ई०) में यह मर गया।

इसका पुत्र अब्दुलरहीम पिता की मृत्यु पर दरबार आया और ४७वें वर्ष में इसे बयूताती का कार्य मिला और खाँ की पदवी तथा मनसब में तरक्की मिली। गुणग्राहक बादशाह ने कहा कि फाजिल खाँ अलाउलमुल्क और फाजिल खाँ बुर्हा-नुद्दीन का सेवाकार्य से हम पर बहुत स्वत्व है इसलिए इस खानाजाद पर बहुत कृपा रखूँगा। वास्तव में यह युवक बहुत योग्य था और यदि जीवन अवसर देता तो यह बहुत उन्नति करता परंतु यह कुछ दिन बाद ही युवा अवस्था में मर गया। इस वंश में फाजिल खाँ बुर्हानुद्दीन के भतीजे तथा दामाद जिआउद्दीन के सिवा कोई नहीं रह गया था। इसलिये इसको चीनापत्तन की दीवानी से दरबार बुलाकर इसका मनसब बढ़ाया और खाँ की पदवी देकर बयूताती का कार्य सौंपा। वास्तव में पूर्वजों के अच्छे कार्य गुणग्राहक स्वामियों के यहाँ उनके वंशजों

के लिये कीमिया से कम नहीं हैं। उक्त ख़ाँ बहादुरशाह के समय भी कुछ दिन दयूतातो का कार्य करता रहा और उसके अनंतर बंगाल का दीवान नियत हुआ।

जब महम्मद फर्रुखसियर के राज्य में अमीरुल् उमरा मीर हुसेन अली ख़ाँ दक्षिण का सूबेदार नियत हुआ और उसे उक्त प्रांत में अफसरों के हटाने तथा नियुक्त करने का अधिकार मिला तब उसने दक्षिण पहुँचने पर अपने अनुगामियों को सर्वत्र नियत किया और जो लोग दरबार से नियुक्त होकर आते थे उन्हें अधिकार नहीं देता था, इससे बादशाह की अप्रसन्नता बढ़ती गई और अब्दुल्ला ख़ाँ कुतुबुल्मुल्क से इसका उलाहना दिया गया। उसने क्षमा माँगते हुए इस बात को अस्वीकार कर दिया। अंत में यह निश्चय हुआ कि उन सब सेवाओं में सर्वश्रेष्ठ नियुक्ति दीवान तथा बख़्शी की है और उनकी नियुक्ति दरबार से की जाय। इस पर मृत अमानत ख़ाँ के पौत्र दिआनत ख़ाँ के स्थान पर जिआउद्दीन ख़ाँ दक्षिण का दीवान नियत हुआ और इसलाम ख़ाँ मशहदी के पुत्र अब्दुर्रहीम ख़ाँ के पुत्र अब्दुर्रहमान ख़ाँ को मृत्यु पर फजलुल्ला ख़ाँ बख़्शी नियत हुआ, जो मृत का भाई था। ये दोनों साथ ही औरंगाबाद आए। अमीरुल्उमरा ने अपनी बदनामी और इस प्रसिद्ध हुई बात को कि बादशाह के नियुक्त आदमियों को वह अधिकार नहीं देता, दूर करने के लिये जियाउद्दीन ख़ाँ को अधिकार दे दिया, जिसका कुतुबुल्मुल्क से अच्छा परिचय था और जिसके लिये उसने विशेष प्रकार से लिखा था। परंतु दूसरे के विषय में उसने ध्यान भी न दिया, जो उपद्रवी था।

इसके अनंतर उक्त ख़ाँ अमीरुल्‌उमरा के साथ दिल्ली गया। फर्रुखसियर के राज्यगद्दी से हटाए जाने पर प्रगट हुआ कि वह भी बादशाह से पत्र-व्यवहार रखता था, जिससे इसका विश्वास उठ गया और उसी समय इसकी मृत्यु भी हो गई।

फाजिल ख़ाँ शेख मखदूम सदर

यह ठट्टा का रहनेवाला था। आरंभ में यह मुहम्मद आजमशाह का मुंशी था। औरंगजेब के २३वें वर्ष में जब अबुल्फतह काबिल ख़ाँ वालाशाही का भाई काबिल ख़ाँ मीर मुंशी कारणवश दंडित हुआ तब फाजिल ख़ाँ को बादशाही दारुल् इनशा का कार्य सौंपा गया और इसे पाँच सदी ३० सवार का मनसब और कमख्वाब के दस-दस चीरा, पटका और जामा खिलअत में मिला। शरीफ ख़ाँ की मृत्यु पर २६वें वर्ष सदारत कुल का पद मिला। २८वें वर्ष इसे फाजिल ख़ाँ की पदवी और हौलदिल पत्थर की दवात मिली। २९वें वर्ष खिदमत ख़ाँ के स्थान पर प्रार्थनापत्रों का दारोगा अन्य कार्यों के साथ नियत हुआ। ३२वें वर्ष सन् १०९९ हि० (सन् १६८८ ई०) में यह महामारी से मर गया, जो औरंगजेब की सेना में फैली हुई थी।

फिदाई खाँ

यह शाहजहाँ का मीर जरीफ नामक एक स्वामिभक्त सेवक था। शाहजहाँ को घोड़ों के एकत्र करने का शौक था, इसलिये उसने फिदाई खाँ को ईरान के राजदूत के साथ एराकी घोड़ों को लाने के वास्ते भेजा। जब यह शाहजहाँ के पसंद के अनुसार घोड़े नहीं लाया तब इसने प्रार्थना की कि यदि उसे अरब और रूम के आसपास तक जाने की छुट्टी मिले तो वह बादशाह की सवारी के योग्य घोड़े लाकर अपनी लज्जा दूर करे। इस पर मित्रतापूर्ण एक पत्र और एक जड़ाऊ बहुमूल्य खंजर कैसरे रूम के वास्ते देकर इसे बिदा किया कि यदि वह किसी समय रूम के सुलतान के पास पहुँच जाय तो इनका उपयोग कर अपना काम पूरा करे। १० वें वर्ष लाहरी बंदर से रवाना होकर समुद्री मार्ग से यह हेजाज पहुँचा और वहाँ के पवित्र स्थानों का दर्शन कर मिश्र देश गया। वहाँ से मौसल पहुँचकर सुलतान मुराद खाँ को देखा, जो बगदाद विजय करने आ रहा था। सुलतान ने पत्र संमान के साथ लेकर तुर्की भाषा में पूछा कि इतने दूर की लंबी यात्रा करने का क्या कारण है। फिदाई खाँ ने कारण बतलाकर जड़ाऊ खंजर भेंट किया। सुलतान ने प्रसन्न होकर कहा कि ऐसे समय एक बड़े बादशाह के राजदूत का आना और जड़ाऊ खंजर भेंट देना विजय का शुभ सगुन है। दूसरे दिन मीर जरीफ ने एक सहस्र कपड़े अपनी

ओर से भेंट किए। सुलतान ने हिंदुस्तान के शर्बों के बारे में पूछा। फिदाई खाँ के पास एक बहुमूल्य ढाल थी, जिसके विषय में उसने बतलाया कि तीर या गोली इसे पार नहीं कर सकती। कैसर ने आश्चर्य कर एक तीर पूरी शक्ति से ढाल पर मारी पर वह पार न हो सकी। सुलतान ने दस सहस्र करुश, जो बीस सहस्र रुपया होता है, इसको देकर कहा कि बग़दाद की चढ़ाई के अनंतर बिदा करूँगा, उस समय तक मौसल जाकर जो वस्तु खरीदना चाहते हो खरीदो। इसके अनंतर जब सुलतान मुराद बगदाद दुर्ग को ईरानियों से विजय कर मौसल लौटा तब मीर जरीफ को लौटने की छुट्टी दी और अर्सलाँ आक़ा के हाथ पत्र का उत्तर भेजा तथा अच्छी चाल का एक अरबी घोड़ा भेंट के रूप में भेजा, जिसकी जड़ाऊ ज़ीन हीरे की थी और रूम की चाल पर मोती टँकी हुई अबाई थी। मीर जरीफ उक्त राजदूत के साथ बसरा से जहाज पर सवार होकर ठट्टा में उतरा।

जब १२वें वर्ष यह लाहौर पहुँचा तब कशमीर की ओर रवाना होकर, जहाँ उस समय बादशाह थे, यह सेवा में उपस्थित हुआ। इसने ५२ घोड़े, जिन्हें उस देश में क्रय किया था, उन दो घोड़ों के साथ जिन्हें तुर्की के सुलतान के शस्त्राध्यक्ष ने तुर्की के सर्वोत्तम घोड़ों में से चुनकर इसे भेंट में दिया था, बादशाह के सामने पेश किया। इस अच्छी सेवा के लिये इसकी बहुत प्रशंसा हुई और इसे एक हजारी २०० सवार का मनसब तथा फिदाई खाँ की पदवी मिली। यह तरबियत खाँ के स्थान पर आख़ता बेग नियत हुआ और इसी समय लाहरी

बंदर का अध्यक्ष बनाया गया। अभी यह सौभाग्य की पहिली सीढ़ी तक पहुँचा था कि काल ने असफलता का खारा पानी इसके मुख पर गिरा दिया। १४ वें वर्ष सन् १०५१ हि० के आरंभ में यह मर गया।

फिदाई खाँ

इसका नाम हिदायतुल्ला था और यह चार भाई थे, जिनमें हर एक अपनी योग्यता तथा साहस से जहाँगीर के समय में सम्पत्तिवान तथा प्रभुत्वशाली होकर विश्वस्त पद पर पहुँच गया। पहिला मिर्जा मुहम्मद तक़ी जहाँगीर के राज्य के आरंभ में महाबत खाँ के साथ राणा अमरसिंह की चढ़ाई पर गया। इसका सिर घमंड के कारण बिगड़ा हुआ था और उसकी जिव्हा पर गाली रखी रहती थी, जो बहुत बुरा दोष है, इसलिये यह सवारों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करता था। उन सब ने एका करके मांडलपुर स्थान में इसे 'सरेदीवान' कर दिया। दूसरा मिर्जा इनायतुल्ला, जो अपनी योग्यता तथा बुद्धिमानी के लिये प्रसिद्ध था और हिसाब किताब में अद्वितीय था, सुलतान पर्वेज का दीवान नियुक्त होकर बड़ी योग्यता से सब काम करने लगा और ऐश्वर्य तथा शान-शौकत को बढ़ाया परंतु इसने अपनी कड़ाई से बहुत लोगों को असंतुष्ट कर दिया और घमंड के कारण किसी से नम्रता न दिखलाई। अंत में उस पद तथा प्रभुत्व से गिर गया। कहते हैं कि जब इसका मृत्यु-काल आ पहुँचा तब इसने सुलतान की सेवा में उपस्थित होकर अपना दोष क्षमा कराया और अपनी संतान के लिये प्रार्थना की। वहाँ से लौटने पर घर आते ही मर गया। तीसरा मिर्जा रूहुल्ला अच्छे रूपवाला युवक था, चौगान का अच्छा

खेलाड़ी था और अहेर खेलने में बहुत तेज था। जहाँगीर की सेवा में इसने अच्छी पहुँच तथा संमान प्राप्त कर लिया था। यह एक विचित्र घटना है कि जब बादशाह जहाँगीर दुर्ग मांडू में ठहरा हुआ था तब उसने इसे सेना के साथ आसपास चारों ओर के उपद्रवियों को दंड देने के लिये नियत किया। जब यह जैतपुर पहुँचा तब वहाँ के राजा ने इसका स्वागत कर नगर के बाहर इसे वृक्ष के नीचे ठहराया और भोज की तैयारी की। एकाएक एक काला साँप वृक्ष के पास निकला। मिर्जा के मुख से 'मार मार' (साँप साँप) निकला। इसके एक साथी ने यह समझ कर कि राजा को मारने के लिये कह रहा है, उसने राजा को घायल कर दिया। राजा ने यह हालत देखकर फुर्ती तथा चालाकी से मिर्जा को एक ही चोट में समाप्त कर दिया। सेना बिना सरदार के भाग गई और राजा इसके सब सामान को लेकर पहाड़ों में चला गया। इसके अनंतर उसका देश बादशाही सेना द्वारा लूटा गया और उसे दंड मिला। चौथा मिर्जा हिदायतुल्ला है, जो सबसे छोटा था। आरंभ में यह नावों का मीर बह्र नियत हुआ। यह महाबत खाँ का वकील होकर बहुत दिनों तक दरबार में रहकर बादशाही कृपा तथा संमान का पात्र हुआ।

महाबत खाँ का आश्रय पाकर बहुत थोड़े समय में यह एक सरदार हो गया परंतु महाबत खाँ के विद्रोह के समय निमक तथा स्वामि-भक्ति का विचार करके प्रयत्न करने और जान लड़ाने में इसने कमी न की। इसका वृत्तांत इस प्रकार है कि झेलम नदी के किनारे जहाँगीर बादशाह का खेमा लगा हुआ

था और सरदारगण असतर्कता से कुल पड़ाव के साथ जब पुल के इस पार चले आए और उस पार सिवाय बादशाही खेमों के और कुछ नहीं रह गया तब महाबत खाँ ने, जो अवसर देख रहा था, निर्भयता से बादशाही खेमों पर अधिकार कर लिया। फिदाई खाँ इस विद्रोह का पता पाकर और पुल के जला दिए जाने के कारण स्वामिभक्ति से बादशाही खेमे के ठीक सामने अपने घोड़े नदी में डाल दिए। इसके कुछ साथी नदी में बह गए और कुछ अर्धजीवित अवस्था में किनारे पर पहुँच गए। सात सवारों के साथ निकल कर इसने धीरता से आक्रमण किया। इसके चार साथी मारे गए और जब देखा कि काम सफल नहीं हो सकता और शत्रु की भीड़ के कारण यह जहाँगीर के सेवा में पहुँच नहीं सकता तब यह उस पत्थर के टुकड़े के समान, जो लोहे की दीवार पर टकरा कर लौट जाता है, उसी फुर्ती और चालाकी से लौट कर नदी के पार हो गया। दूसरे दिन जब सरदारगण नूरजहाँ बेगम के साथ उस विद्रोही को दमन करने के विचार से नदी के पार होने लगे पर राजपूतों के धावों से आगे न बढ़ सके और लौट गए तब फिदाई खाँ ने साहस तथा लज्जा के मारे कुछ सेना के साथ उस स्थान से एक तीर नीचे हटकर नदी पार कर लिया और सामने की सेना को हटा कर सुलतान शहरयार के स्थान तक पहुँचा, जहाँ बादशाह भी थे। कनात के भीतर सवार तथा पैदलों की भीड़ थी, इसलिये दरवाजे पर खड़े होकर तीर चलाने लगा। यहाँ तक कि बादशाही तख्त तक इसके तीर पहुँचने लगे। मुखलिस खाँ ने बादशाह जहाँगीर के सामने खड़े होकर अपने को भाग्य की तीर का

ढाल बना दिया। यहाँ तक कि फ़िदाई ख़ाँ बहुत देर तक प्रयत्न कर और अपने दामाद अताउल्लाह के दो तीन मनसबदारों के साथ मारे जाने पर भी जब बादशाह के पास न पहुँच सका तब वह रोहतास पहुँच कर और अपने परिवार को साथ लेकर गिरझाकबंद को चला गया, जो कांगड़ा पर्वत के पास है और वहीं शरण ली। वहाँ का जमींदार बद्रबख्श जनुहा से इसका परिचय तथा मित्रता थी इसलिये अपने परिवार को वहीं छोड़कर यह हिंदुस्तान चला आया।

जब २२वें वर्ष में बंगाल का शासक मुकर्रम ख़ाँ नावपर सवारी के समय नदी में डूब गया तब फ़िदाई ख़ाँ वहाँ का शासक नियत हुआ। निश्चय हुआ कि यह पाँच लाख रुपया बादशाह की भेंट और पाँच लाख रुपया बेगम की भेंट कुल दस लाख रुपया राजकोष में जमा करे। उस समय से बंगाल के अध्यक्षों के लिये यही भेंट देना निश्चित हो गया। शाहजहाँ की राज्यगद्दी पर इसका मनसब चार हजारी ३००० सवार का हो गया। ५ वें वर्ष इसे डंका और झंडा मिला और इसी वर्ष जौनपुर की जागीर इसे मिली। इसके बाद यह गोरखपुर का फ़ौजदार हुआ। जब बिहार के सूबेदार अब्दुला ख़ाँ ने प्रताप उज्जैनिया को दमन करने के लिये तैयारी की तब फ़िदाई ख़ाँ बिना आज्ञा के ही काम करने के उत्साह में उसकी सहायता को पहुँचा और वहाँ की राजधानी भोजपुर के विजय करने में इसने अब्दुल्ला ख़ाँ का साथ दिया। कहते हैं कि यह सैनिकों का मित्र था और अफ़गानों को नौकर रखता था। यह घमंड से खाली नहीं था, जो इन भाइयों के स्वभाव की विशेषता थी।

कहते हैं कि जब यह बंगाल से हटाया गया और दरबार में उपस्थित हुआ तब बहुत से आदमियों ने नालिश की कि इसने उन लोगों से बड़ी बड़ी रकमें बिना किसी स्वत्व के ले लिया है। जब यह नालिश बादशाह के सामने पेश हुई तब मुत्सद्दियों ने इसे संदेश भेजा कि यह प्रधान न्यायालय में उपस्थित होकर जवाब दे। इसने जमधर हाथ में लेकर कहा कि 'उन सबका जवाब इस जमधर के नोक पर है और मेरा वहाँ आना कठिन है। वे कभी ऐसा विचार न रखें।' जब यह वृत्तांत बादशाह को मालूम हुआ तब उसने इस बात पर ध्यान न देकर इस पर और कृपा की। १३वें वर्ष में जब मीर जरीफ को फिदाई खाँ की पदवी मिली तब इसे जाननिसार खाँ की पदवी दी गई। १४वें वर्ष में इसने अपनी जागीर से दो हाथी दरबार भेजा। जब इसी वर्ष जरीफ फिदाई खाँ मर गया तब इसे पुनः पुरानी पदवी मिल गई। १५वें वर्ष में जागीर से आकर इसने सेवा की और इसी वर्ष दाराशिकोह के साथ यह भेजा गया, जो ईरान के शाह की कंधार पर चढ़ाई की आशंका से काबुल में नियत हुआ था। वहाँ से लौटने पर इसने अपनी जागीर गोरखपुर जाने की छुट्टी पाई। १९वें वर्ष फिर सेवा में उपस्थित हुआ और जब राजा जगतसिंह की मृत्यु पर मुर्शिद कुली खाँ को तारागढ़ दुर्ग विजय करने की आज्ञा हुई तब फिदाई खाँ भी इस कार्य को पूरा करने पर नियत हुआ। यद्यपि मुर्शिद कुली खाँ ने इसके पहुँचने के पहिले ही दुर्ग पर अधिकार कर लिया था पर इसके पहुँचने पर उसे फिदाई खाँ को सपुर्द कर दिया। फिदाई खाँ के प्रार्थनापत्र के पहुँचने पर वह दुर्ग

बहादुर कम्बू के हवाले किया गया। कुछ दिन बाद इसी वर्ष इसकी मृत्यु हो गई।[1]

---

१. अमल सलिह नामक इतिहास ग्रंथ में इसके संबंध में अनेक अन्य बातें भी लिखी मिलती हैं पर वे विशेष महत्व की नहीं हैं।

फिदाई ख़ाँ महम्मद सालह

यह और सफदर ख़ाँ महम्मद जमालुद्दीन दोनों आजम ख़ाँ कोका के लड़के थे। औरंगजेब के राज्य के २१वें वर्ष में जब आजम ख़ाँ बंगाल के शासन से हटाए जाने पर ढाका पहुँचकर मर गया तब बादशाह ने हर एक लड़कों के लिए शोक का खिलअत भेजा। पहिला पुत्र अपने पिता के जीवन-काल में योग्य मनसब पाकर २३वें वर्ष में सलाबत ख़ाँ के स्थान पर हाथीख़ाने का दारोगा नियत हुआ था। २६वें वर्ष शहाबुद्दीन ख़ाँ के स्थान पर यह अहदियों का बख़शी नियत हुआ। २८वें वर्ष बरेली का फौजदार तथा दीवान नियत किया गया। इसके बाद ग्वालियर का फौजदार नियत हुआ। ३८वें वर्ष में अपने पिता की पुरानी पदवी फिदाई ख़ाँ पाकर शायस्ता ख़ाँ के स्थान पर आगरा का फौजदार नियत हुआ। इसके बाद कुछ दिन तक बिहार का नाज़िम नियत रहा। ४४वें वर्ष में तिरहुत और दरभंगा का फौजदार नियुक्त होने पर इसका मनसब तीन हजारी २५०० सवार का हो गया। दूसरा खानजहाँ बहादुर कोकलताश का दामाद था। आरंभ में अच्छा मनसब व ख़ाँ की पदवी पाकर २७वें वर्ष में सफदर ख़ाँ की पदवी से सम्मानित हुआ। इसके अनंतर ग्वालियर का फौजदार नियत हुआ और ३३वें वर्ष उमी ताल्लुका की एक गढ़ी पर चढ़ाई करने में मृत्यु की तीर लगने से समाप्त हो गया।

फीरोज खाँ ख्वाजासरा

यह जहाँगीर के विश्वासपात्र सेवकों में से था। जब उस बादशाह की मृत्यु पर आसफ खाँ अबुल् हसन ने खुसरू के पुत्र बुलाकी को गद्दी पर बैठाकर शहरयार से युद्ध किया और शहरयार अपना हवास छोड़कर राजधानी में आ उसी महल में जा छिपा तब यह उक्त खाँ के संकेत पर उस महल में गया और उसे खोजकर बाहर ला आसफ खाँ को सौंप दिया। शाहजहाँ के राज्य के प्रथम वर्ष में सेवा में आकर यह दो हजारी ५०० सवार के पुराने मनसब पर बहाल हुआ। ४थे वर्ष ३०० सवार मनसब में बढ़ाए गए। ८वें वर्ष इसका मनसब बढ़कर दो हजारी १००० सवार का हो गया। १२वें वर्ष ढाई हजारी १२०० सवार का मनसब हुआ। १३वें वर्ष ५०० सवार मनसब में बढ़ाए गए। १८वें व० में बादशाह की बड़ी पुत्री बेगम साहेब: के अच्छे होने के जलसे में, जो दीपक की लपट के पास पहुँचने के कारण कपड़े में आग लग जाने से जल गई थी और कुछ दिन तक रुग्ण शय्या पर पड़ी थी, इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी १५०० सवार का हो गया। २१वें वर्ष १८ रमजान सन् १०५७ हि० ७ अक्तूबर सन् १९४७ ई० को यह मर गया। यह बादशाही महल का नाजिर था और शाहजहाँ की सेवा में इसका विश्वास और सम्मान था। इसने झेलम नदी के किनारे बाग बनवाया था, जो अपनी सजावट के लिये प्रसिद्ध था।

फैजुल्ला खाँ

यह जाहिद खाँ कोका का पुत्र था। अपने पिता की मृत्यु के समय यह १० वर्ष का था। शाहजहाँ ने गुणग्राहकता तथा पद के विचार से इसे एक हजारी ४०० सवार का मनसब दिया। यद्यपि यह प्रगट में अपनी दादी हूरी खानम के यहाँ पालित होता था पर वास्तव में नवाब बेगम साहेबा उसपर अधिक ध्यान रखती थीं। २४वें वर्ष में इसे खाँ की पदवी मिली और क्रमशः उन्नति पाते हुए इसका मनसब दो हजारी १००० सवार का हो गया। २८वें वर्ष इसका विवाह अमीरुल्‌उमरा (अलीमर्दान खाँ) की पुत्री से हुआ। बादशाह ने कृपा तथा 'बन्दः परवरी' से जुम्‌लतुल्‌मुल्क सादुल्ला खाँ को आज्ञा दी कि मोती का सेहरा उसके सिर पर बाँधे। ३१वें वर्ष सर बुलंद खाँ के स्थान पर आख्तः बेग (अश्वाध्यक्ष) नियत हुआ। दाराशिकोह के पराजय के अनंतर यह औरंगजेब की ओर हो गया और इसका मनसब एक हजारी ३०० सवार बढ़ाया गया। इसी समय नवाजिश खाँ के स्थान पर यह करावल बेग (प्रधान शिकारी) नियत हुआ और पाँच सदी ५०० सवार मंसब में बढ़ाए गए। ७वें वर्ष इसका मनसब चार हजारी २००० सवार का हो गया। ९वें वर्ष में यह मनसब से त्यागपत्र देकर एकान्तवास करने लगा। इसके अनंतर फिर से सेवा करने का विचार करने पर इसे कौसबेगी पद पर नियत किया।

१३व वर्ष यह संभल मुरादाबाद का फौजदार बनाया गया और बहुत दिनों तक यह कार्य करता रहा। यह प्रति वर्ष दरबार में आता और बादशाही भारी कृपा पाकर आज्ञा के अनुसार अपने ताल्लुका पर लौट जाता था। औरंगजेब इसपर खाना-बाद होने के विचार के सिवा स्वत: विशेष कृपा रखता था। यह भी बादशाह से बहुत प्रेम रखता था और बेगम साहेब: की सेवा में भी बहुत जी लगाता था। अंत में इसे हाथीपाव रोग हो गया और यह हाथी पर सवार होकर कहीं जाता आता था। जब यह बादशाह के यहाँ आता था तब दरबार में पैदल नहीं जा सकता था, इसलिये सवारी पर बैठे हुए मुजरा करता था। २४वें वर्ष सन् १०९२ हि० (सन् १६८१ ई०) में मुरादाबाद में यह मर गया। यह भला तथा स्वतंत्र विचार का आदमी था और सांसारिक कार्यों में लिप्त नहीं रहता था। यह किसीको सिर नहीं झुकाता था। यह पशु-पक्षी, जंगली जानवरों तथा साँपों का शौक रखता था, जिनके नमूने दूर देशों तथा बंदरों से इसके लिये लाये जाते थे। कहते हैं कि ऐसे कम जानवर रहे होंगे, चाहे वे जंगली या पालतू हों या ज्ञात या अज्ञात हों, जिनके नमूने इसके संग्रह में न रहे हों। यहाँ तक कि कीड़े मकोड़े, मच्छड़, पिस्सू आदि के नमूने भी लकड़ी या ताँबे के बरतनों में रखकर पाले जाते थे। ऐसी हालत पर भी योग्य पुरुष इसका संमान करते थे। इसके पुत्रों में से किसीने योग्यता नहीं प्राप्त की।

———

फौलाद, मिर्जा

यह खुदादाद बर्लास का पुत्र था। बर्लास का अर्थ वंश परंपरा से साहसी है और कुल बर्लास जातिवालों का वंश ऐरूमजी तक पहुँचता है, जो पहिला मनुष्य था जिसने यह अस्त्र धारण किया था। यह काचूली बहादुर का पुत्र था, जो अमीर तैमूर साहिबकिराँ की आठवीं पीढ़ी में उसका पूर्वज था और तवाम कबूल खाँ का भाई था, जो चंगेज खाँ का प्रपितामह था।

मिर्जा फौलाद पीढ़ी-दरपीढ़ी उसी राजवंश में सेवा करता आया था। जब फिर तूरान के शासक अब्दुल्ला खाँ और अकबर में भेंट उपहार आने-जाने और मित्रता हो जाने से आपस में यह क्रम खूब बढ़ गया और उसने ईरान पर चढ़ाई करने की प्रार्थना की कि इस मित्रता के कारण एराक, खुरासान और फारस को उस देशवाले सुलतान से ले लेंगे। अकबर ने वीरता तथा मुरौव्वत से २२वें वर्ष में मिर्जा फौलाद को, जो राज-नियमों तथा मर्यादा को जाननेवाला युवक था, हिंदुस्तान की अच्छी भेंट सहित तूरान के राजदूत क साथ वहाँ भेज दिया। उत्तर में लिखा गया कि सफवी वंश का नबियों के वंश के साथ संबंध निश्चित है इसलिए उनकी खातिर उचित है। केवल नियम या संप्रदाय भेद से वह राज्य लेने के लिये चढ़ाई करना उचित नहीं समझता और पहिले की अच्छी मित्रताएँ भी इस कार्य से रोकती हैं। इस कारण कि उसने ईरान के शाह का

संमान के साथ उल्लेख नहीं किया था उसे उपालंभ देते हुए उपदेश लिखा। शैर—

बुद्धिमान अपने बड़ों का नाम नहीं पढ़ते,
जिसमें वे भोंड़े तौर पर लिए जायँ।

राजदूत का कार्य निपटा कर मिर्जा फौलाद हिंदुस्तान लौट आया और बादशाही सेवा में अच्छे कार्य करते हुए सफलता प्राप्त करता रहा। इस जातिवालों में मूर्खता तथा तुर्की शरारत, क्योंकि इनका स्वभाव उसी संबंध से था, दूसरों के साथ मिल-कर पालित होने तथा सुख करने पर भी रह जाता है, विशेषकर मत तथा मिल्लत में, जिसमें कठोरता तथा हठ को भी धर्म का पक्ष करना समझते हैं। ३२वें वर्ष के आरंभ सन् ९९६ हि० (सन् १५८८ ई०) में मिर्जा फौलाद ने यौवन के उन्माद तथा वीरता के घमंड में मुल्ला अहमद ठट्ठवी को, जो अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान था, भारी चोट देकर समाप्त कर दिया और स्वयं भी अकबरी न्याय द्वारा दंड को पहुँचा।

इसका विवरण इस प्रकार है कि जब अकबर ने पूर्ण शांति देने का निश्चय कर धार्मिक स्वतंत्रता जनसाधारण को दे दी तब हर एक पंथवाले अपने अपने मत की बातों को निर्भय हो गाने लगे और हर एक अपने अपने नियमानुसार निश्शंक ईश्वर पूजन करने लगे। मुल्ला अहमद बहुत बुद्धिमान होते भी इमा-मिया मत की बातों का दृढ़ हो समर्थन करने लगा। वह पहुँचते ही सुन्नी व शीआ मत की बात छेड़ता और उसे आदत के अनुसार बेकायदे कह डालता। मिर्जा फौलाद उसी प्रकार सुन्नी मत के समर्थन में कुराह चलता था और इस कारण उसने मन में

द्वेष रखकर उसे मार डालना चाहा। एक अर्द्धरात्रि को एक साथी के साथ अँधेरी गली में घात में जा बैठा और एक को शाही नकीब की चाल पर उसे बुलाने को भेज दिया। मार्ग में घात में बैठे दुष्टों ने इस पर तलवार चलाई, जिससे उसका हाथ बाजू के बीच से कट गया। वह जीन पर से नीचे गिर गया। निडर वीर सिर कटा समझकर उसे छोड़कर आड़ में चले गए। 'जे है खंजरे फौलाद' (फौलाद के खंजर से, वाह) से इस घटना की तारीख निकलती है। मुल्ला ऐसी चोट लगने पर भी हाथ उठाकर हकीम हसन के गृह पर पहुँच गया। बहुत प्रयत्न पर उन दोनों खूनी का पता लगा। रक्त के कुछ नए चिह्नों से पता तो लग गया, पर उनसे यह मेल न मिला सका। अकबर ने खानखानाँ, आसफ खाँ व शेख अबुल् फ़ज़ल को मुल्ला के यहाँ हाल पूछने को भेजा। उसने दुखित हृदय से कुल बात फिर कह डाली। अकबर ने मिर्जा फौलाद को उसके साथी सहित मरवा डाला और हाथी के पैर में बँधवाकर लाहौर के सारे शहर में घुमवाया। साम्राज्य के अच्छे सरदारों ने उस दंडित के छुटकारा के लिये बहुत प्रयत्न किया पर कुछ लाभ न हुआ। मुल्ला भी चार पाँच दिन बाद मर गया। कहते हैं कि शेख फ़ैजी व शेख अबुल्फज़ल ने मुल्ला के कब्र पर कुछ रक्षक नियत कर दिए थे। परंतु इसी समय बादशाही उर्दू कश्मीर की ओर जाने को बढ़ी जिससे नगर के मूर्खों और लुच्चों ने उसके शव को निकाल कर जला दिया।

मुल्ला का वृत्तांत विचित्रता से खाली नहीं है इसलिये यहाँ कुछ लिख दिया जाता है। मुल्ला के पूर्वज फारूकी व हनफी मत

के थे और इसका पिता ठट्टा का काजी तथा सिंध का रईस था। पूर्वी हवा चलने के समय एक अरब यात्री साबिह एराक से ठट्टा पहुँचकर कुछ दिन मुल्ला के आस पास ठहरा रहा। उससे भेंट होने पर इमामिया मत के नियमों को जानकर इसकी उसमें रुचि हो गई और उसके मुख से वही निकलने लगा। यद्यपि यौवनकाल ही में अपनी बुद्धि प्रगट कर इसने शिष्यों को पढ़ाने का साहस किया था पर कुछ विद्याओं को प्राप्त करने तथा कुछ पुस्तकों के समझने का उस नगर में साधन नहीं था इसलिए बाईस वर्ष की अवस्था में फ़क़ीरों की चाल पर यात्रा की। मशहद में पहुँचकर मौलाना अफजल कायनी से इमामियो धर्म-ग्रंथों को गणित आदि के साथ इसने पढ़ा। यहाँ से यज्द और शीराज जाकर मुल्ला कमालुद्दीन हुसेन तबीब और मुल्ला मिर्जा जान से कानूनी पुस्तकों और तजरीद की टीका का व्याख्या सहित पारायण किया। कजवीन में शाह तहमास्प सफवी की सेवा में उपस्थित हुआ। जब शाह इस्माइल द्वितीय ईरान की गद्दी पर बैठा और उसका सुन्नी होना प्रसिद्ध हुआ तब मुल्ला अहमद एराक, अरब व मक्का मदीना को चल दिया। बहुत से उस समय के विद्वानों से यह मिला और लाभ उठाया। इसके बाद समुद्र से दक्षिण पहुँचकर गोलकुंडा के शासक कुतुबशाह के यहाँ गया। २७वें वर्ष में फतहपुर सीकरी में अकबर के दरबार में उपस्थित होकर सम्मानित हुआ। इसने तारीख अलफी की रचना की, जिसमें इसलाम के एक सहस्र वर्ष का इतिहास है। उसने प्रत्येक वर्ष का वृत्तांत बड़े प्रयत्न से चंगेज खाँ के समय तक का लिखकर दो जिल्दों में पूरा किया। जब

वह मारा गया तब बाकी हाल आसफ खाँ जाफर ने सन् ९९७ हि० तक का लिखकर पूरा किया। कहते हैं कि मुल्ला अहमद जो कुछ तारीख अल्फी में लिखता था वह बादशाह के सामने पढ़ता था। जब खिलाफत के विवरण में तीसरे खलीफा तक पहुँचा तब मारे जाने के कारणों तथा उनकी व्याख्या में बहुत विस्तार किया। अकबर ने इस विस्तार से रंज होकर कहा कि मौलवी, इस घटना को क्यों इतना विस्तृत व बड़ा करता है। उसने तूरान के सर्दारों और बड़ों के सामने निर्भय होकर कह दिया कि यह घटना सुन्नियों तथा उसके समूह का रौजएशुहदा (शहीदों का मकबरा) है, इसलिए इससे कम में संतोष नहीं कर सका। इसकी ऐसी ही बातें शीआ मत की प्रसिद्ध हो गई थीं। शेख अब्दुल् कादिर बदायूनी अपने मुंतखिबुत्तवारीख में लिखता है कि एक दिन उसे बाजार में देखा कि कुछ एराकी उसकी प्रशंसा करते थे, एक ने कहा कि उसके कपोल पर 'तरफुज' का प्रकाश प्रगट है। मैंने कहा कि इसीसे सुन्नीपन का नूर तुम्हारे मुख पर प्रकट है।

—•—

बयान खाँ

यह फारूकी शेख था और खानदेश के फारूकियों के समान इसने खाँ की पदवी पाई तथा इसे ढाई हजारी मनसब मिला। यह दक्षिण प्रांत में जागीर पाकर वहीं नौकरी करता रहा। यह फकीरी चाल पर रहता था। इसके शिष्यगण इसकी योग्यता का वर्णन किया करते थे। इसकी कुतुबुल्मुल्क सैयद अब्दुल्ला खाँ से पुरानी मित्रता थी। जब सन् ११२९ हि०, सन् १७१७ ई०, में जब अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ दक्षिण से मुहम्मद फर्रुखसियर को कैद करने के लिए दिल्ली की ओर आया, उस समय यह बीमार था। सन् ११३० हि०, सन् १७१८ ई०, में यह मर गया और औरंगाबाद नगर के फाजिलपुरा मोहल्ले में अपनी हवेली में गाड़ा गया। इसका बड़ा पुत्र अपने पिता की पदवी पाकर जीवन व्यतीत कर रहा था। द्वितीय पुत्र महम्मद मुर्तजा खाँ था, जो अमीनुद्दौला बहादुर सर्फराज जंग की पदवी और अच्छा मनसब पाकर बीदर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। यह सजीव तथा संतोषी पुरुष था। यह मित्रता निबाहने में एक था। यह सन् ११८९ हि०, सन् १७७५ ई० में मर गया और हैदराबाद नगर के बाहर फतह फाटक के पास गाड़ा गया।

बरखुरदार, खानआलम मिर्ज़ा

यह मिर्जा अब्दुर्रहमान दोल्दी का पुत्र था, जिसके पूर्वज-गण तैमूरियावंश के पुराने स्वामिभक्त सेवक थे और पीढ़ी दर पीढ़ी तैमूर के समय से सर्दार होते आए थे। अब्दुर्रहमान का परदादा मीरशाह मलिक तैमूर का एक भारी सरदार था और अपनी स्वामिभक्ति तथा सत्यनिष्ठा के लिए सदा प्रसिद्ध रहा। अकबर के राज्यकाल के ४०वें वर्ष तक मिर्जा बरखुरदार ढाई सदी मंसब तक पहुँचा था। ४४वें वर्ष में बिहार के विद्रोहियों में से एक दलपत उज्जैनिया को 'जब कैद से छुट्टी मिली और उसने अपने घर जाने की आज्ञा पाई तब मिर्जा बरखुरदार ने अपने पिता अब्दुर्रहमान का बदला लेने को, जो इस विद्रोही से युद्ध करने में मारा गया था, जंगल में कुछ आदमियों के साथ उस पर आक्रमण किया पर दलपत बचकर निकल गया। अकबर ने आज्ञा दी कि मिर्जा को बाँधकर उस ज़मींदार के पास भेज दो। पर यह आज्ञा कुछ दरबारियों के कहने पर रद्द कर दी गई और यह कैद किया गया। सौभाग्य से यह शाहजादा सलीम की सेवा में अधिक प्रेम रखता था इसलिए उसकी राजगद्दी पर शिकार में अधिक दक्षता रखने के कारण यह कोसबेगी पद पर नियत किया गया। ४थे वर्ष जहाँगीरी में इसे खानआलम की भारी पदवी मिली। ६ठे वर्ष सन् १०२० हि० में ईरान के शाह अब्बास सफवी ने यादगारअली सुलतान

तालिश को अकबर की मृत्यु पर शोक मनाने और जहाँगीर की राजगद्दी पर प्रसन्नता प्रगट करने को भेजा। ८वें वर्ष में उसके साथ खानआलम राजदूत होकर गया। शाह रूमियों को दमन करने के लिए आज़रबईजान की ओर गया हुआ था इसलिए खानआलम को हिरात तथा कुम में कुछ दिन ठहरने के लिए कहा गया। कहते हैं कि बहुत से आदमी इसके साथ थे। दो सौ केवल बाज़वाले तथा मीर शिकार ही थे और एक सहस्र विश्वस्त बादशाही सेवक थे। अधिक दिन ठहरने के कारण मिर्जा बरखुरदार ने बहुत से आदमियों को हिरात से लौटा दिया। सन् १०२३ हि० (सन् १६१७–१८) में जब शाह राजधानी कज़वीन में लौट कर आया तब खानआलम सात आठ सौ आदमियों को साथ लेकर तथा सोने चाँदी के सामान तथा हौदा सहित दस भारी हाथियों, अनेक प्रकार के शिकारी जानवर, जंगी घोड़े, पक्षिगण, बोलनेवाली चिड़ियाएँ, गुजराती बैल, चित्रित रथ तथा पालकियों सहित नगर के पास पहुँचा। बहुत से बड़े-बड़े सर्दारों ने इसका स्वागत किया और इसे सआदताबाद बाग़ में ले आए। दूसरे दिन जब शाह सआदताबाद के मैदान में चौगान और कबक खेल रहा था तब खानआलम सेवा में उपस्थित हुआ। शाह ने इसका बड़े संमान के साथ आदर किया और कहा कि हमारे और बादशाह जहाँगीर के बीच में भाईचारे का बर्ताव है और उन्होंने तुमको भाई लिखा है इसलिए भाई का भाई भी भाई ही है। इसके बाद उसके गले से गले मिला। खानआलम चाहता था कि प्रतिदिन वह एक-एक उपहार भेंट दे पर शाह जंगल के शिकार को उस प्रांत में जाना चाहते थे,

जो माजिंदरान देश का एक विशेष अहेर है और जिसका समय बीत रहा था, इसलिए एक ही दिन इसने सब अमूल्य उपहार पेश कर दिए और बाकी सामान बयूतात को सौंप दिए कि शाह क्रमशः उन्हें देख सके। शाह इसकी संगत से इतना मुग्ध था कि यदि वह सब लिखा जाय तो कल्पनातीत समझा जायगा। कृपा के आधिक्य से शाह इसे जानआलम कहा करता था और इसके बिना एक सायत भी नहीं रह सकता था। यदि किसो दिन या रात्रि में यह उपस्थित न हो सकता तो शाह बिना किसी विचार के उसके निवासस्थान पर पहुँचकर उसपर अधिक कृपा दिखलाता था। जिस दिन यह शाह से बिदा होकर नगर के बाहर पड़ाव में आकर ठहरा उस दिन शाह ने आकर क्षमा प्रार्थना की थो।

वास्तव में खानआलम ने इस सेवा-कार्य को बड़ी खूबी से किया और काफी धन व्यय कर अच्छा नाम पैदा किया। 'आलम-आरा अब्बासो' इतिहास का लेखक सिकंदर बेग मुंशी लिखता है कि जिस दिन खानआलम कजवीन में गया था, मैंने उसका ऐश्वर्य देखा था और विश्वसनीय आदमियों से सुना भी था कि इतने प्रभूत ऐश्वर्य तथा वैभव के साथ भारत या तुर्की का कोई भो राजदूत सफवी राजवंश के आरंभ से अब तक ईरान में नहीं आया था। यह भो नहीं ज्ञात है कि पूर्वकाल के खुसरू या कियान वंश के सुल्तानों के समय भी कोई इस प्रकार आया था या नहीं। सन १०२९ हि० (सन् १६२० ई०) के आरंभ में तथा जहाँगीर के राज्य के १४वें वर्ष के अंत में ईरान से लौटकर खानआलम कसबा कलानौर

में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ, जब कि जहाँगी
बादशाह होनेपर प्रथम बार कशमीर की ओर गया था
बादशाह ने अत्यंत कृपा के कारण इसे दो दिन रात अप
शयनगृह में रखा और अपनी खास लिहाफ व दरी दी
सफल राजदूतत्व के पुरस्कार में इसे पाँच हजारी ३००
सवार का मंसब मिला। विचित्र यह है कि बादशाहनाम
शाहजहानी में अब्दुल् हमीद लाहौरी लिखता है कि खान
आलम मधुर भाषण तथा सभा चातुरी में, जो राजदूत
आवश्यक है, कुशल न था और इसलिए जैसा चाहिए वैस
कार्य नहीं कर सका। नहीं ज्ञात होता कि उसने ऐसा क्यं
लिखा और इसके लिये उसका क्या आधार था ?

जब शाहजहाँ हिंदुस्तान की राजगद्दी पर सुशोभित हुअ
तब खानआलम छ हजारी ५००० सवार के मंसब, झंडा व डंक
के साथ मिर्जा रुस्तम सफवी के स्थान पर बिहार का सूबेदा
नियत हुआ। अफीम के आधिक्य से राजकार्य ठीक तौर प
नहीं कर सका, इसलिये उसी वर्ष वहाँ से हटा दिया गया
५वें वर्ष सन् १०४१ हि० (सन् १६३२ ई०) में जब शाहजह
बुर्हानपुर से आगरे लौटा तब खानआलम सेवा में उपस्थित
हुआ। बादशाह ने इसके वार्द्धक्य तथा अफीम के व्यसन के
आधिक्य के विचार से सेवा से क्षमाकर एक लाख रुपया वार्षि
वृत्ति दे दी। यह राजधानी आगरा में शांति के साथ निवास
करने लगा और कुछ दिन बाद मर गया। यह निस्संतान था
इसका भाई मिर्जा अब्दुस्सुबहान इलाहाबाद का फौजदार नियत
होकर अच्छी तरह अपना कार्य करता रहा। यहाँ से बदल

कर यह काबुल में नियत हुआ और अफरीदियों के युद्ध में मारा गया। इसका पुत्र शेरजाद खाँ बहादुर साहसी पुरुष था और सहिंद: के युद्ध में खानजहाँ लोदी से लड़ते हुए मारा गया। आलमआरा का लेखक लिखता है कि खानआलम को जहाँगीर की ओर से भाई की पदवी मिली थी पर हिंदुस्तान के इतिहासों में इसका कहीं उल्लेख नहीं है और न जनसाधारण में ऐसा प्रचलित ही है। परंतु जब शाह ने भेंट के समय इस बात को कहा तब इसकी सचाई में शंका करने का कोई कारण नहीं है क्योंकि बिना ठीक तौर समझे हुए वह ऐसी बात कह नहीं सकता था। ईश्वर जाने।

बसालत ख़ाँ मिर्ज़ा सुलतान नज़र

यह अफ़ग़ात के चगत्ताई जाति का था। इसका पिता मिर्ज़ा मुहम्मदयार बलख़ का निवासी था और वहाँ से शाहजहाँ के राज्य-काल में हिन्दुस्तान आकर मनसबदारों में भर्ती हो गया। मिर्ज़ा सुलतान नज़र हिन्दुस्तान में पैदा हुआ और अवस्था प्राप्त होने पर मनसब पाकर महम्मद आज़मशाह की सेवा में रहने लगा। अंत में यह शाहज़ादे का वकील होकर दरबार में रहने लगा। औरंगजेब की मृत्यु पर महम्मद आजमशाह ने इसको तीन हजारी मनसब और सलाबत ख़ाँ की पदवी देकर अपने दीवान ख़ास का दारोगा नियत किया। बहादुरशाह के साथ के युद्ध में यह घायल होकर मैदान में गिर गया। इसके अनंतर बहादुरशाह की सेवा में पहुँच कर इसने बसालत ख़ाँ की पदवी पाई और उस घुड़सवार सेना का बख़्शी नियत हुआ, जो सुलतान आलीतबार के नाम से प्रसिद्ध थी। दक्षिण से लौटते समय वेतन देने में देरी करने के कारण रिसाले के आदमियों की हालत बहुत ख़राब हो गई थी इसलिये यह उस पद से हटा दिया गया। जहाँदारशाह के राज्य-काल में जुल्फिकार ख़ाँ के प्रयत्न से इसका पहिले का मनसब और जागीर बहाल हो गई। मुहम्मद फर्रुख़सियर के समय में इसे हुसेनअली ख़ाँ पुराने परिचय का विचार कर अपने अधीनस्थ सेना का, जो राजपूतों को दमन करने के लिये नियत हुई थी, बख़्शी बना-

कर अपने साथ लिवा ले गया। इसके बाद दक्षिण की यात्रा में भी हुसेनअली खाँ के साथ जाकर सन् ११२७ हि० में उस युद्ध में, जो दाऊद खाँ पन्नी से बुरहानपुर नगर के पास हुआ था, यह मारा गया और उसी नगर के सनवारा मोहल्ले में अपने मकान में गाड़ा गया। यह मित्रता निबाहने में प्रसिद्ध था और शुभ बातें कहने में बहुत दक्ष था। इसका बड़ा पुत्र मिर्जा हैदर हुसेनअली खाँ की सहायता से पिता के बाद उक्त बख्शी के पद पर नियत किया गया। सैयदों के बाद सेवा छोड़ कर यह एकांतवास करने लगा। दूसरे पुत्र को, जो अपने पिता की पदवी पाकर आसफजाह के साथ था, इस ग्रंथ के लेखक ने देखा था। इससे दो पुत्र, जो बच गए थे, मनसब तथा थोड़ी सी जागीर पाकर कालयापन करते रहे।

---

*

बहर:मंद ख़ाँ

इसका नाम अज़ीज़ुद्दीन था और यह मीर बख्शी था। इसका पिता मिर्ज़ा बहराम प्रसिद्ध सादिक खाँ का चौथा पुत्र था, जो यमीनुद्दौला आसफ खाँ का बहनोई था। जब सादिक खाँ की मृत्यु हुई, उस समय मिर्जा बहराम सब भाइयों से छोटा और अल्पवयस्क था पर उसे पाँच सदी १०० सवार का मनसब मिला। इसके अनंतर उसने कुछ तरक्की न की और कभी जवाहिरखाने का और कभी बावर्चीखाने का दारोगा नियत होता रहा। यह डेढ़ हजारी ३०० सवार के मनसब तक पहुँचा था। जब इसका बड़ा भाई उम्दतुल्मुल्क जाफर खाँ बिहार का सूबेदार नियत हुआ तब यह भी उसी प्रांत में नियुक्त किया गया। जब ३० वें वर्ष में दाराशिकोह के बड़े पुत्र सुलेमानशिकोह का इसकी पुत्री से विवाह होना निश्चय हुआ तब यह पटना से बुलाया गया और शाहजहाँ ने इसे डेढ़ लाख रुपये के मूल्य के रत्न, जड़ाऊ बर्तन और दूसरी वस्तुएँ विवाह के उपहार के रूप में दिया। उसके अनंतर यह अंधा होकर बहुत दिनों तक राजधानी में एकांतवास करता रहा। इसके दो पुत्र अजीजुद्दीन और शरफुद्दीन थे। पहिले को औरंगजेब के राज्य के १० वें वर्ष में बहर:मंद खाँ की पदवी मिली। यह योग्यता, कार्य्य-कुशलता तथा अनुभव रखता था, इसलिये सभी शाही कामों को अच्छी प्रकार पूरा करता था। ऐसी कम सेवायें थीं, जिस पर यह

नियत न हुआ हो और इस प्रकार फीलखाना के दारोगा पद से अहदियों का बख्शी होता हुआ आख़ता बेगी नियत हुआ। २३वें वर्ष में सलाबत ख़ाँ के स्थान पर मीर आतिश नियुक्त होकर सम्मानित हुआ। इसी वर्ष बादशाह अजमेर गए। उक्त ख़ाँ आनासागर तालाब के उस पार बाग़ में ठहरा हुआ था। दैवयोग से यह एक पेड़ के नीचे बैठा हुआ था कि बिजली तड़की और यह कूद कर तालाब में जा गिरा। कुछ देर तक बेहोश रहने पर इसकी चेतनता लौटी। २४ वें वर्ष यह मीर तुज़ुक हुआ। इसके अनंतर यह लुत्फुल्ला ख़ाँ के स्थान पर गुसुलखाने का दारोगा नियत हुआ। इसके अनंतर बादशाही सेना दक्षिण पहुँची और उसने अहमदनगर के पास पड़ाव डाला। बहर:मंद ख़ाँ योग्य कर्मचारी होने के साथ साथ कुशल सेनापति भी था इसलिये शत्रुओं पर कई बार धावा करने को भेजा गया। २८ वें वर्ष में जब इसका पिता राजधानी में मर गया तब आज्ञा के अनुसार बख़्शीउलमुल्क अशरफ ख़ाँ इसको दरबार में लिवा लाया और इसे शोक का खिलअत देकर सांत्वना दिलाई। यह जुम्लतुल्मुल्क असद ख़ाँ का भांजा था, इसलिये उसे भी नीम-आस्तीन मिली, जिसे बादशाह पहिरे हुए थे। ३०वें वर्ष में बीजापुर विजय के अनंतर रूहुल्ला ख़ाँ के स्थान पर यह द्वितीय बख़्शी नियत हुआ, जो प्रथम बख़्शी बना दिया गया था। जब जुम्लतुल्मुल्क असद ख़ाँ जिंजी दुर्ग पर अधिकार करने भेजा गया तब यह वज़ीर नियत हुआ। ३६वें वर्ष में मृत रूहुल्ला ख़ाँ के स्थान पर यह मीर बख़्शी हुआ और इसका

मनसब चार हजारी २००० सवार का हो गया। इसके बाद इसका मनसब पाँच हजारी ३००० सवार का हो गया। इस बीच यह कई बार शत्रु को दंड देने गया। ४५वें वर्ष में जब मरवानगढ़ पर, जो खतानून से दो कोस पर है, फतहउल्ला खाँ बहादुर के प्रयत्न से अधिकार हो गया और शाही पड़ाव वहाँ पहुँचा तब एक भारी सेना बख़्शी उलमुल्क बहर:मंद खाँ के अधीन नाँदगढ़, जिसे नामगढ़ भी कहते हैं, और चंदन तथा मंदन, जिन्हें मिफताह (ताली) और मफतूह (खुला हुआ) के नाम से प्रसिद्ध कर रखा था, विजय करने को नियत हुई। फतहउल्ला ख़ाँ की सहायता से इसने थोड़े ही दिनों में इन तीनों दुर्गों को विजय कर लिया और लौट आया। ४६वें वर्ष खेलना दुर्ग पर अधिकार होने के बाद ५ जमादिउल् आखिर सन् १११४ हि०, १६ अकतूबर सन् १७०२ ई०, को यह मर गया। जुम्लतुल्मुल्क अमीरुल्उमरा असद खाँ की पुत्री इसके घर में थी, इसलिये शाहजादा मुहम्मद कामबख्श आज्ञा के अनुसार इसको शोक से उठाकर बादशाह के पास लिवा लाया, जिसे अनेक प्रकार से सांत्वना दी गई। बहर:मंद खाँ को लड़के न थे। इसकी एक पुत्री मुहम्मद तक़ी खाँ बनी मुख्तार को ब्याही थी, जिसका पुत्र वर्तमान बहर:मंद खाँ है। इसका वृत्तांत मृत दाराब खाँ की जीवनी में दिया गया है। दूसरी पुत्री मृत अमीर खाँ के बड़े पुत्र मीर खाँ को बहर:मंद खाँ की मृत्यु के बाद ब्याही गई। औरंगजेब के राज्य में मीर खाँ का मनसब एक हजारी ६०० सवार का था। बहादुरशाह के राज्य के आरंभ में आसफुद्दौला का नायब होकर कुछ दिन

लाहौर का सूबेदार रहा और उसके बाद कालिंजर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ, जो इलाहाबाद प्रांत के प्रसिद्ध दुर्गों में से है।

संक्षेपतः मृत बहरःमंद ख़ाँ एक सम्मानित, विनम्र, ऐश्वर्यशाली, पवित्र विचार वाला, आचारवान तथा मिलनसार सरदार था। अंतकाल में रोग से इसकी जिव्हा बातचीत में लड़खड़ाने लगी थी। कहते हैं कि दक्षिण की चढ़ाई में जब यह मीरबख्शी और वैभवशाली सरदार हो गया तब चाहता था कि यदि बादशाह उसे दिल्ली में रहने के लिये एक साल की छुट्टी दें तो वह एक लाख रुपया भेंट दे। इसके साथियों ने कहा कि दिल्ली की सैर हिन्दुस्तान के बादशाह की मुसाहिबी और प्रजा के सम्मान से बढ़ कर नहीं है। इसने उत्तर दिया कि यह ठीक है कि यह ऐश्वर्य बड़ा है पर ऐसे समय का आनंद यही है कि अपने नगर जाऊँ और अपना नगरपति बनूँ। इस अभिमानी आत्मा को इससे बढ़ कर कोई प्रसन्नता नहीं है कि जिस स्थान में यह पहिली दशा में देखा गया था वहाँ अब वर्तमान अवस्था में देखा जाय।

बहराम सुलतान

यह बल्ख के शासक नज़्र मुहम्मद ख़ाँ का तीसरा पुत्र था। खुसरू सुलतान के जीवन वृतांत के अंत में और अब्दुल् रहमान सुलतान की जीवनी में नज़्र मुहम्मद ख़ाँ का वृत्त और अंत का हाल क्रमशः लिखा जा चुका है, इसलिये उसके पूर्वजों का कुछ हाल यहाँ लिखना अनिवार्य है। नज़्र मुहम्मद ख़ाँ और उसका बड़ा भाई इमाम कुली ख़ाँ दोनों दीन मुहम्मद ख़ाँ प्रसिद्ध नाम यतीम सुलतान के लड़के थे, जो जानी सुलतान का पुत्र और यार महम्मद ख़ाँ का पोत्र था। अंतिम ख्वारिज्म की राजधानी ऊरगंज के शासक हाजिम ख़ाँ का भतीजा था। जब इसके पूर्वजों से शेर ख़ाँ नाम का प्रांत रूसियों ने ले लिया तब यार मुहम्मद ख़ाँ दरिद्रता में वहाँ से चला आया। यह हाजिम ख़ाँ के बुरे बर्ताव से भी चला आया। जब वह मावरुन्नहर पहुँचा तब प्रसिद्ध अब्दुल्ला ख़ाँ के पिता सिकंदर ख़ाँने इसको योग्य तथा अच्छे वंश का युवक समझ कर अपनी पुत्री का विवाह इससे कर दिया, जो अब्दुल्ला ख़ाँ की सगी बहन थी। इस विवाह से जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम जानी ख़ाँ था। इसके पाँच पुत्र थे, सबसे बड़ा दीनमुहम्मद ख़ाँ था और अन्य बाक़ीमहम्मद ख़ाँ, वलीमहम्मद ख़ाँ, पायन्दा महम्मद सुलतान और अलीम सुलतान थे। ये पाँचों भाई अब्दुल्ला ख़ाँ के सामने ही तून, कायक़, क़ुहिस्तान के कुल प्रांत में दिन व्यतीत करते थे।

अलीम सुलतान वहीं मर गया। जिस समय अब्दुल्ला खाँ और उसके 'पुत्र अब्दुल्मोमीन खाँ के बीच युद्ध होने लगा तब इन भाइयों ने अब्दुल्ला खाँ के स्वत्वों का विचार करके अब्दुल्-मोमीन खाँ की सेवा स्वीकार नहीं की। जब वह तूरान का शासक हुआ तब उसने अपने परिवारवालों और संबंधियों में से हर एक को जिनसे उसे अच्छे व्यवहार तथा सभ्यता की शंका हो गई उन्हें निकाल बाहर किया अर्थात् अपने परिवार (दूद मान) से धुँआ (दूद) निकाल दिया। यार महम्मद खाँ को भी कुव्यवहार कर बलख से निकाल दिया और जानी खाँ को पकड़ कर कैद कर दिया। अन्य भाइयों ने खुरासान में इसके विरुद्ध बलवा कर दिया। दैवयोग से अब्दुल्मोमीन खाँ सन् १००६ हि० में खुरासान पर चढ़ाई करने के विचार से भारी सेना के साथ बुखारा से रवाना होकर बलख पहुँचा था कि एक रात्रि वह उजबकों के एक तीर से मारा गया, जो दुखियों के कष्ट से पीड़ित होकर घात में बैठे हुए थे। दीन महम्मद खाँ ने इस अवसर को अच्छा पाकर बड़ी प्रसन्नता मनाई और जिस स्थान पर था, वहाँ से हिरात पहुँच कर उसपर अधिकार कर लिया तथा मर्व पर वली महम्मद को अध्यक्ष नियत कर दिया। तूरान में सर्वत्र बड़ा उपद्रव मचा हुआ था और हर एक सर सरदार बना था तथा हर एक दर दरबार बन गया था। इसलिये खुरासान के उजबकों ने निरुपाय होकर दीन महम्मद खाँ को शासक मान-लिया। उसने हिरात में राज्य स्थापित कर अपने दादा यार महम्मद खाँ के नाम से खुतबा पढ़वाया और सिक्का ढलवाया।

यार महम्मद ख़ाँ बल्ख से निकाले जाने पर हिंदुस्तान चला आया था और अकबर की सेवा में पहुँच कर बादशाही कृपा पा चुका था। कुछ दिन बाद यात्रा करने के विचार से वह छुट्टी लेकर कंधार पहुँचा था कि आकाश ने यह राज्यविप्लव कर दिया। अभी दीन महम्मद ख़ाँ अपनी इच्छा पूरी नहीं करने पाया था कि शाह अब्बास सफवी युद्ध के लिए सेना तैयार कर हिरात आ पहुँचा, जो अपना पैतृक प्रांत छुड़ा लेने का अवसर ढूँढ़ रहा था। कुछ दूरदर्शी हितैषियों ने दीन महम्मद से कहा कि खुरासान के बारे में झगड़ा करना अनुचित है क्योंकि वह सौ वर्ष से कज़िलबाशों के हाथ में है और उसका केवल एक टुकड़ा हम लोगों के अधिकार में है। उचित यही है कि कज़िलबाश बादशाह से मित्रता प्रगट किया जाय और तुर्किस्तान का प्रबंध किया जाय, जो उसका प्राचीन पैतृक देश है तथा जिसका कोई योग्य सरदार नहीं है। उस प्रांत को शांत करने के अनंतर यदि वह अपने को समर्थ समझे तब खुरासान पर अधिकार करना अनुचित न होगा। दीन महम्मद ख़ाँ ने युद्ध-प्रिय युवकों के बहकानेसे, जो उस प्रांत के शासन के स्वाद को अभीतक भूल नहीं सके थे और अब्दुला ख़ाँ के समय खुरासान में उपद्रव होने से कई कज़िलबाश सरदारों पर युद्ध में विजय प्राप्त कर चुके थे, इस युद्ध को भी सहज और सुगम समझ लिया। हिरात से चार फर्सख पर पुल सालार के पास रबातबिरियाँ में युद्ध हुआ। भारी लड़ाई के बाद उजबक सेना परास्त हो गई और लगभग पाँच छ सहस्र बहादुर सैनिकों के मारे जाने पर दीन महम्मद ख़ाँ भागा। जब वह मारूचाक़ पहुँचा तब घावों के

कारण बहुत निर्बल हो गया। इसके मित्रों ने एक स्थान पर इसे आराम देने के लिये उतारा, जहाँ वह मर गया।

कुछ लोग कहते हैं कि वह अपने सिपाहियों के नौकरों के यहाँ एक खेमें में छिप रहा था, जहाँ उसे न पहचान कर उन आदमियों ने उसके साथ अनुचित व्यवहार किया और जब उसे पहचाना तब दंड पाने के डर से उसे मार डाला। पायन्दा मुहम्मद सुलतान कंधार गया और वहाँ के प्रांताध्यक्ष यारबेग खाँ ने उसे कैद कर बादशाह अकबर के पास भेज दिया। उसने हसनबेग शेख उमरी को सौंपा, जो काबुल जा रहा था। इसने पंजाब के सूबेदार कुलीज खाँ के पास पहुँचा दिया। एक वर्ष बाद लाहौर में इसकी मृत्यु हो गई। वलीमुहम्मद खाँ अपने बड़े भाई दीनमहम्मद खाँ का वृत्तांत बिना जाने हुए ही युद्ध स्थल से तीस चालीस आदमियों के साथ निकल कर बुखारा की ओर चला गया और मीरमुहम्मद खाँ से जा मिला, जो अब्दुल्ला खाँ का एक संबंधी था और जिसे अब्दुलमोमिन खाँ ने यह समझ कर नहीं मार डाला था कि वह अफीम खानेवाला फकीर है और जो बराबर अफीमचियों के अड्डे पर दरिद्रता तथा निराशा में दिन बिताया करता है। यह बाद में तूरान की गद्दी पर बैठा। जिस समय तवक्कुल खाँ कज्जाक मावरून्नहर को शक्तिशाली बादशाह से खाली पाकर सेना के साथ चढ़ आया और युद्ध में जानी खाँ के एक पुत्र बाकी मुहम्मद खाँ ने बड़ी बहादुरी व साहस दिखलाया तब पीरमहम्मद खाँ ने इस अच्छी सेवा के उपलक्ष में उसे समरकन्द का शासनाधिकार दे दिया। बाकी मुहम्मद खाँ ने कुछ समय तक सेवा

और अधीनता मानने के अनंतर अपने को शासन कार्य में पीरमुहम्मद ख़ाँ से अधिक योग्य समझ कर स्वयं राज्य करने की इच्छा से ख़ाँ की पदवी धारण कर ली और मियाँकाल देश पर अधिकार करने के लिये सेना लेकर समरकंद से बाहर निकला। पीरमुहम्मद ख़ाँ यह समाचार पाकर दुखी हो चालीस सहस्र सवारों के साथ समरकंद पहुँचा। बाकी महम्मद ख़ाँ ने बहुत चाहा कि अधीनता का बहाना कर इस उपद्रव को शांत करे पर कोई लाभ नहीं निकला। निरुपाय होकर उसने युद्ध की तैयारी की और एक दिन दुर्ग के बाहर निकल कर पीरमहम्मद ख़ाँ की मध्य सेना पर धावा कर दिया और उसे परास्त कर दिया। पीरमहम्मद ख़ाँ घायल होकर भागते समय पकड़ा गया और बाकी महम्मद ख़ाँ की आज्ञा से उसी समय मार डाला गया। इस विजय के अनंतर बाकी महम्मद ख़ाँ बुखारा पहुँच कर राजगद्दी पर बैठ गया और अपनी योग्यता तथा वीरता से उसने पूरे बल्ख और बदख्शाँ पर अधिकार कर लिया। उसका दादा यारमहम्मद ख़ाँ, जो अभी तक कंधार ही में था, यह समाचार सुनकर हज्ज जाने का विचार छोड़कर तूरान की ओर चल दिया। बाकी मुहम्मद ख़ाँ ने बड़ी प्रतिष्ठा के साथ उसका स्वागत कर गद्दी पर बैठाया और उसके नाम सिक्का ढलवाया और खुतबा पढ़वाया पर दो वर्ष बाद जब उसने देखा कि उसका दादा अपने पुत्रों अब्बास सुलतान, तरसून सुलतान और पीरमहम्मद सुलतान का, जो जानी ख़ाँ की माता के पुत्र नहीं थे, पक्ष ले रहा है तब उसने यारमुहम्मद ख़ाँ के हाथ से राज्याधिकार लेकर अपने पिता जानी ख़ाँ को उसके स्थान पर

बैठा दिया। इसके अनंतर जब यारमहम्मद ख़ाँ और जानी ख़ाँ दोनों मर गए तब बाकीमहम्मद ख़ाँ ने अपने नाम सिक्का ढलवाया और खुतबा पढ़वाया, जिससे इसकी शक्ति और सम्मान सुरैया के समान हो गया और इसके राज्य के झंडे आकाश के तीसरे गुंबज तक पहुँच गए। सन् १०१४ हि० में इसको मृत्यु हुई और वलीमुहम्मद गद्दी पर बैठा। इसने बल्ख, अन्दखूद और उनके अंतर्गत के देश, जो वंक्षु नदी के इस पार थे और इसके भाई के समय इसके अधीन थे, अपने भतीजों इमामकुली सुलतान और नज्रमुहम्मद ख़ाँ को दे दिया, जो दीनमहम्मद ख़ाँ के लड़के थे। ये दोनों अपने प्रतिष्ठित चाचा की सेवा में बहुत दिन व्यतीत कर अंत में अपने यौवन के कारण और मूर्ख मित्रों के बहकाने से अधीनता छोड़ कर विद्रोही हो गए। ईरान के राजदूत के आने जाने से अपने पितृव्य पर धर्म बदलने की शंका दिखला कर बहुत से उजबक सरदारों को उसके विरुद्ध कर दिया। अंत में देहबीदी का ख्वाजा अबू हाशिम, मुहम्मद बाकी कलमाक़, जो वली मुहम्मद ख़ाँ के पहिले से समरकंद का शासक था और यलंगतोश बे अतालीक़ ने, जो उस स्थान पर उसकी सहायता को नियत था और जो वली मुहम्मद ख़ाँ के कुबर्ताव से दुखी था, इमामकुली ख़ाँ के नाम से खुतबा पढ़वा कर तथा सिक्का ढलवाकर इसको बल्ख से बुलवाया। यह अपने भाई नज्र मुहम्मद ख़ाँ के साथ जैहून नदी पार कर चाहता था कि कोहतन मार्ग से समरकंद जाय। वली मुहम्मद ख़ाँ यह समाचार पाकर बुखारा से सेना एकत्र कर इनके मार्ग में आ डटा। इमाम कुली ख़ाँ में इससे

युद्ध करने को शक्ति नहीं थी, इसलिये मिलने पर इसने मध्यस्थों से बहुत से उलाहने कहलाए। वली मुहम्मद ख़ाँ भी नहीं चाहता था कि युद्ध हो। इसी बीच दैवयोग से एक रात्रि दो तीन सुअर वली मुहम्मद ख़ाँ के खेमे में नरकट के जंगल से निकल कर आ घुसे। बहुत से आदमी खेमों से चिल्लाते हुए बाहर निकल कर उनसे लड़ने लगे। यह शोर मचा कि इमाम कुली ख़ाँ ने रात्रि आक्रमण किया है। सैनिक लोग वली मुहम्मद ख़ाँ के कनात के पास इकट्ठे हो गए पर उसका कुछ भी पता न लगा, क्योंकि वह उस समय अपने आदमियों पर शंका करके कुछ विश्वास-पात्रों के साथ अलग हट गया था। झुंड के झुंड मनुष्य दोनों भाइयों से जा मिले। कुछ लोगों का कहना है कि यह रात्रि-आक्रमण की खबरें साधारण आदमियों को उठाई हुई नहीं थीं प्रत्युत् उसके अच्छे सेवकों ने स्वामिद्रोह तथा लोभ के कारण वली मुहम्मद ख़ाँ के निमक का विचार न करके और इसकी असफलता में अपनी सफलता समझ कर रात्रि-आक्रमण का शोर मचा दिया और शत्रु की ओर आशा का मुख फेर दिया। वली मुहम्मद ख़ाँ कुछ समय तक यह दृश्य देखकर बड़े कष्ट और नैराश्य से बुखारा चला गया। वहाँ भी अपना ठहरना उचित न देखकर निराश हो ईरान चला गया।

इमाम कुली ख़ाँ इस प्रकार आशा से अधिक सफलता पाकर फुर्ती से बुखारा पहुँचा और गद्दी पर जा बैठा। इसने नज्र मुहम्मद ख़ाँ को बलख और बदख्शाँ दे दिया। अब्दुल्ला ख़ाँ का छोटा भाई एबादुल्ला सुलतान की पुत्री आयखानम पहिले अब्दुल्मोमिन ख़ाँ को ब्याही गई थी, जिसके बाद वह

ऐशम ख़ाँ कज़्ज़ाक के अधिकार में रही। इसके बाद पीरमुहम्मद ख़ाँ से और उसके बाद बाकी मुहम्मद ख़ाँ से ब्याही गई। इसके अनंतर यह वली मुहम्मद ख़ाँ की स्त्री हुई। यह उजबकों में अपने सौंदर्य और मंगल-चरण होने के लिए प्रसिद्ध थी। वली मुहम्मद ख़ाँ ईरान जाते समय समय की कमी के कारण इसको चारजू दुर्ग में, जो जैहून के किनारे है, छोड़ गया था। इमाम कुली ने इसको बुलाकर अपनी रक्षिता बनाना चाहा। जब उसने स्वीकार नहीं किया तब इसने काजियों और मुफ़्तियों से उपाय निकालने को कहा। किसी ने ऐसा करने की सम्मति नहीं दी पर एक संसारी काज़ी ने धर्म का विचार छोड़ कर यह फ़तवा दिया कि वली मुहम्मद ख़ाँ विधर्मी हो जाने के कारण मुसल्मानी घेरे के बाहर चला गया, इसलिए उसकी स्त्रियाँ बंधनरहित हो गई। उस निडर ने अपने जीवित चाचा की स्त्री से, जिसे तिलाक नहीं दिया गया था, निकाह कर लिया, जो किसी धर्म में भी उचित नहीं है।

वली मुहम्मद ख़ाँ के इस्फ़हान पहुँचने पर शाहअब्बास प्रथम ने इसका स्वागत किया और यद्यपि इसने अज्ञान से घोड़े पर सवार रहकर ही भेंट की थी पर शाह ने नम्रता और उत्साह से इसका पूरी तरह आतिथ्य किया। इसके पहुँचने की तारीख़ 'आम्द: बादशाह तूरान' (तूरान का बादशाह आया) से निकलती है। यद्यपि शाह अपनी मित्रता और उत्साह बहुत बढ़ाता गया पर वली मुहम्मद ख़ाँ मौन रहकर कुछ नहीं खुला। कुछ समय के अनंतर जब गाने बजाने का एक जलसा समाप्त हुआ और राजनीतिक बातें होने लगी तब शाह ने कहा कि

इस वर्ष रूस के तुर्क तबरेज़ पर चढ़ आये हैं, इन्हें दमन करना आवश्यक हैं। इसलिए अगले वर्ष वह स्वयं ख़ाँ के साथ जाकर उसे पैतृक गद्दी पर बैठा देगा। ख़ाँ ने कहा कि रुकना और देर करना ठीक नहीं है। अभी इमाम कुली ख़ाँ की शक्ति दृढ़ नहीं हुई है और कज़िलबाशों की सहायता उजबकों के लिए भय की वस्तु हो जायगी। दैवात् इसी समय इसे उजबक सरदारों के पत्र मिले, जिनके विद्रोह के कारण ही इसे भागना पड़ा था। इन पत्रों में उन सबने अपने कार्यों के लिए लज्जा प्रगट की थी और भविष्य के लिए अपनी स्वामिभक्ति और सेवा का वचन दिया था। इस पर वली महम्मद ख़ाँ शाह से बहाने से छुट्टी लेकर बुखारा की ओर रवाना हो गया। छ महीने के अनंतर, जो एराक आने जाने में लग गए थे, इसने तूरान पहुँचकर कुछ सरदारों की सहायता से, जो अपने कर्म के लिए पश्चात्ताप करते हुए उसका बदला चुकाना चाहते थे, बुखारा पर बिना युद्ध अधिकार कर लिया। इमाम कुली ख़ाँ बुखारा से भागकर क़र्शी आया और वहाँ आयखानम को छोड़कर समरकंद चला गया। वली मुहम्मद ख़ाँ अपनी सफलता के घमंड और अपने स्वाभाविक उन्माद से लोगों से बदला लेने में लग गया और योग्य सेना बिना एकत्र किए हुए दुष्टों और लड़ाई लगानेवालों की बात पर विश्वास कर उसने अपने भतीजों पर चढ़ाई कर दी। समरकंद से दो फर्सख पर दोनों पक्षवालों का सामना हो गया। उस जाति के बहुत से सरदार युद्ध से हट कर पीछे की ओर चल दिए। वली मुहम्मद ख़ाँ इस बार भागने की अप्रतिष्ठा की लज्जा न सह सका

और कुल दो तीन सौ निजी सैनिकों के साथ इमामकुली खाँ की सेना पर धावा कर घायल हो मैदान में गिर पड़ा। इसको उठा कर सैनिक गण इमामकुली खाँ के सामने ले गए, जिसने इसे तुरंत मरवा डाला। इस प्रकार तूरान का राज्य बिना किसी साझीदार के इमामकुली खाँ को मिल गया। बल्ख और बदख्शाँ का शासन नज्र मुम्हमद खाँ को मिला। ३५ वर्ष राज्य करने पर सन् १०५१ हि० में इमामकुली खाँ के अंधे हो जाने पर उस देश के कार्यों में गड़बड़ी मच गई। नज्र मुहम्मद खाँ ने अपनी आँखें भाई के स्वत्त्वों की ओर से बंद कर समरकंद और बोखारा ले लेने का विचार किया। यद्यपि उजबक लोगों ने, जो इमाम-कुली के अच्छे व्यवहार के कारण अत्यंत प्रसन्न थे, एकमत होकर कहा कि यद्यपि आँखें अंधी हो गई हैं पर हृदय की आँखें खुली हुई हैं और हम लोग आप का राज्य अंधे होते हुए भी स्वीकार करते हैं पर जब इमामकुली खाँ ने हृदय से नज्र मुहम्मद खाँ को अपना स्थानापन्न होना मान लिया तब निरुपाय होकर उसे समर कंद से लिवा लाकर उसके नाम खुतबा पढ़ा। नज्र मुहम्मद खाँ ने उसको एराक के मार्ग से हज्ज को रवाना किया, यद्यपि वह हिंदुस्तान के मार्ग से जाना चाहता था और उसके हरम की किसी स्त्री को, यहाँ तक कि आयखानम को, जो उसकी प्रेयसी थी, साथ जाने नहीं दिया। इसने उसकी कुल सम्पत्ति पर अधि-कार कर लिया। इमामकुली खाँ बड़े कष्ट से ख्वाजा नसीब, नजर बेग मामा, रहीम बेग और ख्वाजा मीरक दीवान, लगभग पंद्रह आदमी उजबक और दासों के साथ रवाना होगया और शाह अब्बास द्वितीय से भेंट कर तथा उसका आतिथ्य ग्रहण कर

काबा चला गया। वहाँ से वह मदीना गया, जहाँ उसकी मृत्यु हुई और बकीआ में वह गाड़ा गया।

नज्र महम्मद खाँ का गद्दी पर बैठना, उजबकों का उपद्रव और हिंदुस्तान की सेनाओं का उस देश में आने का कुल वृतांत उसके द्वितीय पुत्र खुसरू सुलतान के जीवन-वृत्त में विस्तार से लिखा जा चुका है, इसलिए अब अपने विषय की ओर आते हैं। जब शाहजादा मुरादबख्श सन् १०५६ हि० जमादि उल्अव्वल महीने में बल्ख के पास पहुँचा तब बहराम सुलतान और सुभानकुली सुलतान बल्ख के कुछ सरदारों और बड़े आदमियों के साथ विजयी सेना में चले आए। शाहजादा ने असालत खाँ मीरबख्शी को इन्हें लाने के लिए भेजा और अमीरुल् उमरा अली मर्दान खाँ दीवानखाने के द्वार तक स्वागत कर लिवा लाया। शाहजादा ने बड़े सम्मान से अपनी मसनद के दाहिनी ओर कालीन पर बैठाया और कई तरह से अपनी कृपा प्रकट करके उन्हें विदा कर दिया, जिसमें वे जाकर नज्र मुहम्मद खाँ को सांत्वना दें कि हर तरह से उपद्रव करनेवालों को दंड देने और दमन करने में सहायता दी जायगी और जब तक उक्त खाँ का कुल प्रबंध ठीक तौर पर न हो जायगा तब तक यह विजयी सेना आराम न करेगी।

नज्र मुहम्मद खाँ का राजत्व समाप्त हो चला था, इसलिए वह झूठी शंका कर शाहजादे का आतिथ्य करने का बहाना कर मुराद बाग चला गया और थोड़ा सा रत्न और अशर्फी साथ लेकर अपने दो पुत्रों सुभानकुली और कतलक सुलतान के साथ भाग गया। जब यह समाचार शाहजादे को मिला तब बहादुर

खाँ रुहेला और असालत खाँ को उसका पीछा करने को नियत किया और स्वयं उस प्रांत का प्रबंध करने और भागे हुए खाँ का सामान जब्त करने में लग गया। कुल बारह लाख रुपये का जड़ाऊ बर्तन वगैरह और ढाई हजार घोड़ियाँ बादशाही अधिकार में आईं। यद्यपि उसका संचित सामान संदूकों में रखा गया था, जिनकी सूची स्वयं कागज पर लिखकर वहीं छोड़ गया था और जिनकी तालियाँ वह सर्वदा अपने पास रखता था पर वह सब कुछ नहीं मिला। मुत्सद्दियों से इतना जबानी मालूम हुआ कि उसकी संचित कुल संपत्ति सत्तर लाख रुपये की थी, जितनी इसके किसी पूर्वज के पास न थी। उजबक और अलअमानों के उपद्रव में और भागने तथा गड़बड़ी में व्यय थोड़ा हुआ पर अधिकतर लूट में चला गया। बलख और बदख्शाँ प्रांत तथा पूरे मावरुन्नहर और तुर्किस्तान की आय, जो इन दोनों भाइयों के अधिकार में थी, इनके दफतरों की नकल से लगभग एक करोड़ बीस लाख खानी था, जो सिक्का उस देश में चलता था और जो तीस लाख रुपये के बराबर था। इसमें भूमि कर, अन्य भिन्न कर, नगद और जिन्स, सभी प्रकार की आय सम्मिलित थी। इसमें सोलह लाख इमामकुली खाँ की और चौदह लाख नज्र महम्मद खाँ की थी।

शाहजहाँ के २० वें वर्ष के आरंभ में जमादिउल् आखीर महीने में बलख नगर में शाहजहाँ के नाम खुतबा पढ़ा गया। नज्र महम्मद खाँ के लड़के बहराम और अब्दुर्रहमान खुसरू सुलतान के लड़के रुस्तम के साथ, जो तीनों नज्र मुहम्मद के संग सूचना न होने के कारण नहीं जा सके थे और बलख दुर्ग में उसके

परिबार के साथ रह गए थे, उक्त खाँ की स्त्रियों और पुत्रियों सहित नजरबंद कर दरबार रवाना कर दिए गए। जब ये काबुल के पास पहुँचे तब सदरुस्सदूर सैयद जलाल खियांबाँ तक स्वागत कर बादशाह की सेवा में लिवा गया। बहराम सुलतान को पाँच हजारी १००० सवार का मनसब, पचीस हजार रुपया नगद और अन्य प्रकार की कृपायें मिलीं। इस पर बादशाह की बराबर दया बनी रही और वह शान्ति से दिन व्यतीत करता रहा। जब नज्र मुहम्मद खाँ दूसरी बार अपने पैतृक देश पर अधिकृत हुआ तब उसके बुलाने पर उसके संबंधी लोग ३० वें वर्ष में बलख चले गए। बहराम सुलतान हिंदुस्तान के आराम और आनंद से चित्त नहीं हटा सका और उसने तूरान जाना स्वीकार नहीं किया तथा योग्य वृत्ति पाकर औरंगजेब के समय तक यहीं आराम से जीवन व्यतीत कर दिया।

बहादुर

यह सईद बदख्शी का पुत्र था जो कुछ दिन तिरहुत सरकार का अमल गुजार था। अकबर के राज्य काल के २५ वें वर्ष में जब कि बिहार के सरदारों ने विद्रोह मचा रखा था तब सईद अपने उक्त पुत्र को अपने अधीनस्थ महालों में छोड़ कर बलवाइयों के पास पहुँचा। बहादुर ने दुर्भाग्य से शाही खालसा का धन सेना में व्यय कर बलवा कर दिया और सिक्का तथा खुतबा अपने नाम कर लिया। कहते हैं कि उसके सिक्के पर यह शैर खुदा था। शैर—

बहादुर इब्न सुलतान बिन सईद इब्न शाहे सुलतान।
पिसर सुलतान, पिदर सुलतान जहे सुलतान बिन सुलतान॥

जब मासूम खाँ काबुली के कहने पर सईद अपने पुत्र के पास गया कि उस उपद्रवी को समझाकर ऐक्य स्थापित करे तब बहादुर ने उद्दंडता से पिता को कारागार में भेज दिया। पिता ने भी थोड़े दिनों में उसकी सरदारी स्वीकार करली। जब शाहिम खाँ जलायर पटना पर चढ़ाई कर विजयी हुआ तब सईद युद्ध में मारा गया और बहादुर ने तिरहुत के बाहर आस पास के स्थानों पर अधिकार कर लिया। सरकार हाजीपुर इसके अधीन था और यह हर ओर लूट मार करता रहता था। अंत में सादिक खाँ ने एक सेना इस पर भेजी, जिससे गहरी लड़ाई हुई और यह २५ वें वर्ष सन ९८८ हि० में मारा गया।

———

बहादुर खाँ उजबक

इसका नाम अब्दुन्नबी था और यह कजान के सरदारों में से था। अब्दुल् मोमिन खाँ के समय यह ऊँचे पदपर पहुँचा और मशहद का शासक नियत हुआ। उक्त खाँ के मारे जाने पर बाकी खाँ ने इसको बहुत दिलासा दिया पर यह हज्ज करने के बहाने छुट्टी पाकर हिंदुस्तान चला आया। ४८ वें वर्ष में यह अकबर की सेवा में पहुँचा और इसने योग्य मनसब तथा जड़ाऊ खंजर पाया। जहाँगीर की राजगद्दी पर चालीस हजार रुपया व्यय के लिए पाकर सत्तावन मनसबदारों के साथ शेख फरीद मुर्तजा की सहायता को नियत हुआ, जो खुसरो का पीछा कर रहा था। ५ वें वर्ष ताज खाँ के स्थान पर मुलतान का अध्यक्ष नियत हुआ। ७ वें वर्ष इसका मनसब बढ़कर तीन हजारी ३००० सवार का हो गया और बहादुर खाँ की पदवी पाकर मिर्जा गाजी के स्थान पर कंधार का शासक नियुक्त हुआ। इसके बाद बराबर बढ़ते हुए इसका मनसब पाँच हजारी ३५०० सवार का हो गया। १५ वें वर्ष में नेत्रों की निर्बलता का उज्र कर कंधार के शासन से त्याग पत्र दे दिया। कहते हैं कि हजाज के बादशाह की सेना के आने का जब समाचार सुनाई पड़ने लगा, तब यह अपने को वहाँ ठहरने में असमर्थ मानकर दो लाख रुपये शाही मुत्सद्दियों में घूस बाँटकर उस पद से हट गया। इसपर यह

आगरा प्रांत में जागीर पाकर वहीं रहने लगा। जब शाहजहाँ अजमेर से आगरे को चला तब यह बादशाह की सेवा में पहुँचा। इसके बाद का हाल नहीं मिला।

बहादुर खाँ बाकी बेग

यह शाहजादा दाराशिकोह का नौकर था और अपने अनुभव तथा अच्छी सेवा से इसने शाहजादे के मनमें जगह कर लिया था। इससे विश्वास बढ़ने के कारण यह अपने बराबर वालों से सम्मान और पदवी में बढ़ गया। सेना में भरती होते समय यह एक हजारी ४०० सवार का मंसब पाकर शाहजादा की ओर से इलाहाबाद प्रांत का नाज़िम नियत हुआ। जब वह उस प्रांत के प्रबंध को ठीक कर रहा था, तभी २२ वें वर्ष में यह दरबार में बुला लिया गया और शाहजादे का प्रतिनिध होकर गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियुक्त हुआ। इसका मनसब बढ़कर दो हजारी ५०० सवार का हो गया और गैरतखाँ की इसने पदवी पाई। २३ वें वर्ष में शाहजादे की सेवा से हटाया जाकर बादशाही सेवकों में भरती कर लिया गया और इसे तीन हजारी २००० सवार का मनसब और झंडा मिला। जिस समय शाहजादा दाराशिकोह ने कंधार की चढ़ाई की अध्यक्षता स्वयं स्वीकार कर ली और राजधानी काबुल का शासन अपने बड़े पुत्र सुलतान सुलेमान शिकोह को दिया, उस समय उस प्रांत का प्रबंध गैरत खाँ को फिर मिला। २८वें वर्ष में इसका मनसब बढ़ते हुये चार हजारी २५०० सवार का हो गया और यह बहादुर खाँ की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। काबुल की सूबेदारी के समय दौरम्बू और

नग़ज जाकर वहाँ के अफगानों को, जो बलवा कर शाही लगान नहीं दे रहे थे, दमन कर और दंड देकर एक लाख रुपया कर लगाया। काबुल का प्रबंध जब इससे न हो सका और वहाँ का कार्य उचित रूप से यह न कर सका तब २३ वें वर्ष में काबुल का शासन निजीरूप में रुस्तम खाँ फीरोज जंग को सौंपा गया और बहादुर खाँ लाहौर का शासक नियत हुआ, जो शाहज़ादे की जागीर में था। सन् १०६८ हि० सन् १६५८ ई० में शाहजहाँ के राज्य के प्राय: अंत में ५०० सवार मंसब में बढ़ाए गए और शाहज़ादे का प्रतिनिधि होकर यह बिहार का सूबेदार हुआ तथा सुलेमान शिकोह के साथ भेजा गया, जो शुजाअ का सामना करने पर नियुक्त हुआ था। यद्यपि प्रगट में मिर्ज़ाराजा जयसिंह को अभिभावकता और प्रबंध सौंपा गया था पर वास्तव में दारा-शिकोह ने बहादुर खाँ ही को अभिभावक बनाकर सेना का अधि-कार दे दिया था और इस कार्य का कुल प्रबंध इसी की राय पर छोड़ा था। जब सुलेमान शिकोह शुजाअ के पराजय के अनंतर अमीर खाँ का पीछा करता पटना पहुँचा तब औरंगजेब की चढ़ाई का समाचार सुनकर फुर्ती से लौटा। इलाहाबाद से आगे बढ़ने पर मौजा कड़ा के पास अपने पिता के पराजय का समा-चार सुनकर इसका उत्साह भंग हो गया। इसकी सेना में गड़-बड़ी मच गई और मिर्ज़ाराजा तथा दिलेर खाँ पुरानी प्रथा के अनुसार उससे अलग हो गए। निरुपाय होकर सुलेमान शिकोह ने चाहा कि दिल्ली की ओर रवाना होकर किसी प्रकार अपने पिता के पास पहुँच जाय पर बहादुर खाँ ने इस विचार का समर्थन नहीं किया और उसे इलाहाबाद लौटा लाया। यहाँ भी घबड़ाहट और

भय से न रहकर अधिक सामान और संबंध की कुछ स्त्रियों को इलाहाबाद दुर्ग में छोड़कर तथा नदी के उस पार जाकर असफलता में इधर उधर भटकता रहा। हर पड़ाव पर बहुत से लोग इससे अलग होकर चल देते थे और इसकी सेना कम होती जाती थी। यह लखनऊ से आगे बढ़कर नदीना पहुँचा। यहाँ वह जिस उतार से गंगा नदी पार करना चाहता था, उसी उतार की नावें इसके पहुँचने के पहिले ही इस पार से उसपार जा रहती थीं, जिससे वह कहीं उस पार न जा सका। तब यह नदीना से आगे बढ़ा कि हरिद्वार के सामने वहाँ के जमींदार तथा श्री नगर के राजा की सहायता से गंगा पार कर सकेगा। यह मुरादाबाद होता हुआ चांदी पहुँचा, जो हरिद्वार के सामने तथा श्री नगर राज्य की सीमा के पास था। इसने एक आदमी को उक्त राजा के पास सहायता माँगने को भेजा और उत्तर की प्रतीक्षा में वहीं ठहर गया। इसी बीच औरंगजेब की सेना इसपर आ पहुँची। लाचार होकर इसने भागना निश्चय किया और श्री नगर के पहाड़ों को अपना रक्षास्थल माना। जब यह उस पार्वत्य प्रांत में श्री नगर से चार पड़ाव पर पहुँचा तब वहाँ के राजा ने भेंटकर कहा कि हमारा स्थान छोटा है और इसमें इतने आदमी नहीं रह सकते। हाथी घोड़ों के लिए यहाँ मार्ग नहीं है। यदि यहाँ रहने की इच्छा हो तो सेना को लौटा कर अपने परिवार तथा कुछ सेवकों के साथ श्री नगर में चले आइये। इसी समय बहादुर खाँ लाचार होकर सुलेमान शिकोह से छुट्टी लेकर अलग हो गया। यह इलाहाबाद छोड़ने के बाद ही असाध्य रोग से बीमार हो गया था और इसकी एक आँख भी इसी रोग के कारण जाती रही

थी। वास्तव में वह मृत के समान हो गया था पर अपने आत्म-सम्मान तथा स्वामिभक्ति के कारण पीछे नहीं हटा। पहाड़ी स्थान से बाहर आते ही इसकी मृत्यु हो गई।

बहादुर खाँ रुहेला

यह दरिया खाँ दाऊदजई का लड़का था। यह अपने पिता के जीवन काल ही में अच्छी सेवा के कारण शाहजादा शाहजहाँ का सुपरिचित हो गया था। जब इसका पिता शाहजादा से कृतघ्नता कर अलग हो गया तब बहादुर खाँ ने अधिक दृढ़ता के कारण शाहजहाँ का साथ नहीं छोड़ा। राज्यगद्दी होनेपर इसका मनसब चार हजारी २००० सवार का हो गया और यह कालपी जागीर में पाकर वहाँ के बलवाइयों को दमन करने भेजा गया। जब पहिले वर्ष में जुझार सिंह विद्रोह कर ओड़छा दुर्ग में जा बैठा और हर ओर से शाही सेनायें उसपर भेजी गईं तब अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग ने बहादुर खाँ के साथ कालपी की ओर से, जो उसके पश्चिम है, आकर एरिज दुर्ग पर चढ़ाई की, जिसके हरएक बुर्ज आकाश तक ऊँचे थे। शत्रुओं ने इन वीरों पर धावा कर घोर युद्ध आरंभ कर दिया। बहादुर खाँ अपने अधीनस्थ सैनिकों के साथ पैदल ही व्यूह तोड़नेवाले एक हाथी को आगे कर फाटक की ओर फुर्ती से दौड़ा और लोगों की सहायता से फाटक तोड़कर दुर्ग में घुस गया। इसने काले हिंदुओं को सौसन रंग के तलवार से लाल फूल के रंग के रक्त से नहलाकर वीरता के मुख पर विजय का गुलाबी रंग चढ़ा दिया। इस विजय के उपलक्ष में इसे डंका मिला। इसके अनंतर यह दक्षिण के सूबेदार आजम खाँ के साथ खानजहाँ लोदी को दमन करने

पर नियत हुआ। जब आजम खाँ धावा कर राजौरी बीड में खानजहाँ पर जा पहुँचा तब वह २५० सवारों के साथ बाहर निकलकर दृढ़ता तथा शांति के साथ रवाना हो गया। जब शाही सेना उसके पास पहुँचती तब वह लौटकर तीर चलाते हुए उसे भगा देता था। जब वह राजौरी पहाड़ से बाहर निकला तब बहादुर खाँ रुहेला फुर्ती से वहाँ पहुँचा और खानजहाँ के भतीजे बहादुर खाँ से युद्ध करने लगा, जो एक हजारी मनसबदार था और वीरता तथा साहस के लिए प्रसिद्ध था। बहादुर रुहेला ने इतनी बहादुरी दिखलाई कि रुस्तम और असफंदियार की कहानी फीकी पड़ गई पर सैनिकों की कमी से अंत में वह कष्ट में पड़ गया और पैदल होकर बराबर फतिंगे के समान शत्रु की तलवार के आग पर अपने को डालता रहा।

कहते हैं कि जब मुखपर और बगल में तीरें खाकर यह गिरा और शत्रुगण उसका सिर काटना चाहते थे तब यह चिल्लाया कि मैं दरिया खाँ का पुत्र और यादगार हूँ तथा तुम्हीं लोगों में से हूँ। खानजहाँ ने अपने आदमियों को मना कर दिया। इसके अनंतर जब आजम खाँ ने चौथे वर्ष दुर्ग कंधार विजय करने के बाद भालकी और चतकोबा पर चढ़ाई करने के बिचार से मानजरा नदी के किनारे पड़ाव डाला तब निश्चय किया कि जब सेना किसी जगह अपने खेमे खड़ी कर रही हो तबतक हरएक सेना की टुकड़ी कुछ सरदारों के साथ एक कोस तक ठहरकर उसकी रक्षा करती रहे, जिसमें पड़ाव के आदमी घास और ईंधन सुचित्ती से एकट्ठी कर लावें। एक दिन बहादुर खाँ रुहेला की पारी थी और शत्रु कहीं दिखलाई नहीं पड़ रहे थे, इसलिए

यह असावधानी से थोड़े सैनिकों के साथ दूर हटकर जा बैठा था। दैवयोग से इसीके पास एक गाँव था, जहाँ के निवासी लोग अपने यहाँ की संपत्ति और पशुओं की रक्षा के लिए पड़ाव के आदमियों से लड़ने को तैयार हो गए। बहादुर खाँ यह समाचार पाकर अन्य सरदारों के साथ सहायता को गया, जिसके पास एक सहस्र से ज्यादा आदमी नहीं थे। रनदौला खाँ आदिलखानी कुल भीड़ के साथ लड़ने लगा और सरदारगण भी बहादुरी से लड़ने लगे। जब ये कठिनाई में पड़े तब घोड़े से उतरकर जान देने को तैयार हुए। तीन हजारी सरदार शहबाज खाँ मारा गया और बहादुर खाँ तथा यूसुफ मुहम्मद खाँ ताशकंदी घावों से बेहोश होकर गिर पड़े। शत्रु ने इन्हें उठा ले जाकर बीजापुर में कैद कर दिया। जब ५वें वर्ष यमीनुद्दौला आदिल शाही राज्य को लूटने के लिए नियत होकर बीजापुर के पास पहुँचा तब आदिलशाह ने दोनों को छोड़ दिया। बहादुर खाँ दरबार में आया और मनसब बढ़ने से शाही कृपा पाई। इसने फिर से कालपी, कन्नौज और उसके अंतर्गत महालों की जागीर पाई। उस प्रांत के मलकोसा बलवाइयों को यह दंड देने के लिए तैयार हुआ, जो वहाँ के सभी उपद्रवियों से संख्या तथा दुष्टता में बढ़कर थे। वहाँ के किसान से सिपाही तक सभी शस्त्र रखते थे। यहाँ तक कि जब खेतिहर खेत जोतने जाते थे तब भरी हुई बंदूक हल में बाँध रखते थे और सुलगता हुआ पलीता साथ रखते थे। इसी कारण वे अपने कृषि कार्य में पूरा समय नहीं देते थे। उस समय वे बीर गाँव में इकट्ठे हो गये थे, जो वहाँ का दृढ़तम स्थान था, और विद्रोह कर उन सबने मला

गुजारी देने से एकदम इनकार कर दिया था। ईश्वर की सहायता पर भरोसा कर इसने एकाएक उन उपद्रवियों पर धावा कर दिया और विचित्र युद्ध होने लगा। बहादुर खाँ ईश्वर की सहायता की ढाल लगाकर दीवार तक पहुँचा। उपद्रवीगण भी बड़ी वीरता और साहस से डट गए और खूब द्वंदयुद्ध होने लगा। अंत में बहुतों के मारे जानेपर बचे हुए भाग गए। बहादुर खाँ उनके निवास स्थान को नष्ट कर लौट गया। उस प्रांत में बलवाइयों पर ऐसी विजय किसी दूसरे के भाग्य में नहीं लिखी थी, जिससे बहादुर खाँ की योग्यता सबने मान लिया। इसके अनंतर राजा जुझार सिंह बुंदेला का पीछा करते समय अब्दुल्ला खाँ फीरोजजंग और खान दौराँ बहादुर का हरावल होकर इसने बहुत काम किया। जब वह गढ़ तथा लानजी से आगे बढ़कर चांदा के प्रांत में चला गया तब बहादुर खाँ, जो उसका पीछा कर रहा था, घायल होने के कारण अपने चचा नेकनाम को उस सेना के साथ आगे भेजा कि उसे रोक ले। जुझार सिंह इसका साहस देखकर लौट पड़ा और लड़ गया। नेकनाम अन्य साथी सैनिकों के साथ अत्यंत घायल हो गिर पड़ा। इसी बीच बहादुर खाँ ने खानदौराँ के साथ पीछे से पहुचकर उस अभागे पर धावा कर दिया और उसकी सेना को भगा दिया।

अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग चम्पत राय बुंदेला को दमन करने में ढिलाई कर रहा था, इसलिए १३ वें वर्ष में बहादुर खाँ इसलामाबाद की जागीर पर भेजा गया कि उस विद्रोह को शांत करे पर स्वार्थियों ने इसे रहने न दिया। उन सबने बादशाह को समझा दिया कि बुंदेलखंड को रुहेलखंड बनाना अच्छी नीति

नहीं है इसलिए यह शीघ्र वहाँ से हटा दिया गया। उसके बाद इसने जगता के कार्य में और मऊ लेने में अपनी बहादुरी दिखलाई। अपने सरदार की आज्ञा से इसके सैनिक मुर्दों की सीढ़ी बनाकर शत्रु के मोर्चों पर चढ़ दौड़े थे। उस दिन इसके अधीनस्थ सात सौ अफगान मारे गए। २२वें वर्ष यह मुलतान की रक्षा पर नियत हुआ। इसे रबी फसल की जागीर नहीं मिली थी, इसलिए दीवानी के मुत्सद्दियों को आज्ञा मिली कि इसका वेतन इसके जिम्मे जो बाकी है उसमें मुजरा दे दिया जाय। बल्ख की चढ़ाई में यह शाहजादा मुराद बख्श का हरावल नियत होकर वीरता के लिए प्रसिद्ध हुआ। जब शाहजादा तूलदर्रे के नीचे पहुँचा, जो बादशाही साम्राज्य और बदख्शाँ राज्य की सीमा है तब असालत खाँ शाही बेलदारों और कई सहस्र मजदूरों के साथ, जिन्हें अमीरुल् उमरा अली मर्दान खाँ ने काबुल के आसपास से एकत्र किया था, नियत हुआ कि सरावाला तक एक कोस दो शाही गज चौड़ा और सराजेर तक, जो बदख्शाँ की ओर है, आधकोस और कहीं अढ़ाई कोस तक बर्फ काट कर सड़क बनावें, जिससे लदे हुए ऊँट उस मार्ग से जा सकें। बाकी सड़कों के बर्फ को इस तरह पीट डालें, जिसमें घोड़े तथा ऊँट जा सकें। पर जब यह काम उन सबसे न हो सका और इसके बिना पार करना कठिन था तब बहादुर खाँ ने असालत खाँ के साथ अपने कुल सवारों तथा पैदल सिपाहियों को बर्फ हटाने और मार्ग खोलने में लगा दिया। सिपाहियों ने हरतरह से प्रयत्न कर बर्फ को खोदकर रास्ते के दोनों ओर हाथों से और दामनों से उठा उठाकर फेंका। बहादुर खाँ के परिश्रम से दो गज चौड़ा एक कोस तक

मार्ग बन गया, जहाँ बर्फ बहुत था। जब शाहजादा वहाँ तक पहुँचा तब तूरान का शासक नजर मुहम्मद खाँ यह बहाना कर कि वह शाहजादे का स्वागत करने को मुराद बाग में जा रहा है, शरगान चल दिया। शाहजादे की आज्ञा से बहादुर खाँ असालत खाँ के साथ पीछा करने को रवाना हुआ। लगभग दस सहस्र उजबक और अलअमान, जो नजर मुहम्मद खाँ के पास इकट्ठे हो गये थे, शाही सेना के पहुँचते पहुँचते लुटजाने के डर से अपने सामान और परिवार के साथ अंदखूद भाग गए। नजर मुहम्मद खाँ थोड़ी सेना के साथ शर्गान से चार कोस पर युद्ध के लिए पहुँचा पर युद्ध आरंभ होते होते लडाई की आवाज आद-मियों ने सुनी भी नहीं थी कि वे धैर्य छोड़कर भाग गए। निरुपाय होकर नजर मुहम्मद खाँ भी लौटकर अंदखूद गया और वहाँ से खुरासान चला गया। बहादुर खाँ को यद्यपि मनसब में उन्नति मिली पर ऐसे समय जब थोड़ा प्रयत्न करने पर यह निश्चय था कि नजर मुहम्मद खाँ पकड़ लिया जाता तब इस वीर पुरुष ने न मालूम क्यों जी चुरा लिया। हो सकता है कि यह साथियों की सुस्ती से या किसी अन्य कारण से हुआ हो पर बादशाह के मनमें यह बात बैठ गई। जब शाहजादा मुरादबख्श उस प्रांत में न रहने की इच्छा से शाहजहाँ की बिना आज्ञा लिए काबुल को चल दिया तब बल्ख की सूबेदारी और उस देश की रक्षा बहादुर खाँ को असालत खाँ के साथ सौंपी गई। इसके अनंतर जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर उस प्रांत में पहुँचा तब बहादुर खाँ ने हरावल में नियुक्त होकर उजबकों के युद्ध में, जो चिड़ियों तथा टिड्डियों से संख्या में बढ़ गए थे, बड़ी बहादुरी

दिखलाई। वहाँ से लौटते समय पड़ाव के चंदावल का प्रबंध इसे मिला था और पड़ाव को लिवा लाने में इसे बहुत परिश्रम करना पड़ा था। जब तंगशुनुर दर्रे में पहुँचे, जो हिंदू कोह से दो पड़ाव पर है और जिसका पार करना कठिन है, तब बर्फ गिरने लगी और ऐसा रातभर तथा दोपहर दिनतक होता रहा। बड़े परिश्रम और कठिनाई से बचा हुआ पड़ाव और सेना इस दर्रे के पार हुई। बर्फ के अधिक गिरने के कारण इसी समय एक दिन और रात ठहरना पड़ा। छोटी आँख वाले हजारा लोग अधिक माल लूटने की इच्छा से पड़ाव के आदमियों पर धावा करने लगे पर बहादुर खाँ उन शत्रुओं को हरबार दंड देकर भगा देता था। जब हिंदूकोह के दर्रे में पहुँचे तब एक दिन के लिए ठहर गए, जिसमें पीछे रहे हुए लोग भी आकर मिल जायँ। अंत में यह स्वयं पार हो गया। मार्ग की कठिनाइयों, हवा की तेजी और बर्फ की अधिकता से आरंभ से अंत तक प्रायः दस हजार जानदार, जिसमें आधे आदमी थे, और सब पशु मर गए और बहुत सा सामान बर्फ के नीचे दबा रह गया। जब बहादुर खाँ दर्रे के बाहर आया तब जुल्फ़कार खाँ, जो शाही कोष का रक्षक था, मजदूरों के थक जाने के कारण रुकने के लिए बाध्य हुआ। बहादुर खाँ ने अपने और दूसरों के ऊँटों पर जो बच गए थे, सामान उतरवाकर कोष लदवाया और बचा हुआ सिपाहियों के घोड़ों और खच्चरों पर लदवा दिया। उसी स्थान पर हजारों से युद्ध कर शाहजादा से चौदह दिन बाद काबुल पहुँचा।

यद्यपि बहादुर खाँने इस चढ़ाई में बहुत अच्छा कार्य किया

था पर कुछ लोगों के कहने से शाहजहाँ के मन में यह बात बैठ गई थी कि नजर मुहम्मद खाँ का पीछा करने और उजबकों के विजय के समय सईद खाँ की सहायता करने में इसने जी चुराया था। इस कारण इतना कष्ट और परिश्रम करने पर भी कालपी और कन्नौज सरकार, जो इसे जहाँगीर से मिले थे और जिनकी बारह महीने की तीस लाख रुपया तहसील थी, सरकारी बकाया में जब्त कर लिये गए। इससे यह बहुत दुखी हुआ। २२ वें वर्ष कंधार की पहली चढ़ाई में शाहजादा महम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ नियत होकर इसने उस दृढ़ दुर्ग के घेरे में मालोरी फाटक के सामने मोर्चा बाँधा। वहीं १६ रज्जब सन् १०५६ ई० को (१६ जुलाई सन् १६४६ ई०) यह क्षय को बीमारी से मर गया। शाहजादा और जुमल्तुल् मुल्क सादुल्ला खाँ ने इसके अनुयायियों को, जो दो हजार सवार थे, हर एक को, जो सेवा के योग्य थे, उपयुक्त मनसब और वेतन देकर अपनी सेवा में ले लिया और बचे हुओं को दूसरे सरदारों ने। शाहजहाँ ने इसके बड़े पुत्र दिलावर को, जो १५ वर्ष का था, एक हजारी ५०० सवार का मनसब दिया और इसके अन्य छ पुत्रों में से हर एक को, जो छोटे उम्र के थे, योग्य मनसब दिया। हाथियों के सिवा इसकी सब सम्पत्ति इसके पुत्रों को दे दी गई। कहते हैं कि इसने बादशाही काम में इतनी राजभक्ति और बहादुरी दिखलाई थी कि शाहजहाँ के मन में इसके पिता के द्रोह का जो मालिन्य जम गया था वह बिलकुल मिट गया। कहते हैं कि बहादुर खाँ सदा शोक किया करता था कि वह बीजापुरियों से स्वयं बदला नहीं ले सका और जबतक जीवित रहा इसकी लज्जा इसके मुख पर झलकती रही। इसके

एक पुत्र अज़ीज़ ख़ाँ बहादुर ने औरंगजेब के ४६ वें बर्ष में वाकीन-केरा के घेरे में बहुत प्रयत्न किया और उसे चग़त्ताई की पदवी मिली।

बहादुर खाँ शैबानी

इसका नाम महम्मद सईद था और यह खानजमाँ अली-कुली खाँ का भाई था। यह अकबर के समय पाँच हजारी सरदार था। जिस समय हुमायूँ सेना के साथ हिंदुस्तान पर अधिकार करने आया, उस समय यह जमींदावर में नियत था। कुछ दिन अनंतर कुविचार के कारण इसने कंधार लेने की इच्छा की और चाहा कि धोखे व कपट से यह काम पूरा करे पर वैसा न हो सका। तब निरुपाय होकर यह युद्ध करने को तैयार हुआ। शाह मुहम्मद खाँ बैराम खाँ की ओर से दुर्ग की रक्षा पर नियत था। उसने हिंदुस्तान से सहायता पाना दूर देखकर दुर्ग को दृढ़ किया और ईरान के शाह से सहायता माँगी। इस पर कजिलबाश सेना ने पहुँचकर एकाएक बहादुर खाँ पर धावा किया। इसने घोर युद्ध किया पर कुछ न कर सकने पर भाग गया। उस प्रांत में न रह सकने के कारण जुलूस के २ रे वर्ष लज्जित होकर यह दरबार आया, जब अकबर मानकोट को घेरे हुए था। बैराम खाँ के कहने पर यह क्षमा किया गया और मुहम्मद कुली खाँ बर्लास के स्थान पर मुलतान इसे जागीर में मिला। ३ रे वर्ष बहादुर खाँ बहुत से सरदारों के साथ मालवा विजय करने पर नियत हुआ। इसी समय बैराम खाँ का प्रभुत्व अस्त-व्यस्त हो गया। उक्त खाँ ने इसको लौटा दिया, जिसमें स्वयं उस प्रांत को अपने अधिकार में लाए और फिर इसी विचार में लौटा। बहादुर खाँ को दिल्ली

में पहुँचने पर माहम अनगा की राय से भारी मनसब वकील का मिला पर कुछ दिन न बीते थे कि इसे इटावा की जागीर देकर वहाँ बिदा कर दिया। १० वें वर्ष जब इसके बड़े भाई खानजमाँ ने विद्रोह किया तब इसको सिकंदर खाँ उजबक के साथ सरियार प्रांत में भेजा कि उधर से उत्तरी भारत में जाकर गड़बड़ मचावे। इस पर अकबर ने एक सेना मीर मुइज्जुल् मुल्क मशहदी की सरदारी में नियत किया। बहादुर खाँ ने बहुत कुछ कहा सुना कि मेरी माता इब्राहीम उजबक के साथ बादशाह के यहाँ जाकर मेरा और मेरे भाई का दोष क्षमा करा लाई है पर मीर मुइज्जुल् मुल्क ने न मानकर युद्ध आरंभ कर दिया। यद्यपि सिकंदर खाँ जो इसके साथ था, भाग गया पर बहादुर खाँ ने मीर मुइज्जुल् मुल्क की मध्य सेना पर धावा किया। शाह बिदाग खाँ बीर सरदार होते भी पकड़ा गया और मीर परास्त हुआ। खानजमाँ और इसके दोष क्षमा हो चुके थे इसलिये इस कार्य पर ध्यान नहीं दिया गया। वह क्षमा इस शर्त पर मिली थी कि जब तक शाही सेना उस जिले में रहे तब तक खानजमाँ गंगा नदी पार न करे परंतु जब अकबर चुनार गढ़ देखने चला तब अली कुली खाँ विचार न कर गंगा पार हो गया। बादशाह ने क्रुद्ध होकर इस पर चढ़ाई कर दी और जौनपुर में अशरफ खाँ को आज्ञा भेजी कि उसकी माता को कैद कर ले। बहादुर खाँ ने यह वृत्तांत जानकर तथा फुर्ती से जौनपुर पहुँचकर दुर्ग पर अधिकार कर लिया और अशरफ खाँ को कैदकर अपनी माता को छुड़ा लिया। जौनपुर और बनारस को लूटकर बादशाह के लौटने तक यह बाहर निकल गया। खानजमाँ के क्षमा किए जाने और मुनइम

खाँ की प्रार्थना पर बहादुर खाँ के दुष्कर्मों पर ध्यान नहीं दिया गया। १२ वें वर्ष सन् ६८४ हि० में अपने बड़े भाई के साथ स्वामिद्रोह और दुश्शीलता से बादशाह से फिर लड़ाई करने लगा। जब बाबा खाँ काकशाल ने खानजमाँ की सेना पर धावा किया तब बहादुर खाँ ने सामना कर उसको परास्त कर दिया। एकाएक इसका घोड़ा तीर खाकर मर गया और यह जमीन पर गिर गया। इसके सिपाही यह हाल देखकर भागने लगे। विजयी सेना के बहादुरों ने इसको घेर लिया। वजीर जमील बेग ने जो उस समय सात सदी बनसबदार था, दुष्टता और नीचता से इसे पकड़ कर छोड़ दिया पर उसी समय दूसरों ने पहुँचकर इसको कैद कर लिया और बादशाह के पास लाए। बादशाह ने कहा कि बहादुर खाँ, हमने तुम्हारे साथ क्या बुराई की थी कि तुम इस उपद्रव के कारण हुए। उसने कहा शुक्र है अल्लाह का। स्यात् अभी तक अपने अयोग्य काम पर लज्जित नहीं हुआ था, नहीं तो नम्रता के शब्द जबान पर लाता। अपने हितैषियों की प्रार्थना पर उसी समय शहबाज खाँ को आज्ञा दी कि तलवार से इसकी गर्दन काट दो।

यह कविता भी करता था जिसके एक शैर का अर्थ इस प्रकार है—

उस चंचल अत्याचारी ने दूसरा पत्थर उठा लिया मानो मुझ घायल से युद्ध का मार्ग पकड़ा।

बहादुरुल् मुल्क

कहते हैं कि यह पंजाब का निवासी था। दक्षिण के सुलतानों की सेवा में बहुत दिन व्यतीत कर यह अकबर के दरबार में आया और सेना में भरती हुआ। ४३ वें वर्ष में इसने बरार प्रांत में दुर्ग पनार विजय किया। यह दुर्ग ऊँचे पर बना है, जिसके तीन ओर नदी है और जो कभी उतरने लायक नहीं होती। इसके अनंतर कई युद्धों में बराबर प्रयत्न कर इसने प्रसिद्धि प्राप्त की। ४६ वें वर्ष, जब यह हमीद खाँ के साथ तिलिंगाना की रक्षा पर नियत था, तब मलिक अम्बर ने वहीद प्रांत से सेना लेकर इन पर चढ़ाई कर दी। इन दोनों ने थोड़ी सेना के साथ उसका सामना किया और मानजरा नदी के किनारे युद्ध हुआ। दैवयोग से ये परास्त हुए और हमीद खाँ पकड़ा गया। बहादुरुल् मुल्क बड़े प्रयत्नों से नदी पार हो गया और बच गया। जहाँगीर के ८ वें वर्ष में इसे झंडा मिला। ९ वें वर्ष इसका मनसब बढ़ा और हाथी पुरस्कार में मिला। यह समय आने पर मर गया। कहते हैं कि इसकी अँगूठी पर यह मिसरा खुदा हुआ था। मिसरा

मकबूल दोस्त जो कोई होवे बहादुर है।

बाकर खाँ नज्म सानी

इस वंश का संबंध मिर्जा यार अहमद इस्फहानी तक पहुँचता है। वह आरंभ में शाह इस्माइल सफवी के प्रधान अमात्य मीर नज्म गीलानी के सत्संग से योग्यता तथा कर्मशीलता के लिए प्रसिद्ध हुआ। जब मीर नज्म मर गया तब शाहने कुल कार्य इसे सौंप कर नज्म सानी की पदवी दी और इसका पद सभी बड़े बड़े सरदारों के ऊपर हो गया। मिसरा—

नज्म सानी के समान दोनों लोक में कोई नहीं रहा।

कहते हैं कि इसका इतना ऐश्वर्य बढ़ गया था कि प्रायः दो सौ भेड़ें प्रति दिन इसकी रसोई में खर्च होती थीं और एक सहस्र थालियाँ अच्छे अच्छे भोजनों की रखी जाती थीं। यात्रा में चालीस कतार ऊँटों पर इसका बावर्चीखाना लादा जाता था। मावरुन्नहर की चढ़ाई में, जिसमें शीघ्रता की जा रही थी, तेरह चाँदी की देगों में खाना पकता था। जब इसका वैभव और उच्चता सीमातक पहुँच गई तब इसमें घमंड और अहंकार भर गया। यह तूरान को विजय करने के लिए नियत हुआ। शाहने इसको बाबर की सहायता के लिए भेजा था, जो उस प्रांत को उजबकों के कारण छोड़ कर शाह के पास सहायता के लिए आया था। नज्मसानी वंक्षु नदी पारकर मारकाट में लग गया। उजबक सुलतानों ने गजदवाँ में कूचाबंदी करके युद्ध आरंभ किया। कजिलबाश सरदार गण, जो इससे बैमनस्य और कपट रखते थे, युद्ध

में ढिलाई करते रहे। फलतः अमीर नज्मसानी ने दृढ़ता के साथ बहुत प्रयत्न किया और कैद हो गया। सन् ६१८ हि० में अब्दुल्ला खाँ उजबक ने इसे मार डाला। कहते हैं कि बाकर खाँ का पिता बहुत दिनों तक खुरासान का दीवान रहा। दैव कोप से उसका हाल खराब हो गया और बाकर खाँ दरिद्रता में हिंदुस्तान चला आया। यह योग्य युवक होने के कारण अकबर की सेवा में भर्ती हो गया और इसने तीन सदी मनसब पाया। कुछ लोग कहते हैं कि यह जहाँगीर के समय में फारस से आकर दो सदी ५ सवार के मनसब के साथ दैनिक सेवक हो गया। दैवात् उसी समय खान-जहाँ लोदी वहाँ आया और बादशाह से पूछा कि यह कौन युवक है। जहाँगीर ने नज्मसानी का कुल वृतांत बतला दिया। खान-जहाँ ने प्रार्थना की कि इतना जान लेने पर इतना छोटा मनसब देना योग्य नहीं। इसपर इसे नौ सदी ३० सवार का मनसब मिला। इसके नक्षत्र और भाग्य ऊँचे थे, इस लिए नूरजहाँ की बहिन खदीजा बेगम की पुत्री से इसका विवाह हो गया। एका एक इसके लिए आश्चर्यपूर्ण उन्नति का द्वार खुल गया। इसको दो हजारी मनसब और मुलतान की अध्यक्षता तथा अलम खाँ नदी की फौजदारी मिली। इसने अपनी योग्यता और परिश्रम से वहाँ बड़ी शान्ति फैलाई और बलूचियों, गुदायनों और नाहरों से, जो मुलतान और कंधार के बीच एक अन्य जाति है, भेंट वसूल कर खूब धन और सामान इकट्ठा किया। इसके नाम पर मुलतान का बाकराबाद नाम रखा गया। जहाँगीर बादशाह इसे कृपा के कारण पुत्र कहता था। शाहजहाँ के उपद्रव के समय यह अवध का सूबेदार था और अपनी सजी हुई सेना के साथ दरबार आकर

प्रशंसा का पात्र हुआ। जहाँगीर के आखिरी समय उड़ीसा का सूबेदार हुआ और वहाँ भी अपने कार्य से प्रसिद्धि प्राप्त की। शाहजहाँ के ४ थे वर्ष में छत्र द्वार से दो कोस पर मीरःपाडा पर चढ़ाई की, जो उड़ीसा तथा तिलंग के बीच एक दर्रा है और इतना तंग है कि यदि एक छोटा झुंड बंदूकचियों और धनुष धारियों का जम जाय तो उसे पार करना असम्भव है। इसके दूसरी ओर चार कोस पर मनसूर गढ़ है, जिसे कुतुबुल् मुल्क के दास मंसूर ने बनवाकर अपने नाम पर उसका नाम रखा था। बाकर खाँ ने उस प्रांत को लूटने में कोई कमी नहीं की। जब दुर्ग के पास पहुँचा तब वीरता से युद्ध कर शत्रु को परास्त कर दिया और दुर्ग वालों ने इसकी वीरता देखकर भय के मारे अधीनता स्वीकार कर लिया और दुर्ग दे दिया। यह बहुत दिनों तक उड़ीसा की अध्यक्षता करता रहा। इसका पिता, जो अपने बुढ़ापे के कारण पुत्र के साथ रहता था, वहीं मर गया। ५ वें वर्ष उड़ीसा की प्रजापर अत्याचार और कुव्यवहार करने से उस पद से हटाए जाने पर यह दरबार आया तब ६ठे वर्ष गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ और वहीं १० वे वर्ष में सन् १०४७ ई० के आरंभ में मर गया।

वीरता और साहस में यह अद्वितीय और सैनिक गुणों में सबसे बढ़ा चढ़ा था। तीर चलाने में भी एक ही था। जहाँगीर ने अपने रोजनामचे में लिखा है कि एक रात्रि बाकर खाँने हमारे सामने एक पतला शीशा मसाल की रोशनी में रखा और मक्खी के पर के समान मोम की कुछ चीज बनाकर उस शीशे पर चपका दिया और उस पर एक चावल खोंस कर उसके ऊपर एक मिर्च

का दाना रखा। पहिली ही तीर में मिर्च को उड़ा दिया, दूसरी में चावल को और तीसरी में मोम को पर शीशे पर जरा भी चोट न आई। कहते हैं कि बाकर खाँ करना की आवाज़ सुनने से इस कारण प्रसन्न होता था कि रुस्तम भी इसकी आवाज़ को सुना करता था। यह अपने नक्कार खाने को खूब सजा कर रखता था। एक दिन हकीम रुकनाय काशी इसे देखने गया, जिसके सामने करना बजाया जाने लगा। हकीम ने कहा कि नवाब साहब रुस्तम भी कभी कभी करना सुना करता था। बाकर खाँ गद्य, पद्य और सुलिपि लिखने में बड़ा योग्य था। इसने एक दीवान बनाया था।[1]

इसका बड़ा पुत्र मिर्ज़ा साबिर जवानी के आरंभ ही में मर गया और दूसरे पुत्र फाखिर खाँ का हाल अलग दिया गया है।

१—इसके आगे तीन शैर दिए गए हैं जिनका अर्थ यहाँ नहीं दिया गया है।

बाकी खाँ चेला कलमाक़

यह बादशाह का एक विश्वसनीय दास था। अच्छे नक्षत्रों और सेवा से यह शाहजहाँ के हृदय में स्थान पा चुका था। ६ ठे वर्ष इसे सात सदी ५०० सवार का मनसब मिला। ९ वें वर्ष यह बढ़कर एक हजारी १००० सवार का मनसबदार हो गया। १० वें वर्ष इसका मनसब बढ़कर एक हजारी १००० सवार से दो हजारी २००० सवार का हो गया और झंडा, घोड़ा और हाथी पाकर ऌत्रा का फौजदार नियत हुआ, जो बुंदेलखंड में ओडछा के अंतर्गत एक परगना है। जब यह प्रांत जुझार सिंह से युद्ध होने पर शाही सेना का पड़ाव बन गया तब यह परगना, जिसमें ९०० गाँव थे और जिसकी आय आठ लाख रुपए थी और जो अच्छे मैदानों तथा नदियों की अधिकता से शोभित था, खालसा किया गया और इसका इसलामाबाद नाम रक्खा गया। इसी समय खाँ यहाँ का फौजदार हुआ और इसने वहाँ के उपद्रवियों को दमन करने में बहुत प्रयत्न किया। जब राजा जुझार सिंह का सेवक चम्पत बुंदेला उसके मारे जाने पर उसके पुत्र पृथ्वीराज को विद्रोह का केंद्र बनाकर ओड़छा और झाँसी के मौजों को लूटने लगा तब अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग इसलामाबाद का जागीर-दार नियुक्त होकर इन विद्रोहियों को दमन करने भेजा गया। जब वह यहाँ आया तब उसने चाहा कि बाकी खाँ स्वयं उनको दंड देने जाय, जो इस काम में पहिले भी प्रयत्न कर चुका था। उक्त

खां ने काम करने की इच्छा से वचन दिया कि यदि वह उसे अपनी सेना देवे तो वह उस काम को पूरा कर दे। फीरोज जंग आलस्य के मारे स्वयं नहीं गया और उसी पर सब काम छोड़ दिया। बाकी खाँ १३ वें वर्ष में धावा कर असावधान विद्रोहियों पर जा पहुँचा। खूब युद्ध करने के बाद चम्पत बचकर निकल गया और पृथ्वीराज पकड़ा गया। १७ वें वष बाकी खाँ गुसुल-खाने का दारोगा नियत हुआ। इसके बाद यह आगरा दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। २७ वें वर्ष के अंत में आगरा प्रांत के अंत-र्गत अपनी जागीरदारी में मर गया। इसकी जागीर के महाल खालसा कर लिए गए। इसके पुत्र सरदार खाँ और बाकी खाँ औरंगजेब के राज्य में प्रसिद्ध हुए, जिनके वृत्तांत अलग अलग दिए गए हैं। कहते हैं कि आरंभ में बाकी बेग लाहौर का कोतवाल था, जब यमीनुद्दौला वहाँ का जागीरदार था। बाकी खाँ के पहिले उस बड़े सरदार की ओर से बाबा इनायतुल्ला यज़्दी वहाँ का शासक था, जो उसका विश्वासपात्र सेवक था। इनायतुल्ला बाकी बेग को नहीं मानता था और न उसपर विश्वास रखता था इस-लिए इसने अपनी अँगूठी पर खुदवा लिया था—

'काम इनायत का है और बाकी बहाना'

बाकी खाँ हयात बेग

यह सरदार खाँ का छोटा भाई था। औरंगजेब के २३ वें वर्ष में इसे हयात खाँ की पदवी मिली। २८ वें वर्ष मीर अब्दुल् करीम के स्थान पर सात चौकी का अमीन नियत हुआ। इसके अनंतर शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम प्रसिद्ध नाम शाह आलम के गुसुलखाने का दारोगा बनाया गया। जब बीजापुर के घेरे के समय बादशाह का मिज़ाज शाहजादे की ओर से राजद्रोह की आशंका में सशंकित हो गया और उस पर कृपा कम हो गई तथा बादशाही सम्मतिदातागण, जैसे तोपखाने का दारोगा मोमिन खाँ नज्मसानी, द्वितीय बख्शी और दीवान वृंदाबन, छुड़ा दिए गए तब भी शाहजादा नहीं समझा और हैदराबाद के घेरे में अब्दुलहसन के साथ पत्र-व्यवहार करता रहा, जिससे उसका पहिले से परिचय था। उसका यही प्रयत्न था कि इस घेरे का कार्य उसी के द्वारा हो और इस दुर्ग के विजय का सेहरा उसी के माथे पिता के द्वारा बाँधा जाय। ईर्ष्यालु तथा इसका बुरा चाहने वालों ने बादशाह को उलटा समझा कर बादशाह का मिजाज इसकी ओर से बिगाड़ दिया। एक दिन एकांत में बादशाह ने हयात खाँ से इस विषय में पूछा। इसने बहुत कुछ शाहजादे की निर्दोषिता बतलाई पर कोई असर न हुआ। बादशाह ने आदेश दिया कि शाहजादे को आज्ञा पत्र भेजा जाय कि शेख निज़ाम हैदराबादी इस रात्रि को पड़ाव पर धावा करेगा, उस समय

शाहजादा अपने सेवकों को पड़ाव के आगे भेज दे, जिसमें वे उसे रोकने के लिए तैयार रहें। जब ये आदमी उस ओर चले जावेंगे तब एहतमाम खाँ कालेवाल उसके पड़ाव की रक्षा करेगा। दूसरे दिन २६ वें वर्ष के १८ जमादि उल् आखिर को शाहजादा आज्ञा के अनुसार अपने पुत्रों मुहम्मद मुइज्जुद्दीन और मुहम्मद अजीम के साथ दरबार आया। उस समय बादशाह दीवान में बैठे हुए थे। इसके आने और कुछ देर बैठने के बाद आज्ञा दी कि हमने असद खाँ और बहर:मंद खाँ से कुछ बातें कह दी हैं, इस लिए तसबीह खाना में जाकर उनसे समझ लो। लाचार होकर यह वहाँ गया। असद खाँ ने उससे शस्त्र माँग लिए और उससे कहा कि कुछ दिन तक शांति से समय व्यतीत कीजिए। इसके अनंतर उसे पास ही लगे हुए खेमे में ले गए। कहते हैं कि शस्त्र लेने के समय मुइज्जुद्दीन ने दूसरा विचार प्रकट किया पर पिता की कड़ी नजर पड़ते ही शांत हो गया। शाही मुत्सद्दियों ने उसके सब शाही चिन्ह एक क्षण में जब्त कर लिए। बादशाह दीवान से उठकर महल में गए और हाय हाय करके अपने दोनों हाथ जंघों पर पटक कर कहा कि हमने चालीस वर्ष का परिश्रम धूलमें मिला दिया।

इस घटना के अनंतर हयात खाँ के बड़े भाई सरदार खाँ के बादशाही कृपापात्र होने से यह दंड से बच कर सेवा कार्य में लगा रहा। इसके बाद अपने पिता की पैतृक पदवी पाकर ४६ वें वर्ष में इसे पाँच सदी की तरक्की मिली, जिससे इसका मनसब दो हजारी हो गया और कामदार खाँ के स्थान पर आगरे का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ, जो सभी दुर्गों से दृढ़ता में बढ़कर था और

इस कारण भी कि बहुत दिनों से बादशाही कोष तथा रत्न इसीमें सुरक्षित रहते आये थे। यह हिन्दुस्तान के सब दुर्गों से अधिक प्रतिष्ठित था। औरंगजेब की मृत्यु पर बाकी खाँ ने स्वतः यह निश्चय कर लिया था कि साम्राज्य का जो वारिस सबसे पहिले आगरे पहुँचेगा उसीको दुर्ग की कुंजी और कोष सौंप दूँगा। इस कोष में नौ करोड़ रुपये की अशर्फी, रुपया तथा दूसरे सामान सिवाय सोने चाँदी के बरतनों के एक हिसाब से थे पर दूसरे हिसाब से कहते हैं कि तेरह करोड़ का था। अधिकतर संभावना थी कि महम्मद आज़म शाह सबके पहिले आ पहुँचेगा पर भाग्य ने बहादुरशाह के नाम बादशाहत लिखी थी इसलिए उसी के अनुसार कार्य हुआ। मुहम्मद अजीम, जो बंगाल के शासन से हटाया जाकर दरबार आ रहा था, यह समाचार सुनकर घोड़ों की डाकसे शीघ्र आगरे पहुँच गया। बाक़ी खाँने दुर्ग देने से इनकार कर दिया और अपना निश्चय कह सुनाया। शाहजादे ने तोपखाने लगा दिए और कुछ गोले बेगम मसजिद पर गिरे। शाहजादे ने युद्ध से कोई लाभ न देखकर संधि की बात चलाकर बाकी खाँ का प्रार्थनापत्र उसके निश्चय को लिखकर अपने पिता के पास भेज दिया। इसी समय बहादुर शाह सेना के साथ दूर की यात्रा तै करता हुआ दिल्ली पहुँच गया था! यह अच्छा समाचार सुनकर वह शीघ्रता से आगरे चला आया। बाकी खाँ ने दुर्ग की तालियाँ और कोष भेंट कर बहादुर शाह को राज्य गद्दी पर बैठने की बधाई दी। इसपर शाही कृपाएँ हुईं। बहादुरशाह ने कोष से चार करोड़ रुपये तुरंत निकाल लिए और हर एक शाह-जादे तथा सरदारों को उनके पद तथा दशा के अनुसार पुरस्कार

दिया, पुराने सेवकों का बाकी वेतन तथा नये सेवकों को दो मास का वेतन दे दिया, कुछ महल के व्यय के लिए दिए तथा कुछ फकीरों तथा गरीबों को बाँटा। इसमें दो करोड़ रुपया व्यय हो गए। इसने बाकी खाँ को पहिले ही के तरह दुर्ग में छोड़ा। यह बहादुर शाह के राज्य के आरंभ में मर गया। इसे बहुत से लड़के तथा दामाद थे।

बाकी मुहम्मद खाँ

यह अकबर का धाय भाई और अदहम खाँ का बड़ा भाई था। इसकी माता माहम अनगा का बादशाह से खास संबंध था। जिस समय साम्राज्य का अधिकार इसके हाथ में था, उस समय इसने बाकी खाँ की शादी की थी। बादशाह इसके कारण महफिल में आए थे। खाँ तीन हजारी मनसब तक पहुँचा था। अब्दुल् कादीर बदायूनी के इतिहास से मालूम होता है कि वह १० वें वर्ष में गढ़ा कंटक में मर गया, जो इसे जागीर में मिला था।

बाज बहादुर

इसका नाम बायजीद था और इसका पिता शुजाअत खाँ सूर था, जो हिंद के जनसाधारण की भाषा में सजावल खाँ के नाम से प्रसिद्ध था। जब शेरशाह ने मालवा मल्लू खाँ कादिर शाह[1] से ले लिया तब इसको, जो उसका एक सरदार और खास खेल था, उस प्रांत का अध्यक्ष नियत किया। सलीमशाह के समय यह दरबार आया पर कुछ दिन बाद अप्रसन्न हो कर मालवा चला गया। सलीमशाह ने चढ़ाई की तब यह राजा डूँगरपुर की शरण में चला गया। अंत में सलीम शाह ने इसको प्रतिज्ञा करके अपने पास बुलाया और इसे अपनी रक्षा में रखकर मालवा सरदारों में बाँट दिया। इसके अनंतर अदली के समय फिर मालवा की अध्यक्षता पाकर चाहता था कि खुतबा और सिक्का अपने नाम से करे। सन् ९६२ हि० में यह मर गया। बाज बहादुर[2] पिता के स्थान पर बैठा और अपने शत्रुओं को परास्त कर सन् ९६३ हि० (सं० १६१२) में छत्र धारण कर

---

१. हुमायूँ के बंगाल में परास्त होने पर खिलजियों के एक दास मल्लू खाँ ने सं० १५९२ में सुलतान कादिरशाह के नाम से मालवा में राज्य स्थापित किया था, जिसे सं० १६०० में शेरशाह सूरी ने निकालकर मालवा पर अधिकार कर लिया और शुजाअत खाँ को वहाँ का शासक नियत किया।

२. शुजाअत खाँ के दो पुत्र बायजीद (बाज बहादुर) और मलिक मूसा या मुस्तफा थे और इसका एक दत्तक पुत्र दौलत खाँ भी था।

बाज़बहादुर तथा रूपमती

खुतबा अपने नाम पढ़वाया। कुल मालवा पर अधिकार कर लेने के बाद गढ़ा के विस्तृत प्रांत पर चढ़ाई की और वहाँ की रानी दुर्गावती से परास्त होकर चुप बैठ रहा। यह ऐश आराम करने में लग गया और अपने राज्य की नींव को जल और वायु के आश्रय पर छोड़ दिया। मदिरा-पान और गायन वादन में इस प्रकार लग गया कि न दिन का और न रात का ध्यान रक्खा और न किसी दूसरे काम की ओर दृष्टि रक्खी। शराब को वैद्यक के विद्वानों ने खास खास स्वभाव के आदमियों के लिए निश्चित समय और मोताद में लेने के लिए बतलाया है। गायन के विषय में दूरदर्शी बुद्धिमानों ने कहा है कि जिस समय चित्त दुखी हो, जैसा कि सांसारिक कार्यों में प्रायः होता है, उस समय मन बहलाने के लिये इधर ध्यान देना चाहिये। यह नहीं कि इन दोनों को भारी कार्य समझकर हर समय इन्हीं में लगा रहे। बाज बहादुर स्वयं गायन वादन की कला का उस्ताद था और पातुरों को एकत्र करने में लगा रहता था, जो गाने में और अपनी सुंदरता के लिए प्रसिद्ध थीं। इनमें सबसे बढ़कर रूपमती[1] थी। कहते हैं कि यह पद्मिनी थी, जो नायिकाओं के चार भेद में से प्रथम है। इस प्रकार के भेद हिंद के विद्वानों ने किए हैं। तात्पर्य यह कि स्त्रियों के सभी अच्छे गुण इसमें थे।

बायजीद ने पिता की मृत्यु पर दौलत खाँ को कपट से मार डाला और मूसा हार कर भाग गयी।

१. देखिए काशी, नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ३ सं० १६७६ पृ० १६५—६०।

बाज बहादुर को इससे अत्यंत प्रेम था। इसके प्रेम में हिंदी कविता कहकर अपने हृदय का उद्‌गार निकालता था। इन दोनों के सौंदर्य और प्रेम की कहानियाँ अब तक लोगों की जबान पर हैं।

अकबर के राज्य के छठे वर्ष सन् ९६८ हि० (सं० १६१८) में अदहम खाँ कोका[1] अन्य सरदारों के साथ मालवा विजय करने भेजा गया। बाज बहादुर सारंगपुर से, जो उसका निवास स्थान था, दो कोस पर मोर्चा बाँध कर डट गया और युद्ध करने लगा। इसके सिपाही इससे प्रसन्न न थे, इसलिये दृढ़ता नहीं दिखलाई। अंत में घोर युद्ध पर यह परास्त हुआ। यह कुछ विश्वासी आदमी स्त्रियों और पातुरों की रक्षा को छोड़ गया था कि यदि पराजय का समाचार आवे तब सब को मार डालना, जो हिन्दुस्तान की प्रथा है। जब पराजय हो गई तब कुछ मार डाली गईं, कुछ ने घायल होकर जीवन बिताया और कुछ की पारी भी नहीं आई कि शाही सेना नगर में पहुँच गई। इतना अवसर न मिला कि वे सब भी मारी जायँ। अदहम खाँ सबको अपने अधिकार में लेकर रूपमती को ढूँढ़ने लगा, जो बहुत घायल हो चुकी थी। जब उसने यह बात सुनी तब प्रेम के कारण विष खाकर उसने बाज बहादुर के नाम पर जान दे दिया।

जब अदहम खाँ के स्थान पर मालवा का शासन पीर महम्मद खाँ शरवानी को मिला तब बाज बहादुर ने, जो खान देश और मालवा के बीच घूम रहा था, सेना इकट्ठी कर चढ़ाई की

---

१. देखिए मआसिरुल् उमरा हिंदी भाग २ पृ० ५–६।

और फिर परास्त होकर खान देश के सुलतान मीरान मुबारक शाह की शरण में गया.। उसने अपनी सेना इसके साथ कर दी। इसी समय पीर मुहम्मद खाँ बीजा गढ़ विजय कर तथा बुर्हानपुर लूटकर बहुत सामान के साथ लौट रहा था। दोनों का सामना हो गया। पीर मुहम्मद खाँ परास्त होकर भागते हुए नर्मदा पार कर रहा था कि घं.ड़े से अलग होकर डूब मरा। मालवे के जागीरदार घबड़ाकर आगरे चल लिए और बाज बहादुर का मालवा पर दूसरी बार अधिकार हो गया। इस घटना का समाचार पाने पर ७ वें वर्ष अब्दुल्ला खाँ उजबक[1], जो अकबर का एक सरदार था, अच्छी सेना के साथ उस प्रांत पर नियत हुआ। बाज बहादुर शाही सेना के पहुचने के पहिले ही घबड़ा कर भागा अ.र विजयी सेना के पीछा करने के भय से पहाड़ी घाटियों में छिपकर समय काटने लगा। कुछ दिन बगलाना के जमींदार भेर जा[2] के यहाँ रहा और फिर वहाँ से गुजरात चंगेज खाँ तथा शेर खाँ गुजराती की शरण में गया। इसके अनंतर निजामुल्-मुल्क दक्खिनी के यहाँ पहुँचा और यहाँ से भी दुखित होकर राणा उदय सिंह की रक्षा में रहने लगा। १५वें वष स० १५०१ अकबर ने हसन खाँ खजानची को भेजा कि उसको शाही कृपा की आशा दिलाकर सेवा में लावे।[3] आरंभ में इसे एक हजारी

१. देखिए मआसिरुल् उमरा हिंदी भाग १३३–६।

२. ,, ,, १ पृ० २६८।

३. अकबर ने नागौर से दुबारा हसन खाँ को लिवालाने को भेजा था। आईन अकबरी में बाजबहादुर का नाम मंसबदारों तथा गायकों दोनों की सूची में दिया गया है।

मनसब[1] मिला और अंत तक दो हजारी जात व सवार के मनसब तक पहुँचा ।[2] बाज बहादुर और रूपमती दोनों उज्जैन[3] के तालाब के बीच पुश्ता पर आराम कर रहे हैं ।

---

१. आईन अकबरी में (दफ्तर २ पृ० २८३) एक हजारी जात २०० सवार का मंसब लिखा है ।

२. बाज बहादुर का मृत्यु काल तथा इसके संतान आदि के विषय में कुछ ज्ञात नहीं हुआ । मुंतखबुत्तवारीख से (भाग २ पृ० ५१-२) सं० १६५१ के पहिले इसकी मृत्यु होना सूचित होता है ।

३. तारीख मालवा में सारंगपुर में इनकी कब्र होना लिखा है ।

बादशाह कुली खाँ

यह तहव्वुर खाँ के नाम से प्रसिद्ध था और एक योग्य सैनिक था। यह खालसा के दीवान इनायत खाँ ख्वाफी का दामाद था। यह भी ख्वाफ का रहने वाला था। औरंगजेब अपने राज्य के २२ वें वर्ष में महाराज जसवंत सिंह के राज्य को जब्त करने को, जिनका इसी बीच देहांत हो गया था, ससैन्य अजमेर में ठहरा हुआ था। वहाँ से बादशाह के राजधानी को लौटते समय इफ्तखार खाँ के स्थान पर यह अजमेर का फौजदार नियत हुआ। इसके अनंतर महाराज के विश्वस्त सेवकों ने दुष्टता से बादशाही सेना में उपद्रव मचाया और जोधपुर पहुँचकर वहाँ बलवा कर दिया। राजा के सेवकों में से एक राजसिंह असंख्य सेना इकट्ठा-कर तहव्वुर खाँ पर चढ़ आया, तीन दिन तक दोनों में खूब युद्ध हुआ और तीर तथा गोलिया इतनी चलीं कि उनका टोटा पड़ गया तथा मारे गए लोगों का ढेर लग गया। अंत में तहव्वुर खां ने विजय का डंका बजाया और राजसिंह बहुत से सैनिकों के साथ मारा गया। राजपूतों पर इसका इतना रोब जम गया कि इसे युद्ध के लिए तैयार देखकर वे कभी लड़ने के लिए दोबारा नहीं आये। २३ वें वर्ष के आरंभ में जब दूसरी बार औरंगजेब अजमेर आया तब इसको दो हाथी पुरस्कार में देकर महाराणा के मांडल आदि परगनों पर अधिकार करने के लिए नियत किया और स्वयं भी उसी विद्रोही को दंड देने के लिए उसी ओर रवाना

हुआ। जब मांडल पर बादशाही अधिकार हो गया तब इसे बादशाह कुली खाँ की पदवी मिली। इसके अनंतर यह शाहजादा मुहम्मद अकबर के साथ राठौर राजपूतों को दमन करने के लिए सोजत और जयतारण की ओर भेजा गया। जब विद्रोही राजपूतों का जीवन तंग कर दिया गया और उनका देश बादशाही सेना द्वारा रौंद डाला गया तब उन्होंने विचार किया कि वह कुफ्र का तोड़नेवाला बादशाह जबतक हम लोगों को पूर्णतया दमन न कर लेगा तबतक चुप न बैठेगा, इस पर उन सब ने कपट करने का निश्चय किया। पहिले शाह आलम बहादुर के पास, जो उस समय आना सागर तालाब पर ठहरा हुआ था, अपना दोष क्षमा कराने के बहाने पहुँचकर उसे विद्रोह करने को बहकाया और चालीस सहस्त्र सवार के साथ उससे मिलने के लिए वचन दिया।

कहते हैं की अपनी माता नवाब बाई के कहने पर शाहजादे ने इन कपटी विद्रोहियों को अपने पास फटकने नहीं दिया। निरुपाय होकर शाहजादा मुहम्मद अकबर के पास पहुँचकर उन्होंने उसे बहकाया। शाहजादे ने बुद्धि तथा विवेक के होते भी अपनी अनुभवहीनता, यौवन तथा दुष्ट मित्रों की कुमंत्रणा के कारण विद्रोह करना निश्चय कर लिया। शाह आलम ने यह समाचार पाकर बादशाह को लिख भेजा कि काफिरों तथा शाहजादे के बहकाने में वह न पड़ें। औरंगजेब ने इसे भाई भाई की ईर्ष्या तथा द्वेष के कारण लिखा हुआ समझा, क्योंकि हसन अब्दाल में शाहआलम इसी प्रकार बदनाम हो चुका था और मुहम्मद अकबर की ओर से अब तक कोई शंका नहीं उठी थी। बादशाह ने उत्तर में लिख भेजा कि यह दोष बहुत बड़ा है, तुमको ईश्वर

सर्वदा सीधे रास्ते पर दृढ़ रक्खे। कुछ दिन नहीं बीते थे कि शका मिट गई। दुर्गा दास की अध्यक्षता में राजपूतों के पहुँचने और शाहजादे के बादशाही की गद्दी पर बैठकर उन बादशाही नौकरों को, जो उससे मिल गए थे, पदवी बाँटने और मनसब बढ़ाने का एक बार ही कुल समाचार दरबार में पहुचा। बादशाह कुली खाँ को जो इस विद्रोह तथा कुमार्ग का प्रदर्शक था, अमीरुल् उमरा की पदवी और सात हजारी मनसब मिला। उसने कुछ को विरोधी समझ कर, जैसे मुहतशिम खाँ और मामूर खाँ, कैद कर दिया। यह भी समाचार मिला कि शाहजादा सत्तर सहस्र सवारों के साथ युद्ध के लिए आ रहा है। इस समय बादशाही सेना विद्रोहियों तथा दुष्टों को दंड देने के लिए भेजी जा चुकी थी। ऐसा कहा जाता है कि बादशाह के साथ ख्वाजा-सरा, दफ्तरवाले आदि भी सब ८०० सौ सवार नहीं थे पर मआसिर आलमगीरी में लिखा है कि बादशाह के सेवकों की संख्या दस सहस्र सवार से अधिक न थी। एकाएक इस घटना से पड़ाववालों में विचित्र भय और आशंका फैल गई। उसी समय मीर आतिश को सेना के चारों ओर तोपखाने लगाने की आज्ञा हुई और शाह आलम को आज्ञा पत्र भेजा गया कि शीघ्रता से यहा चला आवे। औरंगजेब ने स्वयं दो बार यह कहा था कि बहादुर ने अवसर अच्छा पाया है, देर क्यों करता है। बादशाह अजमेर से निकलकर देवराय मौजे में आकर ठहर गया था। जब शाह आलम दस सहस्र सवारों के साथ पास पहुँचा तब समय देखकर रक्षा के बिचार से तोपखाने का मुँह उसकी ओर घुमवाकर आज्ञा भेजी कि वह अपने दो पुत्रों के

साथ तुरंत सेवा में आवे। जब सोलह हजार सवार एकत्र हो गए तब सेना का व्यूह ठीक किया गया। इसी समय बहुत से सरदार, जैसे दिलेर खाँ का पुत्र कमालुद्दीन खाँ, फीरोज जंग का भाई मुजाहिद खाँ, शत्रु की सेना में से हटकर बादशाही सेना में आ मिले। यहाँ तक कि ५ मुहर्रम सन् १०९२ हि० को एक पहर से अधिक रात्रि बीतने पर बादशाह को समाचार मिला कि बादशाह कुली खाँ अकबर की सेना से कुदशा में दरबार में आया है। तब गुसुलखाने के दारोगा लुत्फुल्ला खाँ को आज्ञा हुई कि उसे निश्शस्त्र लिवा लाओ। उस मृत्युग्रस्त ने, जिसका कुविचार स्पष्टतः ज्ञात हो रहा था, गुसुलखाने की डेवढ़ी पर पहुँचते ही शस्त्र देने में यहाँ तक हठ किया कि अंत में लुत्फुल्ला खाँ ने बादशाह से जाकर प्रार्थना की कि वह कहता है कि मैं खानाजाद हूँ, कभी बिना शस्त्र के सामने नहीं गया हूँ। आज्ञा दी कि शस्त्र सहित लिवा लाओ। जबतक लुत्फुल्ला खाँ लौटकर आवे तबतक इसका होश ठिकाने आ गया और चाहा कि बाहर चल दे पर राजद्रोह उसके पाँव की बेड़ी हो गई। ज्यों ही इसने गुसुलखाने के कनात के बाहर पैर रखा कि अर्दली के आदमियों तथा चेलों ने इसपर आक्रमण किया। यह वस्त्र के नीचे कवच पहिरे हुये था, इसलिए घावों का असर कम हुआ परंतु एक चोट उसके गले पर ऐसी पहुँची, जिससे वह ठंढा हो गया। कहते हैं कि जब यह शस्त्र न देने पर दृढ़ रहा और यह प्रार्थना की गई कि शाहजादा अकबर की सम्मति से यह दुष्ट विचार के साथ आया है तब बादशाह ने क्रुद्ध होकर तथा हाथ में तलवार लेकर कहा कि रोको मत और शस्त्र सहित आने दो। इसी समय पह-

लवानों में से एक ने उस मृत्युग्रस्त की छाती पर छड़ी से मारकर इसे रोका। यह उसके मुख पर एक तमाचा जड़कर लौटा पर दैव योग से इसका पैर खूँटे से ठोकर खा गया और यह गिर पड़ा। हर तरफ से मारो मारो का शोर मचा और लोगों ने उसका सिर काट लिया। यह भी कहते हैं कि शाह आलम ने उसे मारने का संकेत कर दिया था। यद्यपि कवच पहिनने के कारण लोगों ने शंका कर ली थी कि यह दुर्विचार से आया था पर खवाफी खाँ ने अपने इतिहास में ख्वाजा मकारम जान निसार खाँ से, जो शाह आलम का उस समय विश्वासी नौकर तथा पुराना कर्मचारी था और अकबर की पीछे की सेना से युद्ध कर घायल हुआ था, सुनी हुई बात लिखी है कि अपनी स्त्री के पिता इनायत खाँ के लिखने पढ़ने से औरंगजेब की सेवा में चला आया था, नहीं तो बादशाह कुली खाँ के आने का दूसरा कोई कारण नहीं था। विश्वास की कमी या लज्जा ने उसे दबा लिया था, जिससे हथियार न देने में उसने मूर्खता की। शाहजादा अकबर की सेना में, जो बादशाही पड़ाव से डेढ़ कोस पर थी, झगड़ा हो गया। आधीरात के समय परिवार, पुत्र और सामान को छोड़कर वह भाग गया। जनता में यह प्रसिद्ध हुआ कि बादशाह ने इस उपाय से एक आज्ञा पत्र महम्मद अकबर को लिख भेजा कि यद्यपि तुमने आज्ञा के अनुसार इन उजड्ड राजपूतों को बहकाकर सेना के पीछे भाग में नियत किया है पर अब चाहिए कि उन्हें हरावल में नियत करो, जिसमें दोनों ओर के तीरों के बीच में रहें। जब यह आज्ञापत्र राजपूतों के हाथ में पड़ा तब वे घबड़ाकर अलग हो गए।

इसके अनंतर शाहआलम पीछा करने पर नियत हुआ और बहुत लोगों को, जो जबरदस्ती विद्रोहियों के साथ हो गए थे, स्थान स्थान पर नियत किया। काजी खूबुल्ला महम्मद आकिल और मीर गुलाम महम्मद अमरोहवी को, जिन्होंने समय के बादशाह के विरुद्ध आक्रमण करने के पत्र पर हस्ताक्षर किया था, शिकंजे में खींचकर और बेड़ा पहिराकर गढ़ पथर्ला में भेज दिया। यद्यपि बादशाह कुली खाँ विद्रोही कहा गया था पर उसके भाई तथा संतान पर खानजादा होने के कारण कृपा बनी रही। उसके भाई फाजिल बेग को २६वें वर्ष में बहादुर खा की पदवी मिली और हिम्मत खाँ बहादुर के साथ बीजापुर के घेरे में नियत हुआ। इसके पुत्र असदुद्दीन अहमद को बहादुर शाह के समय खाँ की पदवी मिली। फर्रुखसियर के राज्य के ३ रे वर्ष में यह अहमद नगर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। यह बड़ा घमंडी था और इसपर दूसरे प्रकार का दोष भी लगाया गया था।

बाबा खाँ काकशाल

अकबर के राज्य काल में काकशाल सरदारों में मजनू खाँ के बाद यही मुखिया था। खान जमाँ के युद्ध में इसने बड़ी वीरता और साहस दिखलाया था। १७ वें वर्ष सन् ९८० हि० में गुजरात की पहिली चढ़ाई में शहबाज खाँ मीर तुजुक को प्रबंध का कार्य मिला था। उस तुर्क ने अयोग्यता और घमंड से बिना समझे इसके साथ कठोरता का बर्ताव किया। बादशाह ने इसे दंड देने और कुमार्गियों को ठीक करने के लिए भारी चढ़ाई की। उस समय यह अपनी स्वामिभक्ति से बादशाह का कृपापात्र हुआ। बंगाल की चढ़ाई के अनंतर मजनू खाँ काकशाल के मरने पर यद्यपि उसका पुत्र जब्बारी बेग इनका सरदार हुआ पर बाबा खाँ इस समूह का मुखिया रहा। इन काकशालों को घोड़ाघाट जागीर में मिला था। जब कि दाग की प्रथा बादशाह ने आरंभ किया तब मुतसद्दियों ने, जो दुश्शील लालची और बेपरवाह थे, इस कार्य को पूरा करने में बड़ी कड़ाई की। इस पर बाबा खाँ ने बंगाल के प्रान्ताध्यक्ष मुजफ्फर खाँ से कहा कि सत्तर हजार रुपया भेंट की तरह इन कर्मचारियों को छोड़ चुका हूँ पर अबतक सौ सवार भी दाग न करा चुके और कुछ प्रयत्न नहीं हो रहा है। इसी समय २४ वें वर्ष में मासूम खाँ काबुली ने बिहार के कुछ जागीरदारों के साथ बलवा किया। बाबा खाँ ने भी अवसर पाकर बंगाल के कुछ जागीरदारों के साथ विद्रोह में उसका

साथ दिया। सन् ९८६ हि० में ग़ालदी खाँ के साथ सिरों को काट कर गौड़ नगर में आया, जो पहिले लखनौती के नाम से प्रसिद्ध था और शाही सेना से युद्ध कर हर बार असफल रहा। अंत में क्षमा याचना की। मुजफ्फर खाँ ने बिहार प्रान्त के इस बलवे को सुनकर भी घमंड के मारे इसका प्रबंध नहीं किया। एक बार मासूम खाँ दूसरे बलवाइयों के साथ शाही सेना के आते आते बिहार प्रांत से निकल कर बंगाल के बलवाइयों के पास पहुँचा। ये दोनों दल एकट्ठे होकर लूट मार करने लगे। अंत में २५ वें वर्ष में मुजफ्फर खाँ को, जो टाँडा में घिर गया था, पकड़कर मार डाला। इस प्रकार थोड़े समय में सफलता मिल जाने और इच्छा पूरी हो जाने से उस प्रांत को बाँटने और मनसब तथा पदवी लेने में वे लग गए। बाबा खाँ ने खानखानाँ की पदवी धारण कर बंगाल का शासन अपने हाथ में ले लिया पर उसी वर्ष ठीक विजय के समय बालखोरे की बीमारी से ग्रस्त हो गया। प्रति दिन दो सेर मांस उस स्थान पर रखकर जानवरों को खिलाता और कहता था कि स्वामिद्रोह के कारण मेरा यह हाल हुआ। इसी हालत में वह मर गया।

———

बालजू कुलीज शमशेर खाँ

यह कुलीज खाँ जानी कुर्बानी का भतीजा और दामाद था। जहाँगीर के ८ वें वर्ष में इसका मनसब बढ़कर एक हजारी ७०० सवार का हो गया। ९वें वर्ष में दो हजारी १२०० सवार का मनसब पाकर बंगाल प्रांत में नियत हुआ। इसके बाद बहुत दिनों तक काबुल प्रांत में रहकर शाहजहाँ के प्रथम वर्ष में इसने दो हजारी १५०० सवार का मनसब पाया। जहाँगीर की मृत्यु पर जब बल्ख के शासक नजर मुहम्मद खाँ ने अपनी सेना के साथ काबुल के पास आकर युद्ध आरंभ किया और नगर में रहनेवाले शाही आदमियों को धमकी का संदेश भेजा तब इन सबने राजभक्ति के कारण उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया। इन्हींमें बालजू[1] कुलीज भी था, जिसकी स्वामिभक्ति बादशाह पर विशेष रूप से प्रगट हुई। दूसरे वर्ष प्रांताध्यक्ष लशकर खाँ के संकेत पर यह सेना के साथ जोहाक और बामियान पर गया। उजबक लोग भय से दुर्गों को छोड़कर भाग गए। तीसरे वर्ष सईद खाँ के साथ कमालुद्दीन रुहेला को दंड देने में इसने प्रसिद्धि प्राप्त की, जो रुकनुद्दीन का पुत्र था, जिसे जहाँगीर के समय चार हजारी मनसब मिला था और जिसने बाद में उस ओर उपद्रव मचा रखा था।[2] इसको पुरस्कार

१. बादशाहनामा में बालचू या बालखू नाम दिया है।

२. पेशावर प्रांत से तात्पर्य है।

में दो हजार पाँच सदी १६०० सवार का मनसब और शमशेर खाँ की पदवी मिली। ४ थे वर्ष में यह दोनों बंगश का थानेदार नियत हुआ और मनसब बढ़कर तीन हजारी २५०० सवार का हो गया। ५ वें वर्ष सन् १०४१ हि० (सन् १६३२ ई०) में यह मर गया। इसके पुत्र हसन खाँ का आठ सदी ३०० सवार का मनसब था। इसके भाई अली कुली को नौसदी ४५० सवार का मनसब मिला था पर वह शाहजहाँ के १७ वें वर्ष में मर गया।

बुजुर्ग उम्मेद खाँ

यह शायस्ता खाँ का पुत्र था। यह औरंगजेब के राज्य के आरंभ में योग्य मनसब पाकर अपने पिता के साथ सुलेमान शिकोह का मार्ग रोकने के लिए नियत हुआ, जो गंगा नदी पारकर दाराशिकोह से मिलना चाहता था। इसके अनंतर खाँ की पदवी पाकर राज्य के प्रथम वर्ष में यह अपने पिता के साथ राजधानी से आकर सेवा में उपस्थित हुआ, जब बादशाही सेना शुजाअ के पराजय के अनंतर दाराशिकोह का सामना करने के लिए अजमेर जा रही थी। ७ वें वर्ष इसका मनसब एक हजारी ४०० सवार का हो गया। ८ वें वर्ष में जब इसके प्रयत्न से चटगाँव बंदर विजय हो गया तब इसका मनसब बढ़कर डेढ़ हजारी ६०० सवार का हो गया। चटगाँव अराकान के जमींदार के राज्य की सीमा पर है, जो मघ जाति का था। उक्त जमींदार के मनुष्य बराबर अवसर पाते ही बादशाही राज्य में आते थे और लूटमार कर लौट जाते थे। विजय होने पर चटगाँव बंगाल प्रांत में मिला दिया गया। ३६ वें वर्ष में खानजहाँ बहादुर कोकलताश के पुत्र हिम्मत खाँ के स्थान पर यह इलाहाबाद का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ और इसके अनंतर बिहार का सूबेदार हुआ। ३८ वें वर्ष में सन् ११०५ हि० सन् १६६४ ई० में इसकी मृत्यु हो गई। कहते हैं कि यह बड़े ऊँचे दिमाग का था। मूसवी खाँ मिर्जा मुइज्ज[1]

---

१. इसी पुस्तक में इसका परिचय आगे दिया गया है।

उपनाम फितरत, जो शाह नवाज खाँ सफवी का जामाता और विद्वान तथा सहृदय कवि था, इसकी सूबेदारी के समय बिहार का दीवान नियत हुआ था। पहिली भेंट के दिन सूबेदार के मकान के बरामदे में 'एक छोटे हौज़ में' जिसमें पानी बह रहा था, मिर्जा ने बिना समझे—अपना हाथ डालकर दो बार हाथ मुँह धोया। इस कार्य पर बुजुर्ग उम्मेद खाँ ने खफा होकर दरबार को शिकायत लिख भेजी और इसे प्रसन्न करने के लिये मिर्जा वहाँ की दीवानी से हटा दिया गया।

———

बुर्हानुल्मुल्क सआदत खाँ

इसका नाम मीर मुहम्मद अमीन था और यह नैशापुर के मूसवी सैयदों में से था। आरंभ में यह मुहम्मद फर्रुखसियर का वालाशाही एक हजारी मनसबदार नियत हुआ। बादशाह की राजगद्दी के अनंतर मुहम्मद जाफर की प्रार्थना पर, जो उस राज्य में तकर्रुब खाँ की पदवी से खानसामाँ के पद पर नियत था और राज्य के आरंभ में अकाल पड़ने पर बाजार का करोड़ी भी हो गया था, उसका नायब करोड़ी नियत हुआ। इसके बाद आगरा प्रांत के अंतर्गत हिंदून बयाना का फौजदार नियुक्त हुआ, जो विद्रोहियों का स्थान था। इसने विद्रोहियों और दुष्टों को दमन करने में बहुत प्रयत्न किया, जिससे इसका पाँच सदी मनसब बढ़ गया। जब आगरे के पास मुहम्मद शाह की सेना ने पड़ाव डाला तब यह अच्छी सेना के साथ उससे जा मिला। यह हुसेन अलीखाँ के मारने के षड्यंत्र में मुहम्मद अमीन खाँ बहादुर का साथी था और उस कार्य में सफल होने पर सैयद गैरत खाँ बारहा तथा हुसेन अली खाँ के अन्य मित्रों के बलवा पर इसने उनपर आक्रमण करने में बहुत प्रयत्न किया। इसके पुरस्कार में इसका मनसब बढ़कर पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया और इसे बहादुर की पदवी और झंडा तथा डंका मिला। इसके अनंतर मुहम्मद शाह तथा सुलतान रफीउश्शान के पुत्र मुहम्मद इब्राहीम के युद्ध में, जिसे हुसेन अलीखाँ के मारे

जाने पर उसके बड़े भाई सैयद कुतुबुल् मुल्क ने बादशाह बनाया था, इसने सेना के बाएँ भाग का अध्यक्ष होकर बड़ी वीरता दिखलाई। विजय के उपरांत इसका मनसब बढ़कर सात हजारी ७००० सवार का हो गया और इसे बुर्हानुल् मुल्क बहादुर बहादुर जंग की पदवी मिली तथा राजधानी आगरा का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। जब चूड़ामन जाट, जो सैयदों का बढ़ाया हुआ था, इस युद्ध में बादशाही सेना के बहादुरों द्वारा मारा गया और उसके पुत्रगण अपने राज्य के दुर्गों को दृढ़ करके विद्रोह मचाने लगे तब इसने उन्हें दमन करने पर नियत होकर कोई उपाय उठा नहीं रखा पर घने जंगलों और रक्षा के दृढ़ स्थानों के कारण यह जैसा चाहिए सफल न हो सका। तब उक्त सूबेदारी से हटाया जाकर शाही तोपखाने का दारोगा नियत हुआ और इसके साथ अवध प्रांत का सूबेदार भी नियत हुआ, जिसके लिए दैनिक वेतन था (जिसकी नियुक्ति में शक्ति की आवश्यकता थी)। उस प्रांत में बहुत सेना तथा तोपखाना रखने के कारण और विद्रोही दुष्टों के मारने तथा कैद करने में अच्छी ख्याति पाई। मुहम्मद शाह के २१ वें वर्ष में सन् ११५१ हि०, सन् १७३६ ई०, में जब नादिर शाह हिंदुस्तान में आया और बादशाह उसका सामना करने के लिए करनाल तक गए, तब यह पीछे रह गया था। लम्बी लम्बी यात्रायें कर यह पास पहुँच गया। पर इसी कारण इसका तथा सेना का सामान पीछे मार्ग में रह गया और इस बात का समाचार पाकर ईरानी सेना ने उस पर धावा कर दिया। इस चढ़ाई का वृत्तांत सुनते ही बादशाह के तथा अपने सम्मति दाताओं के मना करने पर भी बुर्हानुल् मुल्क जल्दीकर जो सेना तैयार थी उसी

को लेकर युद्ध के लिए चल दिया। शत्रु लौट गए और यह पीछा करता हुआ एक मैदान आगे बढ़ गया। इसके बाद शत्रु अन्य सेना से मिलकर लौटे और युद्ध में यह घायल हुआ। दैवयोग से बुर्हानुल् मुल्क के भतीजे निसार महम्मद खाँ शेर जंग का हाथी मस्त था और उसने बुर्हानुल् मुल्क के हाथी पर आक्रमण कर उसे कजिलबाश सेना में पहुँचा दिया। उसे रोकना संभव नहीं था, इसलिए बर्हानुल् मुल्क कैद हो गया। इसके अनंतर सांसारिक प्रथा के अनुसार अपने बादशाह की निर्बलता नादिर शाह के मनमें बैठा दी और उससे वचन-बद्ध हुआ कि राजधानी दिल्ली से वह बहुत धन दिलावेगा। इसके बाद मुहम्मद शाह और नादिर-शाह में संधि हो गई तब नादिरशाह ने बुर्हानुल् मुल्क को आज्ञा दी कि वह तहमास्प खाँ जलायर के साथ दिल्ली जाय। इस पर इसने दिल्ली पहुँच कर नादिर शाह के लिए शाही दुर्ग में स्थान ठीक किया। ६ जीहिज्जा सन् ११५१ हि०, १० मार्च सन् १७३६ ई० की रात्रि को यह उन घावों के कारण मर गया। वास्तव में यह एक कर्मठ सरदार था और साहस तथा प्रजापालन में एक सा था। इसे पुत्र न थे। इसकी पुत्री अबुल् मंसूर खाँ[1] को ब्याही थी, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है।

———

१. इसकी जीवनी मुग़ल दरबार भाग २, पृ० ८७-८६ पर दी हुई है।

बेबदल खाँ सईदाई गीलानी

यह अच्छी कविता करता था। जहाँगीर के समय हिंदुस्तान आकर बादशाही सेवकों में भर्ती हो गया और कवियों के समूह में इसका नाम लिखा गया। शाहजहाँ के समय में इसे बुद्धिमानी तथा योग्यता के कारण बेबदल खाँ की पदवी मिली और बहुत दिनों तक यह जवाहिरखाने का दरोगा रहा। इसी के प्रबंध में तख्त ताऊस नामक जड़ाऊ सिंहासन सात वर्ष में एक करोड़ रुपये व्यय कर बना था, जो तीन सौ तैंतीस हजार एराकी तूमान और मावरुन्नहर के चार करोड़ खानी सिक्कों के बराबर था। इस कार्य के पुरस्कार में इसको इसी के तौल के बराबर सोना मिला। वास्तव में ऐसा बहुमूल्य और सुंदर सिंहासन कभी किसी समय किसी अन्य देश में नहीं देखा गया था और आज भी कहीं उसका जोड़ नहीं मिलता। शेर—

इसका जोड़ देखने में नहीं आता यद्यपि हरओर देखा गया।

बहुत दिनों में बहुत तरह के रत्न बादशाही जवाहिर खाने में एकत्र हो गये थे, इसलिए शाहजहाँ के हृदय में अपने राज्य के आरंभ में यह विचार उत्पन्न हुआ कि ऐसे अमूल्य रत्नों का संचय बादशाहत के वैभव को प्रदर्शित करने के लिए है, इसलिये ऐसा करना चाहिए कि जिसमें समुद्रों तथा खानों की इन उपजों के सौंदर्य को दर्शकगण देख सकें और साम्राज्य को नई शोभा प्राप्त हो। महल के भीतर के खास रत्नों को छोड़कर, जो दो

करोड़ रुपये के मूल्य के थे, जवाहिर खाने से, जिसमें तीन करोड़ रुपये के रत्न संचित थे, छियासी लाख रुपये के रत्न चुनकर बेबदल खाँ को सौंपे गए कि वह एक लाख तोला खरा सोना का, जो पचीस हजार मिसकाल तौल में होता है और जिसका मूल्य चौदह लाख रुपया है, तीन गज लंबा, ढाई गज चौड़ा और पाँच गज ऊँचा सिंहासन तैयार करावे। छत का भीतरी भाग मीना-कारी और कुछ रत्नों से बने पर बाहरी भाग लाल व हीरा से जड़ा रहे। यह छत पन्ने से जड़े हुए बारह खंभों पर खड़ी की जाय। इस छत के ऊपर दो मोर जड़ाऊ रहें और उनके बीच एक वृक्ष हो, जिसमें लाल, हीरे, पन्ने, मोती जड़े हों। इस सिंहा-सन पर चढ़ने के लिए तीन सीढ़ियाँ कमानीदार रत्नों से जड़ी हुई बनाई गई थीं। कुल ग्यारह जड़ाऊ तख्ते तकिए के तौर पर चारो ओर लगे हुए थे। इनमें से मध्य का जिसपर बादशाह हाथ अड़ाकर बैठते थे, दस लाख रुपये मूल्य का था। इसमें केवल एक लाल एक लाख रुपये का जड़ा हुआ था, जिसे शाह अब्बास सफवी ने जहाँगीर को उपहार में भेजा था और जिसे उसने दक्षिण के विजय के उपलक्ष में शाहजहाँ को भेज दिया था। पहिले इसपर अमीर तैमूर, मिर्जा शाहरुख और मिर्जा उलुग बेग का नाम खुदा था। इसके अनंतर समय के फेर से जब यह शाह के हाथ में आया तब उसने अपना नाम भी खुदा दिया था। जहाँगीर ने अपना और अकबर का नाम भी खुदवा दिया। इसके अनंतर शाहजहाँ ने भी उसपर अपना नाम अंकित कराया। ८ वें वर्ष में तीन शव्वाल सन् १०४४ हि० को नौरोज के उत्सव पर बादशाह सिंहासन पर बैठे। हाजी मुहम्मद खाँ कुदसी

ने औरंगेशाहनशाह आदिल' (न्यायी बादशाह का सिंहासन) में तारीख निकाली और प्रशंसा में एक मसनवी कहा जिसका एक शैर इस प्रकार है। शैर का अर्थ—

यदि आकाश सिंहासन के पाए तक अपने को पहुँचावे,
तो मुह दिखाई में सूर्य्य और चंद्रमा को देवे।

बेबदल खाँ ने भी एक सौ चौंतीस शैर कहे, जिसमें बारह शैर के हर मिस्रे से बादशाह के जन्म का, इसके बाद बत्तीस शैरों के हर मिस्रे से राज्यगद्दी का और बचे हुए नब्बे शैरों के हर मिस्रे से आगरा से कशमीर जाने की, जो सन् १०४३ हि० में हुई थी, आगरे लौटने की और तख्त ताऊस पर बैठने की तारीखें निकलती थीं। इसकी यह रुबाई प्रसिद्ध है। रुबाई—

तेरा यह सिंहासन आकाश सा उच्च है।
तेरा न्याय संसार की शोभा है॥
जब तक खुदा है तब तक तूभी है।
क्योंकि जहाँ वस्तु है वहाँ छाया भी है॥

औरंगजेब के राज्य के आरंभ में शाही आज्ञा से अमीना के प्रबंध में तख्त ताऊस की शोभा और बढ़ाई गई जिससे एक करोड़ रुपए से अधिक मूल्य बढ़ गया। सन् ११५२ हि० में जब नादिर-शाह दिल्ली आया तब वह तख्त ताऊस को तत्कालीन बादशाह से छीनकर हिंदुस्तान के लूट में ले गया।

———

बेगलर खाँ

इसका नाम सादुल्ला खाँ था और यह अकबर के समय के सईद खाँ चगत्ताई का पुत्र था। यह एक सरदार का पुत्र होने के कारण अच्छी अवस्था में था। यह अपने सौंदर्य, अच्छी चाल और मीठी बोलचाल के लिए प्रसिद्ध था। चौगान खेलने और सैनिक गुणों में अपने साथ वालों से आगे बढ़ गया था। अपने पिता के जीवन काल ही में यह योग्यता तथा विश्वस्तता में नाम कमा चुका था। ४६ वें वर्ष में अकबर ने मिर्जा अजीज कोका की पुत्री से इसका विवाह कर दिया। यह ऊँचे दिमाग वाला था और जलूस वगैरह में शाहजादों के समान नियम आदि का पालन करता था। यह यश लोलुप था। जब इसका पिता मरा तब छोटे मनसब पर होते भी इसने पिता के अच्छे नौकरों को नहीं छुड़ाया और जहाँगीर के राज्य के आरंभ में इसे नवाजिश खाँ की पदवी मिली। ८ वें वर्ष सन १०२२ हि० में जब जहाँगीर अजमेर में ठहरा हुआ था और राणा की चढ़ाई पर, जो बहुत दिनों से चली आ रही थी, शाहजहाँ को नियत करना उचित समझा गया तब वह भारी सेना के साथ भेजा गया। बेगलर खाँ भी उसके साथ गया। जब राणा के निवास स्थान उदयपुर पर अधिकार हो गया तब नवाजिश खाँ कुछ सरदारों के साथ कुम्भलमेर भेजा गया, जो पहाड़ी स्थान में है और जहाँ अन्न

इतना महँगा हो गया था कि एक रुपये का एक सेर भी नहीं मिलता था। बहुत से लोग भूखों मर गए। उक्त खाँ उदारता और साहस से सौ आदमियों के साथ नित्य भोजन करता था। नगद न रहने पर सोने चाँदी के बर्तन बेंचकर अपना व्यय चलाता रहा। जब जहाँगीर और शाहजादा शाहजहाँ में वैमनस्य पैदा हो गया और प्रेम के स्थान पर मनमें मालिन्य आ गया तथा दोनों ओर से युद्ध की तैयारी हुई तब बादशाह लाहौर से थोड़ी सेना के साथ दिल्ली की ओर चला कि भारी सेना एकत्र करे। नवाजिश खाँ गुजरात प्रांत के अंतर्गत अपनी जागीर से फुर्ती के साथ दरबार पहुँचा। ऐसे समय स्वामिभक्ति तथा विश्वास की परीक्षा होती है और इसी कारण इसकी प्रशंसा हुई तथा इस पर कृपाएँ हुईं। यह अब्दुल्ला खाँ के साथ नियत हुआ, जो हरावल का अध्यक्ष था। जिस समय शाही सेना और शाहजादे की सेना में सामना हुआ अब्दुल्ला खाँ गुप्त प्रतिज्ञा के अनुसार शाहजादे की सेना में जा मिला। नवाजिश खाँ इस बात से अनभिज्ञ होने के कारण यह समझा कि यह धावा युद्ध के लिए है। इस लिए यह कुछ सरदारों तथा सैनिकों के साथ खूब लड़ा और वीरता तथा साहस के लिए इसने नाम पैदा किया। इसपर शाही कृपा बढ़ती गई और यह बेगलर खाँ की पदवी, सरकार सोरठ और जूनागढ़ की फौजदारी तथा जागीर और दो हजारी २५०० सवार का मनसब पाकर सम्मानित हुआ। इसने बहुत दिनों तक उस प्रांत में विश्वास तथा सम्मान के साथ बिताया। शाहजहाँ की राजगद्दी पर इसका मनसब एक हजारी बढ़ा पर उसी वर्ष उस स्थान से यह हटाया गया और ३ रे वर्ष सन् १०३९ हि०

(सन् १६३० ई०) में मर गया। सरहिंद में अपने पिता की कब्र के पास गाड़ा गया। इसके बाद इसके वंश वालों में से किसी ने उन्नति नहीं की।

बैराम खाँ खानखानाँ

इसका संबंध अलीशुक्र बेग भारलू तक पहुँचता है, जो कराकवीलू तुर्कमान जाति का एक सरदार था। इसके राज्य के उन्नति-काल में अर्थात् करा यूसुफ और उसके पुत्रों करा सिकंदर तथा मिर्जा जहाँशाह के समय में जब राज्य-विस्तार इराक, अरब और आजर बईजान् तक था तब अलीशुक्र बेग को हमदान, दैनूर और कुर्दिस्तान प्रांत जागीर में मिला था। अबतक वह प्रांत अलीशुक्र के नाम से मशहूर है। इसका पुत्र पीर अलीबेग बादशाह हसन आका कवीलू के समय, जो करा कवीलू को दमन करने आया था, शादमान दुर्ग आकर सुलतान महमूद मिर्जा के यहाँ कुछ दिन व्यतीत करने पर फारस चला गया और शीराज के अध्यक्ष से युद्ध कर परास्त हुआ। इसी समय यह सुलतान हुसेन मिर्जा के सरदारों के हाथ मारा गया। इसके अनंतर इसका पुत्र यारबेग शाह इस्माइल सफवी के समय एराक से बदख्शाँ आकर वहीं बस गया। वहाँ से अमीर खुसरू शाह के पास कंदज गया। इस राज्य का अंत होनेपर अपने पुत्र सैफ अली बेग के साथ, जो बैराम खाँ का पिता था, बाबर बादशाह का सेवक हो गया। बैराम खाँ बदख्शाँ में पैदा हुआ और पिता की मृत्यु पर बलख जाकर विद्या प्राप्त किया। सोलहवें वर्ष में हुमायूँ की सेवा में आकर बराबर उसका अधिकाधिक कृपापात्र होता गया, जिससे यह थोड़े समय में मुसाहब और सरदार

हो गया। कन्नौज के उपद्रव में बहुत प्रयत्न करके यह संभल की ओर गया और वहाँ के एक विश्वस्त भूम्याधिकारी राजा मित्र-सेन के यहाँ सहायता पाने की इच्छा से लखनौर बस्ती को चला। जब यह समाचार शेर खाँ को मिला तब उसने इसे बुला भेजा। यह मालवा होकर उसके पास पहुँचा। शेर खाँ ने उठकर इसका स्वागत किया और मीठी मीठी बातें करके इसे मिलाना चाहा पर शील रखनेवाला धोखा नहीं देता। बैराम खाँ ने उत्तर दिया कि जो सच्चे हैं वे कभी किसी को धोखा नहीं देते। यह बुरहानपुर के पास से ग्वालियर के अध्यक्ष अबुल् कासिम के साथ बड़ी घबड़ाहट से गुजरात की ओर रवाना हुआ। मार्ग में शेर खाँ का दूत, जो गुजरात से आ रहा था, यह वृत्तांत जानकर आदमी भेजे, जिन्होंने अबुल् कासिम को दोनों में सूरत शकल में अच्छा पाकर पकड़ लिया। बैराम खाँ ने उदारता और वीरता से कहा कि बैराम खाँ मैं हूँ। अबुल् कासिम ने भी बहादुरी से कहा कि यह मेरा सेवक है और चाहता है कि मुझ पर निछावर हो जाय। इसपर उन्होंने इसे नहीं पकड़ा। इस प्रकार बैराम खाँ छुट्टी पाकर सुलतान महमूद के पास गुजरात पहुँचा। अबुल् कासिम भी बाद को न पहचाने जाने से छोड़ दिया गया। शेर खाँ ने कई बार कहा था कि उसी समय, जब बैराम खाँ ने कहा कि जो शील रखता है धोखा नहीं देता, हमने समझ लिया था कि वह हमसे नहीं मिलेगा। सुलतान महमूद गुजराती ने भी उसकी मित्रता चाही पर बैराम खाँ ने स्वीकार नहीं किया और हिजाज की यात्रा को विदा होकर सूरत आया और वहाँ से हरिद्वार होते हुए हुमायूँ की सेवा में पहुँचने के बिचार

से सिंध की ओर चल दिया। ७ मुहर्रम सन् ९५० हि० (१२ अप्रैल सन् १५४३ ई०) को उस समय, जब बादशाह मालदेव के राज्य से लौटकर सिंध नदी के तटस्थ जून बस्ती में, जो बागों तथा नहरों की अधिकता के लिये उधर की बस्तियों में प्रसिद्ध था, ठहरे हुए थे, बैराम खाँ सेवा में पहुँचकर कृपापात्र हुआ। दैवयोग से जिस दिन यह पहुँचा था उस समय सेवा में उपस्थित होने के पहिले यह उस मैदान में पहुँचा, जहाँ बादशाही सेना अरगूनियों से लड़ रही थी। बैराम खाँ भी युद्ध के लिये तैयार होकर बड़ी बहादुरी से लड़ने लगा। शाही सेना आश्चर्य में थी कि यह गैबी सहायता है पर जब मालूम हुआ कि वह बैराम खाँ है तब यह हैरानी मिट गई। इराक की यात्रा में यह स्वामिभक्त सेवकों में एक था। इराक के शाह ने भी इसकी बुद्धिमत्ता और योग्यता को खूब पसंद किया। हुमायूँ बादशाह की प्रसन्नता के लिये शाह कभी महफिल सजाता और कभी शिकार का प्रबंध करता था। एक दिन चौगान खेलते हुए और तीर चलाते समय इसको खाँ की पदवी दी। इराक से लौटने पर शाह का उपदेशमय पत्र और हुमायूँ का फर-मान लेकर यह मिर्जा कामराँ के पास गया। इसने विचार किया कि मिर्जा बैठा होगा, उस समय यह दोनों पत्र देना उचित नहीं है क्योंकि मिर्जा का अभ्युत्थान देना संभव नहीं। तब यह एक कुरान हाथ में भेंट देने के लिए लेता गया। मिर्जा उसकी प्रतिष्ठा के लिये खड़ा हुआ तब इसने दोनों पत्र दे दिए। जब हुमायूँ ने कंधार के विजय के बाद प्रतिज्ञा के अनुसार उसे कजिलबाशियों को सौंपकर काबुल लेने का विचार दृढ़ किया तब अपने परिवार की रक्षा के लिये प्रबंध करना भी अवश्यक हुआ। इस पर दुर्ग

को बलात् लेकर बैराम खाँ को सौंप दिया और शाह को क्षमापत्र लिखा कि बैराम खाँ दोनों ओर का सेवक है इसलिये उसी को सौंप दिया है। जब सन् ९६१ हि० में कुछ दुष्टों ने बैराम खाँ के विरुद्ध कुछ अनुचित बातें बादशाह से कहीं तब वह स्वयं कंधार आया। यहाँ मालूम हुआ कि वह सब झूठ था तब इस पर कृपा किया। इसने हिंदुस्तान की चढ़ाई में अच्छे सरदारों और वीरों के साथ बड़ी वीरता दिखलाकर कई विजय प्राप्त किया। इन सब में विशिष्ट माछीवाड़ा युद्ध था, जिसमें थोड़ी सेना के साथ बहुत से अफगानों से युद्ध कर इसने विजय प्राप्त किया था। इसे सर-हिंद आदि परगने जागीर में मिले और यार वफादार बिरादर निकोसियर और फरजंद सआदतमंद की ऊँची पदवियाँ पाकर यह सम्मानित हुआ। सन् ९६३ हि० में यह शाहजादा अकबर का अभिभावक नियत होकर सिकंदर खाँ सूर को दंड देने के लिये और पंजाब प्रांत का प्रबंध करने के लिए नियुक्त हुआ। इसी वर्ष २ रबीउल् आखिर शुक्रवार को जब अकबर पंजाब के अंतर्गत कला-नौर में गद्दी पर बैठा तब बैराम खाँ प्रधान मंत्री हुआ और साम्राज्य का कुल प्रबंध इसी के हाथ में आया। इसको खानखानाँ का ऊँचा पद मिला और यह खान बाबा के नाम से पुकारा जाता था। सन् ९६५ हि० में इसका सलीमा सुलतान बेगम से निकाह हुआ, क्योंकि हुमायूँ ने अपने जीवन में ऐसा निश्चय कर दिया था। वह मिर्जा नूरुद्दीन की पुत्री और हुमायूँ की भाँजी थी। मिर्जा नूरुद्दीन अलाउद्दीन का पुत्र और ख्वाजा हुसेन का पौत्र था, जो चगानियान के ख्वाजाजादों के नाम से मशहूर थे। वह ख्वाजा हसन का भतीजा था। ये लोग ख्वाजा अलाउद्दीन के लड़के थे,

जो नक्श बंदी ख्वाजों का सरदार था। शाह बेगम की पुत्री, जो बैराम खाँ के प्रपितामह अलीशकर बेग की लड़की थी और सुलतान अबू सईद के पुत्र सुलतान महमूद के घर में थी, ख्वाजा के लड़के को ब्याही थी। इस संबंध से बाबर ने अपनी पुत्री गुलबर्ग बेगम का मिर्जा से निकाह कर दिया था और उसी कारण यह भी संबंध हुआ। सलीमा बेगम ने कवि हृदय रखने से अपना उपनाम 'मख़फी' रखा था। उसका यह शैर प्रसिद्ध है (पर उसका अर्थ यहाँ नहीं दिया गया है।)

बैराम खाँ के मरने पर अकबर ने बेगम से स्वयं निकाह कर लिया और वह जहाँगीर के राज्य-काल के ७ वें वर्ष में मर गई।

ऐसा संबंध, उच्चपद, दृढ़ता, बुद्धिमानी, योग्यता और शालीनता के रहते हुए भी भाग्य के फेर से ऐसा हो गया कि अकबर का मन उस उच्चाशय पुरुष से फिर गया। वास्तव में इर्ष्यालु दुष्टों ने अपने स्वार्थ के लिए एक का सौ कहकर युवक बादशाह के चित्त को इसकी ओर से फेर दिया और खुशामदियों तथा स्वामिद्रोहियों ने उस वृद्ध सरदार को स्थानच्युत करा दिया। जैसा होना चाहता था, वैसा नहीं हुआ। एक दिन बैराम खाँ नाव पर सवार होकर यमुना जी में सैर कर रहा था। एक बादशाही हाथी नदी में उतरकर मस्ती से इसकी नाव की ओर दौड़ा। यद्यपि हाथीवान ने बहुत रक्षा की पर बैराम खाँ भय से बहुत घबड़ा गया। बादशाह ने उसकी खातिर हाथीवान को उसके पास भेज दिया पर बैराम खाँ ने शाही नियम का विचार न कर उसे प्राण दंड दे दिया। इस कारण बादशाह अप्रसन्न हो गए और उससे

संबंध तोड़ना निश्चय किया। सन् ९६७ हि० में अकबर आगरे से शिकार के बहाने दिल्ली चल दिया और वहाँ पहुँचकर सरदारों को बुलाने की आज्ञा भेज दी। माहम अनगा की सम्मति से शहाबुद्दीन अहमद खाँ देश के प्रबंध पर नियत हुआ। खानखानाँ चाहता था कि स्वयं सेवा में उपस्थित हो पर अकबर ने संदेशा भेज दिया कि इस बार साक्षात् न होगा इसलिए अच्छा होगा कि दरबार न आवे। कुछ लोग कहते हैं कि बादशाह केवल अहेर खेलने की इच्छा से बाहर निकलकर जब सिकंदराबाद दिल्ली पहुँचा तब माहम अनगा के बहकाने से अपनी माता हमीदाबानू को देखने के लिए दिल्ली गया। बैराम खाँ की ओर से उसके मनमें कुछ भी मालिन्य न था। यद्यपि ईर्ष्यालु दुष्ट गण इस फिक्र में थे कि इस संबंध को बिगाड़ कर अपना स्वार्थ पूरा करें। उन सबने ऐसी बातें बादशाह से कहीं, जो मनोमालिन्य का कारण हो गईं, विशेषकर अदहम खाँ और उसकी माता माहम अनगा ने। परंतु, बैराम खाँ का विश्वास बादशाह के हृदय में ऐसा जमा हुआ था कि इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा लेकिन कहा गया है कि—शैर

उन दुष्टों ने यह अवसर पाकर उसके हृदय में पूरी तरह मालिन्य जमा दिया।

संक्षेपतः बैराम खाँ ने अपनी सचाई के कारण कुल राजचिह्न अच्छे सरदारों के साथ दरबार भेजकर हज्ज जाने की प्रार्थना की पर फिर कुछ उपद्रवियों की राय में पड़कर मेवात चला गया। जब शाही सेना के पीछा करने का शोर मचा तब बादशाही आदमी इससे अलग हो गए। इसने झंडा, डंका आदि

सरदारी के सब चिन्ह अपने भांजे हुसेन कुली बेग के हाथ दरबार भेज दिया और पीछा करनेवाले सरदारों को लिखा कि अब हमने इस कार्य से हाथ उठा लिया है, क्यों व्यर्थ प्रयत्न करते हो और मेरी तो बहुत दिनों से हज्ज करने की इच्छा थी। निरुपाय होकर सरदार लोग लौट गए। जोधपुर का राजा राय मालदेव गुजरात का मार्ग रोके हुए था और खानखानाँ से वह शत्रुता भी रखता था, इसलिये यह नागौर से बीकानेर चला गया, जहाँ के राजा राय कल्याण मल्ल ने इसका स्वागत कर अच्छा आतिथ्य किया। इसी समय प्रसिद्ध हुआ कि मुल्ला पीर महम्मद गुजरात से आकर इसका पीछा करने पर नियत हुआ है। षड्चक्रियों ने बैराम खाँ के क्रोध को उभाड़ दिया और यह युद्ध करना निश्चय कर पंजाब लौटा परंतु फिर इन अभागे दुष्टों की बात को छोड़कर इसने पंजाब का जाना रोक दिया और चारों ओर के सरदारों को लिख भेजा कि हज्ज जाने ही का इच्छा है। परंतु जब इसे मालूम हुआ कि माहम अनगा आदि बादशाह का मन फेरकर इसका नाश ही चाहते हैं, तब उसने निश्चय किया कि एक बार इन दुष्टों को दंड देकर हज्ज को जाऊँ और मुल्ला पीर महम्मद शरवानी से समझ लूँ, जो इसी बीच झंडा व डंका पाकर मुझे निकालने को नियत हुआ है।

वास्तव में ये ही बर्ताव उसके क्षुब्ध होने के कारण हुए और वह अपने को रोक न सका। उपद्रवियों ने यह अवसर पाकर इसे और भड़काया। जब खानखानाँ के विद्रोह का समाचार मिला तब अकबर अतगा खाँ को सरदार बनाकर स्वयं पीछा करने के लिए दिल्ली से निकला। उस समय खानखानाँ जालंधर

लेने का प्रबंध कर रहा था पर अतगा खाँ का आना सुनकर उसका सामना करने के लिये आया। तलवारा के घोर युद्ध में, जो सिवालिक पहाड़ में एक दृ स्थान है, खानखानाँ परास्त होकर वहाँ के राजा राय गणेश की शरण में गया। जब बादशाही सेना उस पहाड़ के पास पहुँची तब दुर्ग की सेना ने निकल कर उससे युद्ध किया। कहते हैं कि उस युद्ध में शाही सेना का सुलतान हसन खाँ जलायर मारा गया और जब उसका सिर काट कर खानखानाँ के पास ले गए तब वह दुखी होकर बोला कि मेरे इस जीवन को धिक्कार है जो ऐसे लोगों की मृत्यु का कारण हुआ। इसने अपने सेवक जमाल खाँ को बड़े शोक के साथ बादशाह के पास भेजकर क्षमा याचना की। अकबर ने मुनइम खाँ तथा अन्य सरदारों को पहाड़ के नीचे भेजा कि बैराम खाँ को सांत्वना देकर सेवा में ले आवें। ५ वें वर्ष सन् ९६८ हि० के मोहर्रम महीने में खानखानाँ कम्प के पास पहुँचा। कुल सरदार आगे बढ़कर बड़ी प्रतिष्ठा के साथ इसे लिवा लाए। जब यह सामने पहुँचा तब रूमाल गले में डालकर अपना सिर बादशाह के पैरों पर रख दिया और रोने लगा। अकबर ने बड़ी कृपा करके उसे गले लगाकर रूमाल गर्दन से निकाल दिया और हाल पूछकर पहिली प्रथा के अनुसार बैठने की आज्ञा दी। अच्छा खिलअत, जो तैयार रक्खा था, देकर हज्ज जाने के लिए बिदा किया। जब यह गुजरात के अंतर्गत पत्तन पहुँचा, जो पहिले नहरवाला के नाम से प्रसिद्ध था, तब कुछ दिन तक वहाँ ठहरकर आराम करता रहा। उस समय मूसा खाँ फौलादी उस नगर का अध्यक्ष था और बहुत से अफगान उसके यहाँ एकत्र हो गए थे। इनमें एक

मुबारक खाँ लोहानी ने, जिसका पिता माछीवाडा के युद्ध में मारा गया था, बैराम खाँ से बदला लेने का विचार किया। सलीम शाह की कशमीरी स्त्री अपनी पुत्री के साथ, जो उससे पैदा हुई थी, बैराम खाँ के साथ हज्ज को जा रही थी और यह निश्चय हुआ था कि बैराम खा के पुत्र के साथ उसका संबंध हो। अफगान लोग इस कारण भी इससे बुरा मानते थे। उसी वर्ष की १४ वीं जमादिउल् अव्वल शुक्रवार को यह कुलाबे की सैर को गया, जो उस नगर का एक रम्य स्थान है और सहस्र लिंग के नाम से प्रसिद्ध है तथा जिसके तालाब के दो ओर कई सहस्र मंदिर बने हुए हैं। जिस समय बैराम खाँ नाव पर से उतर रहा था उस मूर्ख ने मिलने के बहाने पास आकर ऐसा छूरा मारा कि इसका काम समाप्त हो गया। उस समय खानखानाँ के मुँह पर अल्ला हो अकबर आया ही था कि वह मर गया और वीरगति पाई, जिसकी उसको बहुत दिनों से इच्छा थी और फकीरों से जिसके लिए प्रार्थना किया करता था। कहते हैं कि कई वर्षों से वीरगति पाने की इच्छा से यह बुधवार को हजामत बनवाता और स्नान करता था। इसके प्रभुत्व-काल में एक सीधे सैय्यद ने यह सुना और मजलिस में खड़े होकर कहा कि नवाब के वीरगति पाने के लिए फातिहा पढ़ा करता हूँ। इसने मुसकिरा कर कहा कि मीर यह कैसी सहानुभूति है, वीरगति चाहता हूं पर इतनी जल्दी नहीं।

इस घटना के अनंतर इसके सभी सेवक अपने स्थान को भाग गए और बैराम खाँ खून और धूल में पड़ा रहा। कुछ फ़कीरों ने इसके शव को शेख हिसाम के मकबरे के पास, जो

उस स्थान का एक शेख था, गाड़ दिया। इसके अनंतर हुसैन कुली खाँ खानजहाँ के प्रयत्न से मशहद में गाड़ा गया। कासिम अरसलाँ मशहदी ने इस घटना पर तारीख कही है। कहते हैं कि इस घटना के बहुत पहिले स्वप्न में जानकर उसने यह कहा था।

खाँ के शव को उसकी वसीयत के अनुसार वह सन् ६८५ हि० में मशहद ले गया था। बैराम खाँ ने बहुत सी अच्छी कविता कही है। अच्छे कसीदे और उस्तादों के शैर खूब याद किए था और उनका संग्रह 'दखीला' नाम से किया था। कहते हैं कि जब बैराम खाँ कंधार में था तब हुमायूँ ने एक रुबाई लिखी थी और

बैराम खाँ ने उत्तर भी रुबाई में लिखा था। कहते हैं कि एक रात्रि हुमायूँ बादशाह खाँ से बात कर रहे थे और यह अन्य विचार में मग्न हो गया। बादशाह ने पूछा कि हमने तुमसे क्या कहा? ख़ाँ ने सतर्क होकर कहा कि बादशाह, मैं उपस्थित हूँ परंतु सुना है कि बादशाहों के सामने आँख पर, साधुओं के सामने हृदय पर और विद्वानों के सामने वाणी पर ध्यान रखना चाहिए पर आप में तीनों के गुण हैं इसलिए चिंता में था कि किस एक पर ध्यान रख सकता हूँ। बादशाह को यह लतीफा पसंद आया और इसकी प्रशंसा की।

तबकाते-अकबरी का लेखक लिखता है कि बैराम ख़ाँ के पचीस सेवक पाँच हजारी मनसब तक पहुँचे थे और झंडा तथा डंका पा चुके थे। वास्तव में बैराम ख़ाँ योग्यता, साहस, उदारता तथा दूरदर्शिता के गुणों से विभूषित था और वीर, कार्य-कुशल तथा दृढ़ चित्त का था। इसने तैमूरी राजवंश पर अपने कार्यों से अपना भारी स्वत्व स्थापित कर लिया था। जब हुमायूँ बादशाह

के राज्य का प्रबंध स्थिर भी न हो पाया था तभी वह परलोक सिधारा और शाहज़ादा छोटी अवस्था का अननुभवी था। सिवाय पंजाब के कुल देश दूसरों के हाथ में चला गया था। अफगान गण चारों ओर से हजूम करके राज्य पर अपना स्वत्व दिखलाते हुए विद्रोह को तैयार हुए और हर ओर लड़ने को उद्यत हो गए। चगत्ताई सरदार हिंदुस्तान में ठहरना नहीं चाहते थे, इसलिये काबुल जाने की राय देने लगे। मिर्ज़ा सुलेमान ने अवसर पाकर काबुल में अपना खुतबा पढ़वा दिया। ऐसे अशांतिमय काल में बैराम खाँ अपने सौभाग्य, दृढ़ता, दूरदर्शिता और नीति-कौशल से नदी पार कर किनारे पहुँचा और राज्य को दृढ़ बनाया। अकबर भी अनेक प्रकार से उसको अपनी कृपाओं से संतुष्ट कर कुल कार्य उसके हाथ में देते हुए शपथ खाई कि जो कुछ उचित और आवश्यक हो वही वह करे, किसी का विचार न करे और किसी से न डरे। इसके बाद एक मिसरा पढ़ा।

इस प्रकार खानखानाँ की प्रतिष्ठा बढ़ती गई, जिससे द्वेष के काँटे बहुतों के हृदय में खटकने लगे। अदूरदर्शी इर्ष्यालु लोगों ने झूठ सच बातें इकट्ठी कर एक का सौ बना बादशाह को इसके विरुद्ध कर दिया। खानखानाँ भी अपने सनमान तथा प्रभुत्व के कारण दूसरों पर विश्वास न कर उनपर कृपा नहीं करता था और अपने शक्की स्वभाव और चिड़चिड़े पन से शीघ्र गिर गया। इस पर भी खानखानाँ का विद्रोह करने का तनिक भी विचार न था। मीर अब्दुल्लतीफ कज़वीनी द्वारा शाही आज्ञा पाते ही कुल सामान सरदारी का दरबार भेजकर हज्ज जाने को तैयार हो गया पर उपद्रवियों ने दोनों पक्ष को नहीं छोड़ा। शत्रुओं ने मार्ग के

राजाओं को लिखा कि इसे सुरक्षित न जाने दें। इधर लोगों ने इसे समझाया कि छोटे मनुष्य तुम्हें उखाड़ने में अपने उपायों के सफल होने पर अभिमान करते हैं और तुम इतना स्वत्व रखते हुए इस तरह नीचे गिर गए। सम्मान के साथ मरना ऐसे जीवन से अच्छा है। इन बातों ने वह कार्य किया, जिससे इसकी ऐसी दुर्दशा हुई। आदमी को बुरे दिन ऐश्वर्य प्रियता और अहंकार में डाल देते हैं, जिससे उसे बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। इसी से कहते हैं कि संसार-प्रियता भूल है।

बैरम बेग तुर्कमान

शाहजहाँ जब शाहजादा था, उस समय यह उसका मीर बख्शी था और उसके अच्छे सरदारों में से था। इसका मनसब ऊँचा औरपदवी खानदौराँ की थी। जब शाहजहाँ रुस्तम खाँ शेगाली के धोखा देने से सुलतान पर्वेज के सामने से भागा और नर्बदा नदी पार हो गया तब इसने कुल नावों को अपनी ओर लेजाकर तथा कुल उतारों को तोप बंदूक से दृढ़कर बैरम बेग को कुछ सेना के साथ नदी के किनारे की रक्षा के लिये वहीं छोड़ा और आप बुर्हानपुर चला गया। जब महाबत खाँ सुलतान पर्वेज के साथ नर्मदा के किनारे पहुँचा तब बैरम बेग युद्ध को तैयार हुआ। उसके पहुँचते ही तोप और बंदूक की लड़ाई छिड़ गई। महाबत खाँ ने देखा कि इस तरह पार होना कठिन है तब वह चाल चलने लगा। उसने राव रत्न के द्वारा मिर्जा अब्दुर्रहीम खानखानाँ को लिखा और इसकी मध्यस्थता में संधि की बात चलाई। खानखानाँ ने भी शाहजहाँ पर जोर दिया कि वह संधि उसी के बीच में अवश्य की जाय। यदि यह संधि उसकी इच्छा के अनुसार न होवे तो उसके पुत्रों को दंड दिया जाय। इस बात के साथ उसने कई शपथें खाईं। जब संधि की बात प्रसिद्ध हो गई तब उतारों की रक्षा में ढिलाई पड़ गयी। खानखानाँ के पहुँचने के पहिले ही रात्रि में महाबत खाँ नदी पार हो गया और खानखानाँ भी कुल वचन और प्रतिज्ञा को भूलकर शाही सेना से जा मिला। बैरम बेग

लाचार हो बुर्हानपुर चला गया। इसके अनंतर जब बंगाल की चढ़ाई में शाहजहाँ बर्दवान में ठहरा हुआ था उस समय आसफ खाँ जाफर का भतीजा सालेह बेग वहाँ का फौजदार था और वह दुर्ग के कच्चे होते भी उसमें जा बैठा। अब्दुला खाँ ने उसको घेर कर जब उसे तंग किया तब निरुपाय होकर वह बाहर निकला और शाहजहाँ की आज्ञा से कैद किया गया। बैरम बेग को बर्दवान सरकार जागीर में मिला और वह वहाँ का प्रबंध देखने को भेजा गया। जब शाहजादा बंगाल पर अधिकार कर बिहार पहुँचा और उसपर भी अधिकार कर लिया तब बैरम बेग बर्दवान से आकर बिहार प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। इसके अनंतर जब बनारस में शाही सेना से शाहजहाँ का सामना हुआ तब वजीर खाँ बिहार का अध्यक्ष नियत हुआ और बैरम बेग आज्ञा के अनुसार शाह-जादे के पास गया। जिस दिन सुलतान पर्वेज ने अपने बख्शी महम्मद जमाँ को नदी के पार भेजा उस दिन बैरम बेग खानदौराँ उससे अवसर निकाल कर युद्ध करने को भेजा गया। इसने घमंड और अहम्मन्यता से महम्मद जमाँ को योग्य न समझ कर थोड़े आदमियों के साथ गंगा औ यमुना के संगम के पास उसपर धावा कर दिया, जिसमें इसने घायल होकर व्यर्थ अपनी जान दे दी। इसका पुत्र हसन बेग युद्ध में घायल होकर निकल आया पर कुछ दिन बाद मर गया।

सैयद मंसूर खाँ बारहः

यह सैयद खानजहाँ शाहजहानी[1] का पुत्र था। यह युवा मंसबदार तथा जागीरदार था। जब १६ वें वर्ष में इसका पिता मर गया तब उसकी मृत्यु के समय ही यह बिना कारण झूठी शंका करके जंगल की ओर भाग गया। शाहजहाँ ने गुर्ज-बर्दारों के दारोगा यादगारबेग को कुछ गुर्जबर्दारों के साथ उसका पता लगाने को सरहिंद की ओर भेजा, (जो अवश्य ही अपने घर की ओर गया होगा) कि उस मूर्ख को जहाँ पावें कैद कर दरबार लावें। इसके अनंतर ज्ञात हुआ कि वह लक्खी जंगल की ओर जाकर वहाँ के करोड़ी के हाथ पकड़ा गया है तब मीर तुज़ुक शफीउल्ला बर्लास कुछ वीरों के साथ उसे लाने को भेजा गया। उक्त करोड़ी ने खानजहाँ के पुत्र होने के कारण, जो साम्राज्य का बड़ा सर्दार था, इस कृतघ्न उपद्रवी की रक्षा में विशेष कड़ाई नहीं रखी थी इस कारण वह शफीउल्ला के पहुँचने के पहिले ही भाग गया। इसने पहुँचते ही उक्त करोड़ी को उसकी असावधानी पर, जो उससे हो गई थी, बादशाही कोप की, जो ईश्वरी कोप का नमूना है, सूचना दी। उसने अपने चाचा थारः के करोड़ी को शीघ्रता से लिखा कि यदि वह उस ओर गया हो तो प्रयत्न कर उसे कैद कर ले नहीं तो इसकी जान और जीविका

---

१ देखिए मुगल दरबार भा० ३ पृ० १२६–३६।

नष्ट हो जायगी। बहुत प्रयत्न पर चिह्न पहिचाननेवालों ने पता बतलाया कि वह थारः होता सरहिंद जा रहा है। यह भी स्वयं पीछा करता हुआ चला और यादगार बेग से मिलकर, जो सरहिंद तक पता न पाकर भी उसकी खोज में वहीं ठहर गया था, उसका पता लगाने लगा। बहुत परिश्रम करने के बाद उसका यह पता लगा कि दो मित्रों के साथ बहुत कोशिश करता सरहिंद के पास पहुँच गया है और घोड़ों को जंगल में छोड़कर तथा जीनों को कुएँ में डालकर स्वयं हाफिज बाग में फकीर बनकर एकांत में रहता है। यादगार बेग उसे कैद कर तथा हथकड़ी बेड़ी पहिराकर दरबार लिवा लाया। वह कैदखाने भेज दिया गया। २१ वें वर्ष में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर की प्रार्थना पर, जब वह बलख की चढ़ाई पर जा रहा था, इसे कैद से छुट्टी मिली पर यह शाहजादे को सौंपा गया कि अपने सेवकों में भर्ती कर बलख ले जावे। इसके बाद उसका दोष क्षमा होने पर मंसब बहाल हो गया। परंतु स्वभाव ही से वह दुष्ट था इसलिए नए दोष किए, जिनमें प्रत्येक दंडनीय था। बादशाह ने इसके पिता की सेवाओं का विचार कर इसे केवल नौकरी से हटा दिया।

उसी समय जब शाहजादा मुरादबख्श गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ तब इसे उसके साथ कर दिया कि वहीं से मक्का जाकर अपने दोषों की क्षमा याचना करे कि स्यात् अपने कुकर्म तथा अयोग्य चाल को मन से दूर कर सके। ३० वें वर्ष में वहाँ से लौटने पर उसकी चाल से पुराने कृत्यों के लिए लज्जा प्रकट हो रही थी इसलिए उक्त शाहजादे की प्रार्थना पर इसे एक हजारी ४०० सवार का मंसब देकर गुजरात में नियत कर दिया। यहाँ

से उक्त शाहजादे के साथ महाराज यशवंतसिंह के युद्ध मे तथा दाराशिकोह की प्रथम लड़ाई में प्रयत्न करने से इसका मंसब बढ़ा और खाँ की पदवी मिली। जब वह[1] अदूरदर्शी शाहजादा आलमगीर बादशाह के हाथ कैद हुआ तब इसे तीन हजारी १५०० सवार का मंसब मिला और यह खलीलुल्ला खाँ के साथ भेजा गया, जो दाराशिकोह का पीछा करने पर नियत हुआ था। इसके बाद इसका क्या हाल हुआ और यह कब मरा, इसका पता नहीं लगा।

---

१ मुरादबख्श से तात्पर्य है।

मकरम खाँ मीर इसहाक

यह शेख मीर का द्वितीय पुत्र था, जिसका विश्वास तथा कार्यशक्ति इस प्रकार औरंगजेब के हृदय में बैठ गई थी कि उसकी एक अच्छी सेवा के कारण, जिसने उसके राज्य के आरंभ में स्वामी के कार्य में अपना प्राण निछावर कर दिया था, उसका भारी स्वत्व अपने ऊपर मान लिया था और उसके पुत्रों पर अनेक प्रकार की कृपा करता रहा। प्रसिद्ध है कि बादशाह इन सब को साहबजादा कहा करता था। इसी कृपा के कारण घमंडी हुए ये लोग अपने स्वामी से भी खानाजादी की ऐंठ दिखलाते थे और सांसारिक व्यवहार का विचार न कर किसी के आगे सिर नहीं झुकाते थे तथा सिवा एकांतवास के किसी से मिलते न थे। संक्षेपतः मीर इसहाक को अच्छा मंसब तथा मकरम खाँ की पदवी मिली और यह जिलौ[1] के नौकरों का दारोगा नियत हुआ। १८ वें वर्ष में जब बादशाह हसन अब्दाल गए तब उक्त खाँ अपने भाई शमशेर खाँ मुहम्मद याकूब के साथ भारी सेना सहित अफगानों को दंड देने के लिए नियत हुआ। मकरम खाँ ने खालूश[2] घाटी की ओर से घुसकर कई बार शत्रु से युद्ध किया

---

१ जिलौ का अर्थ कोतल घोड़ा है जो साथ में रहता है। तात्पर्य बादशाह के निजी कामों के सेवकों से है।

२ पाठांतर खाबूश तथा खानूश दो मिलता है।

और बहुतों को कैदकर उनके स्थानों को नष्ट कर डाला। एक दिन उपद्रवियों ने अपने को दिखलाया और इसने बिना उनकी संख्या समझे निडरता से आक्रमण कर दिया तथा जीत भी गया। इसी समय दो भारी सेनाओं ने, जो घात में पहाड़ों में छिपी हुई थीं, धावा किया और दोनों ओर से खूब मार काट हुई। शमशेरखाँ तथा शेख मीर का दामाद अजीजुल्ला दृढ़ता से पैर जमाकर बहुतों के साथ मारे गए और बहुत से अप्रतिष्ठा के साथ भागने का राह न पाकर मारे गए। मकरम खाँ कुछ लोगों के साथ मार्ग जाननेवालों की सहायता से बाजौर के थानेदार इज्जत खाँ के पास पहुँच गया।[1] इसने इसका आना भारी बात समझकर इसका आतिथ्य अच्छी प्रकार किया और आज्ञानुसार दरबार भेज दिया। २० वें वर्ष में अब्दुर्रहीम खाँ के स्थान पर गुर्जबर्दारों का दारोगा नियत किया। २३ वें वर्ष में राणा के उदयपुर से अजमेर प्रांत को लौटते समय यह चित्तौड़ के अंतर्गत बिदनोर के उपद्रवियों को दमन करने के लिए भेजा गया और इसे एक हाथी मिला। इसके बाद किसी कारण से दंडित होने पर दरबार में उपस्थित होने से यह रोक दिया गया। २६ वें वर्ष में पुनः इसे सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा मिल गई और लाहौर के शासन पर नियत हुआ। ३० वें वर्ष में उस पद से हटाया गया। इसके अनंतर मुलतान का सूबेदार हुआ। इसके बाद फिर लाहौर प्रांत का शासक हुआ। ४१ वें वर्ष में यहाँ से हटाए जाने पर नौकरी से त्याग पत्र देकर राजधानी में एकांतवास करने लगा।

---

१ मआसिरे आलमगीरी में यह विवरण दिया हुआ है।

४५ वें वर्ष में सेवा की इच्छा से दुर्ग पर्नालः के पास कहतानून स्थान में दरबार पहुँचकर कुछ दिनों तक यह बादशाह का कृपा-पात्र रहा। दोनों ओर से विमनसता बनी रही तथा मन ठीक नहीं बैठा और किसी एक ने इसके दूर करने के लिए कुछ नहीं किया, इससे यह लौटकर एकांत में रहने लगा। इसके अनंतर राजधानी में आराम तथा संतोष से दिन बिताने लगा। संचित धन से मकान तथा दूकानें खरीदीं। खर्च भी था और गुण से खाली भी न था। अपने को सूफी मानता और 'सब उसका है' कहता। विचार पर तर्क-वितर्क भी करता। नवाब आसफजाह ने इस संबंध में स्वयं कहा था, जो बहादुरशाह के समय कुछ दिन दिल्ली में एकांतवासी थे। उस समय मकरम खाँ की सेवा में जाकर हमने पूछताछ की थी। मुहम्मद फर्रुखसियर के समय इसकी मृत्यु हुई। यह निस्संतान था। अबदुल्ला खाँ उसका पोष्य पुत्र है, जो आसफजाह की ओर से वकील होकर बादशाही दरबार में रहता है।

प्रायः अकर्मण्यता में मुक्त धन प्राप्ति तथा सोना बनाने की ओर मन आकर्षित होता है और बहुत कर देखा गया है कि यह कार्य आलस्य को दूर करने तथा आशा दिलाने का प्रभाव रखता है। मकरम खाँ भी इस पागलपन से खाली न था। औरंगजेब के राज्य के अंत में एक विचित्र घटना हुई, जो वाकेआनवीसों के समाचारों द्वारा बादशाह तक पहुँचा। खवास खाँ ने अपने इतिहास में लिखा है कि मैंने एक आदमी से सुना है, जो दिल्ली के नाजिम मुहम्मदयार खाँ की ओर से इस बात की जाँच करने के लिए मकरम खाँ के पास गया था और जिससे स्वयं उसी ने सुना था।

यह एकदम विश्वास के बाहर नहीं है इसलिए लिखा जाता है। घटना यों है कि जब मकरम खाँ कीमिया[1] की खोज में प्रसिद्ध हो गया और दस्तकारी के कारखाने खोले तब एक फकीर पहुँचे हुए शेख की तरह सूरत शकल बनाए हुए आया और बड़ी सचाई से अपने को प्रकट किया। गुप्त रूप से उसने यह भी बतलाया कि वह बड़े सिद्ध हजरत गौसुलूमकलीन का शिष्य है। वह दस्तकारी का गुण जानता है, जिसे तुम्हें सिखलाने की आज्ञा दी गई है। कपट से कुछ सोना को मंत्र फूँककर और हाथ की कारीगरी से दूना करके दिखला दिया। मकरम खाँ उसी का वशवर्ती हो गया और इस काल में इसने बहुत कष्ट उठाकर उसकी खातिरी की पर कुछ फल नहीं निकला। बहुत सी वस्तुओं से पर्हेज करने के कारण कम वस्तु इसे पसंद आती थी। जब सिखलाने की बात आती तब बिदा के दिन पर छोड़ देता। यहाँ तक कि एक दिन कहा कि बहुत बड़ी देग लावो और उसे मुँह तक एक तह अशरफी और उस पर एक तह ताँबे के पैसों की चुन दो। फिर मिट्टी से बंदकर आग पर रख दो। जब एक तिहाई रात बीत गई तब उस देग में से डरावनी आवाज निकलने लगी। वह कपटी शोक से हाथ मलते हुए बोला कि इस प्रयोग में कुछ कठिनाई आ गई है और काले बच्चे का रक्त डालने से यह ठीक हो सकता है। मकरम खाँ ने कहा कि किस प्रकार नाहक खून किया जा सकता है।[2] फकीर

---

१. जिस वस्तु के मिलाने से ताँबा सुवर्ण हो जाय।

२. पाठांतर का अर्थ है कि इसे सिर से निकाल देना चाहिए अर्थात् इस प्रयोग को बंदकर देना चाहिए।

ने बाहर निकलकर कहा कि तुमसे हो सकता है। कुछ अशर्फी लेकर बाहर गया और दो घड़ी बाद एक लड़के को पकड़कर ले आया और अपने हाथ से उसके गले पर छुरी चलाकर कुछ बूँद आग पर डाला, जिससे आवाज बंद हो गई। उस काटे हुए शव को घास पर डाल दिया। कुछ समय नहीं बीता कि कोतवाल के आदमी मशाल लिए शोर मचाते हुए आ पहुँचे कि उस बच्चे के चोर फकीर को इसी घड़ी बाहर निकालो, इस घर में मत रखो और पकड़कर दो कि उसके माँ बाप न्याय माँगें। मकरम खाँ ने घबड़ाकर बदनामी के डर से भारी घूस देने की लालच दी पर उन सब ने शोर मचाना नहीं कम किया और बराबर उस दुष्ट को देने के लिए कहते रहे। अंत में वह आपही बाहर आकर बोला कि मैं उपस्थित हूँ। प्यादों ने उसे बाँध लिया और पीटते हुए ले चले। मकरम खाँ पेड़ के नीचे बैठकर कभी आश्चर्य से अगूठा मुह में डालता और कभी लज्जा का हाथ दाँत से काटता। इसी में सबेरे की सफेदी फैलने लगी तब किसी को फकीर का हाल लेने भेजा। उस भीड़ में उसका कुछ पता न लगा। मुहल्ले-वालों से पता लगाया पर किसी ने कुछ न बतलाया। उस काटे हुए शव की खबर ली तो उसे भी न पाया। आश्चर्य पर आश्चर्य बढ़ा। देग को ठंडा कर जब निकाला तो अशर्फी की जगह पत्थर के टुकड़े निकले। जो कोई उक्त खाँ से पूछता तो कहता कि जो तमाशा मैंने देखा था उसी का मूल्य था।

मकरम खाँ सफवी मिर्जा

इसका नाम मुराद काम था और यह मिर्जा मुराद इल्तफात खाँ का पुत्र था, जो मिर्जा रुस्तम कंधारी का बड़ा पुत्र था। अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ की पुत्री से विवाह होने पर जहाँगीर के समय इसे इल्तफात खाँ की पदवी तथा दो हजारी ८०० सवार का मंसब मिला। शाहजहाँ के समय भी इसने बहुत दिनों तक सेवा की। इसने विशेष प्रयत्न नहीं दिखलाया इससे १६ वें वर्ष में इसे सेवा से छुट्टी मिल गई और चालीस सहस्र रुपए की वार्षिक वृत्ति मिली। बहुत दिनों तक यह पटना नगर में एकांतवास करता हुआ आराम करता रहा तथा संतोष और संपन्नता से कालयापन किया। मुरादकाम योग्यता तथा सेवा-कार्य की अभिज्ञता रखता था इसलिए बादशाही कृपापात्र होने से २१ वें वर्ष शाहजहानी के आरंभ में इसका मंसब बढ़कर दो हजारी हो गया तथा यह कोरबेगी नियत हुआ। २४ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़ाया गया और यह सैयद मुर्तजा खाँ के स्थान पर लखनऊ तथा बैसवाड़े का फौजदार नियत हुआ। २५ वें वर्ष में मोतमिद खाँ के स्थान पर जौनपुर का फौजदार हुआ और इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी ३००० सवार का हो गया तथा डंका मिला। इसके बाद दरबार आने पर २७ वें वर्ष में इसे मकरम खाँ की पदवी देकर ताल्लुके पर जाने की छुट्टी दी गई। २८ वें वर्ष में

मुकर्रम ख़ाँ सफ़वी

दरबार आकर वहीं रहा। ३१ वें वर्ष में यह पुनः जौनपुर का फौजदार हुआ।

जब दैवयोग से शाहजहाँ का राज्याधिकार समाप्त हो गया और औरंगजेब बादशाह हुआ तब शाहजादा शुजाअ ने दाराशिकोह के विरुद्ध मुहम्मद औरंगजेब बहादुर से मित्रता तथा साथ देने का वचन दिया और जब दाराशिकोह युद्ध में परास्त हो भागा तब इसने बड़ी प्रसन्नता से बधाई दी और इस ओर से बिहार भी बंगाल प्रांत में मिला दिया गया तथा इस बारे में शाहजहाँ से भी लिखवा दिया गया। शुजाअ प्रगट में नम्र होकर अकबर नगर से पटना आया और अवसर देखता रहा। जब औरंगजेब दाराशिकोह का पीछा करते हुए मुलतान गया तब इसने अवसर समझकर इच्छा रूपी घोड़े को आगे बढ़ाया और सैयद आलम बारहा तथा हसन खाँ खेशगी की अधीनता में सेना जौनपुर पर भेजी। मकरम खाँ अपने में युद्ध की शक्ति न देखकर कुछ गोले छोड़ने तथा साधारण युद्ध करने के अनंतर दुर्ग से बाहर निकल आया और उनके साथ इलाहाबाद से दो पड़ाव इधर घबड़ाहट के साथ शुजाअ के पास पहुँचकर उससे मिल गया। शुजाअ ने खजवा में युद्ध के दिन इसे बाएँ भाग का संचालक तथा सेनानायक बना दिया। ठीक युद्ध में औरंगजेब की शक्ति तथा शुजाअ की निर्बलता देखकर यह उस कार्य से हटकर औरंगजेब से जा मिला। विजय के अनंतर पहिले की तरह जौनपुर का फौजदार नियत हुआ। ३ रे वर्ष अवध का फौजदार हुआ। ६ वें वर्ष इसे पाँच हजारी मंसब मिला। १० वें वर्ष ईश्वरीय कृपा से इसे मिर्जा मकरम खाँ की पदवी मिली जिससे यह

विशेष सम्मानित हुआ। इसके बाद कुछ दिन किसी कारण से इसने एकांतवास भी किया। १२ वें वर्ष में फिर से कृपापात्र होने पर बिना शस्त्र के सेवा में उपस्थित हुआ। गुणग्राहक बादशाह ने इसे तलवार देकर इसका साहस बढ़ाया। इसी वर्ष सन् १०८० हि० में यह ज्वर से मर गया। यह सुकवि था और अच्छे शैर कहता। यह शैर उसी का है—

कुछ बुलबुलों का हृदय रूपी शीशा टूट गया।
क्योंकि खुले पैर समीर बाग में नहीं आती॥

इसकी मृत्यु पर इसकी पुत्री का १९ वें वर्ष के अंत में शाह आलम बहादुर के प्रथम पुत्र शाहजादा मुइज्जुद्दीन के साथ निकाह हुआ। इसकी मृत्यु पर शाहजादे का दूसरा विवाह मृत मकरम खाँ के पुत्र मिर्जा रुस्तम की पुत्री सैयदुन्निसा बेगम के साथ २८वें वर्ष में हुआ।

मकरमत खाँ

इसका नाम मुल्ला मुर्शिद शीराजी था। यह आरंभ में बहुत दिनों तक महाबत खाँ सिपहसालार के साथ रहा। इसके बाद जहाँगीर के सेवकों में भर्ती हुआ। शाहजहाँ के राज्य के आरंभ में इसे मकरमत खाँ की पदवी, बादशाही सरकार के बयूतात की दीवानी तथा एक हजारी २०० सवार का मंसब मिला। चौथे वर्ष इसे आगरा की दीवानी, बख्शीगिरी, वाकेआनवीसी तथा बयूताती मिली। आठवें वर्ष जब बादशाह बुंदेलों के देश में गए तब यह झाँसी दुर्ग लेने, जो विद्रोही जुझारसिंह के दृढ़ दुर्गों में से था, और उसके कोषों का पता लगाने पर नियत हुआ। दुर्ग के रक्षकगण प्रबल सेना की बहादुरी को आँखों से देखकर साहस छोड़ बैठे तथा अधीनता स्वीकार करने की प्रार्थना की। ऐसा दुर्ग जो रक्षा के कुल सामान से दृढ़ था और पर्वत के ऊपर घोर जंगल तथा काँटेदार वृक्षों के बीच में स्थित था बिना युद्ध तथा प्रयत्न के अधीन हो गया। मकरमत खाँ ने इस विजय के उपरांत झाँसी तथा दतिया के आसपास से बहुत प्रयत्न कर अट्ठाईस लाख रुपये इकट्ठे किए और बादशाह की सेवा में पहुँचकर भेंट किया। शाहजहाँ ने उस प्रांत की सैर के अनंतर, जो नदी तथा झरनों के आधिक्य से सदाबहार कश्मीर का ईर्ष्यापात्र था, उसी वर्ष के अंत में नर्मदा नदी पार किया। मकरमत खाँ राजदूत की चाल पर बीजापुर के सुलतान आदिल-

शाह के पास भेजा गया, जिसने अदूरदर्शिता से कर भेजने में ढिलाई की थी और बची हुई निजामशाही सेना को अपने यहाँ रख लिया था। मकरमत खाँ ने उसे ऊँचा नीचा समझाकर अधीन बनाया और नवें वर्ष में वहाँ से अनेक प्रकार की अमूल्य भेंट तथा एक भारी हाथी, जो अपनी जाति का अद्वितीय था तथा गजराज कहलाता था, लेकर लौटा और सम्मानित हुआ। इसके अनंतर इसे खानसामाँ का ऊँचा पद मिला। पंद्रहवें वर्ष के आरंभ सन् १०५१ हि० में तीन हजारी ३००० सवार का मंसब और डंका पाकर यह दिल्ली का सूबेदार नियत हुआ। १८वें वर्ष में इसके साथ ही आजमखाँ के स्थान पर मथुरा व महाबन की फौजदारी तथा जागीरदारी भी इसे मिली और एक हजारी १००० सवार बढ़ने से इसका मंसब चार हजारी ४००० सवार का हो गया।

[सूचना—मआसिरुल् उमरा में मकरमत खाँ की जीवनी के साथ शाहजहाँ की बनवाई हुई दिल्ली का पूरा विवरण दिया हुआ है उसीका अनुवाद यहाँ दिया जाता है।]

———
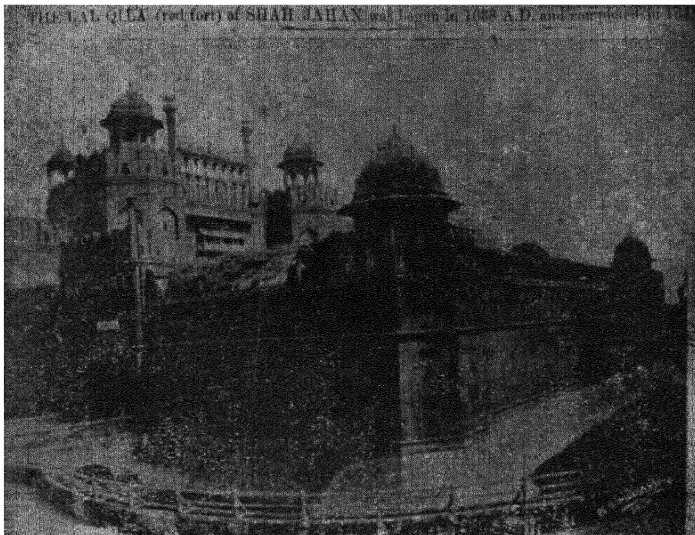
दुर्ग शाहजहानाबाद

शाहजहानाबाद नगर (दिल्ली) का विवरण

उच्च साहस यहाँ इस विचार में है कि इसके संबंध में कुछ लिखे। ऐश्वर्यशाली सम्राट्गण की स्वभावतः यह इच्छा रहती है कि संसार में कुछ अपना स्थायी चिह्न छोड़ जायँ और इसी विचार से शाहजहाँ ने एक मनोहर नगर जमुना नदी के किनारे बसाने का निश्चय किया। इमारती काम के ज्ञाताओं ने बहुत प्रयत्न के बाद एक भूमि, जो तत्कालीन राजधानी दिल्ली में नूरगढ़ तथा इस नगर के आरंभ की बस्ती के बीच में स्थित था, चुना। २५ जीहिज्जा सन् १०४८ हि० को १२ वें वर्ष जलूसी में बादशाह द्वारा निश्चित चाल पर अब्दुल्ला खाँ फीरोजजंग के भतीजे गैरत खाँ की सरकारी में, जो दिल्ली का शासक था, रंग डालकर नींव की भूमि खोदी गई। उक्त वर्ष के ६ मुहर्रम को उसकी नींव डाली गई। साम्राज्य में जहाँ कहीं संगतराश, राजगीर, कारीगर आदि थे वे सब बादशाही आज्ञानुसार आकर सभी काम में लग गए। अभी इमारतों का कुछ सामान आदि इकट्ठा हुआ था कि गैरत खाँ ठट्टा की सूबेदारी पर भेज दिया गया और दिल्ली प्रांत का शासन तथा इमारतों के उठवाने का कार्य अलावर्दी खाँ को सौंपा गया। इसने दो वर्ष और कुछ दिन में इस काम को करते हुए नदी की ओर से दुर्ग की नींव दस गज उठवाई। इसपर उक्त प्रांत का शासन तथा इमारतों के बनवाने का कार्य उससे लेकर मकरमत खाँ को दिया गया, जो

खानसामा का कार्य कर रहा था। इसने बहुत प्रयत्न किए तथा कार्य दिखलाया। यहाँ तक कि २० वें वर्ष में यह ऊँचा दुर्ग स्वर्ग के समान इमारतों के साथ बन गया, जिसके हर कोने में बड़े बड़े प्रासाद थे और हर ओर बाग तथा जलाशय थे मानो वह सहज ही चीन का चित्रगृह सा था। परंतु वह पहिले वालों का कर्म था और यह आजकल वालों का। शैर—

उसमें चित्रकारी इतनी कर दी गई थी कि कारीगर आप भी उसपर मुग्ध है।

यह अमीर खुसरो की भविष्यवाणी है कि जो कुछ वह दिल्ली के बारे में कह गया था वह अब इस समय ठीक उतरा। शैर—

यदि स्वर्ग पृथ्वी पर है तो यही है, यही है और यही है।

साठ लाख रुपए व्यय कर नौ वर्ष तीन महीने और कुछ दिन में यह सौंदर्य का रूप तैयार हो गया।

यह विशाल दुर्ग, जो अठपहलू बगदादी है, लंबाई में एक सहस्र गज बादशाही और चौड़ाई में छ सौ हाथ है। इसकी दीवालें लाल पत्थर की बनी हैं, जिनकी ऊँचाई मुंडेरों तथा मोहरियों तक पच्चीस हाथ थी। भूमि छ लाख गज थी अर्थात् आगरा दुर्ग की भूमि की दूनी। घेरा तीन सहस्र तीन सौ हाथ था। इसमें इक्कीस बुर्ज थे जिनमें सात गोल और चौदह अठपहल थे। इसमें चार फाटक तथा दो द्वार थे। इसकी खाई बीस गज चौड़ी तथा दस गज गहरी और नहर से भरी हुई थी, जो दो ओर से जमुना में गिरती थी। पूर्व की ओर छोड़कर जिधर जमुना नदी दुर्ग की दीवाल तक पहुँच गई थी यह कुल

इक्कीस लाख रुपए में बनी थी। खास महलों के निर्माण में, जिनमें चाँदी की छत सहित शाहमहल, सुनहला बुर्ज के नाम से प्रसिद्ध शयनगृह सहित इम्तियाज महल, खास व आम दीवान तथा हयातबख्श बाग थे, छब्बीस लाख रुपए लगे। बेगम साहब तथा अन्य स्त्रियों के महलों में सात लाख और बाजार व चौकी आदि की अन्य इमारतों में, जो बादशाही कारखानों के लिए बनवाई गई थीं, चार लाख रुपए लगे।

सुलतान फीरोज तुगलक ने अपने राज्यकाल में खिज्राबाद पर्गने के पास से जमुना जी से नहर काटकर तीस कोस सफेदून परगने तक, जो उसका शिकारगाह था पर खेती के लिए जल कम था, पहुँचा दिया था। वह नहर सुलतान की मृत्यु के बाद समय के फेर तथा जनसाधारण के उपद्रव से नष्ट हो गया तथा पानी आना बंद होगया। अकबर के समय में दिल्ली के सूबेदार शहाबुद्दीन अहमद खाँ ने खेती की उन्नति तथा अपनी जागीर की बस्ती के लिए उक्त नहर की मरम्मत कर उसे जारी किया, जिससे वह शहाब नहर कहलाई। जब उसका समय बिगड़ गया तब उसकी मरम्मत आदि न हो सकी और पानी आना फिर बंद हो गया। जिस समय शाहजहाँ यह दुर्ग बनवाने लगा तब आज्ञा दी कि उक्त नहर का खिज्राबाद से सफेदून तक, जो उसका आरंभ तथाअंत है, मरम्मत करें और सफेदून से दुर्ग तक, जो भी तीस कोस बादशाही था, नई नहर खोदें। बनने पर इसका स्वर्ग नहर नाम रखा गया। भरे हुए तालाबों तथा ऊंचे उड़ते हुए फौवारों सहित महलों से इसकी शोभा बढ़ गई। २४ रबीउल् अव्वल सन् १०५८ हि० को २१वें वर्ष में, जब कि ज्योतिषियों ने

बादशाह के प्रवेश करने की साइत दी थी, जशन की तैयारी तथा आराम के सामान प्रस्तुत करने की आज्ञा हुई। कुल खास इमारतों को अनेक प्रकार के अच्छे फर्शों से, जो कश्मीर तथा लाहौर में पशमीने के हर प्रासाद के लिए बड़ी कारीगरी से तैयार किए गए थे, सजा दिया गया। प्रत्येक कोठों तथा कमरों में जरदोजी, कामदानी, कलाबत्तू तथा मखमल के पर्दे, जो गुजरात के कारीगरों द्वारा तैयार किए गए थे, लटकाए गए। हर महल में जड़ाऊ, सोना व मीना के सिंहासन काम के या सादे बैठाए गए। हर एक पर जहाँ ऊँचे मसनद लगाए गए सुंदर गिलाफों में बड़े तकिए लगाकर सुनहले बिछौने बिछाए गए। उस शानदार विशाल कमरे के तीन ओर चाँदी की धूपदानी और झरोखे के आगे सोने की धूपदानी रखी गई और उसके हर ताक में सुनहले तारे सोने की सिकड़ी से लटकाकर उसे आकाश सा बना दिया। उस बड़े कमरे के बीच में चौकोर चौकी लगाकर तथा उसके चारों ओर सोने की धूपदानियाँ सजाकर उस पर जड़ाऊ सिंहासन रख दिया, जो संसार को प्रकाशित करनेवाले सूर्य के समान था। तख्त के आगे सुनहला शामियाना, जिसमें मोतियाँ लटकाई हुई थीं, जड़ाऊ खंभों पर लगाया गया। सिंहासन के दोनों ओर मोतियाँ लगे हुए जड़ाऊ छत्र तथा चारों ओर अठ-पहल गमले रखे गए। पीछे की ओर जड़ाऊ तथा सोने की संदलियाँ रखकर उनपर शस्त्र, जैसे जड़ाऊ म्यान सहित रत्नजटित तलवार, जड़ाऊ सामान सहित तरकश और जड़ाऊ भाले, जिनके बनाने में समुद्र तथा खान के खजाने लगा दिए गए थे, सजाए गए। उस कमरे की छत, खंभे, द्वार तथा दीवार और उसके चारों

ओर के कमरों को जो दीवान खास तथा आम के थे, जरदोजी सायबानों तथा फिरंगी व चीनी जरदोजी कामों के पर्दों से जो गुजराती सुनहले तथा रुपहले जरबफ्त मखमल पर बने थे और जिनमें कलाबत्तू व बादले के झालर लगे हुए थे, सजा दिए। उस विशाल कमरे के आगे मखमल जरबफ्त के व चारों ओर के कमरों के आगे मखमल जरबफ्त के सायबान रुपहले काम सहित लगा दिए गए। बारगाह के नीचे रंगीन फर्श बिछाकर उसके चारों ओर चाँदी के मुहज्जर रख दिए गए। उक्त बारगाह अपनी विशालता में आकाश की बराबरी करता था। बादशाही आज्ञा से अहमदाबाद के सरकारी कारखाने में तैयार किया गया था और एक लाख रुपया व्ययकर काफी समय में तैयार हुआ था। इसकी लंबाई सत्तर हाथ बादशाही तथा चौड़ाई पैंतालीस हाथ थी और चांदी के चार खंभों पर खड़ा किया गया था, जो हर एक सवा दो गज के घेरे में था। यह तीन हजार गज भूमि घेरता था और दस सहस्र आदमी इसके नीचे खड़े हो सकते थे। तीन सहस्र फर्राश आदि आदमी एक महीने के समय में उस विद्या की जानकारी से खड़ा करते थे। वह जनसाधारण में दलबादल के नाम से प्रसिद्ध था।

ऐसा बारगाह जो आकाश की बराबरी करे, कभी खड़ा न हुआ और न वैसा मकान कि स्वर्ग का नमूना हो, इस शोभा के साथ नहीं सजाया गया। बादशाह के उन मकानों में जाने के अनंतर दस दिन तक बराबर जशन होता रहा। प्रति दिन सौ आदमियों को खिलअत मिलते रहे। झुंड के झुंड लोगों को मंसब में उन्नति, पदवियाँ, नगद, घोड़े व हाथी पुरस्कार में दिए गए। मीर

यहिया काशी ने इस बड़ी इमारत की समाप्ति की तारीख एक मिसरे से निकाली और इसके उपलक्ष में उसे एक सहस्र रुपये पुरस्कार मिले। मिसरा—

शुद शाहजहानाबाद अज शाहजहाँ आबाद।

मकरमत खाँ को इस इमारत के तैयार कराने के पुरस्कार में मंसब में एक हजारी १००० सवार की उन्नति मिलने से उसका मंसब पाँच हजारी ५००० सवार ३००० सवार दो अस्पा सेह अस्पा हो गया। २३ वें वर्ष सन् १०५६ हि० में मकरमत खाँ की शाहजहानाबाद में मृत्यु हो गई। उक्त खाँ धनाढ्यता तथा ऐश्वर्य के लिए प्रसिद्ध था। प्रसिद्ध है कि एक दिन शाहजहाँ ने कहा कि बगदाद तथा इस्फहान के मानचित्रों के देखने के बाद वहाँ के अठपहल तथा पटे हुए बाजारों से ये नहीं बने, जैसा कि वह चाहता था और उस वांछित कमी से यह नगर ठीक नहीं हुआ। इस बारे में मकरमत खाँ से बहुत कहा सुना था। उस दिन से मकरमत कहता था कि यदि यह नगर मेरे नाम से पुकारा जाय तो जो कुछ व्यय हुआ है वह सब राजकोष में भर दे। इसे एक पुत्र था जिसका नाम मुहम्मद लतीफ था। २२वें वर्ष में यह मध्य दो आब का फौजदार नियत हुआ। इसका भतीजा रूहुल्ला योग्य मंसब रखता था।

तेज चलनेवाली लेखनी ने लिखने के बहाने शाहजहानाबाद दुर्ग का वर्णन करते हुए प्रस्तुत विवरण में इस नगर तथा पुरानी दिल्ली का भी उल्लेख किया है। जब दुर्ग शाहजहानाबाद तैयार हो गया तब उसके दाएँ तथा बाएँ नदी के किनारे सभी ऐश्वर्य-शाली शाहजादों तथा बड़े बड़े सर्दारों ने भारी इमारतें और भव्य

प्रासाद बनवा डाले। इन बड़ी इमारतों के सिवा, जिनमें बीस लाख रुपए लग गए थे, जनसाधारण से लेकर बड़ों तथा धनियों ने अपने सम्मान के अनुसार व अपने धन के आधिक्य या कमी और इच्छा या आराम के विचार से बहुत से गृह बनवाए। दुर्ग के बाहरी घेरे के बाहर की बस्ती को लेकर इस प्रकार इतना बड़ा नगर बस गया कि संसार के भ्रमणकारी यात्रियों ने भी इतने विशाल, ऐश्वर्यपूर्ण तथा जनाकीर्ण नगर का कहीं पता नहीं दिया है। शेर—

ईश्वर की कृपा है कि यदि मिश्र व शाम हैं।
तो वे इस जनपूर्ण नगर के एक कोने में हो जाएँगे॥

इस्लामी नगर बगदाद पाँच सौ वर्षों से अधिक काल तक अब्बासी खलीफों की राजधानी रहा है और दजला नदी के दोनों ओर मिलकर इसका घेरा दो फर्सख अर्थात् छ कोस रस्मी है तथा इस बड़े नगर का घेरा पांच फर्सख अर्थात् पंद्रह कोस रस्मी है। जब नए नगर का प्राचीर जो पत्थर तथा मिट्टी का बना था, वर्षा की अधिकता के कारण स्थान स्थान पर टूट गया तब वह प्राचीर २६ वें वर्ष में पत्थर तथा मसाले से बड़ी दृढ़ता से नींव देकर बनवाया गया। ३१ वें वर्ष के अंत में यह छ सहस्र तीन सौ चौसठ हाथ की लंबाई में, जिसमें सत्ताईस बुर्ज तथा ग्यारह दरवाजे थे, चार लाख रुपए व्यय करने पर तैयार हुई। इसमें के दो बड़े फाटक चार हाथ चौड़े और नौ हाथ कोण सहित ऊँचे थे।

लाहौर की ओर का मार्ग चालीस हाथ चौड़ा व एक सहस्र पाँच सौ बीस गज लंबा था, जिसके दोनों ओर पंद्रह सौ साठ बड़े सुंदर व आकर्षक कमरे तथा मकान थे, जिन्हें बादशाही

आज्ञानुसार नगर निवासियों ने बनवाए थे। बाजार के सिरे से, जो बादशाही घुड़साल के पास था और जो दुर्ग की दीवाल से ढाई सौ हाथ की दूरी से आरंभ हुआ था, चौक तक बराबर अस्सी अस्सी थे। कोतवाली का चबूतरा चार सौ अस्सी गज था। वहाँ से चौक तक बगदादी आठपहल के समान सौ सौ थे। इतने ही लंबे चौड़े बाजार थे। इस चौक के उत्तर विशाल दो मंजिला सराय बेगम साहब की थी, जो एक ओर बाजार की तरफ और दूसरी ओर बाग की तरफ खुलती थी। यह बाग, जो वास्तव में तीन बाग थे, साहबाबाद कहलाता था और लंबाई में नौ सौ बहत्तर गज था। इनमें से एक मकरमत खाँ ने भेंट किया था, जिसे शाहजहाँ ने मलका को दे दिया था। उक्त जिले के बाजार के दक्खिन ओर एक हम्माम घर बड़ी सफाई तथा सुंदरता से उसी मलका की आज्ञा से बना हुआ था। इस सराय तथा चौक से फतहपुरी महल के चौक व सराय तक पाँच सौ साठ गज था। आगरे की ओर के बाजार की लंबाई एक सहस्र पचास व चौड़ाई तीस हाथ थी, जिसके दोनों ओर आठ सौ अट्ठासी कमरे व गृह बड़ी खूबी से बने हुए थे। बाजार के आरंभ में दुर्ग के फाटक के पास दक्खिनी ओर अकबराबादी महल की बनवाई विशाल मस्जिद है और इस नगर की जामा मस्जिद, जिसे जहाँनुमा मस्जिद कहते हैं, विशालता तथा दृढ़ता से दुर्ग के पूर्व की ओर सड़क पर एक सहस्र गज की दूरी पर बना हुआ है। इसकी नींव १० शव्वाल सन् १०६० हि० को पड़ी थी। छ वर्ष में दस लाख रुपए के व्यय से सादुल्ला खाँ व खलीलुल्ला खाँ के प्रबंध में यह तैयार हुई थी। बनने की तारीख 'किब्लः हाजात आमद मस्जिदे शाहजहाँ' से

(शाहजहाँ की मस्जिद में आवश्यकताओं के किब्ल: आ गए) निकलती है। उस समय से लिखने के समय तक प्रायः सौ वर्ष बीत गए और भारी सर्दारों तथा उच्चपदस्थ अमीरों द्वारा मनोहर और चित्ताकर्षक प्रासाद इस प्रकार बनवाए गए हैं कि तीव्रगामी विचारधारा भी इसके वर्णन में लँगड़ी हो गई है तब लकड़ी के पैर वाली लेखनी कैसे वर्णन कर सकती है। विशेषकर उन मस्जिदों का क्या वर्णन हो सकता है, जो सादुल्ला खाँ चौक या चाँदनी चौक में हैं और जिन्हें जफर खाँ प्रसिद्ध नाम रौशनुद्दौला के कारीगरों ने तैयार किया था। हर एक गुंबद के शिखर मीनारों के साथ ऊपर की ओर सुनहले ताँबों से चमक रहे हैं। सूर्य तथा चंद्र के उदय के समय इनके प्रकाश आकाश की आँख को बंद कर देते हैं। इस कारण कि बहुत दिनों से ईश्वरी छाया के झंडों का साया इस मस्जिद पर पड़ता रहा। प्राचीर के बाहर हर ओर के रहनेवालों का यही स्थान था, जो उसके चारों ओर रहते थे। सातों देश के आदमियों के झुंड के झुंड आने से हर गली व बाजार भरा हुआ था और प्रत्येक गृह धन माल से भरा पुरा था, जो नगरों के लिए अनिवार्य है। हर एक दूकान अनेक देश के अलभ्य तथा अमूल्य वस्तुओं से भरी हुई थी। इसी से नादिरशाही उपद्रव में इस नगर पर गहरी चोट पहुँची और थोड़े ही समय में फिर वैसी ही हालत को पहुँच गया प्रत्युत् पहिले से भी अच्छी हालत को पहुँच गया। उसके मानचित्र तथा विवरण का चित्रण लेखनी की शक्ति के परे हैं। बारीक कारीगरी तथा अच्छी कला का बाजार नित्य है और गान विद्या तथा जलसों का हृदय से संबंध है। तीव्रगामी लेखनी के पैर इस आश्चर्यजनक स्थान की

विशेषताओं के वर्णन में लँगड़े हो गए हैं इसलिए 'फरोगी' कश्मीरी के एक शैर पर संतोष करता हूँ, जिसे इस नगर पर उसने बनाया है। शैर—

यदि संसार को अपने से कुछ अच्छा याद हो तो यही शाहजहानाबाद होगा।

प्राचीन दिल्ली, जो हिंदुस्तान के बड़े तथा पुराने नगरों में से है, पहिले इंद्रप्रस्थ कहलाता था। लंबाई एक सौ चौदह दर्जा व अड़तीस दकीका और चौड़ाई अट्ठाईस दर्जा व पंद्रह दकीका थी। यद्यपि कुछ लोग इसे दूसरे इकलाम में मानते हैं पर है तीसरे में। सुलतान कुतुबुद्दीन तथा सुलतान शम्सुद्दीन दुर्ग पिथौरा में रहते थे। सुलतान गियासुद्दीन बलबन ने दूसरे दुर्ग की नींव डाली पर उसको अशुभ समझा। मुइज्जुद्दीन कैकुबाद ने जमुनाजी के किनारे नए नगर की नींव डाली, जिसे केलीगढ़ी कहते हैं। अमीर खुसरो किरानुस्सादेन में इस नगर की प्रशंसा करता है। शैर—

ऐ दिल्ली और ऐ सादे बुतो।
पाग बाँधे हुए और चीरा टेढ़ा रखे हुए।

हुमायूँ का मकबरा अब भी इसी नगर में है। सुलतान अलाउद्दीन ने दूसरा नगर बसाकर उसका नाम सिरी रखा। इसके बाद तुगलक शाह ने तुगलकाबाद बसाया। इसके अनंतर इसके पुत्र सुलतान मुहम्मद ने नया नगर और अच्छे प्रासाद बनवाए। सुलतान फीरोज ने अपने नाम पर बड़ा नगर बसाया और जमुना नदी को काटकर पास लाया। फीरोजाबाद से तीन कोस पर दूसरा महल जहाँनुमा नाम से बनवाया।

जब हुमायूँ का समय आया तब इंद्रप्रस्थ दुर्ग को बनवाकर उसका दीनपनाह नाम रखा। शेर खाँ सूर ने अलाउद्दीन की दिल्ली को उजाड़ कर नया नगर तैयार कराया। इन नगरों के चिह्न स्पष्ट मिलते हैं। इस प्रांत की लंबाई पलोल से लुधियाना तक, जो सतलज नदी पर है, एक सौ साठ कोस है और चौड़ाई रेवाड़ी सरकार से कमायूँ की पहाड़ी तक एक सौ चालीस कोस है। दूसरे हिसार से खिज्राबाद तक एक सौ तीस कोस है। पूर्व में आगरा, उत्तर-पूर्व के बीच अवध प्रांत के अंतर्गत खैराबाद, उत्तर में पार्वत्य स्थान, दक्षिण में आगरा व अजमेर और पश्चिम में लुधियाना तथा गंगा का स्रोत है। इस प्रांत में दूसरी बहुत सी नहरें हैं। इस प्रांत के उत्तरी पहाड़ को कमायूँ कहते हैं। सोना, चाँदी, सीसा, ताँबा, हड़ताल तथा सुहागा की खानें हैं। कस्तूरी मृग, पहाड़ी बैल, रेशम के कीड़े, बाज व शाहीन तथा अन्य शिकारी जानवर और हाथी व घोड़े बहुत हैं। इस प्रांत में आठ सरकार और दो सौ बत्तीस पर्गने हैं तथा इसकी आय अकबर के समय में साठ करोड़ सोलह लाख पंद्रह हजार पाँच सौ पचपन दाम थी। जब शाहजहाँ ने नया नगर बसाकर शाहजहानाबाद नाम से राजधानी बना लिया तब महालों के बढ़ने से बारह सरकार तथा दो सौ इक्यासी महाल हो गए। इसकी आय एक सौ बाईस करोड़ उंतीस लाख पचास हजार एक सौ सैंतीस दाम हो गई।

इस प्रांत की ओर जो हिंदुस्तान के अच्छे नगरों से युक्त है, तीन फस्लें होती हैं। आबान (मार्गशीर्ष) के आरंभ से बहमन (फाल्गुन) तक जाड़ा रहता है और आजर (पूस) तथा दी

(माघ) में ठंढक बहुत पड़ती है। इसके पहिले तथा बाद के महीनों में ठंढक रहती है पर अधिक नहीं। इस फसल की ऋतु की खूबी हिंदुस्तान में यह है कि सैर तथा अहेर इच्छा भर किया जा सकता है। दूसरी गर्मी अस्फंदियार (चैत्र) के आरंभ से खुरदाद (आषाढ़) के अंत तक रहती है। अस्फंदियार में हिंदुस्तान के बहार (बसंत) का आरंभ है, पूर्णरूप से। फरवरदी (वैशाख) भी साधारण है। इन दो महीनों में सवारी व परिश्रम कर सकते हैं। अर्दे बिहिश्त (ज्येष्ठ) भी बुरा नहीं है पर बिना आवश्यकता के परिश्रम नहीं हो सकता। खुरदाद में बड़ी गर्मी पड़ती है। तीसरा वर्षा काल है। जब वर्षा होती रहती है हवा अच्छी रहती है और नहीं तो खुरदाद से बढ़कर गर्मी होती है। अमरदाद (भाद्रपद) ठीक वर्षा का महीना है और बड़ी अच्छी हवा चलती है। कभी कभी ऐसा होता है कि एक दिन में दस पंद्रह बार बर्षा होती है और रंगीन बादल दिखलाई देते हैं। यह काल भी हिंदुस्तान की खूबियों में से है। शहरयार (आश्विन) में भी वर्षा होती है पर इसके पहिले के महीने सी नहीं। वर्षा का अंतिम महीना मेहर (कार्तिक) है। इस समय की वर्षा रबी व खरीफ दोनों को लाभदायक है। प्रतिदिन एक पहर बाद गर्म हो जाता है और रात्रि ठंढी होती है, यदि वर्षा हुई तो बरसात नहीं तो गर्मी। परंतु गर्मी की हवा में उमस नहीं होती। वर्षा काल में पानी न बरसने तथा हवा न चलने से उमस होती है। ये तीनों ऋतु कुल हिंदुस्तान में होते हैं पर हवा में भिन्नता रहती है।

मखसूस खाँ

यह सईद खाँ चगत्ता[1] का छोटा भाई था। जिस समय अकबर धावा करता हुआ गुजरात गया तब मुलतान के सूबेदार सईद खाँ को उस ओर बिदा कर इसको अपने साथ ले लिया। २१ वें वर्ष में यह शहबाज खाँ के साथ गजपति की चढ़ाई पर नियत हुआ। जब २६ वें वर्ष में बादशाह ने शाहजादा सुलतान मुराद को सेना सहित काबुल की ओर मिर्जा मुहम्मक हकीम को दंड देने के लिए भेजा तब इसे सेना के बाएँ भाग में स्थान मिला। इसके बाद जब बादशाह ने स्वयं काबुल जाकर मिर्जा मुहम्मद हकीम का दोष क्षमा कर दिया और जलालाबाद की ओर जहाँ बड़ी सेना मौजूद थी फुर्ती से गया तब उक्त खाँ साथ में था। उड़ीसा की चढ़ाई में इसने बहुत प्रयत्न किया था, जो राजा मानसिंह के आधिपत्य में पूर्ण हुई थी। इसके अनंतर शाहजादा सुलतान सलीम के साथ नियुक्त होकर ४६ वें वर्ष में उसके साथ सेवा में उपस्थित हुआ और इसे तीन हजारी मंसब मिला। जहाँगीर के राज्यकाल के आरंभ में जीवित था। मृत्यु की तारीख देखने में नहीं आई। इसके पुत्र मकसूद के लिए जिससे उसका

---

१. मुगल दरबार के पाँचवें भाग में इसका विवरण दिया गया है।

पिता प्रसन्न नहीं था, जहाँगीर की राज्यगद्दी पर इसके बड़े भाई सईद खाँ चगत्ता ने मंसब के लिए प्रार्थना की थी जिसपर बादशाह ने उत्तर दिया कि जिससे उसका पिता अप्रसन्न है वह कैसे खुदा की कृपा तथा बादशाह की दया पा सकता है[1]।

---

१. जहाँगीर नामा में ये ही शब्द दिए हुए हैं।

*

मजनूँ खाँ काकशाल

यह एक अच्छा तथा ऐश्वर्यशाली सर्दार था। हुमायूँ के समय इसे नारनौल जागीर में मिला था। जब हुमायूँ की मृत्यु हो गई तब शेरशाह के एक अच्छे दास हाजी खाँ ने भारी सेना लेकर इस दुर्ग को घेर लिया, जिससे मजनूँ खाँ बहुत कष्ट में पड़ गया। हाजी खाँ के साथी राजा भारामल कछवाहा ने शील तथा वीरता दिखलाकर मजनूँ खाँ को संधि के साथ दुर्ग से बाहर लाकर दिल्ली भेज दिया। जब अकबर बादशाह हुआ तब इसे मानिकपुर जागीर में मिला। जिस समय खानजमाँ[1] तथा उसके भाई ने शत्रुता और विद्रोह का झंडा खड़ा किया उस समय इसने दृढ़ता से उनका सामना कर राजभक्ति दिखलाई। जिस युद्ध में खानजमाँ अपने भाई के साथ मारा गया उसमें मजनूँ खाँ ने बादशाह के साथ रहकर बहुत प्रयत्न किए। १४ वें वर्ष में बादशाह के आज्ञानुसार कालिंजर दुर्ग घेर लिया, जो भारत के प्रसिद्ध दुर्गों में से था। इस दुर्ग को ठट्टा[2] के शासक राजा रामचंद्र ने पठानों की गिरती हालत में भारी नगद दाम देकर बहार खाँ से ले लिया था। जब चित्तौड़ तथा रंतभँवर के दुर्गों की विजय का

---

१. मुगल दरबार भाग २ पृ० २८१-२८८ देखिए।

२. ठट्टा भूल से लिख गया है, भट्टा चाहिए जिसे बघेलखंड भी कहते हैं।

समाचार फैला तब राजा ने दुर्ग को मजनूँ खाँ को सौंप दिया और उसकी ताली २६ सफर सन् ६७७ हि० को दरबार भेज दिया। उस दृढ़ दुर्ग की अध्यक्षता बादशाह ने उक्त खाँ को सौंप दिया। १७ वें वर्ष में खानखानाँ मुनइम खाँ के साथ यह गोरखपुर की रक्षा को गया।

संयोग से उसी वर्ष गुजरात की चढ़ाई के आरंभ में बादशाह के साथ रहते हुए बाबा खाँ काकशाल की मीर तुजुक शहबाजखाँ से प्रबंध के संबंध में बातें करने के कारण भर्त्सना हुई थी। झूठे चुगुलखोरों ने खानखानाँ की सेना में यह गप्प उड़ा दी कि बाबा खाँ, जब्बारी, मिर्जा मुहम्मद और दूसरे काकशाल शहबाज खाँ को मारकर विद्रोही मिर्जों के यहाँ चले गए हैं और बादशाह ने लिखा है कि मजनूँ खाँ को कैद कर लें। उक्त खाँ ने मार्ग ही में कुल काकशालों को सेना से अलग कर लिया। सेनापति ने बहुत समझाया कि समाचार झूठा है, इसमें सचाई नहीं है पर कोई लाभ नहीं हुआ। इसके अनंतर जब दरबार से पत्र पहुँचे कि बाबा खाँ और जब्बारी अपनी अच्छी सेवाओं के कारण बादशाह अकबर के कृपापात्र हैं तब मजनूँ खाँ अपने कार्य से लज्जित होकर खानखानाँ के पास पहुँचा, जब वह गोरखपुर विजय कर लौटा था। इसके अनंतर बंगाल तथा बिहार की विजय में सेनापति के साथ रहकर इसने खूब प्रयत्न किए। सन् ६८२ हि० में खानखानाँ के प्रयत्नों से बंगाल की विजय होने पर दाऊद खाँ किर्रानी उड़ीसा की ओर चला गया और काला पहाड़, सुलेमान तथा बाबू मंगली घोड़ा घाट को चले गए। खानखानाँ ने उस प्रांत की राजधानी टाँडा में निवासस्थान बनाया और विजयी

सेना को चारों ओर भेजा जिससे लगे हाथ उस प्रांत का कुल कुप्रबंध तथा झगड़ा मिट जाय। मजनूँ खाँ कुछ अन्य सर्दारों के साथ घोड़ाघाट भेजा गया। काकशालों ने उस ओर युद्ध कर अपनी वीरता दिखलाई तथा खूब लूट बटोरा। घोड़ाघाट के शासन का दम भरनेवाला सुलेमान मंगली परलोक गया। अफगानों के परिवार कैद हुए और वह बस्ती अधिकार में चली आई।

मजनूँ खाँ ने सुलेमान खाँ मंगली की पुत्री से अपने पुत्र जब्बारी बेग का विवाह बाँधा और उस प्रांत को काकशालों में बाँट दिया। उसी वर्ष अर्थात् २० वें वर्ष में खानखानाँ दाऊद को दंड देने के लिए गंगा की ओर रवाना हुआ। कूच की ओर भागे हुए बाबू मंगली तथा काला पहाड़ ने जलालुद्दीन सूर के संतानों से मिलकर फिर विद्रोह कर काकशालों पर चढ़ाई कर दी। इन सब ने लज्जा तथा सम्मान को धूल में मिला कर कहीं ठहरने का साहस नहीं किया और टाँडा भागकर चले आए। मजनूँ खाँ मुअइअन खाँ के साथ खानखानाँ की प्रतीक्षा में टाँडे में ठहरा रहा। खानखानाँ दाऊद की संधि के अनंतर शीघ्रता से लौटा और दूसरी बार मजनूँ खाँ की सर्दारी में सेना घोड़ाघाट भेजी। इसने नए सिरे से उस प्रांत को खाली कराकर उचित प्रबंध किया। उसी बीच इसकी मृत्यु हो गई। इसका मंसब तीन हजारी था। तबकात के लेखक ने पाँच हजारी लिखते हुए लिखा है कि इसके पास निज के पाँच सहस्र सवार थे। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र जब्बारी कुछ वर्षों तक नौकरी तथा सेवा कार्य में लगा रहा। जब दाग की बात उठी और काकशालों का झुंड आशंकित हो विद्रोह का विचार करने लगा तब यह भी उनका साथी हो गया

था। मुजफ्फर खाँ तुर्बती[1] के मारे जाने पर, जो कुछ समय तक सफल हुआ था और हर एक के लिए पदवी निश्चित की थी, इसकी पदवी ख्वाजाजहाँ हुई। जब इस झुंड ने मासूम खाँ काबुली से अलग होकर क्षमा याचना की तब सेवा में आने पर अकबर ने इसको बहुत दिनों तक कैद में रखा। ३६ वें वर्ष में इसको लज्जित देखकर क्षमा कर दिया।

---

१. मुगल दरबार के इसी भाग में इसकी जीवनी दी गई है।

मतलब खाँ मिर्जा मतलब

यह मुख्तार खाँ सब्जवारी का नवासा था। इसकी माँ गुलरंग बानू बेगम का निकाह उक्त खाँ के छोटे भाई सैयद मिर्जा मुहसिन के साथ हुआ था। उक्त खाँ अपने सौभाग्य तथा अपनी माँ की सिफारिश से औरंगजेब के समय में काम पाकर अहदियों का बख्शी नियत हुआ। २६ वें वर्ष में बहरःमंद खाँ का प्रतिनिधि होकर जो अनंदी के थाने को जा रहा था, इसने द्वितीय बख्शी का कार्य किया। इसी वर्ष सैफुल्ला खाँ के स्थान पर मीर तुजुक नियत हुआ। ४१ वें वर्ष में इसे खाँ की पदवी मिली तथा मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी ५०० सवार का हो गया। बादशाह से इसने अपने को कर्मठ प्रगट किया था इसलिये बहुधा उपद्रवियों को दंड देनेवाली सेनाओं की सजावली या दरबार की सेवाओं की नायबी इसे मिलती और उन कार्यों को ठीक करने से मंसब में उन्नति होती रही। इसके अनंतर जब बहरःमंद खाँ के स्थान पर मीर बख्शी का उच्चपद खाँ नसरतजंग को दिया गया और वह अधिकतर घूमने तथा अभागे मराठों का पीछा करने में लगा रहता था इसलिए मतलब खाँ अस्थायी रूप में उसका प्रतिनिधि होकर वाकिनकीरा की विजय के अनंतर दरबार में बख्शीगीरी का काम पूरा करता रहा। इस कारण इसकी सर्दारी बढ़ गई और मंसब में सवारों की उन्नति तथा डंका मिला। औरंगजेब के राज्यकाल के अंत में यह दरबारी सर्दारों में एक तथा

प्रभावशाली मुत्सद्दियों में, जो कुछ आदमियों से अधिक न थे, एक था। यह पड़ाव के पास के शत्रुओं को दमन करने पर भी नियत था। औरंगजेब की मृत्यु पर सभी सर्दारगण शाहजादा मुहम्मद आजमशाह के पक्ष में हो गए। यह भी उन्हीं में शामिल होकर पुरस्कृत हुआ तथा इसे मुर्तजा खाँ की पदवी मिली। यह निर्धन तथा रूखे स्वभाव का मनुष्य था। नेअमत खाँ मिर्जा मुहम्मद हाजी ने, जिससे एक भी भाषा नहीं छूटी थी, उस समय यह शैर कहा—

सिधाई को छोड़ता हूँ, टेढ़ेपन में होना चाहता हूँ।
यदि यह मुर्तजा हो तो मैं खारिजी (न माननेवाला)
होना चाहता हूँ॥

उक्त शाहजादे के साथ बहादुरशाह के युद्ध में यह बहुत घायल हुआ। खानखानाँ मुनइम खाँ इसको युद्धस्थल से महावत के पीछे बैठाकर लिवा लाया। उन घावों के कारण इसकी मृत्यु हो गई। यह कद्दावर तथा लंबा मनुष्य था और मूर्खता तथा सिधाई के लिए प्रसिद्ध था। पिता का प्रभाव संतान पर पड़ता ही है इससे इस मृत के संतानों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। इसके दो पुत्र थे। बहादुरशाह के समय प्रथम पुत्र को पिता की पदवी मिली, जो जानसिपार खाँ बहादुर-दिल का दामाद था। दूसरा तरबियत खाँ मीर आतिश का दामाद था और इसे अबू तालिब खाँ की पदवी मिली। फर्रुखसियर के राज्यकाल में प्रथम खिरी गुजरात का फौजदार हुआ। यहाँ से बदले जानेपर नए संबंध के कारण, जिसमें इसकी भांजो तथा मृत कामयाब खाँ की पुत्री अमीरुलूउमरा हुसेन अली खाँ को ब्याही गई थी,

यह दयावान सर्दार दक्षिण जाकर औरंगाबाद में रहने लगा और इसका छोटा भाई गुजरात प्रांत के अंतर्गत कोद्र: व थासर: का फौजदार हुआ। ये समृद्धिशाली हो उठे। इसके बाद अमीरुल्-उमरा ने इसे बगलाना की फौजदारी पर नियत कर दिया। उक्त खाँ ने अच्छी सेना के साथ आलम अली खां के पास पहुँच कर नवाब आसफजाह के युद्ध में अपना कुल ऐश्वर्य नष्ट कर दिया। उसी समय हैदराबाद का शासक मुबारिज खाँ फतहजंग से मिलने के लिए आया हुआ था। उसने मतलब खाँ की पुत्री को अपने पुत्र ख्वाजा असद खाँ के लिए माँगा। कहते हैं कि दुरवस्था के कारण शादी के लिए सामान ठीक करने को कुछ धन भी निश्चय हुआ था पर मतलब खाँ ने अधिक धन माँगा और उसने अस्वीकार कर दिया। इसपर क्रुद्ध हो उक्त खाँ ने मध्यस्थों से, जो संदेश लाए थे, कहा कि आखिर क्या समझे कि यह लड़की मुख्तार के वंश की है। उनमें से एक ने, जो चपल प्रकृति का था, कहा कि वे भी इस दामादी के कारण मुख्तार के काम करनेवाले हैं। अबूतालिब खाँ भी आपत्ति में पड़ा हुआ था, इसलिए उक्त खाँ के साथ हैदराबाद जाकर कोलपाक के अंतर्गत शाहपुर की दुर्गाध्यक्षता तथा अन्य कृपाएँ पाकर आराम से रहने लगा। नवाब आसफजाह के युद्ध में, जो मुबारिज खाँ से हुआ था, यह भी घायल हुआ। औरंगाबाद में रहते हुए दोनों भाई समय आने पर मर गए।

मरहमतखाँ बहादुर गजनफरजंग

इसका नाम मीर इब्राहीम था और यह अमीर खाँ काबुली का पुत्र था। औरंगजेब के ४८ वें जलूसी वर्ष में इसका मंसब बढ़कर एक हजारी ४०० सवार का हो गया। मुहम्मद फर्रुख-सियर के समय में मालवा प्रांत के अंतर्गत मांडू का दुर्गाध्यक्ष तथा फौजदार नियत होकर इसने वहाँ के उपद्रवियों को दंड देने में नाम कमाया। उक्त बादशाह के राज्य के अंत में जब हुसेन अली खाँ दक्षिण से राजधानी लौट रहा था तब यह मार्ग में होते हुए भी लज्जा के मारे या यह समझकर कि बादशाह उससे अप्रसन्न हैं बीमारी के बहाने मिलने नहीं आया। हुसेन अली खाँ ने दरबार पहुँचते ही इसे उस पद से हटा दिया और नियुक्त सर्दार[1] को अधिकार दिलाने के लिए मालवा के तत्कालीन शासक नवाब निजामुल्मुल्क आसफजाह को लिखा। इसने इसे समझा-कर दुर्ग से बुलवा लिया और इस कारण कि दरबार जाने का इसका मुख नहीं था इसलिए इसे मालवा के महाल सिरौंज आदि का दुर्गाध्यक्ष बना दिया। उसी समय आसफजाह ने दक्षिण जाने का निश्चय किया तब यह अच्छी सेना लेकर उसके साथ हो गया। सैयद दिलावर अली खाँ के युद्ध में यह बाएँ भाग का अध्यक्ष था। खूब प्रयत्न कर यह हरावल के बराबर जा पहुँचा और शत्रु के साथ के बहुत से राजपूत मारे गए। आलम अली खाँ के युद्ध

---

१. ख्वाजम कुली खाँ।

में भी इसने बहुत प्रयत्न कर वीरता दिखलाई। विजय के बाद इसका मंसब बढ़कर पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया और मरहमत खाँ बहादुर गजनफरजंग की पदवी के साथ यह बुर्हान-पुर का सूबेदार नियत हुआ। खानदेश के रावलों को दमन करने में इसने बहुत प्रयत्न किया। परंतु जब इसके कर्मचारियों के अत्याचार की फर्याद आसफजाह तक पहुँची तब खानदेश के शासन के बदले बगलाना की फौजदारी इसे मिली और चौदह लाख रुपए की जागीर इसके नाम नियत हुई। इससे यह प्रसन्न न होकर तथा मुहम्मदशाह के राज्य के दृढ़ होने और बारहा के सैयदों के प्रभुत्व के नष्ट होने का समाचार सुनकर दरबार गया तथा कुछ दिन मेवात का फौजदार और बाद को पटना का सूबे-दार हुआ। समय आने पर इसकी मृत्यु हो गई। इसका पुत्र बकाउल्ला खाँ, जो अबुल्मंसूर खाँ सफदरजंग के भाई मिर्जा मुहसिन का दामाद था, बहुत दिनों तक उक्त खाँ का प्रतिनिधि होकर इलाहाबाद का प्रबंध करता रहा। अहमद खाँ बंगश के उपद्रव में इसने दृढ़ रह कर दुर्ग की अफगानों से रक्षा की।

मसीहुद्दीन हकीम अबुल् फतह

यह गीलान के मौलाना अब्दुल् रज्जाक का पुत्र था, जो हकीमी में बहुत अनुभव रखता था और जो बहुत वर्षों तक उस प्रांत का सदर रहा। जब सन् ९७४ हि० में ईरान के सम्राट् शाह तहमास्प का गीलान पर अधिकार हो गया और वहाँ का राजा खान अहमद अनुभवहीनता से कारागार में बंद हुआ तब मौलाना स्वामिभक्ति तथा सचाई के कारण शिकंजे और कैद में मर गया। हकीम अबुल् फतह अपने दो भाई हकीम हुमाम और हकीम नूरुद्दीन के साथ, जिसमें हरएक योग्यता तथा बुद्धिमानी के लिये बहुत प्रसिद्ध था, अपने देश से दूर होकर निर्धनता के साथ हिंदुस्तान आया। २० वें वर्ष में अकबर की सेवा में पहुँच कर तथा योग्य मनसब पाकर तीनों भाई सम्मानित हुए।

हकीम अबुल् फतह दूसरे प्रकार की योग्यता रखता था। संसार की प्रगति समझने और अवसर से लाभ उठाने की योग्यता रखने से दरबार में यह शीघ्र उन्नति कर २४ वें वर्ष में यह बंगाल का सदर और अमीन नियत हुआ। जब बंगाल और बिहार के विद्रोही सरदारों ने मिलकर वहाँ के सूबेदार मुजफ्फर खाँ को बीच में से उठा दिया और हकीम तथा बहुत से बादशाही हितैषी गण कैद हो गए तब यह एक दिन अवसर पाकर दुर्ग से नीचे कूद पड़ा और बड़ी कठिनाई तथा परिश्रम से सुरक्षित स्थान में पहुँच कर दरबार को रवाना हो गया। जब यह दरबार में

पहुँचा तब इसका विश्वास और सम्मान इतना बढ़ गया कि यह अपने बराबर वालों से आगे निकल गया। यद्यपि इसका मनसब एक हजारी से अधिक न हुआ पर प्रतिष्ठा में यह वजीर और वकील से आगे बढ़ गया था। ३० वें वर्ष में जब राजा बीरबल जैन खाँ कोका की सहायता को, जो यूसुफ जई जाति को दंड देने के लिए भेजा गया था, नियत हुआ तब हकीम भी एक स्वतंत्र सेना का अध्यक्ष बनाकर साथ सहायतार्थ भेजा गया। परंतु ये दोनों आपस में मिलकर कार्य न कर सके और इस प्रकार मनमाना चलने का यह फल हुआ कि राजा उस विद्रोह में मारा गया और हकीम तथा कोकलताश उस विप्लव से बड़ी कठिनाई से बचकर दरबार आए। कुछ दिन तक ये दंडित रहे। ३४ वें वर्ष सन् ९९७ हि० (सं० १६४६) में जब बादशाही सेना कशमीर से लौटकर काबुल की ओर रवाना हुई तब यह दमतूर के पास मर गया। आज्ञा के अनुसार ख्वाजा शमसुद्दीन खवाफी ने इसके शव को हसनअब्दाल ले जाकर उस गुंबद में, जिसे ख्वाजा ने बनवाया था, मिट्टी में सौंप दिया। इस घटना के कुछ दिन पहिले अल्लामा अमीर अजदुद्दौला शीराजी भी मरे थे। इस पर साव जी[1] ने यह तारीख कहा। शैर का अर्थ—

---

१. इसका नाम सलाहुद्दीन सरफी था और ईरान के सवाह का निवासी होने के कारण सवाहजी या सावजी कहलाया। मआसिरे रहीमी में इसका उल्लेख है। यह दरवेश की चाल पर रहता था और कुछ दिन गुजरात तथा लाहौर में रहा। फैजी के साथ यह दक्षिण भी गया था।

इस वर्ष दो अल्लामा संसार से उठ गए। अंतिम गए और अगले गए॥ दोनों ने कभी मित्रता न की इससे तारीख न हुई कि 'हर दो बाहम रफ्तंद' (दोनों साथ गए)।

अकबर ने, जो इस पर विशेष कृपा रखता था, बीमारी के समय इसका हाल कृपा कर पुछवाया था और इसकी मृत्यु पर शोक भी प्रकट किया था। जब वह हसन अब्दाल में पहुँचा तब इसकी आत्मा की शांति के लिए इसकी कब्र पर फातिहा पढ़ा था। हकीम अच्छे मस्तिष्क वाला, मर्मज्ञ तथा बुद्धिमान था। फैजी ने उसकी शोक-कविता में कहा है। शैर का अर्थ इस प्रकार है—

उसकी तात्विक बातें भाग्य की अनुवाद थीं। सुकार्यों से उसके उपाय दुभाषिए की स्वीकृति थी।

सांसारिक कार्यों में यह आलस्य नहीं करता था। इससे जो कुछ प्रकट होता वह बुद्धिमत्ता में गंभीर निकलता। परोपकार, उदारता तथा गुणों में अपने समय में अद्वितीय था। इसके समय के कवियों ने इसकी प्रशंसा की है, विशेष कर मुल्ला उर्फी शीराजी ने, जिसने बहुधा कसीदे इसकी प्रशंसा में कहे हैं। उसके कसीदों में से एक किता यह है। (यहाँ चार शैर दिए गए हैं, जिनका अर्थ नहीं दिया गया है।)

इसका भाई हकीम नूरुद्दीन 'करारी' उपनाम रखता था और विद्वान् कवि था। कविता भी अच्छी करता। यह शैर उसका है जिसका अर्थ इस प्रकार है—

मृत्पु को अपयश क्या दूं क्योंकि तुम्हारे कटाक्ष रूपी तीरों से घायल हूँ। यदि अन्य सौ वर्ष बाद भी मरूँगा तो इन्हीं से मारा जाऊँगा।

जब भारी उपद्रव शांत हुआ तब यह अकबर बादशाह की आज्ञा से बंगाल गया था। वहीं बिना उन्नति किए बड़े विद्रोह में समाप्त हो गया। इसकी कई कहावतें थीं कि दूसरों के सामने अपने साहस की बातें प्रगट करना लोभ दिखलाना है, बाजारू सेवकों पर दृष्टि रखना अपना स्वभाव बिगाड़ना है, जिस पर विश्वास करो वही विश्वासपात्र है। यह हकीम अबुल् फतह को संसारी जीव कहता और हकीम हुमाम को परलोक का मनुष्य समझता था तथा अपने को दोनों से अलग रखता था। हकीम हुमाम का वृत्तांत अलग दिया गया है। इसका एक और भाई हकीम लुत्फुल्ला ईरान से आकर हकीम अबुल् फतह के द्वारा बादशाही सेवकों में भर्ती हो गया और उसे दो सदी मनसब मिला। यह शीघ्र मर गया। इसका पुत्र हकीम फतह उल्ला संपत्तिवान तथा योग्य पुरुष था। जब जहाँगीर की इस पर कृपा नहीं रह गई तब एक दिन दिआनत खाँ लंग ने इस पर राजद्रोह का आरोप कर प्रार्थना की कि सुलतान खुसरो के विद्रोह के समय उसने मुझसे कहा था कि इस समय यही उचित है कि उसे पंजाब प्रांत देकर इस झगड़े को समाप्त कर दें। फतह उल्ला ने यह कहना अस्वीकार कर दिया। दोनों एक दूसरे के विरुद्ध शपथ लेने लगे। अभी पंद्रह दिन नहीं बीते थे कि झूठे शपथ ने अपना काम किया। आसफ खाँ जाफर के चचेरे भाई नूरुद्दीन ने सुलतान खुसरू को बचन दिया कि अवसर मिलते ही वह उसे कैद से निकाल कर गद्दी पर बैठावेगा। इसने उसका साथ दिया। दूसरे वर्ष काबुल से लाहौर लौटते समय दैवयोग से यह बात बादशाह तक पहुँची तब नूरुद्दीन की खोज के बाद उसके दूसरे साथियों के

साथ यह भी दंड को पहुँचा। हकीम फतह उल्ला को गदहे पर उलटा सवार कर पड़ाव दर पड़ाव साथ लाए और उसके बाद उसे अंधा कर दिया[1]।

---

१. अन्य इतिहास ग्रंथों में इसे प्राणदंड देना लिखा है पर तुजुके जहाँगीरी में भी अंधा करना ही उल्लिखित है।

महमूद खाँ बारहा सैयद

इस जाति का यह प्रथम पुरुष था, जो तैमूरिया वंश के राज्य में सरदारी को पहुँचा। पहिले यह बैराम खाँ खानखानाँ की सेवा में था। अकबरी राज्य के १ म वर्ष में अली कुली खाँ शैबानी के साथ हेमूँ को दमन करने पर नियत हुआ, जो तर्दी बेग खाँ के पराजय पर घमंड से भारी सेना एकत्र कर दिल्ली से आगे रवाना हुआ था। २ रे वर्ष शेर खाँ सूर के दास हाजी खाँ को दंड देने पर नियुक्त हुआ जो अजमेर तथा नागौर पर अधिकार कर स्वतंत्रता का दम भरने लगा था। ३ रे वर्ष दुर्ग जैतारण पर अधिकार करने को नियत होकर उसे राजपूतों से विजय कर लिया। जब बैराम खाँ का प्रभुत्व मिट गया तब बादशाही सेवा में भर्ती होकर इसने दिल्ली के पास जागीर पाई। ७ वें वर्ष में जब शम्सुद्दीन मुहम्मद खाँ अतगा के मारे जाने पर सशंकित होकर खानखानाँ मुनइमबेग दूसरी बार काबुल की ओर भागा तब सैयद महमूद खाँ, जो अपनी जागीर के महाल में था, उसको पहिचानकर सम्मान के साथ बादशाह के पास लिवा लाया। इसके अनंतर इब्राहीम हुसेन मिर्जा का पीछा करने पर नियत हुआ। इसके बाद जब स्वयं बादशाह ने इस काम को करना चाहा और आगे गए हुए सर्दारों को आदमी भेजकर लौटा लिया तब उक्त खाँ शीघ्रता करके सरनाल कस्बे के पास बादशाह की सेवा में पहुँच गया और अच्छा प्रयत्न किया। जब उक्त मिर्जा

परास्त होकर आगरे की ओर भागा तब यह अन्य सर्दारों के साथ उक्त मिर्जा का पीछा करने पर नियुक्त हुआ। १८ वें वर्ष में गुजरात प्रांत से बादशाह के लौटने के पहिले नीचे के सर्दारों में नियत हुआ। जब बादशाह धावा करते हुए मेरठ की सीमा पर पहुँचे तब यह सेवा में उपस्थित हुआ। मुहम्मद हुसेन मिर्जा के युद्ध में जब बादशाह ने स्वयं थोड़े आदमियों के साथ सेना का ब्यूह तैयार किया तब यह अन्य सर्दारों के साथ मध्य में स्थान पाकर युद्ध में निधड़क हो आगे बढ़कर बहादुरी से लड़ा। उसी वर्ष के अंत में बारहा के सैयदों तथा अमरोहा के सैयद महम्मद के साथ मधुकर बुंदेला के प्रांत पर नियत हुआ और वहाँ जाकर तलवार के जोर से अधिकार कर लिया। उसी के पास सन् ९८०हि० में इसकी मृत्यु हो गई। यह दो हजारी मंसब तक पहुँचा था।

बारह: शब्द से अर्थ है बारह मौजों का, जो जमुना तथा गंगा जी के बीच के दोआबे में संभल के पास स्थित है। उक्त खाँ परिवार वाला आदमी था। बादशाही सेवा में पहुँचकर वीरता तथा उदारता में नाम कमाया और सिधाई में ख्याति पाई। कहते हैं कि जब अकबर ने इसको मधुकर बुंदेला पर नियत किया तब इसने पूरा प्रयत्न कर विजय प्राप्त किया। इसके अनंतर जब सेवा में पहुँचा तब प्रार्थना की कि मैंने ऐसा और वैसा किया। आसफ खाँ ने कहा कि मीरान जी यह विजय बादशाह के इकबाल से हुई और समझो कि इकबाल नाम एक बादशाही सर्दार का होगा। उत्तर दिया कि तुम गलत क्यों कह रहे हो ? वहाँ बादशाही इकबाल न था, मैं था और हमारे भाई थे तथा तलवार दोनों हाथ से इस प्रकार मारता

था। बादशाह ने मुस्किराकर उस पर अनेक कृपाएँ कीं। एक दिन किसी ने व्यंग्य में इससे पूछा कि बारहा के सैयदों का वंश वृक्ष कहाँ तक पहुँचता है। इसने तुरंत आग के कुंड में जंघे तक खड़े होकर, जिसे मलंग के फकीरगण रात्रि में जलाया करते हैं, कहा कि यदि मैं सैयद हूँ तो आग असर न करेगा और यदि सैयद न हूँगा तो जल जाऊँगा। प्रायः एक घड़ी तक आग में खड़ा रहा और आदमियों के बहुत रोने गाने पर निकला। पैर में मखमल का जूता था जो नहीं जला था। उसके पुत्र सैयद कासिम और सैयद हाशिम[1] थे, जिनका वृत्तांत अलग दिया गया है।

---

१. मुगल दरबार भाग ३ पृ० ५७-८ देखिए।

महमूद, खानदौराँ सैयद

यह खानदौराँ नसरत जंग[1] का मध्यम पुत्र था। पिता की मृत्यु पर इसे एक हजारी १००० सवार का मनसब मिला। भाग्य की सहायता से तथा अच्छी प्रकार सेवा कार्य करते हुए ऐश्वर्य तथा संपत्ति अर्जन करने में यह अपने बड़े भाई सैयद महम्मद से आगे बढ़ गया। २२ वें वर्ष में इसका मनसब दो हजारी हो गया और कंधार की चढ़ाई में शाहजादा औरंगजेब बहादुर के साथ गया। २३ वें वर्ष में लौटते समय सादुल्ला खाँ के साथ सेवा में पहुँचा, जो साम्राज्य तथा प्रबंध कार्य में अग्रणी था। इसे पहिले पिता की पदवी नसीरी खाँ मिली और उसके बाद मालवा प्रांत में नियुक्ति और रायसेन की दुर्गाध्यक्षता और जागीरदारी मिली। ३० वें वर्ष जब मालवा का सूबेदार, जो उस प्रांत के कुल सहायकों के साथ दक्षिण के शासक शाहजादा महम्मद औरंगजेब के अधीन नियत हुआ कि अब्दुल्ला कुतुबशाह के दमन करने में सहायता दे तब यह भी वहाँ साथ गया। इस कार्य के सफलता-पूर्वक पूरा हो जाने पर यह अपने निवास-स्थान को लौटा। इसी वर्ष फिर बादशाही आज्ञा से दक्षिण जाकर उक्त शाहजादा के साथ आदिल शाही राज्य को लूटने तथा आक्रमण करने में बड़ी वीरता दिखलाई।

---

१. मुगल दरबार भाग ३ पृ० १५३-६१ पर इसकी जीवनी देखिए।

शिवाजी तथा मानाजी भोंसला ने बीजापुरियों के संकेत पर अहमद नगर के आसपास विद्रोह मचाकर कुछ महालों पर धावा कर दिया था इसलिए नसीरी खाँ तीन सहस्र सवार तथा कारतलब खाँ, एरिज खाँ आदि सरदारों के साथ उस ओर जाकर युद्ध में दत्तचित्त हुआ और शिवाजी के सैनिकों में से बहुतों को मार डाला। इसने स्वयं बीरगाँव में अपना निवास-स्थान बनाया, जिसमें बादशाही महालों तक इन उपद्रवियों से हानि न पहुँचे। बीदर तथा कल्याण दुर्गों के विजय के अनंतर बादशाहजादा के सहायक सरदारों के विषय में लिखे गए विवरण के बादशाह के पास पहुँचने पर हर एक को दरबार से योग्य उन्नति मिली। नसीरी खाँ का भी मनसब बढ़कर तीन हजारी १५०० सवार का हो गया। चढ़ाइयों में अच्छी सेवा तथा स्वामिभक्ति दिखलाने से शाहजादे की कृपा इस पर बराबर बढ़ती गई और विश्वास भी बराबर वृद्धि पाता चला गया। राजा जसवंतसिंह के युद्ध के अनंतर जब शाहजादे की सेना ने ग्वालियर के पास पड़ाव डाला तब नसीरी खाँ रायसेन दुर्ग से बुलाए जाने पर आलमगीर की सेवा में पहुँचकर खानदौराँ की पदवी से विभूषित हुआ। दाराशिकोह के साथ के युद्ध में यह सेना के बाएँ भाग का अध्यक्ष नियत हुआ और विजय के उपरांत इसका मनसब पाँच हजारी ५००० सवार दो सहस्र सवार दो अस्पा सेह अस्पा का हो गया। यह कुछ बादशाही सेना के साथ इलाहाबाद प्रांत का शासन करने और दुर्ग को लेने के लिए भेजा गया, जो अपनी दृढ़ता तथा दुर्भेद्यता के लिए प्रसिद्ध था और जिसमें दाराशिकोह की ओर से सैयद कासिम बारहा उस ओर के शासन के लिए ठहरा

हुआ था तथा दाराशिकोह के भागने का समाचार पाने पर भी स्वामिभक्ति की दृढ़ता दिखलाते हुए अधीनता न स्वीकार कर दुर्ग की दृढ़ता बढ़ा रहा था। नसीरी खाँ ने कर्मठता से फुर्ती से पहुँचकर दुर्ग को घेर लिया। इसके अनंतर जब शुजाअ युद्ध की इच्छा से बनारस से आगे बढ़कर इलाहाबाद के पास पहुँचा तब खानदौराँ घेरे से हाथ खींचकर शाहजादा सुलतान महम्मद के पास पहुँचा, जो अग्गल के रूप में दुर्ग के पास आ चुका था। जब शुजाअ ने अपने ऐश्वर्य का सामान लुटा दिया अर्थात् परास्त हो गया तब महम्मद सुलतान के अधीन एक सेना उसका पीछा करने पर नियत हुई और खानदौराँ भी उसके साथ नियत हुआ।

इसी समय इलाहाबाद का दुर्गाध्यक्ष सैयद क़ासिम बारहा, जो दाराशिकोह के लिखने पर शुजाअ के साथ हो गया था, उसके परास्त होने पर चालाकी से शुजाअ से आगे बढ़कर दुर्ग में पहुंच गया और उस अभागे के लिए दूरदर्शिता से अधिकार करने का मार्ग बंद कर दिया तथा अपने लाभ के विचार से इसने बादशाही अधीनता स्वीकार कर ली। सुलतान महम्मद के इलाहाबाद पहुँचने पर खानदौराँ से, जो इसके पहिले पहुँचकर घेरा डाल चुका था, प्रार्थी हुआ और उसके द्वारा अपने दोष क्षमा कराए। उक्त खाँ ने बादशाही कृपा का उसको वचन देकर दुर्ग का अधिकार ले लिया और उस प्रांत का शासन करने लगा। दूसरे वर्ष जब इस प्रांत की सूबेदारी बहादुर खाँ कोका को मिली तब बादशाही आज्ञा के अनुसार खानदौराँ उड़ीसा का सूबेदार नियुक्त होकर वहाँ गया और बहुत दिनों तक उस दूर देश में रहा। १० वें वर्ष सन् १०७७ हि० में इसकी वहीं मृत्यु हो गई।

महम्मद अमीन खाँ चीन बहादुर एतमादुद्दौला

यह आलमशेख के पुत्र मीर बहाउद्दीन का लड़का था, जिसका वृत्तांत कुलीज खाँ आबिद खाँ के हाल में दिया गया है। मीर बहाउद्दीन बहुत दिनों तक अपने पूर्वजों के स्थान पर बैठा रहा। जब उरकंज का शासक अनुस खाँ बोखारा के शासक अपने पिता अब्दुल् अजीज खाँ से युद्ध करने को तैयार हुआ तब मीर बहाउद्दीन पर उसका पक्ष लेने का आक्षेप लगाकर उसको उक्त पुत्र के साथ मार डाला। उक्त खाँ ने अपना देश छोड़कर हिंदुस्तान की ओर आने का विचार किया। औरंगजेब के ३१ वें वर्ष में दक्षिण में आकर दरिद्रावस्था में बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। दो हजारी १००० सवार का मंसब और खाँ की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। दुर्गों को लेने और शत्रुओं को दंड देने पर नियत हुआ। खाँ फीरोज जंग के साथ यह भी नियुक्त हुआ। ४२ वें वर्ष में जब काजी अब्दुल्ला सदर मर गया तब यह आज्ञानुसार दर्बार आकर सदर का खिलअत और तीन अँगूठी पन्ने की मीनेदार पाकर प्रतिष्ठित हुआ। जिस समय बादशाह ने दुर्ग खेलना को विजय करने जाकर उसे घेर लिया और जो विजय के अनंतर तसखुरलना कहलाया, तब उक्त खाँ २०० सवार की तरक्की पाकर नियत हुआ कि अम्बाघाटी से तालकोट जाकर दुर्ग वालों के लिए उस ओर का आने जाने का मार्ग बंद कर दे। उक्त खाँ साहस कर उस ओर गया और

बहुत प्रयत्न कर शत्रुओं के हाथ से पुश्ते को छीन लिया, जिसके उपलक्ष में उसे बहादुरी की पदवी मिली। ४८ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर साढ़े तीन हजारी १२०० सवार का हो गया। ४६ वें वर्ष वाकिनकीरा दुर्ग के घेरे में और वहाँ के जमींदार का पीछा करने में, जो भाग गया था, अच्छा काम दिखलाने के कारण उसका मंसब बढ़कर चार हजारी १२०० सवार का हो गया। इसके बाद शत्रुओं को दंड देने पर नियत होकर वहाँ से सही-सलामत लौटने पर ५१वें वर्ष में इसके मंसब में ३०० सवार बढ़ाए गए और इसे चीन बहादुर की पदवी मिली। यह सुलतान कामबख्श के साथ नियत था पर औरंगजेब की मृत्यु का समाचार सुनकर बिना सूचना दिए वहाँ से आजमशाह के पास चला गया। वहाँ की संगत भी मनचाही न देखकर मार्ग से अलग होकर औरंगाबाद आया क्योंकि उक्त शाहजादा हिंदुस्तान की ओर रवाना हो चुका था। इसके अनंतर जब बहादुरशाह विजयी होकर सुलतान कामबख्श से लड़ने के लिए दक्षिण की ओर आया तब यह सेवा में पहुँचकर बादशाह के हिंदुस्तान लौटने पर मुरादाबाद का फौजदार नियत हुआ। चौथे वर्ष अन्य लोगों के साथ इसने करद की चढ़ाई पर जाने की तैयारी की। जब महम्मद फर्रुखसियर बादशाह हुआ तब कुतबुल् मुल्क और हुसेनअली खाँ के द्वारा सेवा में पहुँचकर छ हजारी ६००० सवार का मंसब, एतमादुद्दौला नसरतजंग की पदवी और द्वितीय बख्शी का पद पाया। ५ वें वर्ष में मालवा प्रांत का शासक नियत हुआ। हुसेनअली खाँ ने दक्षिण से दर्बार रवाना होने पर किसी को उक्त खाँ के पास, जो उज्जैन में गिर्दावली कर रहा था, रोब

बढ़ानेवाला पर कृपा-संयुक्त संदेश भेजा। उसने शाही आज्ञा की प्रतीक्षा न कर राजधानी का मार्ग लिया। इस कारण दंडित होकर पद तथा मंसब से हटा दिया गया। इसी बीच हुसेन अली खाँ ने राजधानी पहुँचकर महम्मद फर्रुखसियर को कैद कर दिया। तब उक्त खाँ अपनी सेना के साथ सैयदों से जा मिला। सुलतान रफीउल् दरजात के राज्य में इसने पुराना मंसब और द्वितीय बख्शी का पद पाया। कुछ दिन बाद इसमें और हुसेन अली खाँ में मनोमालिन्य हो गया। जब हुसेन अली खाँ महम्मद-शाह के राज्य के आरंभ में मारा गया, जिसका वृत्तांत उसकी जीवनी में लिखा जा चुका है और उसका भांजा गैरत खाँ भी उद्दंडता कर मारा गया, तब उक्त खाँ का मंसब बढ़कर आठ हजारी ८००० सवार दोअस्पा सेहअस्पा हो गया। उसे एक करोड़ पचास लाख दाम, वजीरुल् मुमालिक की पदवी तथा वजीर का पद मिला। उसी वर्ष इस नियुक्ति के चार महीने बाद सन् ११३३ हि० में यह मर गया। यह एक वीर तथा संतोषी सर्दार था। साथियों, विशेषकर मंगोलियों, के साथ उन कामों में, जो वह स्वयं लेता था, रियायत करता था। अपने मंत्रित्व के थोड़े समय में जिस शाही सेवक ने जागीर न होने की शिकायत इससे की, इसने पान बाई महाल से उसके लिए जागीर नियत कर अपने चोबदार को भेजकर जागीर के सनद तैयार कराके मँगवा अपने हाथ से उसे दिया था। इसका पुत्र एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ[1] था, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है।

---

१. मुगल दरबार भाग ३ पृ० १२-१५ देखिए।

महम्मद शरीफ मोतमिद खाँ

यह ईरान के अप्रसिद्ध पुरुषों में से था। जब यह हिंदुस्तान में आया तब सौभाग्य से यह जहाँगीर के परिचितों में हो गया। ३रे वर्ष इसे मोतमिद खाँ की पदवी मिली। इसके बारे में तत्कालीन मुगल विद्वानों ने यह शैर कहा है—

जहाँगीर शाह के समय में खानी सस्ती हो गई।

हम लोगों की शरीफा बानू गई और मोतमिद खाँ हुए॥

यह बहुत दिनों तक अहदियों का बख्शी रहा। ६ वें वर्ष में शाहजादा शाहजहाँ की सेना का बख्शी सुलेमान बेग फिदाई खाँ मर गया जो राणा की चढ़ाई पर नियत हुई थी, और तब उस सेना का बख्शी मोतमिद खाँ नियत हुआ। ११ वें वर्ष में जब शाहजादा दक्षिण प्रांत के प्रबंध पर नियत हुआ तब मोतमिद खाँ फिर उसकी सेना का बख्शी नियत हुआ। जब जहाँगीर प्रथम बार कश्मीर की सैर को गया और केवल बहार की सैर का विचार था तब वहाँ से उस ऋतु में पीर पंजाल घाटी के बर्फ से ढके रहने से सेना का उस मार्ग से पार उतरना कठिन ही नहीं प्रत्युत् असंभव था इससे पखली तथा दमतूर मार्ग से लौटा। कृष्ण गंगा के नहर पर १५वें वर्ष सन् १०२६ हि० में जशन सजाया गया। इस पड़ाव से कश्मीर तक मार्ग के सब स्थान व्यास नदी के किनारे पर हैं और दोनों ओर ऊँचे पहाड़ हैं। दर्रे सभी सकरे तथा दुर्गम हैं, जिससे पार उतरना बहुत कठिन

है। इस कारण इस प्रबंध का मोतमिद खाँ मीर नियत किया गया कि बादशाह के साथ के थोड़े आदमियों के सिवा बड़े सर्दारों में से किसी को भी पार न उतरने दे। उक्त खाँ मिलबास दर्रे के नीचे जा उतरा। दैवयोग से ज्योंही जहाँगीर की सवारी इसके खेमे के पास पहुँची उसी समय वर्षा तथा बर्फ इतने वेग से गिरने लगा कि इससे बादशाह इतना घबरा गए कि इसके खेमे में हरम के साथ ठहर गए तथा उस बर्फीली आँधी से बच गए। रात्रि आराम से व्यतीत हुई। बादशाह जो पोशाक पहिरे हुए थे वह मोतमिद खाँ को दे दी गई और इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी ५०० सवार का हो गया। विचित्र यह है कि दफ्तर के प्रबंध से जो कश्मीर की सैर के लिए आवश्यक है, इतने गिने हुए खेमे, फर्श, सोने के लिए सामान, बावर्ची खाने का सामान तथा आवश्यक बर्तन आदि साथ में थे, जैसा कि धनाधीशों के ऐश्वर्य के लिए उपयुक्त था, कि किसी से माँगने की आवश्यकता नहीं पड़ी और इतना भोजन तैयार था कि भीतर तथा बाहर के सभी आदमियों के लिए काफी था।

ईश्वर की प्रशंसा है कि वह कैसा शुभ तथा बरकत का समय था कि ऐसे छोटे मंसबवाले के यहाँ ऐसे समय में इतना सब सामान उपस्थित था कि हिंदुस्तान के बादशाह के आतिथ्य का बिना पहिले सूचना पाए कुल प्रबंध पूरा हो गया। कश्मीर से इसी बार लौटने के समय यह मीर जुमला के स्थान पर अर्ज मुकर्रर के पदपर नियत हुआ। यह शाहजादा शाहजहाँ का हितैषी होने के लिए प्रसिद्ध था इसलिए इसने उसकी राजगद्दी के बाद मंसब की उन्नति तथा विशेष सम्मान और विश्वास प्राप्त किया।

२ रे वर्ष में इस्लाम खाँ के स्थान पर यह द्वितीय बख्शी नियत हुआ। १० वें वर्ष मीर जुमला के स्थान पर यह मीर बख्शी नियत हुआ और इसका मंसब बढ़कर चार हजारी २००० सवार का हो गया। इसी वर्ष राजा बिट्ठलदास के भतीजे शिवराम गौड़ की सहायता के लिए उक्त राजा के साथ यह धंधेरा प्रांत में नियत हुआ। मोतमिद खाँ वहाँ के जमींदार इंद्रमणि को कैदकर दरबार लिवा लाया। १३ वें वर्ष सन् १०४६ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। यद्यपि इतिहास ज्ञान के लिए यह प्रसिद्ध था पर इकबालनामा जहाँगीरी से, जिसकी आकर्षक तथा सुंदर शैली उसी की है, ज्ञात होता है कि इतिहास लेखन नहीं जानता था। राज्य का विवरण लेखन का पद रखते हुए भी यह न जानता था कि क्या आवश्यक है प्रत्युत् बड़ी घटनाओं को भी अपूर्ण विवरण के साथ लिख गया है।

इसका पुत्र दोस्तकाम ३१ वें वर्ष तक आठ सदी २०० सवार के मंसब तक पहुँचकर क्रमशः गुजरात, काबुल तथा बंगाल का बख्शी नियत हुआ था। औरंगजेब के राज्य के ७ वें वर्ष में बंगाल में मर गया। मोतमिद खाँ के भाई मुहम्मद अशरफ ने लखनऊ की जागीरदारी के समय वहाँ बड़ी इमारतें बनवाईं, अशरफपुरा की सराय तथा बस्ती बसाई और ऐसा बाग बनवाया कि लोगों का सैरगाह हो गया। इसकी तारीख 'बोस्ताने दोस्ताँ' उसके द्वार पर कुतबा लिपि में खोदी हुई है। यह उसी बाग में रहते हुए मर गया।

महलदार खाँ

यह महलदार खाँ चरकिस का पुत्र था। निजामशाही दरबार में इसका बहुत विश्वास तथा सम्मान था। दक्षिण में बहुत समय व्यतीत करने के कारण यह दक्खिनी प्रसिद्ध हुआ। इसकी मृत्यु पर निजामशाह ने इसके पुत्र को पिता की पदवी देकर सर्दारी तथा सेनापतित्व में इसका नाम कर दिया। शाहजहाँ के ६ ठे वर्ष में जब सेनाध्यक्ष महाबत खाँ दौलताबाद दुर्ग को घेरे हुए था तब इसने सौभाग्य से कस्बा तयाली से, जो उस समय नेअमताबाद कहलाता था और सरकार कालना के अंतर्गत था, महाबत खाँ के पास संदेश भेजा कि इस स्थान को जिसे निर्देश करें सौंप कर आपके यहाँ चला आऊँ। इसने बहुत कुछ अपनी सचाई प्रकट की पर सेनाध्यक्ष ने इसकी सचाई तथा राजभक्ति जाँचने के लिए कहलाया कि साहू भोसला और रनदौला खाँ बीजापुरी का परिवार बैजापुर में है उस पर आक्रमण कर उसे लेलो, इसके पहिले बादशाही कृपा नहीं होगी। महलदार खाँ ने समय की सहायता से निडरता से उस कस्बे पर धावा कर दिया। दैवयोग से वहाँ सरलता से काम हो गया क्योंकि उसके पास ही साहू की स्त्री तथा पुत्री कोष और बहुत सामान के साथ जुनेर से आकर ठहरी थीं, जो इसके अधिकार में चली आईं। चार सौ घोड़े, डेढ़ लाख हून तथा बहुत सा सामान और अन्न भोसला का तथा बारह सहस्र हूनका रनदौला खाँ का सामान व नगद मिल गया।

उक्त खाँ प्रशंसा का पात्र होकर सेनाध्यक्ष के आदेशानुसार साहू के परिवार को कालना के दुर्गाध्यक्ष जाफरबेग को सौंप स्वयं दरबार पहुँच गया। ७ वें वर्ष के आरंभ में दक्षिण से आगरा आकर सेवा में उपस्थित हुआ। इसे चार हजारी २००० सवार का मंसब तथा बीस सहस्र रुपया नगद देकर सम्मानित किया गया। बिहार प्रांत के अंतर्गत मुंगेर सरकार इसे जागीर में मिला।

दक्षिण के सभी सर्दारों में यह ऐश्वर्य में बढ़ा चढ़ा था इस-लिए उसी वर्ष इसे झंडा व डंका भी मिल गया और मुखलिस खाँ के स्थान पर गोरखपुर सरकार की फौजदारी भी इसे मिल गई। इसके बाद दक्षिण के सहायकों में नियत हो बादशाही कार्य अच्छी प्रकार किया। चरकिस जाति का होते हुए इसने अपना देश छोड़ दक्षिण ही में विवाह आदि किए। अपनी पुत्री का दिलावर खाँ हब्शी के पुत्र से निकाह किया, जिसका पिता भी निजामशाही सर्दार था।

महाबतखाँ खानखानाँ

महाबत खाँ खानखानाँ सिपहसालार

इसका नाम जमानाबेग था और यह गयूर बेग काबुली का पुत्र था। ये शुद्ध वंश के रिजविया सैयद थे। इसके पुत्र खान-जमाँ ने अपने लिखे इतिहास में अपने पूर्वजों की शृंखला इमाम मूसा तक पहुँचा दी है और सबको बड़ा तथा ऐश्वर्यशाली गिना है। गयूर बेग शीराज से काबुल आकर यहाँ के एक परगने में रहने लगा। मिर्जा मुहम्मद हकीम के यकः जवानों में यह भर्त्ती हो गया। मिर्जा मुहम्मद हकीम की मृत्यु पर यह अकबर की सेना में भर्ती हो गया। चित्तौड़ के युद्ध में इसने बहुत प्रयत्न किया। जमाना बेग ने छोटी अवस्था ही में शाहजादा सलीम के अहदियों में भर्ती होकर कुछ ऐसी अच्छी सेवा की कि थोड़े ही समय में उचित मंसब पाकर शागिर्द पेशेवालों का बख्शी होगया।

मुअज्जम खाँ फतहपुरी के वचन देने पर राजा उज्जैनिया खासी सेना के साथ, जो नगर तथा गाँव से पकड़ लाए गए थे, इलाहाबाद में शाहजादे की सेवा में उपस्थित हुआ और इस कारण कि वह जब आता तो उसके आदमियों से खास व आम भर जाता था। जहाँगीर को यह बात बुरी मालूम हुई। रात्रि में एकांत में उसने कहा कि इस गवार का उपाय किया जाय। जमाना बेग ने कहा कि यदि आज्ञा हो तो आज ही रात्रि में इसका काम समाप्त कर दिया जाय। संकेत के अनुसार यह एक सेवक के साथ चला

और अर्द्ध रात्रि के बाद राजा के स्थान पर पहुँचा जो रावटी में मस्त सोया पड़ा हुआ था। इसने सेवक को द्वार पर खड़ा कर दिया और राजा के आदमियों को यह कहकर बाहर कर दिया कि शाहजादा का संदेश बहुत गुप्त है। इसने स्वयं रावटी के भीतर जाकर उसका सिर काट लिया और शाल में लपेट कर निकल आया। आदमियों से कहा कि कोई भीतर न जाय क्योंकि मैं उत्तर लेकर फिर आता हूँ। इसने सिर ले जाकर शाहजादा के आगे डाल दिया। उसी समय आज्ञा हुई कि राजा की सेना को लूट लें। उसके आदमी यह समाचार पाकर भाग खड़े हुए और उसका कोष तथा सामान सरकार में जब्त हो गया। इस कृति के उपलक्ष में जमाना बेग को महाबत खाँ की पदवी मिली।

जहाँगीर के राज्य के आरंभ में तीन हजारी मंसब पाकर यह राणा की चढ़ाई पर नियत हुआ। अभी वह कार्य पूरा न हो पाया था और पर्वत की बाहरी थानेबंदी को तोड़कर यह चाहता था कि भीतर घुसे कि दरबार बुला लिया गया। इसके अनंतर शाहजादा शाहजहाँ के साथ दक्षिण की चढ़ाई पर नियत हुआ। १२वें वर्ष में शाह बेग खाँ खानदौराँ के स्थान पर यह काबुल का सूबेदार नियत हुआ पर एतमादुद्दौला के प्रभुत्व तथा अधिकार से, जिससे यह हार्दिक वैमनस्य रखता था, क्रुद्ध कर इसने चाहा कि काबुल से एराक चला जाय। इस पर शाह अब्बास सफवी ने सम्मान से स्वलिखित पत्र बुलाने का भेजा परंतु खानःजाद खाँ खानजमाँ ने साथ के आदमियों को अस्त व्यस्त कर दिया, जिससे इसे वह विचार छोड़ना पड़ा।

१७वें वर्ष में नूरजहाँ बेगम के बहकाने से जहाँगीर तथा शाह-

जादा युवराज शाहजहाँ में मनोमालिन्य आ गया तथा युद्ध और मारकाट भी हुई। शाहजादा की शक्ति तोड़ने के लिये महाबत खाँ के चुने जाने पर यह काबुल से बुलाया गया। बेगम की ओर से आशंका रखने के कारण इसने पहिले इच्छा नहीं की पर फिर शंका छोड़ कर दरबार गया। जब अब्दुल्ला खाँ बादशाही सेना की हरावली से हट कर शाहजहाँ की सेना में चला गया तब जहाँगीर ने सशंकित होकर आसफ खाँ को, जो सेना का सर्दार था, ख्वाजा अबुल् हसन के साथ अपने पास बुला लिया। सेना में बड़ा उपद्रव मचा। महाबत खाँ ने शाहजहाँ के विजयी होने के चिह्न देख कर अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ के द्वारा अपनी उसके प्रति राजभक्ति प्रगट की और लिखा कि यदि दोष क्षमाकर मुझे संतुष्ट कर देवें तो अच्छी सेवा करूँ। इस समय यही उचित है कि अपनी सेना को हटाकर युद्ध बंद कर दें और स्वयं मांडू जाकर ठहरें जिसमें मैं पुरानी जागीर की बहाली की सनदें शाही मुहर के साथ भेजवा दूँ। शाहजादा बराबर अपने पिता को प्रसन्न करना चाहता था इसलिए खानखाना के इस बहकावे में पड़कर लौट गया। इसके अनंतर सुलतान पर्वेज इलाहाबाद से वहाँ पहुँचा। महाबत खाँ ने दूसरे स्वार्थियों के साथ मिलकर बादशाह को इसपर राजी किया कि वह अजमेर आकर सुलतान पर्वेज को महाबत खाँ की अभिभावकता में शाहजादे पर भेजे। शाहजादा मांडू से बुर्हानपुर और वहाँ से तेलिंगाना होते हुए बंगाल चला। महाबत खाँ सुलतान पर्वेज के साथ बुर्हानपुर आकर दक्षिण के प्रबंध को ठीक करने में लगा। इसी समय आज्ञा पहुँची कि जल्दी से दक्षिण के प्रबंध को छोड़कर इलाहाबाद पहुँचे, जिसमें यदि

बंगाल का प्रांताध्यक्ष शाहजादे का मार्ग न रोक सके तो वे उसका सामना करें।

महाबत खाँ ने थोड़े ही समय में अपने उपायों से दक्षिण के सुलतानों को बादशाह का अधीन तथा राजभक्त बना दिया। मलिक अंबर ने कई बार अपने वकील भेजे कि अपने पुत्र को बादशाही नौकरी में भर्ती कराकर वह देवल गाँव में भेंट करेगा और इस प्रांत के कार्य उसी के अधिकार में छोड़ दिए जायँ। परंतु जब आदिल खाँ बीजापुरी ने, जो सदा इससे वैमनस्य रखता था, अपने राज्य के वकील मुल्ला मुहम्मद लारी को पाँच सहस्र सवार सेना के साथ भेज दिया कि बराबर बादशाही राज्य का सहायक रहे और उसने बहुत प्रयत्न भी किए तब महाबत खाँ ने मलिक अंबर का पक्ष छोड़ दिया और मुल्ला मुहम्मद लारी को राव रत्न हाड़ा सर बुलंद राय के साथ बुर्हानपुर में छोड़कर स्वयं शाहजादा सुलतान पर्वेज के साथ ठीक वर्षाकाल में मालवा की भूमि पार कर इलाहाबाद प्रांत में पहुँचा। टाँस स्थान में कुछ दिन युद्ध हुआ। शाहजादा शाहजहाँ ने सेना की कमी देख कर युद्ध करना उचित नहीं समझा। पर राजा भीम के बहकाने पर, जो उसका साथी था, वही हुआ जो होना था। जब काम समाप्त हुआ तब घायल अब्दुल्ला खाँ बहुत मिन्नत कर शाहजहाँ को बागडोर पकड़कर बाहर निकाल ले गया।

दैवयोग से दक्षिण में मलिक अंबर आदिलशाही सेना के बादशाही सेना में मिल जाने से सशंकित होकर खिरकी बस्ती से निजामुल् मुल्क के साथ बाहर निकला और कंधार में अपने परि-

बार तथा सामान को छोड़कर कुतुबुल्मुल्क के प्रांत की ओर रवाना हुआ। उससे प्रति वर्ष के निश्चित धन तथा सेना का व्यय लेकर बिना सूचना के बीदर पर आक्रमण कर उसे लूट लिया और तब बीजापुर की ओर चला। आदिलशाह ने दुर्ग बंदकर मुल्ला मुहम्मद लारी को बुलाने के लिए दूत भेजा और महाबत खाँ को भी लिखा कि ऐसे समय बादशाही सेना भी सहायता के लिए भेजे। महाबत खाँ इलाहाबाद जा रहा था इसलिए सर बुलंदराय को लिखा कि लश्कर खाँ को जादोराय, ऊदाजीराम तथा बालाघाट के कुल सर्दारों के साथ इस काम पर नियत करे। मलिक अंबर ने यह समाचार पाकर बहुत कुछ कहा कि हम भी बादशाही सेवक हैं और कोई दोष भी नहीं किया है कि हमारे विरुद्ध आप कमर बाँधते हैं। हमें अपने शत्रु से निपटने दीजिए। किसी ने कुछ नहीं सुना तब वह युद्ध के लिए बाध्य हुआ। संयोग से मुल्ला मुहम्मद मारा गया और जादोराय तथा ऊदाजीराम बिना युद्ध किए हट गए। पचीस आदिलशाही सर्दार और बादशाही सेना के बयालीस सर्दार लश्कर खाँ और मिर्जा मनोचेह्र के साथ कैद हुए और बहुत दिनों तक दौलताबाद दुर्ग में कैद रहे। अहमदनगर का दुर्गाध्यक्ष खंजर खाँ और बीड़ का फौजदार जानसिपार खाँ केवल बच गए।

'अंबर फत्हकर्द' (अंबर ने विजय किया) से इस घटना की तारीख निकलती है। कहते हैं कि मलिक अंबर साहित्यिक नहीं था और इसे सुनकर कहा कि क्या विशेषता है? बच्चे भी जानते हैं कि अंबर ने विजय किया। इसने तथा आदिलशाह दोनों में दूसरी बार पद्यमय प्रार्थनापत्र दक्षिण के कार्य के लिए शाहजहाँ

के पास भेजे। शाहज़ादे ने बंगाल से लौटकर मलिक अंबर की सेना तथा याकूत खाँ हब्शी के साथ बुर्हानपुर को घेर लिया। दक्षिण के इस उपद्रव की सूचना पा आज्ञानुसार महाबतखाँ सुलतान पर्वेज के साथ फुर्ती से बंगाल से लौटा। जब मालवा में सारंगपुर पहुँचा तब फिदाई खाँ शाही फर्मान लाया कि खानजहाँ गुजरात से महाबत खाँ के स्थान पर नियत हुआ है और महाबत खाँ को बंगाल की सूबेदारी मिली है। सुलतान पर्वेज इस अदल बदल से प्रसन्न नहीं हुआ तब दूसरी आज्ञा पहुँची कि यदि महाबत खाँ को बंगाल जाना पसंद नहीं है तो दरबार चला आवे। खानःज़ाद खाँ को जो पिता का प्रतिनिधि होकर काबुल का शासन कर रहा था, बुलाकर बंगाल बिदा किया कि वहाँ का प्रबंध देखे। आसफ खाँ इससे वैमनस्य रखने के कारण अरब दस्तगैब को एक सहस्र सवार अहदियों के साथ भेजा कि इसको शीघ्र दरबार लावे। निरुपाय हो महाबत खाँ बुर्हानपुर से चल दिया। सुलतान सराय बिहारी तक साथ आया। महाबत खाँ चाहता था कि कुछ मंसबदारों को साथ ले जावे पर दक्षिण के दीवान फाजिल खाँ ने फर्मान बतलाया कि वह दंडित है अतः कोई साथ न दे। महाबत खाँ ने कहा कि मुत्सद्दियों ने राय में गलती कर दी है। सुलतान यदि सुनेगा तो इस बुलाने से लज्जित होगा। जब रंतभवर पहुँचा तब इस पर दृष्टि रखना आरंभ हुआ, राणा ने भी एक सहस्र अच्छे सवार इसके साथ दिए। कहते हैं कि यहीं अरब दस्तगैब पहुँचा। महाबत खाँ ने उससे कहा कि जिस कार्य के लिए आया है उसकी सूचना मुझे मिल चुकी है, मैं जा रहा हूं

तू चाहे उलटी बातें कह। छ सहस्र सवारों के साथ, जिनमें चार सहस्र राजपूत तथा दो सहस्र मुगल, शेख, सैयद तथा अफगान थे, यह आगे बढ़ा।

जिस समय बादशाह काबुल की सैर को जा रहे थे उस समय इसके आने का समाचार मिला। आज्ञा हुई कि जब तक बादशाही बकाया जमा न कर देगा और बंगाल के जागीरदारों का, जिनका इसने ले लिया था, जवाब न दे लेगा तब तक सेवा में उपस्थित न हो सकेगा। इसने यह भी सुना कि आसफ खाँ इसे कैद करने की चिंता में है कि व्यास नदी के किनारे जिस दिन पड़ाव पड़े और उर्दू तथा कुल सेना नदी के पार हो जावे और बादशाह चौकी की सेना के साथ इस पार रह जावें, उस समय यदि महाबत खाँ सेवा में आवे तो बादशाह उसका हाथ पकड़कर नाव पर बिठा कर साथ ले जावें। उसके बाद पुल तोड़ दिया जाय कि उसकी सेना पार न उतर सके। शाहाबाद के पड़ाव पर हथसाल का दारोगा कजहत खाँ ने इसके स्थान पर आकर आज्ञा सुनाई कि इस बीच जितने हाथी उसने संग्रह किए हों सरकार में दे देवे। महाबत खाँ ने कुछ प्रसिद्ध हाथी रखकर बाकी सब दे दिए। कजहत खाँ ने कहा कि खाँजी किस दिन के लिए रख छोड़ते हैं, तुम्हारी जीवन-नौका नष्ट हो चुकी है। यदि पुत्रगण जीवित रहे तो ज्वार की रोटी को तरसेंगे। महाबत खाँ ने मुस्किराकर कहा कि उस समय तुम्हें सहायता न करना होगा। इन हाथियों को मैं स्वयं भेंट करूँगा। अब जल्द जाओ क्योंकि ये राजपूत गँवार हैं, तुम्हारी व्यर्थ की बातों पर वे आपे से बाहर आ जायँगे। संक्षेप में ऐसी बातों से महाबत खाँ ने समझ लिया

कि शत्रु से जान बचाना कठिन है। मृत्यु निश्चित कर सैनिकों को अगाऊ वेतन देकर दृढ़ प्रतिज्ञा ले ली।

जब बादशाही सेना ने व्यास नदी के किनारे पड़ाव डाला तब आसफ खा ने अपने निश्चय के अनुसार कुल सेना यहाँ तक कि बादशाही सेवकों को भी पुल से उस पार भेज दिया, जिन्होंने बड़ी असावधानी तथा बेपरवाही से पड़ाव डाल दिया। महाबत खा दैवी सहायता के आसरे बैठा हुआ था और इस अवसर को अनुकूल समझकर उसने एक सहस्र सवार पुल के प्रबंध के लिए भेज दिया तथा स्वयं फुर्ती से शहरयार तथा दावरबख्श के घर जाकर उन्हें अपने साथ ले लिया। इसके अनंतर फाटक तोड़कर बादशाही महल में घुस पड़ा। द्वार पर अपने आदमियों को नियतकर बादशाह की सेवा में पहुँचा और कहा कि जब आसफ खाँ की शत्रुता से मैंने देखा कि मेरा बचना संभव नहीं है तब मैंने ऐसा साहस किया। जिस दंड के योग्य समझें वह मुझे अपने हाथ से दें। कहते हैं कि जब निडर राजपूत गुसुलखाने में घुस गए तब मुकर्रबखा ने पुरानी चाल पर महाबत खाँ से कहा कि कोढ़ी, यह कैसी बेअदबी है? उसने कहा कि जब अमुक मनुष्य की स्त्री तथा पुत्री को बाँट रहे थे तब कुछ न बोल सका था। छड़ी की मूठ, जो इसके हाथ में थी, उसके माथे पर ऐसी मारी कि तिलक सा घाव होकर रक्त बहने लगा। इसी समय बादशाह ने क्रोध के मारे दो बार हाथ तलवार की मूठ पर रखा। मीर मंसूर बदख्शी ने धीरे से कहा कि यह समय परीक्षा का है। इसके अनंतर महाबत खाँ ने प्रार्थना की कि उपद्रव त्यागकर शिकार के लिए सवार होना उचित है। बहाने से अपने हाथी पर सवार

कराया। फजहत खाँ खास सवारी की हथिनी को लेकर आया, जिस पर स्वयं महाबत होकर तथा अपने पुत्र को खवासी में कर बैठा हुआ था। महाबत खाँ ने कहा कि खाँजी यही दिन है कि हमारे लड़के ज्वार की रोटी के लिए मुहताज होंगे। इसके अनंतर राजपूतों को संकेत किया कि दोनों को बेधड़क मार डालें। मार्ग से बादशाह को अपने गृह लिवा जाकर पुत्रों के साथ बहुत सी वस्तुएँ निछावर किया। नूरजहाँ बेगम से वह असावधान हो गया था अतः फिर बादशाह को सवार कराकर सुलतान शहरयार के घर लिवा गया। इसी बीच में बेगम बाहर निकल गईं। इस असावधानी पर इसने बहुत अफसोस किया तथा लज्जित हुआ। बेगम ने उसी गड़बड़ी में नदी पारकर सर्दारों की बहुत भर्त्सना की और सेना ठीक कर युद्ध की तैयारी की। पुल में आग लगा दी गई थी इसलिए दूसरे दिन बिना भारी तैयारी के उतारों से रवाना हो अपने को पानी में डाल दिया। इस कारण कि तीन ही चार डोंगे थे और शत्रु ने हाथियों को आगे कर धावे किए सेना अस्त व्यस्त हो गई। बहुत से धैर्य छोड़ बैठे और हर एक घबड़ा कर भाग गया। बेगम भी लौटकर अपने खेमे में गई। आसफ खाँ अपनी जागीर अटक दुर्ग में जा बैठा। अन्य सर्दारगण वचन लेकर महाबत खाँ के पास गए और उसकी कड़ी बातों को सहन किया। महाबत खाँ ने स्वयं अटक जाकर वचन तथा शपथ से आसफ खाँ को उसके पुत्र अबूतालिब तथा मीर मीरान के पुत्र खलीलुल्लाह के साथ अपने अधिकार में ले लिया। साम्राज्य के सभी राजनीतिक तथा कोष के कार्य अपने हाथ में लेकर योग्य

लोगों को हटा दिया। इसने राजपूतों को चौकी पर नियत कर किसी को भी कोई काम पर नहीं छोड़ा।

जब जहाँगीर काबुल में जाकर रहा तब उसी के संकेत पर कुछ अहदियों तथा राजपूतों में चरागाह में कहासुनी हो गई। संयोग से इसी में एक मारा गया। इस पर संख्या में अधिक होने से उन सब ने राजपूतों को घेर कर घोर युद्ध किया, जिसमें बहुत से काफिर अपने अच्छे सर्दारों के साथ मारे गए। चरागाहों के चारों ओर इधर उधर जो भागे थे वे हर मौजे के नौकरों के हाथ मारे गए तथा कितने कैद होकर बेंचे गए। यद्यपि महाबत खाँ स्वयं उनकी सहायता को सवार हुआ पर उस हुल्लड़ में ठहर न सका और तब लौटकर बादशाही शरण में चला आया। जहाँगीर ने इस उपद्रव को शांत करने के लिए कोतवाल को नियत किया और इसकी खातिर से कुछ अहदियों को भी भेजा पर इसका वह रोब तथा अधिकार नहीं रह गया। सशंकित रहकर यह वहाँ रहने लगा। काबुल से लौटते समय रोहतास के पास नूरजहाँ बेगम का ख्वाजासरा होशियार खाँ उसी के आदेशानुसार दो सहस्र सवारों के साथ लाहौर से आकर उपस्थित हुआ। सेना के निरीक्षण के बहाने पर आज्ञा हुई कि पुराने तथा नए सभी सेवक सशस्त्र तथा कवच पहिरे रहें।

जब ब्यास नदी के किनारे पड़ाव पड़ा, जहाँ से उसका उपद्रव आरंभ हुआ था तब महाबत खाँ को संदेश भेजा गया कि कल बेगम की सेना का निरीक्षण करना निश्चित हुआ है इसलिए तुम आगे जाकर देखो कि उन सेवकों में, जो बादशाही नहीं हैं, कोई कहासुनी न हो, जिससे झगड़ा बढ़े। यह शंका के कारण

एक पड़ाव आगे जाकर ठहर गया। दैवयोग से इसी समय महाबत खाँ के अधिकार का समाचार पाकर शाहज़ादा शाहजहाँ पास रहना उचित समझकर नासिक से अजमेर चला आया पर बादशाही सेना के एकत्र हो जाने पर, जिससे शाहजहाँ को शंका हो गई, अवसर न मिला और तब ठट्टा की ओर चल दिया। इस पर भय तथा शंका से ग्रस्त मनुष्य को आज्ञा मिली कि शाहज़ादा शाहजहाँ दक्षिण से मालवा और वहाँ से अजमेर चला आया था इसलिए उसका पीछा जैसलमेर के मार्ग से ठट्टा की ओर शीघ्रता से करे। महाबत खाँ आसफ खाँ से वचन लेकर तथा उसे विदा कर चल दिया। शाहजहाँ ठट्टा नगर में ठहरा हुआ था, जहाँ अठारह दिन बाद नूरजहाँ बेगम का पत्र मिला कि अदूरदर्शी महाबत खाँ, जो उसके दादा के समय से नौकर है, उद्दंडता से बादशाह के विरुद्ध उपद्रव कर बादशाही सेना से डरकर दक्षिण जा रहा है। इसी समय सुलतान की मृत्यु का भी समाचार मिला तथा बीमारी का भी पता चला। १८ सफ़र सन् १०३६ हि० को शाहजहाँ वहाँ से रवाना होकर बयालीस दिन में गुजरात के मार्ग से दो सौ साठ कोस चलकर नासिक पहुँच गया। निरुपाय होकर महाबत खाँ जैसलमेर के चालीस कोस इधर ही पोकरण में ठहर गया। इसके पीछे बादशाही सेना नियत हुई थी पर वह इसका सामना नहीं कर सकी और उसके पीछे जाकर रुक गई। महाबत खाँ इस सबसे मन हटाकर राणा की शरण में चला गया पर वहाँ अच्छा व्यवहार नहीं हुआ। लाचार हो दो सहस्र राजपूत सवारों के साथ, जिन्होंने इसका साथ नहीं छोड़ा था, भीलों के देश में, जो राणा के राज्य तथा

गुजरात के बीच में था, चला गया और वहाँ से शाहजादा शाहजहाँ को अपने उद्दंड कार्य के लिए क्षमायाचना करते पत्र लिखा, जो उस समय निजामशाह की प्रार्थना पर नासिक से जुनेर जाकर रहता था, जिसकी मलिक अंबर ने नींव डाली थी और जलवायु के अच्छे होने के साथ वहाँ अच्छी इमारतें भी थीं। शाहजहाँ के बुलाने पर २१ सफर सन् १०३७ हि० को राजपीपला तथा बगलाना के मार्ग से महाबत खाँ उसकी सेवा में पहुँचा।

इसी बीच जहाँगीर की मृत्यु हुई। शाहजहाँ राज्य के लिए गुजरात मार्ग से अजमेर पहुँचा। जब वह मुईनुद्दीन चिश्ती के रौजे के दर्शन को गया तब महाबत खाँ ने कुरान की पुस्तक की तावीज कब्र पर रख दिया और प्रार्थना किया कि मेरी यही मंशा थी कि आप ही बादशाह हों। ईश्वर की स्तुति है कि मेरी इच्छा पूरी हुई। यदि वचन के अनुसार आप मेरे दोषों को क्षमा करें, इस पुस्तक की शपथ लेकर ख्वाजा को बीच में डालें या इसी समय काबा को बिदा करें। नहीं तो कल ही आसफजाही पहुँचेगा और मेरे खून का फतवा निकलेगा। शाहजहाँ ने इसको इच्छानुसार संतुष्ट किया और राजगद्दी के बाद खानखानाँ सिपहसालार की पदवी, सात हजारी ७००० सवार का मंसब, चार लाख रुपए नगद तथा अजमेर की सूबेदारी दिया। इसी जलूसी वर्ष में महाबत खाँ को दक्षिण की सूबेदारी मिली। इसका पुत्र खानजमाँ इसका प्रतिनिधि नियत हुआ, जिसे हाल ही में मालवा की सूबेदारी मिली थी। २रे वर्ष जब बादशाह खानजहाँ लोदी को दंड देने के लिए दक्षिण को चला तब महाबत खाँ राजधानी दिल्ली का सूबेदार बनाया गया। ५वें वर्ष आजमखाँ के स्थान

पर दक्षिण का फिर सूबेदार हुआ। कहते हैं कि उन तीस चालीस वर्षों में जो सूबेदारगण दक्षिण आते थे बालाघाट पहुँचने तक बिना मारकाट के अन्न की कठिनाई से तंग आकर लौट जाते थे। कोई इसकी फिक्र नहीं करता था। महाबत खाँ ने इस सूबेदारी के समय पहिला उपाय यही किया कि हिंदुस्तान के व्यापारियों को हाथी, घोड़े व खिलअत देकर इतना मिला लिया कि बजारों के एक सिर आगरा व गुजरात में तथा दूसरा बालाघाट में रहता था। इसने निश्चय किया कि रुपए को दस सेर महगा होवे या सस्ता लेवें।

जब साहू भोंसला ने आदिलशाहियों के पास पहुँचकर दौलताबाद दुर्ग को मलिक अंबर के पुत्र फत्ह खाँ के अधिकार से ले लेने के लिए कमर बाँधी तब फत्ह खाँ ने यह देखकर कि निजामशाही सर्दार गण उससे वैमनस्य रखते हैं, उसने महाबत खाँ को लिखा कि दुर्ग में सामान नहीं है और यदि वह शीघ्र पहुँचे तो दुर्ग सौंपकर वह स्वयं बादशाही सेवा में चला आये। महाबत खाँ ने शीघ्रता के विचार से खानजमाँ को ससैन्य अग्गल के रूप में रवाना कर स्वयं २६ जमादिउल् आखिर का ६ठे वर्ष बुर्हानपुर से कूच किया। खानजमाँ ने फिरका घाटी से उतर कर साहू व रनदौला खाँ से युद्ध करने की तैयारी की और घोर युद्ध के बाद छ कोस तक पीछा करते हुए शत्रुओं को मारा। बीजापुरियों ने त्रस्त होकर फत्ह खाँ से संधि की बात चीत शुरू की और उसने भी वचन देकर उनका पक्ष ग्रहण कर लिया। महाबत खाँ जफर नगर में ठहरा हुआ था और इस पर निरुपाय हो श्मशावान को खिरकी पारकर यह खानजमाँ के पास पहुँचा

तथा दुर्ग घेर लिया। पहिली रमजान को मोरचे बाँटकर अपने द्वितीय पुत्र लहरास्प को तोपखाना सौंप कर आज्ञा दी कि सरकोब दुर्ग से, जो विस्तृत पर्वत शृंग है तथा जिसपर कागजीवाड़ा बसा हुआ है, दुर्ग दौलताबाद की ओर गोले उतारे। बराबर वीरता तथा साहस से खानजमाँ तथा अपनी बहादुरी और प्रयत्न से खानदौराँ ने घास तथा रसद के लिए साहू, रनदौला खाँ तथा बहलोल खाँ बीजापुरी से खूब युद्ध किए और हरबार बादशाही बहादुर लोग विजयी होते रहे।

अंबर कोट के विजय के अनंतर जब महाकोट के लिए जाने का प्रबंध होने लगा तब दुर्गवालों ने अन्न के अभाव तथा शक्ति की हीनता से घबड़ाकर, जो बहुधा मुर्दे पशुओं का मांस खाकर जीवन बचा रहे थे, और प्रतिदिन बादशाही सेना की तेजी देखकर रनदौला खाँ के चाचा खैरियत खाँ और कुछ आदिलशाहियों ने, जो दुर्ग में थे, शरण माँग लिया और रात्रि में गुबर्द से छिप कर नीचे उतर खानखाना से मिलते हुए वे बीजापुर चले गए।

जब खान महाकोट के नीचे तक पहुँच गई तब फत्तह खाँ ने अपने परिवार तथा सामान को कालाकोट भेज दिया। मुरारी पंडित बीजापुर राज्य का सर्वेसर्वा था और कुल आदिलशाही तथा निजामशाही सेना के साथ एलवरा आकर तथा रनदौला तथा साहू को खानजमाँ के सामने, जो कागजीवाड़ा में था, छोड़कर वह स्वयं याकूत खाँ हब्शी के साथ खानखानाँ के सामने पहुँचा। घोर युद्ध होने के अनंतर शत्रु साहस छोड़ कर भाग गया। भागते समय याकूत खाँ हब्शी मारा गया। उस समय

विचित्र जोर शोर से लड़ाई हुई। कहते हैं कि दक्षिण में ऐसी भयानक लड़ाई बहुत कम हुई थी। जब महाबत खाँ विजय प्राप्त कर लौटा तथा शेर हाजी महाकोट के खान के पास पहुँचकर उसमें आग लगाना चाहा तब फत्ह खाँ ने सूचना पाकर संदेश भेजा कि उसने आदिल शाहियों से ईमान पर प्रतिज्ञा की है कि बिना उनकी राय के आपस में संधि न करेंगे इसलिए आज बंद रखें। महाबत खाँ ने कहा कि यदि तुम्हारी बात में सचाई है तो अपने पुत्र को भेज दो। परंतु जब वह नहीं आया तब आग लगा दी, जिससे एक बुर्ज तथा पंद्रह हाथ दीवाल फट गई। वीर सैनिकों ने दुर्ग के भीतर घुसकर वहाँ मोर्चे बाँध लिए। फत्ह खाँ ने बहादुरों का यह कार्य देख कर धैर्य छोड़ दिया और अपनी लज्जा तथा वचन की रक्षा के लिए अपने बड़े पुत्र अब्दुलरसूल को भेजकर पश्चात्ताप प्रगट किया और क्षमा याचना की। उसने व्यय तथा अपने परिवार आदि को निकाल ले जाने के लिए एक सप्ताह की मुहलत के लिए प्रार्थना की।। महाबत खाँ ने ढाई लाख रुपये देकर हाथी तथा ऊँट बोझे ढोने के लिए भेज दिए। फत्ह खाँ ने दुर्ग की कुंजी भेज दी। १६ जीहिज्जा सन् १०४२ हि० को तीन महीने कुछ दिन के घेरे पर ऐसा ऊँचा दुर्ग विजय हुआ, जो—एक शैर का अर्थ

किसी ने इसके समान दुर्ग नहीं देखा।
दौलताबाद दुर्ग था और बस ॥

इसकी तारीख 'नवाब बफत्ह दौलताबाद आमद' (नवाब दौलताबाद की विजय को आया) से निकलती है। महाबत खाँ, खानदौराँ को मीरान सदरजहाँ पिहानवी के पुत्र मुर्तजा खाँ सैयद

निजाम के साथ दुर्ग में छोड़कर स्वयं फत्ह खाँ को अल्पवयस्क निजामुल् मुल्क के साथ लेकर बुर्हानपुर चल दिया। जब जफर नगर पहुँच गया तब वचन व शपथ को ताक पर रखकर फत्ह खाँ को कैद कर दिया और उसके सामान को बादशाही सरकार में जब्त कर लिया। कहते हैं कि फत्ह खाँ ने मूर्खता से बीजापुर संदेश भेजा था कि महाबत खाँ के पास सेना कम है तुम सेना लाकर हमें छुड़ा लो या इस कारण कि जब कूच का डंका पिटा और महाबत खाँ सवार होकर खड़ा था तब यह घमंड के मारे सोया पड़ा था या राजनीतिक कारण से बिना किसी वजह के महाबत खाँ ने अपना वचन तोड़ दिया।

जब महाबत खाँ बुर्हानपुर पहुँचा तब शाहजहाँ ने इस अच्छी सेवा के उपलक्ष में इसे पाँच लाख रुपया पुरस्कार दिया। इसने बादशाही मुत्सद्दियों से पता लगाया कि इस मुहिम में बादशाही कोष से कितना व्यय हुआ है। ज्ञात हुआ कि बीस लाख रुपए। महाबत खाँ ने पच्चीस लाख रुपए राज कोष में दाखिल कर कहा कि तीन वर्ष हुए कि मैंने बादशाह को कुछ भेंट नहीं किया है, अब दौलताबाद भेंट करता हूँ और बादशाह से प्रार्थना है कि यदि एक शाहजादा का चरण दिया जाय तो बीजापुर पर नई सेना की सहायता से अधिकार कर लिया जाय। शाह-जहाँ ने अपने द्वितीय पुत्र शाहजादा मुहम्मद शुजाअ को साथ कर दिया। महाबत खाँ ने परेंदा दुर्ग को, जो दक्षिण का एक दृढ़ दुर्ग है और निजामशाहियों के हाथ से निकल कर आदिलशाहियों के अधिकार में चला आया था, विजय करने के लिए खानजमाँ को आगे भेजा। इसने घेरे का सब सामान ठीक कर तथा मोर्चे

बाँट कर प्रतिदिन आक्रमण करना आरंभ किया। जब महाबत खाँ शाहजादे के साथ तीन कोस पर पहुँचकर ठहर गया तब आदिलशाही तथा साहू निजामशाहियों के साथ आ पहुँचे और कभी रसद लाने वाली सेना तथा कभी मोर्चों पर आक्रमण करने लगे। एक दिन ऐसी सेना पर, जब खानखानाँ की पारी थी, राजपूतों ने शत्रु को देखते ही फुर्ती कर धावा कर दिया। महाबत खाँ ने बहुत बुलाया कि लौट आवें पर मूर्खता से वे बहुत से मारे गए। महाबत खाँ अपने स्थानपर डटा रह कर प्रयत्न करता रहा। कहते हैं कि ऐसा युद्ध व्यूह दक्षिण में सौ वर्ष में नहीं देखने में आया था। पास था कि खानखानाँ का काम समाप्त हो जाय कि खानदौराँ ने सहायतार्थ पहुँचकर शत्रु को परास्त कर दिया।

खानदौराँ तथा खानखानाँ के बीच वैमनस्य तथा अप्रसन्नता थी। खानदौराँ ने कई बार मजलिस में कहा कि मैंने उसको मारे जाने से बचाया है। महाबत खाँ यह सुनकर क्षुब्ध हुआ। दैवयोग से एक दिन खानदौराँ सैयद शुजाअत खाँ और सैयद खानजहाँ बारहः के साथ सामान एकत्र करनेवाली सेना लेकर गया हुआ था और जब घास एकत्र कर वे लौटे तब शत्रु ने पहाड़ी दर्रे को रोककर बान चलाना शुरू कर दिया। इससे घास में आग लग गई, बहुत से हाथी, ऊँट व बैल जल गए और कुल जंगल जल उठा, जिससे बाहर जाने का मार्ग नहीं रहा। कहते हैं कि तीस हजार पशु तथा दस सहस्र आदमी जल गए और अधजले संख्या के बाहर थे। सर्दार लोग ऊँचे पुश्ते पर खड़े हुए आकाश के खेल पर चकित थे। आग के शांत होने पर शत्रुओं ने धावा कर घेर लिया।

महाबत खाँ सहायता को पहुँचा तथा शत्रु को परास्त कर भगा दिया। उस दिन से खानदौराँ का व्यंग्य कसना छूट गया। कहते हैं कि यह उपद्रव महाबत खाँ के संकेत पर हुआ था। दुर्गाध्यक्ष सीदी मर्जान और उसके अनंतर गालिब जो आदिल शाह के यहाँ से इसके स्थान पर आया था दोनों गोली लगने से मारे गए पर तब भी विजय का कोई चिह्न नहीं देख पड़ा और न किसी प्रयत्न का असर हुआ। वर्षाऋतु आ गई और सर्दारों ने महाबत खाँ से द्वेष कर शाहजादे को लौटने के लिए बहका दिया। महाबत खाँ ने बहुत कहा पर शाहजादे ने रुकना स्वीकार नहीं किया।

सेना में लद्दू पशु नहीं रह गए थे इसलिए लोगों ने बाजारों से अधिक मूल्य देकर बैल खरीदे। कूच करने के दिन बंजारे ने रास्ता रोककर महाबत खाँ से कहा कि आपके कथन पर विश्वास कर हम सामान लाए थे पर अब लादनेवाले पशु नहीं हैं कि उठा ले चलें। पूछा कि कितने का माल है? उत्तर दिया कि दो लाख का। उसी समय कोष से उसने दिलवा दिया और कहा कि जो चाहे ज़ितना लाद ले तथा जो बचे उसे जला दे। शाहजहाँ ने यह सुनकर महाबत खाँ पर क्रोध प्रगट करते हुए शाहजादे को अपने यहाँ बुला लिया। महाबत खाँ जब बुर्हानपुर पहुँचा तब उन राजपूतों पर, जो रसद लाने में आगे बढ़कर अपने को मारने को दे दिया था, अविश्वास प्रगट कर कहा कि ये केवल मरना जानते हैं। अपने दीवान काका पंडित को आगरे भेजा कि वहाँ से दस सहस्र शेख, सैयद, मुगल व पठान भर्ती कर लिवा लावे, जिसमें आगे के वर्ष में वह सहायक सेना का मुहताज न रहे और परिंदा दुर्ग के लिए उसकी ही सेना काफी हो।

इसी समय इसके पुराने भगंदर रोग ने, जो विशेष प्रकार का नासूर होता है, जोर पकड़ा। असफल हो इस चढ़ाई से लौटने तथा इसके कुव्यवहार से खानजमाँ के अलग होकर दरबार लौट जाने से क्षुब्ध होने के कारण इसकी हालत बिगड़ती गई। यह कुछ भी पर्हेज नहीं करता था। कहता था कि ज्योतिष से ज्ञात हो चुका है कि मैं इस रोग से न बचूँगा और उसी हालत में दरबार करता। परंदः लेने की इच्छा से बुर्हानपुर नगर से बाहर निकलकर मोहन नाला के पास पड़ाव डाला कि जो कुछ जीवन बचा है उसे बादशाही काम से खाली न रहने दे। कुल चार सहस्र अशर्फी बाहर व भीतर बाँटकर जो कुछ बचा उस सबका ढेर लगा दिया और अपनी स्त्री खानम से कहा, जिससे खानजमाँ की माँ के बाद निकाह किया था, कि हिंदुस्तान का रेत का कण भी मेरा शत्रु है। इसने एक रुपए का माल भी छिपा न रखा। इसने उस सब ढेर को बँधवाकर प्रार्थनापत्र के साथ दरबार भेज दिया। राजपूत सर्दारों को बुलाकर कहा कि तुम लोगों की सहायता से हमने नाम कमाया है। जो कुछ मेरे पास था सब इकट्ठा कर दरबार भेज दिया कि जिसमें कुछ न रहे और मेरे मरने के बाद बादशाही मुत्सद्दी लोग उसे जब्त करें तथा अमलों को हिसाब के लिए तंग करें। हमारे ताबूत को दिल्ली ले जाकर शाह मर्दान के रौजे में गड़वा दें और कुल माल गहने व पशु आदि सरकार में पहुँचवा दें। सन् १०४४ हि० में यह मर गया। 'जमानः आराम गिरफ्त' (जमानः ने आराम लिया) और 'सिपहसालार रफ्तः' (सेनापति गया) से मृत्यु की तारीख निकलती है।

राजपूतगण उसकी इच्छानुसार उसे बुर्हानपुर से दिल्ली तक पहिले के अनुसार मुजरा व सलाम करते हुए ले गए। शाहजहाँ ने सिवा हाथियों के सब इसके पुत्रों को दे दिया। कहते हैं कि नगद कम था। एक करोड़ वार्षिक आय थी, जो सब व्यय कर डालता था। यह साहसी था। एक दिन कहा कि खानजहाँ लोदी उदार नहीं था। एक ने कहा कि उसकी सरकार में आधिक्य नहीं था। इसने कहा कि यह क्या बात है, जो कमाए उसे व्यय करे वही मर्द है। परंतु उसका खास कपड़ा पाँच रुपये से अधिक का न होता। खाना भी इसका कम था। हाथियों का इसे बहुत शौक था इसलिए कमर्द का चावल तथा विलायती खर्बूजा उन्हें खाने को देता। यह कुछ भी तकल्लुफ नहीं रखता था। सवारी में नौबत नहीं बजवाता था पर कूच के समय नगाड़ा तथा करना बजवाता था। यह विद्वान न था पर ज्योतिष में अच्छा गम था। हर जाति तथा वंश के पूर्वजों की परंपरा तथा हाल खूब जानता था। ईरानी सत्संग पसंद करता और कहता कि वे प्रशंसा के पात्र हैं।

कहते हैं कि यह कोई धर्म नहीं रखता था पर अंत में इसने इमामिया धर्म स्वीकार किया। रत्नों पर नाम खुदवा कर गले में पहिरता पर रोजा और नमाज का पक्का नहीं था। अत्याचार में यह प्रसिद्ध था और बादशाही कामों में बहुत प्रयत्नशील तथा परिश्रमी था पर अपने काम में असावधान रहता। हृदय का चिकना था और जिस मनुष्य पर कृपा की उसके हजार दोष करने पर उसके सम्मान में कमी न करता। कभी शैर भी कह लेता था पर उसे प्रकट करना हेय समझता था। यह शैर उसका है—

शैर का अर्थ—

मेरा मन छोटा था कि स्वर्ग की इच्छा की।
मुझे नर्क मिलना था, इच्छा पूरी न हुई॥

इसके पुत्रों में से खानजमाँ अमानी तथा लहरास्प महाबत खाँ का वृत्तांत अलग दिया गया है। मिर्जा दिलेर हिम्मत कठोर प्रकृति तथा आलसी था, मिर्जा गर्शास्प अल्लावर्दी खाँ का दामाद था, मिर्जा बहरोज और मिर्जा अफरासियाब में से किसी ने भी उन्नति नहीं की तथा मर गए।

———

महाबत खाँ मिर्जा लहरास्प

यह महाबत खाँ खानखानाँ सेनापति का खानजमाँ बहादुर के बाद सबसे बड़ा पुत्र था। शाहजहाँ के राज्य के आरंभ में दो हजारी १००० सवार का मंसब पाकर दौलताबाद की चढ़ाई में पिता के साथ रहकर इसने अच्छा कार्य दिखलाया। पिता की मृत्यु पर कृपा करके इसका मंसब बढ़ाकर इसे मीर तुजुक का पद दिया गया। कुछ दिन बाद अवध प्रांत के अंतर्गत बहराइच का फौजदार नियत होकर वहाँ का सुप्रबंध किया। इसके बाद बयाना का जागीरदार हुआ। कंधार की चढ़ाइयों पर यह शाहजादों के साथ कई बार गया। २४वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर चार हजारी ३००० सवार का हो गया और खलीलुल्ला खाँ के स्थान पर यह मीर बख्शी बनाया गया। २५ वें वर्ष में एक हजारी २००० सवार बढ़ने से इसका मंसब पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया और लहरास्प खाँ से महाबत खाँ की पदवी पाकर सईद खाँ के स्थान पर काबुल का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। ३१ वें वर्ष में दक्षिण के शासक शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के नाम फर्मान शाही गया कि बीजापुर में अली नामक साधारण वंश के आदमी को वहाँ का आदिलशाह बना दिया है इसलिए वहाँ जाकर जैसा उचित हो प्रबंध करे। महाबत खाँ के नाम भी आज्ञा पत्र गया कि अपनी जागीर से दक्षिण जाय। उक्त खाँ दुर्ग के विजय के अनंतर शाहजादे की आज्ञानुसार भारी सेना के साथ कल्याण

व गुलबर्गा के आसपास लूटमार करने भेजा गया और बीजापुर के सर्दारों के साथ कई युद्ध हुए। इसने वीरता से उन्हें परास्त कर भगा दिया। कल्याण दुर्ग के घेरे के समय एक दिन महाबत खाँ घास के लिए पनहट्टा शाहजहाँ पुर, जो वहाँ से पाँच कोस पर है, गया हुआ था कि एकाएक शत्रु अधिक संख्या में पहुँचकर युद्ध को तैयार हुआ। रुस्तम खाँ बीजापुरी ने इख्लास खाँ के चंदावल पर आक्रमण किया और खान मुहम्मद खाँ, जो शत्रुओं का एक प्रसिद्ध सर्दार था, राव शत्रुसाल से युद्ध करने लगा। हर ओर घोर युद्ध आरंभ हो गया। इसी समय बहलोल के पुत्रों ने राजा रायसिंह सीसौदिया पर आक्रमण कर ऐसा जोर किया कि राजपूत गण मरने का निश्चय कर प्रसन्नता से घोड़ों से उतर पड़े और मारकाट को तैयार हो गए। शेर दिल महाबत खाँ ने उन अभागों पर पीछे से ऐसा आक्रमण किया कि प्रसिद्ध अफजल खाँ को, जो बीजापुर की सेना की अध्यक्षता के घमंड में भरा हुआ था, मैदान से परास्त कर भगा दिया।

उस दृढ़ दुर्ग के टूटने पर भी अभी काम इच्छानुसार पूरा नहीं हुआ था कि शाहजहाँ के मिजाज बिगड़ने तथा बीमार होने का समाचार चारों ओर फैलने लगा। दाराशिकोह ने इस बीच साम्राज्य में पहिले से अधिक प्रभुत्व बढ़ा लिया था और उसने महाबत खाँ के नाम फर्मान भेजा कि शाहजादा औरंगजेब से बिना आज्ञा लिए तथा बिदा हुए कुल मुगलियों के साथ शीघ्र दरबार चला आवे। निरुपाय हो बादशाही आज्ञा से, जो सर्व-मान्य है, काम किया और शाहजादे से बिना प्रगट किए हुए कूच करता हुआ दरबार चला। ३१ वें वर्ष के अंत में सन् १०६८ हि०

में यह काबुल का सूबेदार फिर नियत हुआ। ५वें वर्ष आलमगीरी में काबुल की सूबेदारी से हटाए जाने पर सेवा में चला आया और महाराजा जसवंतसिंह के स्थान पर गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। इसका मंसब बढ़कर छ हजारी ५००० सवार तीन हजार सवार दो अस्पा सेह अस्पा का हो गया। ११ वें वर्ष में गुजरात से दरबार पहुँचने पर फिर से काबुल का सूबेदार बनाया गया। १३ वें वर्ष में वहाँ से हटाए जाने पर दरबार आया।

इसी समय शिवाजी ने ऐसा उपद्रव किया कि सूरत पर चढ़ाई कर नगर को जला दिया और वहाँ के निवासियों को लूट लिया तब महाबत खाँ भारी सेना के साथ उसे दंड देने को नियत हुआ। इसने मराठों को दमन करने में बहुत प्रयत्न किया। इसी के बाद काबुल के पार्वत्य स्थान में अफगानों का उपद्रव हुआ, जिसमें वहाँ का अध्यक्ष मुहम्मद अमीन खाँ खैबर दर्रे में लुट गया। उन पहाड़ी उपद्रवियों के साथ महाबत खाँ का कैसा व्यवहार था, इस पर दृष्टि रखकर इसे दक्षिण से दरबार बुलाकर १६ वें वर्ष में इसे वहाँ का प्रबंध ठीक करने को भेजा। परंतु उक्त खाँ दूरदर्शिता तथा अनुभव के कारण जब पेशावर से आगे बढ़ा तब किसी प्रकार की रुकावट न कर उन उपद्रवियों को दंड देने की उपेक्षा की और सही सलामत काबुल पहुँच गया। यह बात दरबार में प्रशंसित तथा उचित नहीं समझी गई तब १७वें वर्ष में बादशाह प्रगट में हसन अब्दाल गए और भारी सेनाएँ उपद्रवियों को दंड देने के लिए भेजीं। महाबत खाँ के सेवा में पहुँचने पर यह राजा भूपतदास गौड़ के पौत्र बीरसिंह को दंड देने पर नियत हुआ। जब पंजाब के अंतर्गत अमनाबाद पहुँचा तब

सन् १०८५ हि० में १८ वें वर्ष के आरंभ में वहीं इसकी मृत्यु हो गई। उद्दंडता तथा निडरता में पिता का स्मारक था। औरंगजेब बादशाह क्रोधी तथा शुष्क प्रकृति का मनुष्य था, उससे भी यह गुस्ताखी से प्रार्थना करता। प्रसिद्ध है कि औरंगजेब शाही आज्ञाओं को जारी करने में धार्मिक विचार से बहुत से अच्छे मुकद्दमे काजीउल्कुजात् अब्दुल्वहाब गुजराती के पास भेजता, जो बादशाह के हृदय में दृढ़ स्थान बना चुका था। इसका विश्वास इतना बढ़ा हुआ था कि प्रसिद्ध अमीरगण भी इसके हिसाब माँगने पर अपनी प्रतिष्ठा के लिए डरते थे। जब उपद्रवी शिवाजी के काम बहुत बढ़ गए और वहाँ जाने का निश्चय प्रस्तावित हुआ तब बादशाह ने भूमिका रूप में उस उद्दंड के अत्याचारों का विवरण देते हुए महाबत खाँ की ओर मुखकर कहा कि उस अत्याचारी को दंड देना इस्लाम के लिए उचित है। उक्त खाँ ने निडरता से एकदम कह डाला कि सेना के रखने की आवश्यकता नहीं है, काजी के फतवे काफी होंगे। बादशाह को बहुत बुरा लगा और जाफर खाँ को आज्ञा मिली कि उससे कहे कि ऐसी झूठी बातें दरबार में न कहा करे। इसका पुत्र मिर्जा तहमास्प, जिसका संबंध सईद खाँ जफरजंग की पुत्री से हो चुका था, मर गया। इसकी मृत्यु पर बहराम और फरजाम को योग्य मंसब और खाँ की पदवी मिली। बहराम खाँ गोलकुंडा के घेरे में गोला लगने से मर गया। दूसरे ने कुछ उन्नति नहीं की।

———

महाबत खाँ हैदराबादी

यह मुहम्मद इब्राहीम किमारबाज के नाम से प्रसिद्ध था। यह विलायत का पैदा था। तिलंग के सुलतान अबुल् हसन कुतुबशाह के यहाँ भाग्य से पहुँच कर एक सर्दार हो गया। जब सैयद मुजफ्फर के हटाए जाने पर, जो बहुत दिनों तक राज्य का प्रधान था, दोनों भाई मदन्ना व एकन्ना ब्राह्मणों का पूरा प्रभुत्व राज्य में हो गया, जो उपद्रवियों के घर थे और जो उस पुराने वंश की अशांति तथा अवनति के कारण हुए, तब उन सबने अपनी जाति-वालों तथा दक्खिनियों को बढ़ाकर मुगलों तथा गरीबों को हटाना चाहा पर उक्त खाँ दुनियादारी तथा हृदय पहचानने के कारण खुशामद करते हुए बना रहा। वे दोनों भी इसकी आज्ञा मानते तथा मर्जी देखने का प्रयत्न करते रहे। इस प्रकार यह उन्नति कर सेना का प्रधान होगया और खलीलुल्ला खाँ की पदवी प्राप्त की। इस पर शैर कहा गया है—शैर—

बादशाह तथा बुद्धिमान पंडित की कृपा से,
इब्राहीम सेनापति खलीलुल्ला खाँ होगया।

जब औरंगजेब की सेना दक्षिण के विजय में लगी तब पहिले बीजापुर ही पर उसकी दृष्टि पड़ी और उसने शाहजादा मुहम्मद आजमशाह को भारी सेना के साथ उस पर भेजा। जब इस चढ़ाई में अधिक समय लगा तब बादशाह समयोचित समझ

कर औरंगाबाद से अहमदनगर और वहाँ से शोलापुर पहुँचे। एकाएक अबुल् हसन का एक पत्र इसकी सेना में हाजिब के नाम बादशाह की दृष्टि में आया जिसका आशय था कि अब तक बड़प्पन का ध्यान करता था। सिकंदर को मातृ-पितृ-हीन तथा अशक्त समझकर यह बीजापुर को घेर उसे तंग किए हुए है। उचित तो हो कि बीजापुर की सेना के सिवा एक ओर से राजा शंभा उस बेचारे की सहायता को असंख्य सेना के साथ प्रयत्नशील हो और हम खलीलुल्ला खाँ के अधीन चालीस सहस्र सवार युद्ध को भेजें तब देखें कि ये किस किस ओर मुकाबिला करते हैं। इस आशय पर बादशाही क्रोध उमड़ पड़ा तथा जिह्वा से निकला कि मैंने इस चीनी फरोश, बंदरबाज तथा चीता पालनेवाले को दंड देना रोक रखा था पर मुर्गी ने स्वयं बाँग दिया है अतः अब नहीं रोक सकता। बीजापुर की चढ़ाई का आग्रह होते भी २८ वें वर्ष के अंत में शाहजादा शाहआलम बहादुर खानजहाँ कोकलताश के साथ अबुल्हसन को दंड देने के लिए भेजा गया। खलीलुल्ला खाँ ने शेख मिनहाज के साथ, जो बीजा-पुर की नौकरी के समय खिजिर खाँ पन्नी को मारकर अबुल्हसन के पास पहुँच सम्मानित हुआ था, तथा मादन्ना के चचेरे भाई रुस्तमराव के सहित शाहजादे का सामना कर युद्ध की तैयारी की और तलवारों के युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई। एक दिन खान-जहाँ पर ऐसा धावा किया कि पास ही था कि वह पीछे हट जायँ कि इस बीच राजा रामसिंह का मस्त हाथी जंजीर तोड़कर आ पहुँचा और शत्रु की सेना में जा घुसा। बहुत से अच्छे सर्दारों के घोड़ों को रौंदकर दो आदमियों को भूमि पर मसल दिया

जिससे शत्रु-सेना में गड़बड़ी मचने से वह परास्त हो गई। दूसरी बार शाहजादे से तीन दिन तक घोर युद्ध करता रहा, जिसमें कई बादशाही सरदार घायल हुए। अंत में तिलंग की सेना परास्त होकर भागी। शारजादा पीछा न कर रुका रहा। इस अयोग्य कार्य से पहले के सब प्रयत्न बादशाह की दृष्टि में प्रशंसनीय नहीं रह गए और इसको भर्त्सना का पत्र मिला। शाहजादे ने सेनापति मुहम्मद इब्राहीम को संदेश भेजा कि तुम्हारे साथ कुछ उपेक्षा करने के कारण हम पर भर्त्सना का पत्र आया है। यदि बीदर-प्रांत की सीमा पर स्थित कौहीर व सरम का परगना छोड़ दो तो अबुलहसन के लिए क्षमा पत्र हमारे पास पहुँच जाय। इस बातचीत को यह स्वीकार करना चाहता था पर रुस्तमराव तथा दूसरे मूर्ख हृदयों ने कहा कि ये परगने भालों की नोक से बँधे हुए हैं और हम लोग युद्ध को तैयार हैं। इस पर फिर युद्ध आरंभ हुआ और एक दिन शत्रु ने इतनी दृढ़ता तथा फुर्ती दिखलाई कि शाहजादे के दीवान राय वृंदावन को हाथी पर सवार रहते हुए हाँक ले चले। सैयद अब्दुल्ला खाँ बारहा ओंठ पर बान का चोट लगने पर भी उसके पास पहुँच गया और उसे शत्रु से छुड़ा लाया। उस दिन शाहजादे के बख्शी गैरत खाँ की स्त्री बान लगने से मर गई जो हाथी पर अमारी में थी। उस दिन सबेरे से रात्रि तक युद्ध होता रहा। दूसरे दिन दक्खिनियों ने घमंड में कहलाया कि न्याय तो यह है कि सेना अपने स्थानों पर खड़ी रहे और सरदार लोग एक दूसरे से भिड़ें। शाहजादे ने उत्तर दिया कि यद्यपि इस कार्य में अभी अपूर्णता है कि भाला तथा तलवार चलाना ही चाहिए पर इस शर्त

पर हम स्वीकार करते हैं कि तुम अपने हाथियों के पैरों में जंजीर डाल दो, जिसमें वे भाग न सकें क्योंकि हमारे लिए वह लज्जा की बात है और तुम लोग उसे एक गुण समझते हो। उन सबने कहा कि हम लोग युद्ध में पैरों में जंजीर नहीं डालते इसपर शाहजादे ने कहा कि हम लोग युद्ध से नहीं भागते। अंत में पुराने समय से दक्खिनियों तथा गरीबों में जैसा होता आया है वैसा झगड़ा हुआ और अबुल्हसन की सेना भागकर हैदराबाद चली गई। शाहजादे ने इस बार उनका पीछा किया। दक्खिनियों ने खलीलुल्ला खाँ पर पहुँच न होने से शंका कर उसीको पराजय का कारण प्रकट किया। मदन्ना ने, जो मुगलों से प्रकृत्या वैमनस्य रखता था, अबुल्हसन को समझा दिया कि वह बादशाही नौकरी की इच्छा रखता है इसलिए उसे कैद कर देना चाहिए। लाचार हो उक्त खाँ हैदराबाद के पास २६ वें वर्ष में शाहजादे की सेवा में पहुँचा और शाहजादे की प्रार्थना पर इसे छ हजारी ६००० सवार का मंसब तथा महाबत खाँ की पदवी मिली। इसी वर्ष शोलापुर में बादशाह की सेवा में उपस्थित होने पर इसे पचास सहस्र रुपए तथा अन्य वस्तुएं मिलीं। ३० वें वर्ष में बीजापुर के विजय के अनंतर हसन अली खाँ बहादुर आलमगीर शाही के स्थान पर यह बरार का सूबेदार नियत हुआ। हैदराबाद की विजय के बाद इसका मंसब एक [illegible]जारी १००० सवार से बढ़ाया गया। इसी समय यह पंजाब प्रा[illegible] का शासक नियत हुआ और वहाँ पहुँचने पर ३२ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। 'कलमए महाबत खाँ' में इसकी मृत्यु की तारीख निकलती है। बादशाही सेवा करने पर इसका पौत्र मुहम्मद मंसूर

ईरान से आया और सेवा में भर्ती हो गया। इसे डेढ़ हज़ारी १००० सवार का मंसब तथा मकरमत खाँ की पदवी मिली।

मामूर खाँ मीर अबुल्फज्ल मामूरी

यह शुद्ध वंश का सैयद तथा दयावान पुरुष था। यह बुद्धि-मान तथा समझदार भी था। शाहजहाँ के राज्यकाल में पाँच सदी २०० सवार का मंसब पाकर यह बहुत दिनों तक दक्षिण के सहायकों में नियत रहा। भाग्य की प्रबलता तथा अपने अच्छे व्यवहार के कारण हर एक सूबेदार, जो दक्षिण प्रांत में आया, मिर्जा को अपनी मुसाहिबी से सम्मानित करता रहा। सुशीलता तथा वीरता में यह अग्रणी और कार्यशक्ति तथा मित्रता में अपने समय का एक था। जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर दक्षिण का शासक नियत हुआ तब यह अपनी कार्य शक्ति, पुरानी सेवा का अनुभव और अपनी राजभक्ति शाहजादे के हृदयस्थ कर बराबर उसका कृपापात्र बना रहा। जब शाहजादा हिंदुस्तान के साम्राज्य के लिए आगरे की ओर सेना का झंडा फहराता हुआ बरा-बर कूच करते नर्बदा के किनारे पहुँचा तब उसी दिन इसका मंसब बढ़कर एक हजारी ४०० सवार का हो गया। महाराज जसवंतसिंह के युद्ध में यह शाहजादा मुहम्मद सुलतान के साथ हरावल की सेना में नियत था। विजय के अनंतर इसे मामूर खा की पदवी तथा डेढ़ हजारी ५०० सवार का मंसब मिला। दाराशिकोह के युद्ध के बाद जब बादशाह दिल्ली में अजराबाद उर्फ शालामार बाग के पास उतरे तब इस कारण कि ज्योतिषियों ने राजगद्दी के लिए शुभ साइत शुक्रवार १ जीकदः सन् १०६८ हि० को बतलाई थी और

इतना अवसर न था कि इस साम्राज्य के प्रथानुसार पूरा समारोह हो सके इसलिए उक्त बाग में ठीक निश्चित समय पर राजगद्दी पर बैठ गया।

दैवयोग से इसी समय सेनापति नजाबतखाँ घर बैठ रहा, जो इन भयंकर युद्धों तथा मारकाट में प्रयत्नों, तरद्दुदों, उपायों तथा काम करने में विजयी का साथी रहा। इस वीर खाँ से बढ़कर शाहजहानी सर्दारों में, जिन्होंने शाहजादे की मित्रता में इतना बड़ा बोझ अपनी गर्दन पर उठाकर इतने बड़े काम में पैर बढ़ाया था, कोई न था और सात हजारी ७००० सवार का मंसब, दो लाख रुपए पुरस्कार और खानखाना सिपहसालार की पदवी पाने पर भी, जो इसे बढ़ाकर मिली थीं, ओछेपन तथा अनुदारता से अधिक माँगने से हाथ न उठाया और बादशाही कृपाओं को अपनी सेवा के उपलक्ष में कुछ नहीं माना। मामूर खाँ अपनी पुरानी सेवा तथा योग्यता के कारण बादशाह का कृपापात्र था और उक्त खाँ से भी संग साथ तथा मित्रता रखता था इसलिए बादशाही आज्ञाओं तथा मौखिक संदेशों को लेकर नजाबत खाँ के पास गया। इसने बहुत कुछ कड़ी तथा प्रेमपूर्ण बातें उसे समझाईं पर कुछ असर नहीं हुआ। इस प्रकार समझाने तथा उपदेशों पर, उसका स्वार्थमय अहंकार फट पड़ा और वह अनुचित प्रार्थनाएँ तथा अनहोनी बातें करते हुए झूठी बकवाद करने लगा। मामूर खाँ ने मित्रता से स्वामिभक्ति तथा राजनियमों की रक्षा को अधिक मानकर उसे कई बार मना किया पर उसने कुछ नहीं सुना। निरुपाय होकर उसकी तथा अपनी स्थिति समझकर यह उठकर चल दिया। नजाबत खाँ ने यह समझकर कि यह बात और भी न

बिगाड़ दे ऐसा तलवार का हाथ मारा कि सिर न रह गया और इसका शव द्वार पर फेंकवा दिया। सात चौकी के आदमी लोग उस पर नियत हुए पर वह भी युद्ध के लिए तैयार हो बैठा। अंत में बिना मंसब तथा पदवी छीने हुए उस नाहक खून का दंड न दिया जा सका। उस बेचारे ने नित्य बढ़ते हुए ऐश्वर्य की इच्छा को धूल में डाल दिया और उसकी अविकसित आशाएँ मुर्झा गईं।

इसका पुत्र मीर अब्दुल्ला प्रसिद्ध पुरुष था और अच्छी चाल का था। सुलिपि लिखने में अच्छी योग्यता रखता था। यह कुछ दिन खाँ फीरोजजंग का बख्शी था। इसका पुत्र काम न मिलने से फकीर हो गया। इसकी पुत्री जाफर अली खाँ खुरासानी की स्त्री थी जो पहिले हातिमबेग किफायत खाँ का दामाद होकर औरंगजेब के राज्यकाल में बीजापुर, हैदराबाद तथा बीदर का दीवान हुआ और खाँ फीरोजजंग की सेना के बख्शी का काम भी करता था। अंत में यह परेशान हाल रहने लगा और खुसरुए जमाँ के समय मर गया। वह पुत्री इसके अनंतर अपने पिता तथा दादा के कब्रिस्तान के बाग में, जो औरंगाबाद नगर में था, रहती हुई अब तक कालयापन करती है। मीर अबुल्फजल मामूर खाँ के अन्य संतानों के बारे में कुछ ज्ञात नहीं हुआ। उस मृत की बहिन को बहुत संतान थी। इसका एक पौत्र फख्रुद्दीन अलीखाँ मामूरी था, जो बड़ा साहसी तथा उत्साही था पर शोक कि सौभाग्य अच्छा न पाया था यद्यपि उसने बड़े २ कार्य किए थे। इसका पिता मीर अबुल्फत्ह बादशाही नौकरी से त्यागपत्र देकर उड़ीसा प्रांत की राजधानी कटक नगर में व्यापार करने लगा।

उक्त खाँ औरंगजेब के राज्यकाल में संगमनेर का बख्शी तथा वाकेआनवीस नियत हुआ। बहादुर शाह के समय में सूरत बंदर के दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। फर्रुखसियर के राज्य के आरंभ में इस पद से हटाए जाने पर नए दुर्गाध्यक्ष को अधिकार न देकर युद्ध के लिए तैयार हुआ और दंडित होने पर अहमदाबाद गुजरात में कुछ दिन काटे। जब हुसेन अली खाँ अमीरुलउमरा दक्षिण आया तब उस पुराने परिचय के कारण, जो इसका पिता सैयद अब्दुल्ला खाँ बारहा के साथ रखता था, यह उस सर्दार के पास उपस्थित होकर नर्मदा नदी के किनारे बीजागढ़ का फौजदार नियुक्त हुआ। इतना होते हुए भी यह सामान व सेना एकत्र न कर बेहाल रहा और दुर्दशाग्रस्त हो दक्षिण से दिल्ली और यहाँ से बंगाल चला गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी यह कुछ न कर सका। उड़ीसा के मार्ग से हैदराबाद आया। वहाँ के शासक मुबारिज खाँ ने पुरानी मित्रता के कारण इसका स्वागत किया।

जब मुबारिज खाँ दरबार से दक्षिण के कुल प्रांतों का अध्यक्ष बनाया गया तब उसने इसे बरार का सूबेदार नियत कर दिया। इसके अनंतर जब मुबारिज खाँ अधिकार न पाकर इस काम में पड़ गया तब उक्त खाँ अलग होकर सूरत बंदर की ओर चल दिया और नए सिरे से उसे पाया पर बुरे नक्षत्र के कारण शत्रु द्वारा लुट गया। यहाँ से यह राजा साहू के पास लाया गया। इसने राजा को बहुत बहकाना चाहा और प्रयत्न किया कि दक्षिण की संधि टूट जाय पर कुछ लाभ नहीं हुआ। जब आसफजाह ने फत्हजंग चांदा के पर्गनों को तिलंग के एलमा जाति के अधिकार से ले लेने की तैयारी की तब यह उसकी सेवा में भर्ती हो गया।

इसकी कार्यशक्ति को दृष्टि में रखकर नौकरी दी गई थी पर मृत्यु ने छुट्टी न दी। उसी स्थान के आस पास यह गाड़ा गया। इन पंक्तियों का लेखक उससे विशेष संबंध रखता था। उस मृत की प्रकृति में कंजूसी इतनी भरी हुई थी, जैसी किसी की प्रकृति में न देखी थी।

———

मासूम खाँ काबुली

यह खुरासान के अंतर्गत तुर्बत का एक सैयद था। इसका चाचा मिर्जा अजीज जहाँगीर के समय वजीर के पद पर पहुँचा। यह मिर्जा मुहम्मद हकीम से धाय भाई का संबंध रखता था। साहस तथा कार्य दिखलाकर इसने नाम कमाया। मिर्जा के कुल प्रबंध को देखनेवाला ख्वाजा हसन नक्शबंदी मनोमालिन्य के कारण जो दुनियादारों में जरा से शक पर पैदा हो जाता है, इसे दंड देने को तैयार हुआ तब यह दूरदर्शिता से २० वें वर्ष में अकबर की शरण में चला आया और इसे पाँच सदी मंसब तथा बिहार में जागीर मिली। अफगानों के एक बड़े सर्दार तथा साहस और वीरता में प्रसिद्ध काला पहाड़ से उस प्रांत में इसने युद्ध कर विजय प्राप्त किया तथा घायल भी हुआ। इसके उपलक्ष में इसका मंसब बढ़कर एक हजारी होगया। २४ वें वर्ष में उड़ीसा में इसे जागीर मिली। जब इस प्रांत के सर्दार गण बादशाही मुत्सद्दियों की दाग की प्रथा की कड़ाई के कारण विद्रोही हो गए तब मासूम खाँ ने राजद्रोह तथा मूर्खता से उनका सर्दार बनकर बलवे का झंडा खड़ा कर दिया और ऐसा काम किया कि उसे मासूम आसी की पदवी मिल गई। जब दरबार से सेना के आने का समाचार सुना तब बंगाल जाकर उस प्रांत के विद्रोहियों तथा काकशालों से मिल गया और सेना की अधिकता हो जाने से उस प्रांत के अध्यक्ष मुजफ्फर खाँ को टाँडे में घेर लिया।

उसने युद्ध का साहस न कर तथा धन-लोभ और प्राण बचाने की इच्छा से मासूम खाँ के पास बीस हजार अशर्फी भेजकर अपने सम्मान की रक्षा का वचन ले लिया।

इस घबड़ाहट से काकशालगण तथा अन्य उपद्रवी लोग हर ओर से दुर्ग के नीचे आ पहुँचे। मासूम खाँ उस निश्चय के अनुसार धन हाथ में आने के पहिले ही मुजफ्फर खाँ के खेमे के पास आराम कर उड़े उत्साह से अकेले उसके पास गया, जो अपने कुछ सशस्त्र दासों के साथ खड़ा था, जो न युद्ध करने को और न भागने ही को खड़े थे। इस उपद्रवी का मस्तिष्क बिगड़ गया था इसलिए ऐसे अवसर को न जाने देकर उस नष्टबुद्धि दोषी को इसने मार डाला। इस पर उस ओर महल से बड़ा शोर आने लगा। मासूम खाँ ऐसे साहस से स्वयं घबड़ाकर बाहर निकल आया और सदा अपने को ऐसे कार्य के लिए भर्त्सना करता रहा। मुजफ्फर खाँ का काम समाप्त कर तथा अच्छी पदवियाँ और जागीर बाँटकर सिक्का और खुतबा मिर्जा मुहम्मद हकीम के नाम कर दिया। गिजाली मशहदी के इस शैर को, जो खानजमाँ शैबानी की मित्रता के समय स्यात् कहा गया था क्योंकि उसने भी मिर्जा के नाम खुतबा पढ़ा था, प्रसिद्ध किया—

शैर—

बिस्मिल्लाह अल्‌रहमान अल्‌रहीम,

मुल्क का उत्तराधिकारी मुहम्मद हकीम है।

जब खानआजम मिर्जा कोका इन सब को दंड देने के लिए नियत हुआ तब मासूम खाँ कतलू लोहानी से जा मिला, जिसने उड़ीसा प्रांत में विजय प्राप्त कर इस अवसर में बंगाल के कुछ

भाग पर अधिकार कर लिया था, और बादशाही सेना से लड़ने के लिए तैयारी की। इसके अनंतर जब काकशालों ने इससे शत्रुता कर मिर्जा के यहाँ संधि का संदेश भेजा तब यह भागा। २८ वें वर्ष में इसने फिर उपद्रव किया। जब शहबाज खाँ बंगाल की सेना के साथ पहुँचा तब यह उससे युद्ध करने लगा। कड़ी पराजय होने पर जब जब्बारी आदि बलबाई इससे अलग हो गए तब मासूम खाँ भाटी प्रांत में चला गया और वहाँ के शासक ईसा की सहायता से बादशाही राज्य में लूटमार करने लगा पर हर बार बादशाही सेना से हारकर असफलता से लौट जाता। ४४ वें वर्ष सन् १००७ हि० में उसी प्रांत में मर गया। इसकी मृत्यु पर इसका पुत्र शुजाअ मुजफ्फर खाँ के क्रीत कलमाक से मिलकर, जो तलवार चलाने में नाम कमा कर अपने को बाजबहादुर कहता था, तथा तूरानी सैनिकों को मिलाकर उस सीमा पर कुछ दिन उपद्रव करता रहा। ४६ वें वर्ष में शरण आकर उस प्रांत के अध्यक्ष राजा मानसिंह कछवाहा से मिला और सेवा की प्रतिज्ञा की। जहाँगीर के समय गजनी का थानेदार हुआ और शाहजहाँ के समय इसे डेढ़ हजारी १००० सवार का मंसब तथा असद खाँ की पदवी मिली। १२ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हुई। इसका पुत्र कुबाद पाँच सदी ३०० के मंसब तक पहुँचा था।

मासूम खाँ फरनखूदी

यह मुईनुद्दीन खाँ अकबरी का पुत्र था। पिता की मृत्यु पर बादशाह की नई कृपा से एक हजारी मंसबदार हो गया तथा इसे गाजीपुर सरकार की जागीरदारी मिली। जब बिहार तथा बंगाल प्रांतों में मासूम काबुली और बाबा काकशाल के विद्रोह तथा उपद्रव बढ़े तब यह यद्यपि प्रगट में राजा टोडरमल का साथ देकर उपद्रवियों का पीछा करता रहा तथा उद्दंडता और मनमाना कार्य करता रहा पर जब मिर्जा मुहम्मद हकीम का पंजाब में आना तथा अकबर का उस ओर जाना सुना तब इसकी हृदयस्थ दुर्भावना बढ़ी और यह विद्रोही हो गया। इसने तर्सून खाँ के आदमियों से जौनपुर छीनकर उस पर अधिकार कर लिया। बाल्यकाल से इसपर बादशाही कृपा होती आ रही थी इसलिए अकबर ने मेहरबानी कर जौनपुर छोड़ देने की शर्त पर इसे अवध की जागीर पर नियत किया। प्रकट में फर्मान को मानकर यह अवध गया पर वास्तव में विद्रोह का सामान ठीक करने गया। दरबार से शाहकुली खाँ महरम और राजा बीरबल इसे सम्मति देने भेजे गए। इस बिगड़े दिमाग ने लज्जा के पर्दे से निकलकर असभ्य बातें की। निरुपायतः सम्मति से काम न चलता देखकर वे लौट गए। शहबाज खाँ बिहार के विद्रोहियों को दमन करने में लगा था और उसने इसका वृत्तांत सुनकर २५ वें वर्ष में उसे दंड देने का निश्चय किया। सुलतानपुर बिल्हरी

के पास युद्ध की तैयारी हुई। मासूम खाँ ने स्वयं आक्रमण कर युद्ध आरंभ कर दिया। शह्बाज खाँ साहस छोड़कर भागा और जौनपुर पहुँचकर बाग खींची, जो वहाँ से तीस कोस पर है। एकाएक मासूम खाँ के मारे जाने का शोर सुना जाने लगा, जिससे उसके आदमी भाग गए। वह मैदान में पहुँचकर आश्चर्य में पड़ गया। इसके बाद बादशाही सेना का बायाँ भाग, जिसे सर्दार के पराजय की खबर न थी, आ पहुंचा। यह घबड़ाकर लड़ बैठा और घायल होकर रक्षास्थान में चला गया।

उसका निवास स्थान बादशाही सेना द्वारा लुट गया था इसलिए अवध के कस्बे को चला गया। शह्बाज खाँ ने जौनपुर में सेना ठीक कर दूसरी बार युद्ध की तैयारी की। अवध से सात कोस पर युद्ध हुआ। वह फिर परास्त हो अवध में जा बैठा। अरब बहादुर तथा नयाबत खाँ, जो उसकी मस्ती के उद्गम थे, अलग हो गए। मासूम खाँ अपने ऐश्वर्य तथा सामान को छोड़कर भागा। इधर उधर टक्कर खाता हुआ गुम हो बैठा। किवारिज के जमींदार ने पुरानी मित्रता के नाते उसे अपने यहाँ लाकर उसका नगद तथा सामान ले लिया। तबाही की हालत में सर्द नदी पारकर वहाँ के राजा मान के पास पहुँचा। उसने कुछ बदमाशों को साथ दिया और इसके पास रत्नों की आशंका से इसे मारने का संकेत कर दिया। मासूम खाँ ने यह जानकर उनको सोने से बहकाया और स्वयं एकांत स्थान में चला गया।

इसी बीच इसका एक नौकर मकसूद इसके पास पहुँचा और अपना जमा किया हुआ धन भेंट कर दिया। इस उपद्रवी ने पुनः बलवे का विचार किया और थोड़े समय में धन के दासों को

इकट्ठा कर लिया। बहराइच नगर को इसने लूट लिया। हाजीपुर से वजीर खाँ ने उस प्रांत के दूसरे जागीरदारों के साथ युद्ध की तैयारी की। बहुत दिनों तक तोप गोली का युद्ध होता रहा। रात्रि में मासूम खाँ सब छोड़कर चल दिया और फिर सेना इकट्ठी कर मुहम्मदपुर कस्बे को लूट लिया। यह जौनपुर लूटने के विचार में था कि वहाँ के सब जागीरदार इकट्ठे हो गए। जब उस विद्रोही ने देखा कि उसकी कुछ न चलेगी तब खानआजम कोका की शरण गया, जिसने बादशाह से इसका दोष क्षमा कराकर महिस्ती जागीर दिला दी। यह विद्रोह करने ही को था कि मिर्जा कोका उसका उपाय करने आ बैठा। अपने में शक्ति न देखकर उससे मिलकर दरबार चला गया। २७ वें वर्ष में आगरे पहुँचा। हमीदा बानू बेगम के कहने से यह फिर क्षमा किया गया। उसी समय सन् ९९० हि० में अर्द्धरात्रि को दरबार से अपने घर चला। किसी ने आक्रमण कर इसे मार डाला। बहुत खोज हुई पर पता न चला। कुछ लोगों का कहना है कि ऐसा बादशाह के संकेत पर हुआ था। ईश्वर जाने।

मासूम भक्करी, मीर

इसका उपनाम 'नामी' था। इसके पूर्वज तर्मिज के सैयद थे और दो तीन पीढ़ी से कंधार में रहने लगे थे। इनका काम बाबा शेर कलंदर के मकबरे का मुतवल्लीपन था, जो सिद्धाई में अपने समय का एक महान् पुरुष था तथा वहाँ गाड़ा गया था। इस कार्य में और लोग भी इसके साझी थे। इसके पिता का नाम मीर सैयद सफाई था, जिससे इसे भी लोग सैयद सफाई कहते थे। भक्कर में आने पर यहाँ के शासक सुलतान महमूद के इसका सम्मान करने से यह यहीं रहने लगा। सिविस्तान के अंतर्गत खाबरूत के सैयदों से इसने संबंध किया। मीर मासूम तथा इसके दो भाई यहीं पैदा हुए। मीर पिता की मृत्यु पर मुल्ला मुहम्मद की सेवा में, जो भक्कर के अंतर्गत कंगरी का रहने वाला था, विद्याध्ययन करता रहा और योग्यता प्राप्त की। यह अहेर में भी कुशल था और बहुधा समय उसमें व्यतीत करता था। यहाँ तक कि दरिद्रता ने इन लोगों को आ घेरा तब यह पैदल गुजरात को चला। शेख इसहाक फारूकी भक्करी ने, जो ख्वाजा निजामुद्दीन हरवी की सरकार में उस प्रांत का दीवान था, पहली मित्रता के कारण मीर की ख्वाजा से मुलाकात करा दी क्योंकि दोनों देश में सहपाठी थे। दैवयोग से उस समय तबकाते अकबरी लिखी जा रही थी। इतिहास-ज्ञान में अद्वितीय होने से मीर का सत्संग आवश्यक समझकर इसे वहीं रख लिया। इसके सह-

योग तथा सत्संग से ख्वाजा ने भी शैर बनाकर उस रचना में रखे। इसके अनंतर वहाँ के प्रांताध्यक्ष शहाबुद्दीन अहमद खाँ की सेवा में नियत होने पर इसे मंसब भी मिल गया। वीरता तथा साहस में नाम अर्जित करने पर यह अकबर की सेवा में भर्ती हो गया। ४० वें वर्ष में इसे ढाई सदी मंसब मिला। बादशाह के पास रहने तथा विश्वास बढ़ने से यह ईरान के राजदूत पद पर नियत हुआ और अपनी बुद्धिमानी तथा योग्यता से शाह अब्बास सफवी का कृपापात्र हुआ। जब ईरान प्रांत से लौटा तब सन् १०१५ हि० (सन् १६४०-१ ई०) में जहाँगीर ने इसे अमीनुल् मुल्क बनाकर भक्कर भेजा पर यह वहाँ पहुँचते ही मर गया। कहते हैं कि यह अकबरी एक हजारी मंसब तक पहुँचा था। यह शैर अच्छा कहता। यह शैर उसी का है—

क्या ही अच्छा है कि तू अपना ही वृत्तांत पूछ रहा है।
तुझसे अपना वृत्तांत विना जिह्वा की भाषा में कहता हूँ॥

दीवान नामी, मखजनुल् इसरार के जवाब में लिखी गई मादनुल् अफगार मसनवी, तारीख सिंध और मुफर्रदात मासूमी नामक हकीमी का संक्षेप इसकी रचनाएं हैं। यह अच्छी लिपि लिखने में भी दक्ष था। हिंदुस्तान से तब्रेज तथा इस्फहान तक सर्वत्र मार्ग में पड़ते हुए मस्जिदों और इमारतों पर इसने अपने शैर खोदे हैं। आगरा दुर्ग के फाटक और फतहपुर की जामः मस्जिद पर के लेख इसी की हस्तलिपि में हैं। इसने बहुत से धर्मस्थान, विशेष कर अपने रहने के नगर सक्खर में बनवाए। सिंध नदी के बीच में, जो भक्कर के चारों ओर हैं, सत्यासर नामक इमारत बनवाई, जो पृथ्वीपर के आश्चर्यों में है। इसके निर्माण की

तारीख 'गुंबदे दरियाई' है। विराग तथा तपस्या में यह इतना बढ़ा हुआ था और उदारता तथा दान में ऐसा था कि सक्खर के फकीरों के लिए हिंदुस्तान से सौगात भेजता था और बड़ों, विद्वानों, साधुओं आदि के लिए वृत्तियाँ बाँध दी थीं। अंत में जब अपने देश गया तब वह सलूक नहीं रह गया, जिससे वहाँ के निवासी कष्ट में पड़ गए। कहते हैं कि बस्ती बसाने में वह ऐसा था कि उसने नियम कर दिया था कि अपने जागीर के महाल में एक टुकड़ा जंगल अहेर के लिए रक्षित रखे। इसका पुत्र मीर बुजुर्ग था। सुलतान खुसरो के बलवे में इसको मार्ग से सशस्त्र पकड़ कर लाए और कोतवाल ने प्रगट किया कि यह भी सुलतान का साथी था। इसने अस्वीकार कर दिया। जहाँगीर ने पूछा कि इस समय शस्त्र क्यों लगाए हुए हो। उत्तर दिया कि पिता कह गए हैं कि रात्रि की चौकी में सशस्त्र रहा करो। चौकी के लेखक ने भी गवाही दी कि आज की रात्रि इसीकी चौकी थी। इस पर यह बच गया। बादशाह ने दया कर इसके पिता का माल इसे बख्श दिया। कंधार की बख्शीगीरी में इसने बहुत दिन व्यतीत किए। पिता के तीस-चालीस लाख रुपयों को अपव्यय में लगाने से इसका दिमाग इतना बढ़ गया कि किसी को सिर नहीं झुकाता था और किसी प्रांताध्यक्ष से इसकी नहीं पटी। यह साफ-सुथरे बहुत से नौकर रखता था। गद्य-पद्य लेखन में भी इसकी रुचि थी और अच्छा लिखता भी था। अनेक प्रकार की लूटमार करने से यह अत्याचारी हो गया था। मांडू में बादशाह की सेवा में पहुँचकर दक्षिण में नियत हुआ, जहाँ बहुत दिनों तक रहा। जागीर की आय से इसका आनंद का व्यय पूरा नहीं पड़ता था इससे काम

छोड़कर घर बैठ रहा। पिता की अचल संपत्ति तथा बागों पर इसने संतोष किया। सन् १०४४ हि० में यह मर गया। इसे संतान थीं। इनमें से कुछ मुलतान में रहने लगे थे।

मिर्जा खाँ मनोचेहर

यह अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ के पुत्र मिर्जा एरिज शाहनवाज खाँ का पुत्र था। यह बैराम खाँ के वंश का स्मारक था। इस उच्च वंश में जैसा कि इसके पूर्वजों के नाम ही से प्रकट है, इसके सिवा और किसी ने इस समय प्रसिद्धि नहीं प्राप्त की। साहस, वीरता तथा बहादुरी में, जैसा कि इस वंश के उपयुक्त है, यह विशेषता रखता था और बुद्धिमानी के कारण ठीक सम्मति देने तथा उपाय निकालने की योग्यता और अनुभव में एक था। युद्ध में लगे हुए कुछ घावों के कारण यह कुछ दिनों तक आलस्य आदि में रहने से उन्नति न कर सका। यह बहुत दिनों तक दक्षिण के सहायकों में नियत रहा। भातुरी अहमद नगर के युद्ध में १६ वें वर्ष जहाँगीरी में, जब लश्कर खाँ बहुत से सर्दारों के साथ मलिक अंबर की कैद में पड़ गया तब मिर्जा मनोचेहर भी ठीक पूर्ण यौवनकाल में अत्यंत घायल हो कैद हो गया। बहुत दिनों तक यह दौलताबाद में कैद रहा। उस युद्ध में इसने बहुत प्रयत्न दिखलाया था इससे छुटकारा मिलने पर जहाँगीर ने इसे मिर्जा खाँ की पदवी, तीन हजारी २००० सवार का मंसब तथा झंडा व डंका दिया। शाहजहाँ की राजगद्दी पर इस पर कृपा बनी रही। ६ ठे वर्ष में बहराइच सरकार का फौजदार नियत हुआ। ८ वें वर्ष में नजाबत खाँ श्रीनगर की चढ़ाई में ठीक उपाय न करने से दंडित हुआ था इसलिए उसके स्थान पर यह कांगड़ा पर्वत की

तराई का फौजदार नियुक्त हुआ और उसकी जागीर इसे वेतन में मिली। ६ वें वर्ष के अंत में मस्तिष्क बिगड़ने से कुछ दिन एकांतवास करता रहा और अच्छे होने पर एक दम अवध का सूबेदार नियत कर दिया गया। इसके बाद मांडू का फौजदार तथा जागीरदार हुआ। २५ वें वर्ष में अहमद खाँ नियाजी के स्थान पर यह अहमद नगर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। २८ वें वर्ष में एलिचपुर का शासन इसे मिला। देवगढ़ के भूम्याधिकारी कोक्या ने १० वें वर्ष के बाद से खानदौराँ नसरतजंग को कर अदा किया था परंतु उसके अनंतर उसके पुत्र कीरतसिंह ने शासक होने पर कर कोष में नहीं जमा किया था इसलिए दक्षिण प्रांत के सूबेदार शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर ने २६ वें वर्ष में बादशाही आज्ञानुसार मिर्जा खाँ को तिलंगाना के शासक हादीदाद खाँ तथा अन्य दक्खिनी सर्दारों के साथ इसे उक्त जमींदार पर नियत किया। जब उक्त खाँ उस प्रांत की सीमा पर पहुँचा तब उस दूरदर्शी उपद्रवी ने बादशाही आज्ञाओं को मानने ही में अपना छुटकारा देखकर नम्रता से काम लिया और मिर्जा खाँ से मिलकर वर्तमान सन् तक का कुल पिछले वर्षों का बकाया कर देना स्वीकार किया। मिर्जा खाँ यह मानकर उक्त जमींदार को बीस हाथियों सहित, क्योंकि इससे अधिक उसके पास नहीं थे, शाहजादे की सेवा में लिवा लाया। ३१ वें वर्ष में गोलकुंडा की चढ़ाई में शाहजादे के साथ रहकर इसने अच्छी सेवा की और दुर्ग के उत्तर के मोर्चे का यह नायक था। कई बार इसने वीरता से शत्रुओं को परास्त किया। सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह से संधि होनेपर जब शाहजादा औरंगाबाद प्रांत को लौटा तब इसे एलिचपुर जाने की

छुट्टी मिली। इतनी अच्छी सेवा तथा सुव्यवहार पर भी विजयी शाहजादे का साथ उन युद्धों में नहीं दिया, जो साम्राज्य के दावे-दारों के साथ हुआ था। इस कारण या और कोई कारण रहा हो औरंगजेब के राज्य के आरंभ ही में मंसब से हटाए जाने पर बहुत दिनों तक एकांतवास करता रहा। यह शेख अब्दुल्लतीफ बुर्हानपुरी की सेवा में रहा करता था और बादशाह भी उसका कृपापात्र था इसलिए उसके संकेत पर १० वें वर्ष में इस पर कृपा हुई और इसे तीन हजारी ३००० सवार का मंसब तथा एरिज की फौजदारी और जागीरदारी मिली। यहीं सन् १०८३ हि० (सन् १६७३ ई०) १६ वें वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। बुर्हानपुर में एक बाग बनवाकर शेख अब्दुल्लतीफ को इसने भेंट कर दिया। यह शेख पर विशेष आस्था रखता था। इसका पुत्र मुहम्मद मुनइम योग्य पुरुष था। साम्राज्य के लिए दक्षिण से हिंदुस्तान आते समय यह औरंगजेब की सेना के साथ था और इसे डेढ़ हजारी मंसब तथा खाँ की पदवी मिली। सभी युद्धों में साथ रहकर इसने बहुत प्रयत्न किया। २ रे वर्ष दाराब खाँ के स्थान पर यह अहमद नगर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ।

मिर्जा मोरक रिजवी

यह मशहद के रिजवी सैयदों में से था। यह आरंभ में अली कुली खानजमाँ का साथी था। अकबर के १० वें वर्ष में खानजमाँ की ओर से क्षमा प्रार्थना करने के लिए यह बादशाह के पास आया था और उसके दोष क्षमा भी किए गए थे। १२ वों वर्ष में जब खानजमाँ के विद्रोह का समाचार बादशाह को मिला तब मिर्जा को कैद कर खान बाकी खाँ को सौंप दिया। मिर्जा अवसर की खोज में था और उसे पाकर यह भाग गया पर खानजमाँ के मारे जाने पर यह फिर पकड़ा गया। बादशाह की आज्ञा से इसको प्रति दिन मस्त हाथी के सामने डाल देते थे पर हाथीवान को संकेत कर दिया गया था कि कितना दंड दिया जाय। पाँचवों दिन दरबारियों की प्रार्थना पर इसकी जान बख्श दी गई। कुछ दिन बाद इस पर बादशाही कृपा हुई और इसे अच्छा मंसब तथा रिजवी खाँ की पदवी देकर सम्मानित किया गया। १६ वों वर्ष में यह जौनपुर का दीवान नियत हुआ। २४ वों वर्ष में इसके साथ साथ बंगाल की बख्शीगिरी भी मिल गई। २५ वें वर्ष में बंगाल के जागीरदारों का विद्रोह हुआ और गंगा जी के उस ओर वे इकट्ठे हो गए। यह वहाँ के सूबेदार मुजफ्फर खाँ के साथ गंगाजी के इस पार था। जब संधि की बातचीत चली तब उक्त खाँ तथा राय पत्रदास दो एक आदमियों के साथ समझाने के लिए भेजे गए। उक्त राय के अनुयायी आदमियों ने विद्रोहियों

को मार डालने का विचार इससे कह दिया। इसने सिधाई से यह भेद उक्त खाँ से कह दिया। खाँ की प्रकृति दो रुखी और कपट की थी इसलिए इसने संकेत तथा इशारों से यह बात विद्रोहियों के मन में बैठा दी, जिससे वे इस जलसे से उठकर चल दिए और खूब उपद्रव मचाया तथा इसको अपनी रक्षा में ले लिया। इसके बाद का हाल नहीं ज्ञात हुआ कि इसका क्या हुआ।

— —

मिर्जा सुलतान सफवी

यह मिर्जा नौजर कंधारी का छोटा भाई था। यह इस्लाम खाँ मशहदी का दामाद था। जब शाहजहाँ के राज्यकाल में उक्त खाँ दक्षिण के प्रांतों का शासक नियत हुआ तब इसे भी एक हजारी ४०० सवार का मंसब देकर साथ बिदा किया। इस्लाम खाँ की मृत्यु पर इसके दरबार आने पर इसका मंसब बढ़ाया गया। २४ वें वर्ष में अपने चचेरे भाई मिर्जा मुराद काम के स्थान पर कोरबेगी नियत हुआ और बहुत दिनों तक यह कार्य करता रहा। जब ३१ वें वर्ष में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर आदिलशाह को दंड देने तथा उसके राज्य को लूटने गया और मुअज्जम खाँ मीर जुम्ला के अधीन भारी सेना दरबार से सहायतार्थ भेजी गई तब मिर्जा सुलतान भी तरक्की मिलने पर तीन हजारी १५०० सवार का मंसब पाकर साथ नियत हुआ। इसके अनंतर जब दाराशिकोह के संकेत पर सहायक सेना लौटी तब मिर्जा शाहजादे की कृपा से उसका आभारी होकर उसकी सेवा न छोड़ औरंगाबाद में ठहर गया। जब इसी समय हिंदुस्थान की ओर राज्य का दावा करने के लिए जाना निश्चय हुआ तब शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम को दक्षिण का सूबेदार नियत किया और मिर्जा को एक हजारी ५०० सवार की तरक्की देकर चार हजारी २००० सवार के मंसब के साथ फुलमरी से औरंगाबाद बिदा कर दिया कि शाहजादा की सेवा में रहकर काम करे।

इसके अनंतर औरंगजेब के बादशाह हो जाने पर यह दक्षिण से दरबार जाकर सेवा में उपस्थित हुआ। ६ वें वर्ष में एक हजार सवार मंसब में बढ़ने पर यह शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम के साथ नियत हुआ, जो शाह अब्बास द्वितीय के हिंदुस्तान की ओर चढ़ाई करने के लिए आने जाने का समाचार सुने जाने पर फुर्ती से काबुल पहुंचने को बिदा किया गया था। शाहजादा राजधानी लाहौर से अभी आगे नहीं बढ़ा था कि ईरान के शाह की 'खनाक' बीमारी से मृत्यु हो जाने का समाचार मिला। १० वें वर्ष के आरंभ में यह शाहजादे के साथ लौटकर सेवा में उपस्थित हुआ। इसी समय उक्त शाहजादा दक्षिण का शासक नियत हुआ, जो वास्तव में उसी से संबंध रखता था और जहाँ से ८ वें वर्ष के अंत में आज्ञानुसार दरबार चला आया था। वह समयोचित समझा जाकर राजा जयसिंह के साथ नियुक्त हुआ था, जो आदिलशाहियों को दंड देने के लिए गया था। पहिले ही के समान वहाँ का शासन ठीक रखने को उसे वहीं रहने की आज्ञा हुई। मिर्जा सुलतान भी खिलअत पाकर अपनी जागीर पर गया कि वहाँ का प्रबंध ठीक कर शाहजादे की सेवा में दक्षिण जाय। यह बहुत दिनों तक उस प्रांत में रहा। इसकी मृत्यु का सन् नहीं ज्ञात हुआ पर दक्षिण ही में इसकी मृत्यु हुई। यही विशेष संभावना है क्योंकि इसका मकबरा औरंगाबाद के बाहर जैसिंहपुरा के पास दौलताबाद दुर्ग जाने के मार्ग पर स्थित है। इसका पुत्र मिर्जा सदरुद्दीन मुहम्मद खाँ बख्शी था, जिसका वृत्तांत अलग लिखा गया है।

मीरक शेख हरवी

यह काजी असलम का भतीजा प्रसिद्ध है। जहाँगीर के राज्यकाल में ठीक जवानी के समय खुरासान से हिंदुस्तान आया और लाहौर में मुल्ला अब्दुस्सलाम का शिष्य हुआ। यह मुल्ला उस नगर के प्रसिद्ध विद्वानों में था, खासा बुद्धिमान था तथा पचास वर्ष से शिक्षक की गद्दी पर बैठता था। इसने 'बैजावी' पर टिप्पणी लिखी थी। बादशाही शिक्षा में भी कुछ दिन रहा। शाहजहाँ के राज्य के १ म वर्ष में इसकी मृत्यु हो गई। मीरक शेख ने प्रायः बहुत सी पुस्तकें देख डालीं और इस प्रकार सुशिक्षित होने पर शाहजहाँ की सेवा में भर्ती हो गया। सौभाग्य से शाहजादा दाराशिकोह तथा दूसरे शाहजादों को शिक्षा देने का भार इसे मिल गया। इसको हालत की उन्नति करने तथा शाही कृपा से इसे योग्य मंसब मिला। १७ वें वर्ष में इसे अर्ज मुकर्रर का पद मिला। २८ वें वर्ष में बेगम साहबा का दीवान नियत हुआ और इसका मंसब पाँच सदी ५० सवार बढ़ने से दो हजारी २०० सवार का हो गया। इसके बाद पाँच सदी और बढ़ा।

जब मुहम्मद औरंगजेब बहादुर ने विजय तथा भाग्य के जोर से थोड़े समय में हिंदुस्तान पर एक छत्र राज्य फैला लिया तब इस पर अधिकाधिक कृपा करते हुए २ रे जलूसी वर्ष में इसका मंसब पाँच सदी बढ़ाकर तीन हजारी कर दिया। २ रे

वर्ष के अंत में सैयद हिदायतुल्ला कादिरी के स्थान पर सदर कुल नियत हुआ। अवस्था अधिक हो गई थी इसलिए ४ थे वर्ष में उस काम से हटा दिया गया। उसी समय सन् १०७१ हि० (सन् १६६१ ई०) में यह मर गया।

मीर गेसू खुरासानी

यह खुरासान के सैयदों में से था। अकबरी दरबार में अपनी पुरानी सेवाओं और संबंध के कारण बहुत विश्वासपात्र हो जाने से बकावल बेगी का पद इसे मिला, जो सिवा विश्वसनीय व्यक्तियों के किसी को नहीं मिलता था। जब मीर खलीफा के पुत्र मुहिब्ब अली खाँ ने साहस कर भक्कर दुर्ग घेर लिया और दुर्ग वाले तंग आ गए, जिसका वृत्तांत उसकी जीवनी में दिया गया है, तब वहाँ के स्वामी सुलतान महमूद ने अकबरी दरबार में प्रार्थना पत्र भेजा कि जो होना था वह हो गया पर अब दुर्ग को भेंट करता हूँ किंतु मेरे तथा मुहिब्ब अली खाँ के बीच लड़ाई हो चुकी है, इससे उससे निश्चिंत नहीं हूँ। कोई दूसरा सेवक इसके लिए नियत हो। अकबर ने मीर गेसू को भेजा, जो योग्य तथा अनुभवी था। जब मीर वहाँ सीमा पर पहुँचा तब मुहिब्ब अलीखाँ के आदमियों ने मार्ग रोका। यह कैद हो जाता पर ख्वाजा निजामुद्दीन बख्शी का पिता ख्वाजा मुकीम हरवी अमीनी के कार्य से वहाँ पहुँच गया और मुहिब्ब अली खाँ को समझाकर युद्ध से रोका। दुर्ग वालों ने जो मीर की प्रतीक्षा ही में थे, सुलतान महमूद के निश्चय के अनुसार, जो मीर के पहुँचने के पहिले ही मर चुका था, दुर्ग की कुंजी १९वें वर्ष में सन् ९८२ हि० (सन् १५७४-५ ई०) में सौंप दी। इस प्रकार वह बसा हुआ प्रांत उसके

अधिकार में चला आया। परंतु मुहिब्ब अली लोभ के कारण वह स्थान छोड़ना नहीं चाहता था इसलिए कई युद्ध हुए।

जब अकबर ने यह वृत्तांत सुना तब तसून खाँ को वहाँ का अध्यक्ष नियत कर भेजा। जब उसके भाई लोग वहाँ पहुँचे तब मीर गेसू ने जिसे हुकूमत का स्वाद लग गया था, विद्रोह के विचार से दुर्ग को दृढ़ करना चाहा पर फिर दूरदर्शिता से इस बुरे विचार से दूर हो गया और उस प्रांत से हाथ उठाकर दरबार चला गया। इसके अनंतर मेरठ तथा दिल्ली के आसपास के महालों का, जो दोआब के अच्छे महालों में थे, फौजदार नियत हुआ। दोआब का तात्पर्य गंगा और जमुना के बीच की भूमि से है। यह बराबर लोभ तथा कंजूसी के कारण नौकरों से झगड़ा किया करता और स्वामी तथा सैनिक दोनों ही अपना स्वार्थ देखते थे अतः २८ वें वर्ष सन् ९९१ हि० (सन् १५८३ ई०) में मेरठ में दोनों के बीच बातों में बहुत झगड़ा हो गया। कुछ को इसने बेइज्जती से निकलवा दिया। शव्वाल के ईद के दिन साथियों सहित यह मदिरा पीकर ईदगाह में गया। कुछ कपटी उपद्रवी प्रार्थना करने आए पर इसने उन्मत्तता से शांति छोड़ कर उनके साथ बुरा बर्ताव किया। उन स्वामिद्रोहियों ने विद्रोह कर दिया। मीर क्रोध से उनके घर गया और उनमें आग लगवा दी। वे युद्ध को आए और इधर इसके सहायकों ने इसका साथ छोड़ दिया। इस प्रकार मीर का अंत हो गया और उन सब ने नीचता से उसके शव को जला दिया। अकबर ने यह सुनकर बहुत से उपद्रवियों को प्राण दंड दिया।

इसका पुत्र मीर जलालुद्दीन मसऊद, जिसे योग्य मंसब मिल

चुका था, जहाँगीर के राज्य के २२ वर्ष में मर गया। इसकी माँ ने कष्ट में, जब इसके मुख से मृत्यु के लक्षण प्रगट हो गए तब, प्रेम तथा वात्सल्य के कारण अफीम खा लिया। पुत्र की मृत्यु के दो एक घड़ी बाद वह भी चल बसी। पति की मृत्यु पर स्त्री का सती होना हिंदुस्तान में विशेष प्रचलित है पर माँ का पुत्र के लिए जान देना वैचित्र्य से खाली नहीं है। परंतु वास्तव में उसका इससे कोई संबंध नहीं है। पहिली में बहुधा ऐसा होता है कि बिना प्रेम ही के प्रथा समझ कर वैसा किया जाता है। यही कारण है कि राजों की मृत्यु पर दस बीस आदमी स्त्री पुरुष अपने को आग में डाल देते हैं।

मीर जुम्ला खानखानाँ

यह तूरान में पैदा हुआ था तथा विनम्र पुरुष था और इसका नाम अब्दुल्ला था। किसी ने इसकी यों नकल कही है। जिस समय यह देश में पढ़ रहा था उस समय कुछ लोगों के साथ मिलकर बाग की सैर को नगर के बाहर गया। एकाएक उजबक सेना ने डाकूपन से पहुँचकर इन सब को अस्त व्यस्त कर दिया। यह बाग की दीवाल से उतर कर हिंदुस्तान को चल दिया। यात्रा का सामान न रहने से कष्ट से मार्ग चलता रहा। औरंगजेब के समय यहाँ पहुँचकर बंगाल प्रांत के अंतर्गत ढाका उर्फ जहाँगीर नगर का काजी नियत हुआ। इसके बाद पटना अजीमाबाद का काजी हुआ। जब मुहम्मद फर्रुखसियर पटना पहुँच कर गद्दी पर बैठा तब यह उससे मिलकर उसके साथ हो गया। इसके अनंतर जहाँदार शाह पर युद्ध में विजय मिलने पर इसे सात हजारी ७००० सवार का मंसब और मीर जुम्ला खानखानाँ मुअज्जम खाँ बहादुर मुजफ्फर जंग की पदवी मिली।

यद्यपि प्रगट में यह दीवान खास व डाक का दारोगा था पर विशेष विश्वास के कारण बादशाही हस्ताक्षर इसके हाथ में था। एक शीघ्रता करनेवाला मुगल एकाएक ऐसे उच्च पद पर पहुँच गया था। बारहा के सैयदों का प्रभुत्व भी जम गया था और वे अपनी सेवाओं के आगे किसी को कुछ नहीं समझते थे, इसीलिए

उनकी ओर से इसके विषय में एक का दस करके बादशाह से कहा जाता था। जुल्फिकार खाँ, हिदायतुल्ला खाँ तथा अन्य आदमियों के मारे जाने से दंड देने के संबंध में यह प्रसिद्ध होगया था और सैयद अब्दुल्ला खाँ तथा हुसेन अली खाँ ने इससे क्षुब्ध होकर दरबार आना जाना बंद कर दिया। मुहम्मद फर्रुख सियर के २रे वर्ष में जब हुसेन अली खाँ अमीरुल् उमरा दक्षिण का शासक नियत हुआ तब उसने वहाँ जाना स्वीकार नहीं किया। यहाँ तक कि मीरजुम्ला पटना का सूबेदार नियत किया जाकर वहाँ भेजा गया था पर वहाँ पहुँचने पर भारी सेना रखने के कारण पद के वेतन के विरुद्ध इसने आपत्ति किया और इस कारण अंत में घबड़ाकर गुप्त रूप से पर्देदार पालकी में बैठकर यह दरबार चल दिया। उस समय दरबार में सैयदों के बिगड़ जाने से प्रतिदिन अप्रसन्नता में बीत रहा था इसलिए बादशाह ने इसका कुछ न सुना तब इसने लाचार होकर सैयद अब्दुल्ला खाँ के पास जाकर शरण ली। वह झूठी बातें कर रहा था कि इसके मनुष्य पीछे से पहुँच कर वेतन के लिए शोर मचाने लगे। निरुपाय हो इसने मुहम्मद अमीर खाँ बहादुर के घर जाकर शरण ली। बादशाह ने उपद्रव शांत करने के लिए मंसब कम करने की धमकी देकर इसे पंजाब प्रांत में नियत कर दिया और इसके आदमियों का वेतन कोष से दिलवा दिया। फर्रुखसियर के कैद होने पर यह सैयदों के पास आकर सदरकुल पद पर नियत हुआ पर पहिले सा इसका सम्मान नहीं रह गया। मुहम्मद शाह के समय इसकी मृत्यु हो गई। पटने की सूबेदारी में इसके साथी मुगलों ने वहाँ की प्रजा पर बड़ा

अत्याचार किया था और यह स्वयं भी दया, मुरौवत तथा दूः
दर्शिता नहीं रखता था। इतने पर भी जो कोई अपना काम इः
सौंपता उसे कर देता था।

मीरजुमला खानखानाँ

मीर जुम्ला मुअज़्ज़म खाँ खानखानाँ, मीर मुहम्मद सईद

यह अर्दिस्तान सफाहान के सैयदों में से था। जब यह गोलकुंडा आया तब वहाँ के सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह की कृपा दृष्टि के कारण यह उच्चपद तथा ऐश्वर्य को पहुँचा। बहुत दिनों तक उस राज्य का कुल कार्य तथा प्रभुत्व इसके अधिकार में रहा। यहाँ तक कि इसने अपनी वीरता तथा कार्य शक्ति से कर्णाटक प्रांत के बड़े अंश पर वहा के निवासियों को परास्त कर अधिकार कर लिया, जो एक सौ पचास कोस लंबाई तथा बीस से तीस कोस तक चौड़ाई में था और जिसकी आय चालीस लाख रुपए थी। इसमें हीरे की खान थी तथा लौह-निर्मित के सामान दृढ़ दुर्ग, जैसे कंची कोठा और सधूत, भी थे। इनसे तात्पर्य बालाघाट कर्णाटक तथा औरंगाबाद से है। उस समय वहा का शासक कृपा था। कुतुबुलमुल्क के किसी पूर्वज को यह प्राप्त नहीं हुआ था। पहिले से इसका ऐश्वर्य, धन, सामान आदि इतना बढ़ गया कि यह निज के पांच सहस्र सवार नौकर रखता था। यह अपने बराबरवालों से बड़प्पन तथा बुजुर्गी में बढ़ गया था। इन कारणों से इसके शत्रुओं में से बहुतों ने बुराई तथा उपद्रव के विचार से स्वामिभक्ति की ओट में मीर जुम्ला के विरुद्ध बहुत सी अयोग्य बातें कुतुबशाह के हृदयस्थ कर उसे इसके प्रति सशंकित

तथा इसका विरोधी बना दिया। इसके पुत्र मीर मुहम्मद अमीन की चाल सीमा के बाहर हो चली थी जो दरबार में रहता था तथा यौवन और वैभव के नशे से चूर था तथा पिता के भारी विजय के कारण घमंड से भर उठा था। एक दिन यह अभागा दरबार में पहुँचकर शाही मसनद पर जा सोया और उसी पर कै कर बीमार हो गया। इससे दुष्कृपा के चिन्ह प्रगट हो गए। मीर जुम्ला इस भारी विजय के उपलक्ष में विशेष आशा रखता था पर इसके विरुद्ध फल पाकर उसका मन हट गया और उसने शत्रु होकर २९वें वर्ष में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब की शरण ली तथा बुलाए जाने की प्रार्थना की, जो उस समय दक्षिण का सूबेदार था। शाहजहाँ ने शाहजादे की प्रार्थना पर इसे पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब और इसके पुत्र मीर मुहम्मद अमीन को दो हजारी १००० सवार का मंसब दिया तथा काजी मुहम्मद आरिफ कश्मीरी के हाथ कुतुबशाह के पास आज्ञापत्र भेजा कि वह इसके तथा इसके साथियों पर कोई अत्याचार या शत्रुता न करे। कुतुबशाह ने यह समाचार सुनते ही मीर मुहम्मद अमीन को साथियों सहित कैद कर दिया और उसका जो कुछ सामान था सब जब्त कर लिया। शाही आज्ञापत्र के पहुँचने पर भी उसने अपने कार्य में हठ बनाए रखा। शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब ने पहिले बादशाही आज्ञापत्र को इस आशय के पत्र के साथ कि सुलतान मुहम्मद उड़ीसा के मार्ग से अपने पितृव्य शाहजादा मुहम्मद शुजाअ के पास बंगाल जाना चाहता है और उसे चाहिए कि अपने राज्य से सीधे रास्ते से जाने दे, भेज दिया। उस मूर्ख ने नीतिकौशल से असतर्क रहकर इसे स्वीकार कर लिया। शाहजादे ने

आज्ञानुसार ८ रबीउल् अव्वल सन् १०६६ हि० को अपने प्रथम पुत्र सुलतान मुहम्मद को अग्गल रूप में हैदराबाद को बिदा कर दिया और स्वयं ३ रबीउल्आखीर को बाहर निकला। इस पर कुतुबुल्मुल्क असावधानी की निद्रा से जागा और मीर मुहम्मद अमीन तथा उसकी माँ को बिदा कर दिया। यह हैदराबाद से बारह कोस पर सुलतान मुहम्मद की सेवा में उपस्थित हुआ। इस कारण कि उसने बदनीयती से इसके माल को नहीं दिया था इसलिए सुलतान उस नगर की ओर बढ़ा। कुतुबुल्मुल्क यह समाचार पाते ही ५ रबीउल्आखीर को कुल धन, रत्न, सोना, चाँदी आदि के साथ गोलकुंडा दुर्ग में जा बैठा, जो नगर से तीन कोस पर है।

जब सुलतान मुहम्मद की सेना का पड़ाव हुसेन सागर तालाब के किनारे पड़ा तब कुतुबशाही सेना दिखलाई पड़ी और उपद्रव करने लगी। सुलतान ने वीरता से उसपर आक्रमण कर उन पराजितों को दुर्ग की दीवाल तक पहुँचा दिया और दूसरे दिन हैदराबाद पर अधिकार कर लिया। यद्यपि वहाँ की इमारतों को जलाने तथा वहाँ के निवासियों की लूटमार करने से कुछ रक्षा की गई पर कुतुबशाह के बहुत से कारखाने लुट गए। अच्छी पुस्तकें, चीनी बर्तन तथा दूसरे बहुत से सामान जब्त कर लिए गए। इतना अधिक सामान था कि कई दिन की लूट के बाद भी लौटते समय ये मकान भरे हुए थे। यद्यपि सुलतान अब्दुल्ला ने प्रकट में विजितों के समान ही व्यवहार करते हुए रत्न, हाथी भेंट में भेजकर अधीनता दिखलाई थी पर भीतरी तौर पर उसने युद्ध, दुर्ग की दृढ़ता तथा सामान का प्रबंध करते

हुए कई बार आदिल शाह को सहायता के लिए लिखा। जब शाहजादा ने अठारह दिन में दुर्ग से एक कोस पर पहुँच कर सेना सजाई और दुर्ग के तीन कोस जरीबी घेरे के चारों ओर मोर्चे जमाए। तब दुर्ग से बराबर गोले, गोलियाँ का वर्षा होने पर भी मैदान में कई बड़ी लड़ाइयाँ हुईं और सभी में बादशाही सेना विजयी हुई।

जब कुतुब शाह ने दुर्ग लेने का शाहजादे का हठ देखा तब निरुपाय होकर शरणार्थी हुआ और अपने दामाद मीर अहमद को भेजकर पिछले सनों के बाकी कर व मुहम्मद अमीन का सामान माल आदि भेज दिया तथा क्षमा याचना की। उसके प्राप्त होने पर अपनी माता को कृपा की आशा से भेजा, जिसने शाहजादे की सेवा में उपस्थित होकर पुत्र की क्षमा प्राप्ति के लिए एक करोड़ रुपया भेंट देना निश्चित किया और कुतुबुल् मुल्क की पुत्री का सुलतान मुहम्मद के साथ निकाह पढ़ाने का निश्चय किया। उस लड़की को दस लाख रुपए के आय की भूमि दहेज के रूप में मिली और उसे बड़ी प्रतिष्ठा के साथ दुर्ग से सुलतान मुहम्मद के घर लिवा लाए। १२ जमादि उल् आखिर सन् ३० को हुसेनसागर तालाब के किनारे मीर जुमला विजित प्रांत से लौटकर शाहजादे की सेवा में आकर उपस्थित हुआ। इसे बैठने की आज्ञा मिलने से यह विशेष सम्मानित हुआ और शाहजादे ने भी इसके पड़ाव पर जाकर इसकी प्रतिष्ठा विशेष बढ़ाई। ७ रज्जब को शाहजादा औरंगाबाद की ओर रवाना हुआ और गुप्त रूप से मीर जुमला से मित्रता तथा पक्षपात का वचन लेकर इंदौर पड़ाव से उसको पुत्र के साथ बादशाही दरबार भेज दिया।

इसी पड़ाव पर दरबार से आया हुआ एक फर्मान मिला, जिससे इसे मुअज्जम खाँ की पदवी तथा झंडा व डंका प्रदान किया गया था। २५ रमजान को राजधानी दिल्ली में उक्त खाँ बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और इसे छ हजारी ६००० सवार का मंसब, दीवान आला का पद, जड़ाऊ कलमदान, पाँच लाख रुपया नगद तथा अन्य कृपाएँ मिलीं। मुअज्जम खाँ ने नौ टाँक तौल का बड़ा हीरा, जो २१६ सुर्ख होता है और जिसका मूल्य दो लाख सोलह सहस्र रुपया होता है, और साठ हाथी अन्य रत्नों के साथ भेंट किया, जिसका सब का मूल्य १५ लाख रुपया आँका गया। इसका पालन व शिक्षण दक्षिण देश में हुआ था इसलिए इसने पहुँचते ही उन मुकद्दमों को, जो निर्णय के लिए पड़े हुए थे, ठीक करने का साहस किया कि इसी वर्ष समाचार मिला कि बीजापुर का इब्राहीम आदिलशाह मर गया और उसके सर्दारों ने, जो अधिकतर क्रील दास थे, अली नामक नीच वंश के एक आदमी को, जिसे उसने पोष्य पुत्र मान लिया था, उसका उत्तराधिकारी बना दिया है। मुअज्जम खाँ ने यह बात बतलाकर उस प्रांत को विजय करने की इच्छा प्रगट की तथा उस भारी काम का भार अपने ऊपर ले लिया। अपने पुत्र महम्मद अमीर खाँ को अपना नायब वजीर बना कर दरबार में छोड़ दिया और स्वयं अच्छे सर्दारों के साथ, जैसे महाबत खाँ, राव सत्रुसाल तथा नजाबत खाँ, औरंगाबाद शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब के पास पहुँचा। शाहजादा ने इस बड़े सर्दार की सहायता से शीघ्र बीदर दुर्ग को ले लिया, जो दक्षिण के बड़े दुर्गों में से है। सन् १०६७ हि० के जीकदा की पहिली को कल्याण

दुर्ग पर अधिकार कर लिया तथा उस ओर की बहुत सी बस्तियों में थाने बैठा दिए। इसके अनंतर सेना गुलबर्गा लेने को भेजी गई, जो बीजापुर राज्य का एक प्रसिद्ध नगर था तब आदिलशाह अपने पराजयों से आशंकित होकर एक करोड़ रुपया भेंट, कोंकण प्रांत और परेंदः दुर्ग का कुल स्वत्व देकर शरण में चला आया। बादशाही आज्ञा पत्र आया कि शाहजादा औरंगाबाद लौट जाय और मुअज्जम खाँ कोंकण के दुर्गों में थाने बैठाकर वहाँ का प्रबंध देखे। अभी भेंट की कुल किस्तें तथा विजित प्रांत पर अधिकार शाहजादे के इच्छानुसार नहीं हो पाया था कि शाहजहाँ की बीमारी तथा साम्राज्य के कुल कार्यों का अधिकार दाराशिकोह के हाथ में चले जाने का समाचार मिला। कुछ लोग लिखते हैं कि अभी गुलबर्गा का घेरा तथा आदिलशाहियों से युद्ध चल रहा था कि यह उपद्रव उठ खड़ा हुआ और शत्रु बढ़ गया। संक्षेपतः दाराशिकोह ने उपद्रव तथा काम बिगाड़ने के विचार से इस चढ़ाई के कुल सहायकों को दरबार बुला लिया। महाबत खाँ शाहजादे से बिना बिदा हुए चल दिया। निरुपाय हो शाहजादा ने उचित समझ कर ऐसे उपद्रव में जब सारी सेना में शंका फैल गई थी अपने को सन् १०६८ हि० (सन् १६५७ ई०) के आरंभ में सही सलामत औरंगाबाद पहुँचाया। इसी समय किसी दोष में मुअज्जम खाँ वजीर के पद से हटाया गया और दूसरों के समान इसने भी दरबार जाने का मार्ग पकड़ा।

ऐसे बड़े सर्दार का, जो दूरदर्शी, सुसम्मतिदाता, ऐश्वर्यशाली और अच्छी सेना रखनेवाला था, ऐसे समय यों चले जाना

नैतिक दृष्टि के विरुद्ध तथा अदूरदर्शिता मात्र थी इसलिए शाह-जादे ने उसके पास संदेश भेजा कि यदि जुम्लतुलमुल्क इस समय हमसे बिदा होकर जायँ तो राजनीतिक विचार के लिए अच्छा होगा। इसने इस कार्य से अपने को बचाकर प्रार्थना की कि सेवाकार्य में आज्ञा मानने के सिवा कोई चारा नहीं है। दूसरी बार सुलतान मुअज्जम को इसे फँसाने के लिए भेजकर कहलाया कि वह उस स्वामिभक्त को अपना हितैषी समझता है और कुछ अत्यंत आवश्यक कार्य हैं जिन्हें सुनकर चला जाय। उक्त खाँ सुलतान के समझाने पर निश्शंक हो लौटा पर शाहजादे के एकांत गृह में पहुँचते ही कैद हो गया। कुछ का कहना है कि दरबार जाना इसके मन के अनुसार नहीं था और अकारण रुकना भी अनुचित था इसलिए जो कुछ हुआ वह इसी की सम्मति से हुआ था। इस चाल का यह फल हुआ कि शाहजहाँ ने इसे शाहजादे ही का अत्याचार तथा उत्पीड़न समझा और फर्मान भेजा कि बदले के दिन इसके पूछे जाने से भय कर उस बेचारे सैयद को छोड़ दो, वह स्वामिभक्ति ही के कार्य में लगा हुआ था। शाहजादे ने आज्ञा होने के पहिले ही प्रार्थनापत्र भेजा कि उसकी चाल से शंका पैदा हुई इसलिए उसे कैद कर दिया है नहीं तो वह दक्खि-नियों के पास फिर पहुँच जाता।

जब शाहजहाँ की बीमारी और दाराशिकोह के प्रभुत्व का समाचार चारों ओर हिंदुस्तान में फैलकर हर एक सिर को पागल बना रहा था उस समय शाहजादा औरंगजेब ने मुअज्जम खाँ के सामान व धन को अपने काम में लगा लिया और इसके नौकरों को अपनी सेवा में ले लिया तथा इसे दौलताबाद दुर्ग में सुरक्षित

रख छोड़ा। इसके अनंतर वह हिंदुस्तान की ओर चल दिया। जब वह हिंदुस्तान का बादशाह बन बैठा तब मुअज्जम खाँ को उसका कुल सामान व धन लौटाकर अपना कृपापात्र बना लिया और उसे खानदेश की सूबेदारी दी। इसी वर्ष जब शाहजादा मुहम्मद शुजाअ के उपद्रव को शांत करने के लिए वह दिल्ली से पूर्व की ओर बढ़ा तब मुअज्जम खाँ को दरबार बुलाया। इसने भी शीघ्रता से यात्रा करते हुए युद्ध के दो दिन पहिले कड़ा के पास सेवा में उपस्थित होकर अपने को सम्मानित किया। युद्ध के दिन इसका हाथी बादशाही हाथी के बगल में खड़ा था। विजय के अनंतर मुअज्जम खाँ को सात हजारी ७००० सवार का मंसब और दस लाख रुपया नगद पुरस्कार मिला तथा शाहजादा मुहम्मद सुलतान के साथ मुहम्मद शुजाअ का पीछा करने भेजा गया, जो युद्ध स्थल से भाग गया था। इस कार्य में इसने बड़ी प्रत्युत्पन्नमति तथा वीरता दिखलाई, जैसा कि उच्चपदस्थ सर्दारों में होना चाहिए था। जब शुजाअ ने मुंगेर को युद्धीय सामान से दृढ़कर अपना निवासस्थान बनाया तब इसने अपने उपायों से ऐसा रोब गाँठा कि शुजाअ वह स्थान छोड़कर अकबर नगर चला गया, जिसे अपने आराम का स्थान समझता था। मुअज्जम खाँ सीधा मार्ग छोड़कर जंगल व पहाड़ से आगे बढ़ा और उसके पीछे से उसपर पहुँचकर भागने का मार्ग बंद कर दिया। शुजाअ यह समाचार पाते ही अपनी राजधानी अकबर नगर को त्यागकर अपने परिवार के साथ गंगा जी पार उतरा और बाकरपुर में बंगाल के कुल नावों को, जो उस प्रांत के युद्ध के लिए आवश्यक है, अधिकार में लाकर तथा मोर्चे बाँधकर युद्ध के लिये

तैयार हो बैठा। मुअज्जम खाँ शाहजादा सुलतान मुहम्मद को अकबर नगर में शत्रु के सामने छोड़कर स्वयं नदी पार उतरने का प्रबंध करने गया। बहुत दिनों तक युद्धों में इसने खूब वीरता दिखलाई।

जब वर्षाकाल आ गया तब सब प्रयत्न रुक गए और हर एक अपने अपने स्थानों पर आराम करने लगा। सुलतान शुजाअ ने धोखे से शाहजादा सुलतान मुहम्मद को अपनी पुत्री से शादी करने का लालच दिखलाया। वह मुअज्जम खाँ से कुछ उपद्रवियों के बहकाने से वैमनस्य रखने लगा था इसलिए शुजाअ के बहकावे में आकर दो तीन विशिष्ट अच्छे सवारों के साथ २७ रमजान सन् ६६६ हि० को उससे जा मिला। इस घटना से बादशाही सेना में बड़ा उपद्रव मचा। कहते हैं कि यदि मुअज्जम खाँ के समान भारी सर्दार वहाँ न होता तो बड़ी कठिनाई पड़ती। मुअज्जम खाँ मौजा सूर्ती से, जहाँ रहकर वह शत्रु के दमन करने में लगा हुआ था, इस घटना के होने पर भी दृढ़ता न छोड़कर पड़ाव पर आ पहुचा। इसने साहस तथा अनेक प्रकार के अच्छे उपायों से सब काम ठीक रखा। वह कुल प्रांत तथा नावें शत्रुओं के हाथ में पड़ गई थीं इसलिए सेना में बड़ा गुलगपाड़ा था और अनेक शंकाए उठ रही थीं। शुजाअ ने दूसरी बार अकबर नगर पर अधिकार कर लिया। वर्षाऋतु के बीतने पर मुहम्मद सुलतान को हरावल बनाकर शुजाअ ने युद्ध की तैयारी की। मुअज्जम खाँ ने फत्हजंग खाँ रुहेला को हरावल, इस्लाम खाँ बदख्शी को दाए भाग और फिदाई खाँ कोका को बाएँ भाग में रखकर भागीरथी के किनारे सेना सहित उसका सामना किया क्योंकि वह भी

सुलतान मुहम्मद, शुजाअ और उसके पुत्र बुलंद अख्तर के समान तीन तोरः रखता था। संध्या तक तोप, बंदूक और बान की लड़ाई होती रही। रात्रि में दोनों सेनाएँ लड़ाई से हाथ खींचकर अपने अपने स्थान लौट गईं। मुअज्जम खाँ ने विहार के प्रांताध्यक्ष दाऊद खाँ कुरेशी को, जो सहायता के लिए आया था, लिखा कि टाँडा के मार्ग से शीघ्र जाकर उस पर अधिकार कर ले, जहाँ शुजाअ का कुल ऐश्यर्य तथा परिवार है। निश्चय है कि यह समाचार पाते ही उसके पाँव काँप उठेंगे। मुअज्जम खाँ ने स्वयं दिलेर खाँ की प्रतीक्षा में, जो दरबार से सहायता के लिए भेजा गया था, दो तीन दिन युद्ध बंद रखा। इसी बीच मुअज्जम खाँ के विचार के अनुसार ही शुजाअ ने दाऊद खाँ का समाचार पाकर घबड़ाहट में लौटने का डंका पिटवा दिया और भागीरथी के किनारे से सूली की ओर घूमा कि गंगा पार कर टाँडा पहुँचे। मुअज्जम खाँ यही अवसर देख रहा था इसलिए पीछा करने के विचार से सवार हुआ और पंद्रह दिन सबेरे से संध्या तक दोनों पक्ष में तोप बंदूक का युद्ध चलता रहा। रात्रि में पड़ावों में सब सावधानी से रहा करते थे। यहाँ तक कि सुलतान शुजाअ गंगा पार कर टांडा की ओर चल दिया। मुअज्जम खाँ ने इस्लाम खाँ को दस सहस्र सवारों के साथ नदी के इस पार का अधिकार व प्रबंध करने को अकबर नगर भेजा और शुजाअ को दमन करने के लिए चला। इसी समय शाहजादा मुहम्मद सुलतान शुजाअ की बुरी हालत तथा निर्बलता को देखकर ६ जमादिउल् आखिर को टाँडा से शिकार के बहाने सवार होकर नदी के किनारे आया और नाव में बैठकर टाँडा उतार से दुकारी

उतार चला आया। मुअज्जम खाँ ने शाहजादा को अपने यहाँ बुलवाया और कुल सर्दारों के साथ उसका स्वागत किया। उसके लिए खेमे तथा अन्य आवश्यक वस्तुओं का सामान किया, जो शीघ्रता में हो सकता था और आज्ञानुसार फिदाई खाँ के साथ उसे दरबार विदा किया।

बादशाही सेना के वीरों तथा शत्रु सैनिकों में बराबर लड़ाइयाँ होती रहीं और हर बार बादशाही पक्ष ही की विजय होती थी इसलिए मुअज्जम खाँ एक महीने तक महमूदाबाद में ठहरा रहा और सारा साहस महानदी को पार करने तथा शत्रु को दमन करने में लगाया, जो नदी के उसपार रहकर तोपखाने तथा नावों के बल पर दृढ़ रहकर शीघ्रता के चिह्न प्रगट कर रहे थे। इसने अपने आराम का विचार न कर ऐसा प्रयत्न किया कि यह कार्य शीघ्र पूरा हो गया और दूसरी वर्षाऋतु न आ पाई। दैवयोग से बगलाघाट से उतार मिल गया और यह अत्यंत साहसी सर्दार ससैन्य सवार होकर नाले के किनारे पहुँचा। शत्रु के रोकने पर भी यह पार उतर गया और उसके मोर्चों पर धावा कर दिया। बहुत से साहस छोड़कर टाँडा भाग गए। निरुपाय हो शुजाअ उस बहुत दिन के मिले प्रांत बंगाल से मन हटाकर मीरदादपुर चौकी से टाँडा आया और यहाँ से थोड़े आदमियों के साथ नाव पर सवार हो जहाँगीर नगर चला गया। मुअज्जम खाँ टाँडा पहुँचकर शुजाअ के माल को, जो लुटेरों के हाथ से बाकी बच रहा था, जब्त कर उन लुटेरों से लौटाने में प्रयत्नशील हुआ। यहाँ से पीछा करने के विचार से यह शीघ्रता से आगे बढ़ा। शुजाअ जहाँगीर नगर में रखंग के राजा की सहायता की

प्रतीक्षा में था पर बादशाही सेना के पास पहुँचने से डरकर आलमगीरी ३रे वर्ष के आरंभ में ६ रमजान को तीन पुत्र व कुछ अच्छे लोगों के साथ जहाँगीर नगर से निकलकर दुर्भाग्य से रखंग की ओर गया, जो ओछे आदमियों तथा अंधकार में पड़े काफिरों का स्थान था। इसके साथ सिवा बारहा के दस सैयदों सहित सैयद आलम और बारह मुगलों सहित सैयद कुली उजबेग तथा कुछ अन्य लोगों के और कोई नहीं था। कुल मिलाकर चालीस आदमी से अधिक नहीं थे। मुअज्जम खाँ को इस भारी प्रयत्न के उपलक्ष में, जो सोलह महीने के कड़े प्रयत्नों तथा कष्टों के उठाने पर पूरा हुआ था, खानखानाँ सिपहसालार की पदवी मिली।

शाहजहाँ की बीमारी के कारण साम्राज्य की सीमाओं पर उपद्रव होने लगा था। कूच बिहार के प्रेम नारायण जमींदार ने अधीनता का मार्ग छोड़कर घोड़ा घाट पर आक्रमण करने का साहस किया। आसाम के राजा जयध्वजसिंह ने भी, जो विस्तृत राज्य, अधिक सामान तथा वैभव के कारण बढ़ा चढ़ा हुआ था, अपनी सेना नदी तथा भूमि के मार्ग से कामरूप भेजकर उस पर अधिकार कर लिया, जिससे तात्पर्य हाजू व गौहाटी तथा उसके अंतर्गत के मौजों से है और जो बहुत दिनों से बादशाही साम्राज्य में मिला हुआ था। यद्यपि शुजाअ की हालत अच्छी नहीं थी पर वह इस उपद्रव को शांत न कर सका। उन सबने साहस कर करीबाड़ी तक, जो जहाँगीर नगर से पाँच पड़ाव पर है, अधिकार कर लिया। मुअज्जम खाँ शुजाअ का पीछा करते हुए जब जहाँगीर नगर पहुँचा तब इसे

उस सीमा के उपद्रव का वृत्तांत मिला। आसाम-नरेश सेना के रोब तथा भय में आकर प्रार्थी हुआ और अधिकृत देश से हाथ हटा लिया। खानखानाँ ने प्रगट में इसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और ४थे वर्ष १८ रबीउल् अव्वल सन् १०७२ हि० को प्रेम नारायण को दंड देने के लिए खिजिरपुर से आगे बढ़ा।

जब मुअज्जम खा मुगल साम्राज्य के सीमांत बरीपठ मौजा पहुँचा तब इसने मार्गप्रदर्शकों की राय से दुर्गम मार्ग पकड़ा, जिसे घोर तथा भयंकर जंगलों के कारण शत्रु-सेना के पार करने योग्य न समझकर प्रेम नारायण ने उसकी रक्षा का कुछ भी प्रबंध नहीं किया था। प्रति दिन जंगलों को काटते हुए बड़े प्रयत्न तथा परिश्रम से रास्ता तै करता रहा। अंत में ७ जमादिउल् अव्वल को सेना कूचबिहार पहुंच गई। कहते हैं कि यह नगर बहुत अच्छी प्रकार बसाया हुआ था, सड़कों पर बाग लगे हुए थे और नाग केशर तथा कचनार के पेड़ बैठाए हुए थे, जो फूल पत्तियों से लदे हुए थे। मुअज्जम खाँ ने एक सेना प्रेम नारायण का पीछा करने को भेजा, जो कूचबिहार से पंद्रह कोस उत्तर भूतनत पहाड़ की तराई को चला गया था। उस पार्वत्य स्थान के शासक धर्मराज के यहा शरण लेकर वह पहाड़ पर चला गया। वह पहाड़ इतना ठंढा है कि पैदल लोग बड़ी कठिनाई से उसपर चढ़ सकते थे। यह प्रांत उत्तर को झुकता हुआ बंगाल के पश्चिमोत्तर में है। यह पचपन कोस जरीबी लंबा और पचास कोस चौड़ा है। जलवायु की उत्तमता तथा पेड़ पौधों की अधिकता से पूर्व के देशों में यह प्रसिद्ध है। इसमें भीतरी तथा बाहरी नवासी परगने हैं, जिनकी आय दस लाख रुपया है। यहाँ के रहनेवाले

अधिकतर कूच जाति के हैं इसलिए यह कूचबिहार कहलाया। यहाँ के निवासियों के देवता नारायन कहलाते थे, जो यहाँ के शासकों के नाम का अंश हो गया था। हिंदुस्तान के काफिरों मे यहाँ के अधिकारी की अच्छी प्रतिष्ठा थी, जो इस्लाम के आने के पहिले के बड़े राजवंशों में से थे। यहाँ का सिक्का सोने का था, जिसे नरायनी कहते हैं।

खानखानाँ की इच्छा इस चढ़ाई से आसाम पर अधिकार करने की थी इसलिए मृत अल्लहयार खाँ के पुत्र अस्फंदियार खाँ को कूचबिहार का फौजदार नियत कर उसका नाम आलमगीर नगर रखा और स्वयं घोड़ाघाट के मार्ग से आगे बढ़ा। जब यह ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे पहुँचा तब रंगामाटी से दो कोस पर मार्ग की कठिनाई के होते भी उसे पार कर उस बड़े कार्य में लग गया और उस दुर्द्धर्ष प्रांत पर अधिकार करने में दत्तचित्त हुआ। पर्वताकार हाथियों ने दाँतों से जंगल तोड़ ताड़कर चौपट कर दिया धनुर्धारियों तथा पैदल सैनिकों ने भी मैदान पाकर खूब फुर्ती दिखलाई। जहाँ नदी के किनारे मार्ग था वहाँ हर जगह दलदल था, जिसमें आदमी, घोड़े तथा हाथी तक घुस जाते थे, परंतु उनपर वृक्षों की शाखाएँ, बाँस और घास के गट्ठे डालकर मार्ग बना लेते थे। इस प्रकार प्रतिदिन ढाई कोस रास्ता पार करते थे जब खत्ता चौकी पहुँचे तब उसपर अधिकार कर लिया। यह नदी के किनारे पर एक पहाड़ है और इसके पास दूसरा पहाड़ पंचरतन नाम का है। इन दोनों पर दो दृढ़ दुर्ग बने हुए हैं। जो लोग नावों पर युद्ध को आए थे वे परास्त हो कुछ डूब गए और कुछ कैद हुए। यहाँ तक कि बादशाही प्राचीन सीमा गौहाटी से दं

कोस पर पहुँच गए। इस मौजे में बड़ा दुर्गम दुर्ग बना हुआ है। इससे सात कोस पर कजली दुग के पास कजली बन नामक जंगल है, जिसमें हाथी बहुत होते हैं। इसका उल्लेख हिंदुस्तान के रात्रि-चरों में आया है। गोरपखा, लोना चमारी व इस्माइल जोगी के मंदिर, जो बड़े मंदिरों में प्रसिद्ध हैं और हिंदी मंत्र तंत्र के लिए सम्मानित हैं, पहाड़ों पर बने हैं, जहाँ पहुँचने के लिए एक सहस्र सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इन सब पर भी अधिकार हो गया। वहाँ एक लाख से अधिक आसामी इकट्ठे हो गए थे पर भय तथा घबड़ाहट से भाग गए। इसके अनंतर गौहाटी तक, जहाँ से आसाम की राजधानी करगाँव एक महीने की राह पर है, अंध-कार ग्रस्त काफिरों से भूमि छुड़ा ली। खानखानाँ यहाँ का प्रबंध ठीक कर आगे को चला।

इस जाति के युद्ध की चाल धोखा देना तथा रात्रि-आक्रमण करना है इसलिए कुल सेना रात्रि भर सतर्कता से जागती रही और शस्त्र नहीं उतारे तथा घोड़े की पीठ से जीन नहीं उतारा। यहाँ तक कि ब्रह्मपुत्र नदी पार कर दुर्ग सेमलः को युद्ध कर ले लिया, जो उस प्रांत का एक प्रसिद्ध दुर्ग और करगाँव से पचास कोस पर है। इसमें लगभग तीन लाख लड़ाके आसामी इकट्ठे थे, जिनमें बहुत से मारे गए। इसके अनंतर नावों से युद्ध हुआ, जो बहुत दिनों तक चलता रहा और कभी कभी युद्ध न हो पाता था। इनमें से बहुत तीरों से मारे गए। चमदरा दुर्ग, जो सेमला दुर्ग के समान था, बिना युद्ध के विजय हो गया। इन पराजयों का हाल सुनकर आसामियों में बड़ी घबड़ाहट फैली और राजा काम-रूप पर्वतों की ओर चला गया, जो करगाँव से चार दिन के

रास्ते पर है और जहाँ पहुँचना अत्यंत कठिन है। ४ थे वर्ष के अंत में ६ शाबान को करगाँव पर अधिकार हो गया और बादशाही खुतबा तथा सिक्का चलने लगा।

इस सेनापति सरदार ने अपने अनुभव तथा वीरता से इतने दूरस्थित तथा दुर्भेद्य प्रांत पर, बादशाही अधिकार करा दिया, जिसमें इतने दृढ़ दुर्ग तथा विस्तृत भूमि थी कि हिंदुस्तान के सुलतानों का विजय करने का साहस नहीं हुआ था और जब कभी पहिले समय सेना इस देश में आई तब वह काफिरों द्वारा समाप्त कर दी गई। सुलतान मुहम्मद शाह तुगलक ने हिंदुस्तान के बहुत से प्रांतों का शासक होकर एक लाख सवार पूरे सामान के साथ इस प्रात पर अधिकार करने भेजा था पर इस जादू के देश में वे सब ला पता हो गए। इस कार्य के उपलक्ष में खानखानाँ को एक करोड़ दाम आय की भूमि तथा तूमान तोग झंडा मिला। यह प्रांत बंगाल के उत्तर तथा पूर्व के बीच में लबे बल स्थित है। इसकी लंबाई दो सौ कोस जरीबी है और चौड़ाई उत्तरी पहाड़ से दक्षिण सीमा तक आठ दिन की राह गौहाटी से करगाँव पछत्तर कोस जरीबी है और यहाँ से खुत्तन प्रांत तक, जो पीरान वैसः का निवासस्थान था और उस समय आवा कहलाता था तथा पीगू-नरेश की राजधानी थी, जो अपने को पीरान वैसः के वंश में समझता था, पंद्रह दिन का मार्ग था। इनमें से पाँच पड़ाव कामरूप के पहाड़ों के उस पार घोर जंगल में से था। इसके उत्तर ओर खता जंगल है, जिससे होकर महाचीन जाने का मार्ग है पर साधारण लोग माचीन कहते हैं। ब्रह्मपुत्र नदी इसी ओर से आई है और कुछ सहायक नदियाँ, जिनमें बड़ी धुनक

नदी है, इस प्रांत में होती हुई इसमें मिलती है। जो कुछ इस नदी के उत्तर किनारे की ओर है उसे उत्तर कूल कहते हैं। इस कुल प्रांत के बालू में सोने के कण मिलते हैं और यह इस देश की एक आय है। कहते हैं कि बारह सहस्र, मनुष्यों की यही आजीविका है और प्रत्येक प्रति वर्ष केवल एक तोला सोना राजा को देता है। आसामी लोग कोई विशिष्ट मिल्लत (धर्म) नहीं रखते और केवल इच्छानुसार जो कुछ पसंद आता है वही करते हैं। इस प्राँत के पुराने निवासी दो जाति के हैं—आसामी और कुलतानी। दूसरे पहिले से हर एक काम में सिवा युद्धीय कला के बढ़कर थे। जब उस प्रांत के राजा तथा सर्दार गण का काम बिगड़ गया तब उनके खास लोग स्त्री पुरुष जीवन की कुछ आवश्यक वस्तुओं के साथ तहखानों में जा बैठे। करगाँव नगर में चार फाटक हैं और हर फाटक से राजमहल तक तीन कोस की दूरी है। वास्तव में यह नगर विशाल है और बाग तथा खेतों से भरा है। हर एक मनुष्य अपने घर के आगे बाग तथा खेत निजी रखता था। दंजू या वंजू नामक नहर नगर के बीच से बहती है। इसमें बाजार साधारण है, जिसमें केवल पान की दूकानें हैं और किसी दूसरे वस्तु की नहीं दिखलाती। इसलिए इस प्रांत में क्रय विक्रय विशेष नहीं है। यहाँ के निवासीगण वर्ष भर के लिए काफी सामान रख लेते हैं। सिवा सिर पर टोपी तथा कमर में लुंगी के और कुछ पहिरने की यहाँ प्रथा नहीं है। इस प्रांत से बाहर जाना भी इनका ध्येय नहीं है। बाहरी लोग आ सकते हैं। इसलिए इस जाति का हाल मालूम नहीं होता। हिंदुस्तानी लोग इन्हें जादूगर कहते हैं और यहाँ के राजा को सर्गी राजा कहते हैं।

कहते हैं कि इनका एक पूर्वज 'मलाय आला' (आकाश का स्थान) का शासक था। जब वह इस प्रांत को उतरा तब उसे यह ऐसा हृदयग्राही लगा कि फिर आकाश को नहीं गया।

संक्षेपतः जब खानखानाँ ने वर्षा के चिह्न देखे, क्योंकि इस ओर हिंदुस्तान के अन्य सभी भागों से वर्षा पहिले आरंभ होती है, तब मथुरापुर मौजे में अधिकतर सेना के साथ, जो करगाँव से साढ़े तीन कोस पर पहाड़ के नीचे है, वर्षाऋतु वहीं व्यतीत करने की इच्छा से जाकर पड़ाव डाला। उसके चारों ओर रक्षा के लिए थाने नियत कर दिए तथा राजा और उसके सर्दारों को दमन करना बरसात के बाद के लिए छोड़ दिया। जब वर्षाऋतु आ पहुँची तब सारी जमीन जल में डूब गई। उपद्रवी आसामियों ने, जो स्थान स्थान पर छिपे हुए अवसर देख रहे थे, साहस पकड़कर हर ओर से हजूम किया। मुसलमान सेना में आक्रमण तथा युद्ध की शक्ति नहीं थी इससे हर थाने पर रात्रि-आक्रमण हुए और सिवा करगाँव तथा मथुरापुर के और कुछ बादशाही सेना के हाथ में नहीं रह गया। जलवायु की खराबी के कारण अनेक प्रकार के रोग भी पैदा हो गए और हवा के कारण महामारी फैल गई। झुंड के झुंड लोग हर ओर मरने लगे। अन्न के आने-जाने का मार्ग टूट जाने से बादशाही सेना में मरने से बढ़कर बुरी हालत हो गई। जब रबीउल् अव्वल के अंत में जमीन निकली तब मुसलमानी सेना ने चारों ओर आक्रमण कर मारे हुए लोगों के ढेर लगा दिए। राजा फिर पहाड़ों में जाकर संधि की बात करने लगा। मुअज्जम खाँ ने उचित न समझकर उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया और तामरूप

ी ओर लौटा। इसी समय उक्त रोग ने सेनापति को घर
बाया जिससे सर्दारों तथा सैनिकों में गड़बड़ी मची कि कहीं
रदार का काम समाप्त न हो जाय और सेना बिना सेनापति के
ष्ट हो जाय। या इस काम के ठीक होने के पहिले वर्षाऋतु आ
ाय और फिर वही कठिनाइयाँ उठ खड़ी हों। यहाँ तक वे
यार हो गए कि यदि खानखानाँ राजा को दमन करने के लिए
र्षाऋतु वहीं व्यतीत करने की इच्छा रखता हो तो वे विद्रोह कर
गाल लौट जायँ। जब सर्दार को इसकी सूचना मिली तब इस
ानसिक कष्ट से उसका शारीरिक रोग बढ़ गया। यद्यपि यह
क पड़ाव आगे बढ़ा कि शत्रु जोर न पकड़ें पर संधि करना तथा
ौटना निश्चय कर लिया। इस कारण दिलेर खाँ की मध्यस्थता
;, जिससे राजा ने संधि की बात की थी, यह बात तै पाई कि
ाजा अपनी पुत्री या राजा पयाम की पुत्री सहित, जो उसका
ंबंधी था, बीस सहस्र तोला सोना, एक लाख अस्सी हजार
ोला चाँदी और बीस हाथी भेंट तथा पंद्रह हाथी खानखानाँ के
ाए व पाँच हाथी दिलेर खाँ के लिए भेजे। एक साल के भीतर
ीन लाख तोला चाँदी तथा नब्बे हाथी सरकार में दाखिल करे।
सके सिवा प्रति वर्ष बीस हाथी कर दिया करे। यह सब पूरा
सूल होने तक एक पुत्र तथा तीन सर्दार ओल में बंगाल में रहें।
रंग प्रांत जो एक ओर गौहाटी तक है और उत्तर कूल में है
था दक्षिण कूल से बेलतली बादशाही साम्राज्य में मिला लिया
ाय। जब राजा ने इस निश्चय के अनुसार कार्य किया तब
ानखानाँ ५ वें वर्ष में ८ जमादिउल्अव्वल को तामरूप के
हाड़ी स्थान धना से कूच कर बंगाल की ओर लौटा। मार्ग में

बादशाही साम्राज्य में नए अधिकृत प्रांत का प्रबंध भी किया। कुछ जड़ी की दवाओं के उपयोग से दमा तथा हृदय की धड़कन भी बढ़ गई तब निरुपाय हो कजली से कूच कर गौहाटी में पड़ाव डाला। रशीद खाँ को कामरूप का फौजदार नियत कर तथा असकर खाँ को अधिकतर सेना के साथ कूच विहार के भूम्याधिकारी प्रेमनारायण को दमन करने के लिए भेजकर, जो फिर उपद्रव कर रहा था, स्वयं खिजिरपुर को चला। ६ठे वर्ष के आरंभ में २ रमजान सन् १०७३ हि० (१ अप्रैल सन् १६६३ ई०) को खिजिरपुर से दो कोस पर इसकी मृत्यु हो गई।

मीर जुमला वैभवशाली सर्दार तथा शाहजादों के समान उच्चपदस्थ था। अपने समय के सर्दारों तथा अमीरों में अपने सुव्यवहार, उदारता, दूरदर्शिता, बुद्धिमानी, वीरता तथा कर्मशीलता में अपने समय का एक तथा अद्वितीय था। चढ़ाई तथा सेना संचालन में कोई इसके बराबर नहीं था। इसने अपना थोड़ा ही समय हिंदुस्तान में व्यतीत किया था इसलिए इसके कार्यों का चिह्न यहाँ कम प्रकट हुआ। तिलंगाना के कस्बों में इसने बहुत स्मारक छोड़े हैं, जिनसे इसका नाम रहेगा। हैदराबाद नगर में इसके नाम से तालाब, बाग और हवेली प्रसिद्ध हैं।

मीर जुम्ला शहरिस्तानी, मीर मुहम्मद अमीन

यह इस्फहान के शहरिस्तानी सैयदों में एक सर्दार था। इसका बड़ा भाई मीर जलालुद्दीन हुसेन उपनाम सलाई योग्य विद्वान था और शाह अब्बास सफवी प्रथम का कृपापात्र होकर सद्र नियत हुआ, जो ईरान के बड़े पदों में से है। जब वह मर गया तब इसका भतीजा मिर्जा रजी, जो मिर्जा तकी का पुत्र था, अपने चाचा के स्थान पर उस पद पर नियत हुआ। अपनी योग्यता तथा सौभाग्य से यह बादशाह का पार्श्ववर्ती हो गया। उस ऐश्वर्य-शाली शाह के निजी दानों के अध्यक्ष का, जो बारह इमामों के लिए किए गए थे, और मुहदारी का पद सद्र के पद के सिवा इसे मिल गए। सन् १०२६ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र सदरुद्दीन मुहम्मद को, जो शाह का दौहित्र तथा दूध पीता बच्चा था, सद्र नियत कर उस मृत के चचेरे भाई मिर्जा रफीअ को उसका प्रतिनिधि बना दिया। अंत में वह भी स्थायी सद्र नियुक्त हो गया।

संक्षेपतः मीर मुहम्मद अमीन सन् १०१३ हि० (सन् १६०४ ई०) में एराक से दक्षिण आकर मुर्तजा मुमालिक मीर मोमिन अस्त्राबादी के द्वारा तिलंग के सुलतान मुहम्मद कुली कुतुबशाह की सेवा में भर्ती हो गया। मीर मोमिन मीर फख्रुद्दीन समाकी का भांजा था और सम्मति देने में बड़ी योग्यता रखता था। ईरान में इसने शाह तहमास्प सफवी के पुत्र सुलतान हैदर मिर्जा

से शिक्षा पाई थी। शाह की मृत्यु, मिर्जा हैदर के मारे जाने तथा शाह इस्माइल द्वितीय का अधिकार होने पर यह वहाँ न ठहर सका और दक्षिण चला आया। उस देश के सभी सुलतानों के धर्म में एकता रखने के कारण मुहम्मद कुली कुतुबशाह का सेवक हो जाने पर यह उसका पेशवा तथा वकील हो गया तथा कई वर्षों तक उसके राज्य का प्रधान रहा। मीर मुहम्मद अमीन ने अपने सौभाग्य के जोर से मुहम्मद कुली के मिजाज में, जो सदा से राज्य के प्रबंध तथा कोष विभागों के कोई भी कार्य नहीं देखता था, ऐसा स्थान कर लिया था कि इसे मीर जुमला की पदवी देकर कुल कार्य इसी पर छोड़ दिया। मुहम्मद कुली की मृत्यु पर इसे पुत्र न होने से इसका भतीजा सुलतान मुहम्मद कुतुबशाह गद्दी पर बैठा। यह अपनी योग्यता तथा बुद्धिमानी से राज्यकार्य देखने लगा इससे मीर से उससे नहीं पटी। सुलतान मुदम्मद ने मीर के धन आदि का कुछ भी लोभ न कर इसे अच्छी प्रकार बिदा कर दिया। मीर गोलकुंडा से बीजापुर पहुँचा पर आदिल-शाह से भी उसका मन नहीं मिला। निरुपाय हो समुद्र से स्वदेश पहुँचकर एराक में शाह अब्बास सफवी की सेवा में उप-स्थित हुआ। मिर्जा रफीअ सदर के कारण, जिसका यह भतीजा होता था, यह शाह का कृपापात्र हुआ। इसने कई बार योग्य भेंट शाह को दी और चार वर्ष तक वहाँ सम्मान के साथ काल-यापन किया। मीर चाहता था कि शाह की सेवा में ऊँचा मंसब प्राप्त करे और शाह चाहता था कि मौखिक कृपा दिखलाकर जो बहुमूल्य वस्तु इसने इस बीच इकट्ठी की है वह ले लेवे। जब मीर को यह ज्ञात हो गया तब उसने जहाँगीर के सेवकों से प्रार्थना

की। बहुतों ने नासमझी से ठीक हाल न जान कर जहाँगीर की सेवा में एक को सौ कर कह डाला। उस बड़े बादशाह ने अपने हाथ से मीर को बुलाने के लिए फर्मान भेज दिया। यह इस्फहान से भागकर १३ वें वर्ष सन् १०२७ हि० (सन् १६१८ ई०) में सेवा में पहुँचा और इसे ढाई हजारी २०० सवार का मंसब तथा अर्ज मुकर्रर का पद मिला। १५ वें वर्ष में इरादत खाँ के स्थान पर यह मीर सामान नियत हुआ।

जब शाहजहाँ बादशाह हुआ तब भी पुरानी सेवा के कारण यह मीर सामान के पद पर नियत रहा। ८ वें वर्ष इस्लाम खाँ के स्थान पर मीर बख्शी नियत हुआ और इसे पाँच हजारी २००० सवार का मंसब मिला। १० रबीउल् आखिर सन् १०४७ हि० (सन् १६३७ ई०) को लकवा की बीमारी से मर गया। मीर यद्यपि सैयदपन तथा वंश की उच्चता रखता था पर व्यवहार उसका अच्छा नहीं था। यह ओछे स्वभाव का तथा चिड़चिड़ा था। इमामिया धर्म का कट्टर अनुयायी था। एकदिन शाहजहाँ के दरबार में धर्म पर बात होने लगी। मीर ने तेजी से कुछ कहा, जिसपर बादशाह ने कहा कि मीर वास्तव में इस्फहानी है क्योंकि वहाँ के लोग उद्दंडता के लिए प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि ४ थे वर्ष में बादशाह बुर्हानपुर में थे और वर्षा के आधिक्य के कारण अन्न इतना महँगा हो गया था कि रोटी के लिए लोग प्राण देने को तैयार थे पर कोई उसे खरीदता नहीं था। शरीफ रोटी पर बिकता था पर कोई नहीं लेता था। बादशाही मुत्सद्दियों तथा सर्दारों ने आज्ञानुसार लंगरखाने हर नगर में खोल रखे थे, उस समय मीर जुमला ने उदारता में नाम पैदा किया। बुर्हानपुर

में दिनरात भोजन का लंगर खुला रखता था तथा नगद और अन्न भी लोगों को खैरात में देता था। यद्यपि उस समय भी ईरान के लोग कहते थे कि मीर की दया निजी नहीं है पर यह व्यंग्य उनके हृदयस्थ भाव का है। नहीं तो यह काम प्रशंसा के योग्य तथा परोपकार का है।

इस्फहान ईरान के बड़े नगरों में से है। शैर—

इस्फहान को आधा संसार कहते हैं। आधा गुण इस्फहान को कहते हैं।

'असह' के अनुसार यह चौथा देश है पर कुछ लोग इसकी लंबाई चौड़ाई के कारण इसे तीसरा कहते हैं। यह एराक का पुराना नगर है। पहिले यहूदी लोग यहाँ पढ़ते थे। इसराइल के अनुयायी लोग भाग्य से भाग कर संसार में फैल गए। जब यहाँ की मिट्टी को पवित्र स्थान की मिट्टी के समान पाया तब नगर बसाकर यहूदियों पर नाम रखा। कुछ लोग साम के पुत्र इस्फहान से इसका संबंध बतलाते हैं। कुछ लोग इसे सिकंदर का बसाया मानते हैं। इब्नदरीद कहता है कि इस्फहान संयुक्त शब्द है, इस्फ का अर्थ नगर तथा हान का अर्थ सवारों है। फर्हंग रशीदी कहता है कि इस्पाह व इस्पह से सेना व कुत्ता और इसी प्रकार सिपाह व सिपह हुआ। इसी शब्द से व्युत्पन्न इस्पाहान है, जहाँ ईरान के सिपाहियों का सर्वदा निवास रहा है। वहाँ कुत्ते भी बहुत थे। इसीसे तारीख इस्फहान का लेखक अली बिन हम्जा कहता है कि पहिला और अंतिम अक्षर 'अलिफ' व 'नून' निस्बत के लिए है। रशीदी की बात समाप्त हुई। इस्फहान इस्पहान का अरबी रूप है। कहते हैं कि आरंभ में चार ग्राम

थे—किरान, कोशक, जूयारः और दश्त। जब कैकुबाद ने इसे राजधानी बनाया तब यह बड़ा नगर हो गया और वे ग्राम गलियाँ हो गईं। जिंदः रोद (नहर) इसके नीचे बहती है, जो जाइंदः रोद के नाम से प्रसिद्ध है और कहते हैं कि एक सहस्र नहरें इससे निकली हैं। शाह अब्बास प्रथम ने अपने राज्यकाल में इसे राजधानी बनाया और कुछ बड़े प्रासाद तथा सुहावने बाग बनवाकर उस नगर के बसाने बढ़ाने में प्रयत्नशील हुआ कि यह नया मालूम हो। यह सफवी राजवंश के अंत तक राजधानी रहा। अफगानों के उपद्रव के समय इस नगर में खराबी आई। यहाँ की जलवायु अच्छी है। यहाँ के आदमी बहुत सुंदर तथा प्रसन्न चित्त होते हैं। यहाँ से बहुत से अच्छे विद्वान तथा गुणी और सिद्धपुरुष निकले हैं। पहिले यहाँ के लोग शाफेई धर्म के माननेवाले थे पर अब शीआ हैं। परंतु ये कठोर तथा उद्दंड होते हैं। कहा जाता है कि इस्फहानी कंजूसी से खाली नहीं होता। कहा जाता है कि साहब बिन एबाद कहता है कि जब मैं इस्फहान पहुँचता हूँ तब मैं अपने में कंजूसी पाता हूँ। इस नगर तथा यहाँ के रहनेवालों के लिए घंटा हिलाया गया है। शैर—

सभी वस्तुएँ भली हैं पर यह कि इस्फहानी को दर्द नहीं होता।

मीर मुइज्जुल्मुल्क अकबरी

यह मशहद के सर्दारों में से था और मूसवी सैयद था। अकबर के राज्यकाल में तीन हजारी मंसबदारों में भर्ती होकर बादशाही सेवा अच्छी प्रकार करते हुए बराबरवालों से बढ़ गया। १० वें वर्ष सन् ९७३ हि० में जब बादशाह खानजमाँ को दंड देने के लिए जौनपुर चले तब उसने अपने भाई बहादुर खाँ को सिकंदर खाँ के साथ अपने से अलग कर सरवार प्रांत में भेजा कि वहाँ लूट मार कर उपद्रव मचावे। बादशाह ने मीर मुइज्जुल्मुल्क के अधीन कुछ सर्दारों को उन्हें दंड देने भेजा। उपद्रवियों ने इस सेना के आते आते साहस छोड़कर कपट का मार्ग ग्रहण किया और संदेश भेजा कि ऐसी कोई सूरत नहीं है कि बादशाही सेना का सामना करने को तैयार हों। प्रार्थना यह है कि दोष के क्षमा कराने का प्रबंध करें। जो भारी हाथी अधिकार में आए हैं उन्हें दरबार भेज देते हैं। ज्योंही हम लोगों के दोष क्षमा कर दिए जाएँगे त्यों ही दरबार में उपस्थित होकर सिज्दः करेंगे। मीर ने उत्तर में लिखा कि तुम्हारे दोष इस प्रकार के नहीं हैं कि सिवा तलवार के पानी से काटे हुए क्षमा योग्य हो जायँ। बहादुर खाँ ने ऐसी बात सुनकर भी शांति से कहलाया कि यदि उचित समझें तो हमलोग मिलकर आपस में कुछ बातचीत कर लें। इस पर मीर कुछ आदमियों के साथ पड़ाव से बाहर आया। इस ओर से

बहादुर खाँ भी कुछ लोगों के साथ आगे आया और दोनों ओर से बहुत बातचीत भी हुई।

इन उपद्रवियों के मुख से झुठाई के चिन्ह प्रगट हो रहे थे इस लिए संधि न हो सकी। बादशाह अकबर ने यह वृत्तांत सुनकर लश्कर खाँ और राजा टोडरमल को अन्य सेना भेजते हुए आज्ञा दी कि संधि हो या युद्ध, जो समय पर उचित समझें वहीं करें। इन लोगों ने मीर मुइज्जुल्मुल्क के पास पहुँचते ही विद्रोहियों से कहला भेजा कि जो कुछ तुम लोगों ने सेवा तथा नम्रता के संबंध में कहा है उसमें यदि सचाई है तो विश्वास के साथ दरबार में उपस्थित हो जाओ और नहीं तो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। उनमें विश्वास नहीं था अतः मार्ग पर नहीं आए। मीर का युद्ध पर दृढ़ विश्वास था और अपने साहस के घमंड से भरा हुआ था तथा यह सुनकर भी कि खानजमाँ दूसरों की मध्यस्थता में अपने दोष क्षमा करा चुका है, इसने सेना का व्यूह सजा कर खैराबाद के पास शत्रुओं पर आक्रमण कर दिया। सिकंदर खाँ उजबक का भतीजा मुहम्मद यार, जो इस बलवे का अगुआ था, बादशाही सेना के आक्रमण में मारा गया। सिकंदर खाँ चुनी हुई सेना के साथ उसके पीछे पीछे युद्ध के लिए तैयार था पर पीठ दिखाकर भाग गया। विजयी सेना सिकंदर के भागने को युद्ध का अंत समझकर लूटमार के लिए अस्त व्यस्त हो गई। बहादुर खाँ जो इसी घात में बैठा था, इसी समय बाएँ भाग की सेना के साथ पहुँचकर युद्ध करने लगा। शाह बिदाग खाँ घोड़े से अलग होकर शत्रु के हाथ पकड़ा गया और एक झुंड साहस छोड़कर शत्रु के पास पहुँच गया। बहादुर खाँ इस सेना को हटा-

कर दूसरे झुंड पर जा पड़ा और वे बिना युद्ध किए ही भाग खड़े हुए। कुछ सैनिक झगड़े तथा निमक हरामी से अलग हो गए। इन झगड़ालुओं की बुराई तथा दुर्भाग्य और घमंड से हारी हुई सेना के सर्दार को पराजय प्राप्त हुई। राजा टोडरमल अन्य सर्दारों के साथ एकत्र होकर मैदान में डटे रहे पर सेना के अस्त-व्यस्त हो जाने के कारण कुछ कार्य न हो सका। इसके अनंतर बिहार पर बादशाही अधिकार हो जाने पर मीर को परगना अरब तथा उसके अंतर्गत की पास की जमीन जागीर में मिली। २४ वें वर्ष में बिहार के सरदारगण ने, जिस उपद्रव का मुखिया पटना का जागीरदार मासूम खाँ काबुली था, बदनीयती तथा मूर्खता से विद्रोह का झंडा खड़ा किया और मीर मुइज्जुलमुल्क को उसके छोटे भाई मीर अली अकबर के साथ अपनी बातों में बहकाकर उपद्रव करने लगे। पर ये दोनों भाई कुछ दिन उन बलवाइयों का साथ देकर अलग हो गए। मीर मुइज्जुलमुल्क ने जौनपुर पहुँचकर विद्रोह किया और बहुत से अदूरदर्शी समय देखनेवालों को इकट्ठा कर लिया। इस कारण २५ वें वर्ष सन् ९८८ हि० में दरबार से मानिकपुर के जागीरदार असद खाँ तुर्कमान को आदेश मिला कि उस सीमा पर शीघ्र जाकर उन उपद्रवियों को अन्य बलवाइयों के साथ, जो उससे मिल गए हैं, दरबार में लिवा लावे। उसने आज्ञानुसार उन सबको हाथ में लाकर नदी से बादशाह के यहाँ भेज दिया। इटावा नगर के पास मीर की नाव जमुना नदी में डूब गई।

मीर मुर्तजा सब्जवारी

यह सब्जवार प्रांत का एक सैयद तथा दक्षिण का एक सर्दार था। आरंभ में यह बीजापुर के सुलतान आदिलशाह का सेवक हुआ। बुलाने पर यह अहमदनगर के मुर्तजा निजाम शाह के यहाँ जाकर बरार का सेनापति हुआ। जब शाह कुली सलाबत खाँ चरकिस फिर निजाम शाह का वकील हुआ तब सैयद मुर्तजा अमीरुल् उमरा नियुक्त होकर आदिलशाह का राज्य लूटने के लिए भेजा गया। इस लूट मार में साहस तथा वीरता से इसने नाम कमाया। इसके अनंतर जब निजाम शाह पागलपन के कारण एकांत में रहने लगा और पत्र लेखन से मेल रखना निश्चित हुआ तब सलावत खाँ ने कुल राजकार्य दृढ़ता से अपने हाथ में ले लिया। उसके तथा मीर के बीच में मनोमालिन्य आ गया और वह बरार के जागीरदारों को उखाड़ने में लगा। मीर ने खुदावंद खाँ हब्शी, जमशेद खाँ शीराजी तथा बरार के अन्य जागीरदारों के साथ सन् ९९२ हि० में तैयारी से अहमद नगर के पास पहुँच कर सेना सहित पड़ाव डाल दिया। सलाबत खाँ मुर्तजा निजाम शाह से दूसरी प्रकार का बर्ताव कर शाहजादा मीरान हुसेन के साथ युद्ध को आया। एकाएक बरार की सेना परास्त हो गई। मीर बहुत सा माल खोकर तथा उस प्रांत में रहना अशक्य देखकर साथियों के साथ अकबर बादशाह के यहाँ चला आया। सेवा में पहुँचने पर हजारी मंसब तथा जागीर

पाकर सम्मानित हुआ और दक्षिण की चढ़ाई में शाहजादा मुराद के साथ रहकर इसने बहुत प्रयत्न किया। जब संधि होने पर अहमद नगर से लौटे तब शाहजादे ने सम्मति के लिए जलसा किया। बड़े बड़े सर्दार विजित प्रांत की रक्षा करने से हट गए तब मुहम्मद सादिक ने सीमाओं की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया तथा मेहकर में ठहरा। मीर मुर्तजा बस्तियों की रक्षा का भार लेकर एलिचपुर में रहने लगा। इसके निवासस्थान के पास होने से इसने धूर्तता से गाविलगढ़ पर अधिकार कर लिया, जो बरार प्रांत का सबसे बड़ा दुर्ग है और इस प्रांत के शासकों का सदा निवास स्थान रहा। यह एलिचपुर से दो कोस पर स्थित है तथा यह प्रांत बादशाही साम्राज्य से मिला हुआ था और बादशाही सेनापतिगण इस पर कभी विजय प्राप्त न कर सके थे। इसने केवल कुछ भय तथा आशा दिखलाकर यह कार्य कर लिया। वजीहुद्दीन तथा विश्वास राव दुर्ग के रक्षकों ने रसद की कमी से इसकी बातें स्वीकार कर सन् १००७ हि० (सन् १५९९ ई०) ४३वें वर्ष में कुंजी सौंप दी और मंसब तथा जागीर पाकर सेवा में चले आए। इसके बाद मीर ने अहमद नगर दुर्ग के विजय में शाहजादा सुलतान दानियाल के साथ रहकर अच्छी सेवा की। इस विजय के अनंतर बुर्हानपुर में अकबर की सेवा में पहुँचा और अच्छे कार्य के पुरस्कार में इसका मंसब बढ़ा, झंडा तथा डंका पाया और बसी हुई जागीर भी वेतन में मिली।

मीर मुहम्मद खाँ खानकलाँ

यह शम्सुद्दीन मुहम्मद खाँ अतगा का बड़ा भाई था। यह वीरता तथा उदारता में अद्वितीय था। मिर्जा कामराँ तथा हुमायूँ की सेवा में इसने अच्छे कार्य किए और अकबर के राज्यकाल में भी उसी प्रकार अच्छी सेवा की। यह बहुत दिनों तक पंजाब का प्रांताध्यक्ष रहा। उस प्रांत के अधिकतर महाल अतगा खेल को मिले थे, जिनसे तात्पर्य अतगा खाँ के भाइयों, पुत्रों तथा संबंधियों से है। गक्खर प्रांत पर अधिकार करने, सुलतान आदम को दमन करने तथा वहाँ के शासन पर कमाल खाँ को अधिष्ठित करने में खानकलाँ ने अच्छा प्रयत्न किया और भाइयों के साथ वीरता तथा साहस के चिन्ह प्रगट किए। अकबर के सौभाग्य से इसे ऐसी विजयें प्राप्त हुईं कि दिल्ली के पुराने सुलतान उनकी इच्छा करते ही रह गए। ९ वें वर्ष में अकबर के सौतेले भाई काबुल के शासक मिर्जा मुहम्मद हकीम ने बदख्शाँ के शासक मिर्जा सुलेमान के अत्याचार तथा अन्याय से दुखी होकर अकबर के पास सहायता के लिए प्रार्थनापत्र सिंध नदी से भेजा। बादशाह ने खानकलाँ को पंजाब के सर्दारों के साथ मिर्जा की सहायता के लिए नियत किया और आज्ञा दी कि सर्दारगण मिर्जा सुलेमान के अधिकार को काबुल प्रांत से हटाकर मिर्जा मुहम्मद हकीम को खानकलाँ के छोटे भाई कुतुबुद्दीन खाँ की अभिभावकता में उस प्रांत में दृढ़ता से स्थापित कर लौट आवें। इसके

अनंतर जब खानकलाँ पंजाब की सेना के साथ मिर्जा की सहायता को काबुल पहुँचा तब मिर्जा सुलेमान घरा उठाकर बदख्शाँ को चला गया। मिर्जा मुहम्मद हकीम इस सफलता तथा इच्छापूर्ति से बादशाही सर्दारों के साथ काबुल में गया। खानकलाँ मिर्जा की अभिभावकता तथा उस प्रांत का कार्य स्वयं करना उचित समझकर काबुल में ठहर गया और कुतुबुद्दीन खाँ को दूसरे सर्दारों के साथ हिंदुस्तान बिदा कर दिया। अवस्था की कमी के कारण मिर्जा अनुभव न रखने से बराबर काबुल के उपद्रवियों की व्यर्थ की बातें सुनता था, जो कुस्वभाव से विद्रोह मचाना चाहते थे। खानकलाँ अपने सुव्यवहार तथा स्वभाव की कड़ाई के लिए प्रसिद्ध था इसलिए उदारता की ओर नहीं जाता था। थोड़ी सी बात पर इसका मिजाज बदल जाता था और काम बिगड़ जाता था। इसलिए मिर्जा तथा काबुलियों से इसकी नहीं पटी। यद्यपि मिर्जा मुहम्मद हकीम से अपने मन की बात प्रगट कर देता था पर बहुत से बड़े कार्य बिना खानकलाँ की सम्मति के कर डालता था। यहाँ तक कि अपनी बहिन का, जो पहिले शाह अबुल्मआली को ब्याही थी, ख्वाजा हसन नक्शबंदी से, जो काबुल में रहता था, खानकलाँ से बिना राय लिए संबंध कर दिया। ऐसे ऊँचे संबंध के कारण सम्मानित होने पर मिर्जा के कार्यों को उसने स्वयं अपने हाथ में ले लिया। खानकलाँ उद्दंड प्रकृति का होते भी गंभीर तथा दूरदर्शी था और उसने समझ लिया कि ख्वाजा को अंत में बुरा फल मिलेगा। दूरदर्शिता से एक रात्रि में, जिसमें कोई उसे न रोके, काबुल से कूच कर हिंदुस्तान चल दिया और लाहौर पहुँचकर आराम से रहने लगा।

भाषा तत्ववेत्ताओं तथा राजनीतिज्ञों ने बादशाही को बाग-बानी से संबंध दिया है। अर्थात् जिस प्रकार माली वृक्षों से उद्यान की शोभा बढ़ाने के लिए वृक्ष को एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान में बैठाता है, झुंड को पसंद नहीं करता, आवश्यकतानुसार सींचता है, उचित समय तक पालन पोषण करने में प्रयत्न करता है, खराब वृक्षों को उखाड़ डालता है, अनुचित रूप से बढ़ी हुई शाखाओं को काट डालता है, बेकार झंखाट को निकाल डालता है तथा एक वृक्ष का कलम दूसरे में लगाता है और इस प्रकार अनेक प्रकार के फल व मेवे तथा अनेक रंग के फूल पैदा करता है, आवश्यकता पड़ने पर छाया मिलती है और इसी प्रकार के और भी लाभ होते हैं, जिनका वनस्पति शास्त्र में वर्णन है। इसी प्रकार दूरदर्शी बादशाह गण भी नियम, विधान तथा दंड से सेवकों पर कृपा करते हुए शासन करते रहते हैं और आज्ञा का झंडा फहराते हैं। जब कभी कोई झुंड एक मत तथा एक दिल होकर एकत्र होता है और झुंड की अधिकता तथा भीड़-भाड़ प्रगट होती है तो पहिले कुछ अपने को ठीक करने तथा बाद को उस झुंड को देश की प्रजा के आराम का प्रबंध करने को कहकर अस्त व्यस्त करते हैं। कभी कोई कठोर कार्य उनसे नहीं प्रगट होता और इस अस्तव्यस्तता को सबकी सफलता समझते हैं। संसार के मर्दमारनी मदिरा के उपद्रव से तथा होश को नष्ट करनेवाले मदिरालय के आश्रितों को विद्रोह से क्या शांति नहीं मिल सकती। विशेषकर उस समय जब उपद्रवियों, बात बनानेवालों तथा बलवाइयों का झुंड इकट्ठा हो जावे और मूल ही में असतर्कता हो गई हो।

उक्त कारणों से अतगा खेल के अच्छे सर्दारों को जो बहुत समय से पंजाब में एकत्र होकर वहाँ का प्रबंध देख रहे थे, हटा कर दरबार बुला लिया। सन् ६७६ हि० में राजधानी आगरा में ये लोग सेवा में उपस्थित हुए और हर एक को नई जागीर मिली। हिंदुस्तान के अच्छे प्रांतों में से सरकार संभल मीर मुहम्मद खाँ को जागीर में मिला। नागौर का जागीरदार हुसेन कुली खाँ जुल्कद्र पंजाब का शासक नियत हुआ और उसके स्थान पर उस विस्तृत प्रांत का खानकलाँ अध्यक्ष बनाया गया। १७ वें वर्ष में जब बादशाह अजमेर में पहुँचे और गुजरात के विजय का विचार दृढ़ हुआ तब खानकलाँ बहुत से सर्दारों के साथ अग्गल के रूप में उस प्रांत को भेजा गया। जिस समय उक्त खाँ सिरोही के पास भद्रार्जुन कस्बे में पहुँचा तब राव मानसिंह देवड़ा, जो वहाँ का सर्दार था, हट गया और राजदूतों के रूप में कुछ राजपूतों को भेजकर अधीनता स्वीकार करा ली। जब ये खानकलाँ से आकर मिले तब बिदा होने के समय हिंदुस्तान की चालपर हर एक को बुलाकर इसने पान दिया और बिदा किया। इन साहसियों में से एक ने खानकलाँ की हँसुली की हड्डी के नीचे इतनी जोर से छुरा मारा कि उसका सिरा तीन इंच दूसरी ओर पंखे से बाहर निकल आया। अन्य लोगों ने उस राजपूत तथा उसके साथियों को मार डाला। यद्यपि घाव गहरा था पर ईश्वरी कृपा से पंद्रह दिनों में अच्छा हो गया।

जब गुजरात प्रांत उसी वर्ष अकबर के अधिकार में चला आया तब खानकलाँ सरकार पत्तन का अध्यक्ष नियत हुआ, जो नहरवाला नाम का प्राचीन नगर है और पहले उस प्रांत की

राजधानी थी। २० वें वर्ष सन् ६८३ हि० में, सन् १५७६ ई० में इसकी मृत्यु हो गई। यह गुणी पुरुष था। यह तुर्की तथा फारसी में कविता करता था। इसने एक दीवान तैयार किया, जिसमें कसीदे तथा गजल भी हैं। इसका उपनाम 'गजनवी' था। यह गानविद्या में भी कुशल था। कहते हैं कि कभी इसका दरबार विद्वानों तथा कवियों से खाली न रहता। रंगीन बातें तथा चित्ताकर्षक गानों से शौकीनों को बहुत आनंद तथा प्रसन्नता होती थी। उसके एक शैर का अनुवाद इस प्रकार है—

मेरी अवस्था की प्राप्ति यौवन में नादानी में बीत गई।
जो कुछ बाकी था वह भी परेशानी में बीत गया॥
सिवा आँखों के कोई दूसरा पानी नहीं देता।
सिवा प्रातः समीर की आह के मेरा
कोई साथी आह खींचने में नहीं है॥

इसका पुत्र फाजिल खाँ एक हजारी मंसबदार था। मिर्जा अजीज के घिर जाने के समय यह अहमदाबाद में बहुत प्रयत्न करते हुए मर गया, जहाँ प्रति दिन वीर सैनिकगण बाहर निकलकर युद्ध किया करते थे। दूसरा पुत्र फर्रुख खाँ था जो अकबर के ४० वें वर्ष में पाँच सदी मंसब तक पहुँचा था।

मीर सैयद जलाल सदर

यह मीर सैयद मुहम्मद बुखारी रिजवी का वास्तविक पुत्र था, जिसका पाँच संबंध शाहआलम तक पहुँचता था, जो रसूलाबाद स्थान में अहमदाबाद में गड़ा हुआ है। २० जमादि-उल्‌आखिर सन् ८१७ हि० को यह पैदा हुआ तथा सन् ८८० हि० में मर गया। इसने अपने पिता कुतुबआलम से शिक्षा पाई। यह सैयद जलाल मखदूम जहाँनियाँ का पौत्र था। ओछा के शासक की शत्रुता से पिता तथा अपने मुर्शिद शाह महमूद की आज्ञा से सुलतान महमूद के समय, जिससे गुजरात के शासक सुलतान मुजफ्फर के पुत्र से संबंध था, इस प्रांत में आकर अहमदाबाद से तीन कोस पर तबाह कस्बे में रहने लगा। सन् ८५७ हि० में यह मर गया। मीर सैयद मुहम्मद ने शाह आलम की सज्जादः नशीनी (महंती) में बड़प्पन प्राप्त किया और फकीरी तथा संतोष में अपना जोड़ नहीं रखता था। इसने कुरान का अनुवाद अच्छा किया था। जब जहाँगीर गुजरात से समुद्र की सैर को खंभात की ओर चला तब मीर बड़े सम्मान से साथ गया था। शाहजहाँ ने दो बार उस बड़े सैयद का दर्शन किया था। पहिली बार शाहजादगी के समय अहमदाबाद में और दूसरी बार जूनेर से राजधानी जाते समय किया था। यह अपनी उत्पत्ति की तारीख में इस मिसरे से प्रसिद्ध है—मिसरा—'मन व दस्त व दामाने अल् रसूल' (मैं व हाथ व

दामन रसूल का)। कहते हैं कि सैयद तथा उसके पूर्वज का धर्म इमामिया था। सन् १०४५ हि० में ८ वें वर्ष शाहजहाँनी में यह मरा। यह शाह आलम के रौजा के पश्चिम फाटक के पास के गुंबद में गाड़ा गया।

मीर सैयद जलाल स्वरूप के सौंदर्य तथा स्वभाव की अच्छाई से विभूषित था। यह विद्वत्ता तथा बुद्धिमानी में पूरा था। यह सहृदय तथा योग्य कवि था। इसका 'रजाई' उपनाम था। इसकी यह रुबाई प्रसिद्ध है—रुबाई का अर्थ—

घमंड तथा बड़प्पन से लाचार हूँ, क्या करूँ ?
यद्यपि आवश्यकता का कैदी हूँ पर क्या करूँ ?
मुहताज मीर हूँ, प्रेमिका का नाज नहीं उठाया।
प्रेमिका की प्रकृति रखते प्रेमी हूँ, क्या करूँ ?

१५ जमादिउल् आखिर सन् १००३ हि० को सैयद जलाल पैदा हुआ, जिसकी तारीख 'वारिस रसूल' है। शाहजहाँ की राजगद्दी के अनंतर अपने पिता के कहने पर मुबारकबादी देने के लिए यह आगरे गया और इस पर अनेक प्रकार की कृपाएँ हुईं। इच्छा पूर्ण रूप से पूरी होनेपर अपने देश लौटा। दुबारा फिर दरबार गया। इस वंश के पहिले लोगों में भी कुछ गुजरात के सुलतानों के बड़े सर्दारों में से हो गए हैं इसलिए शाहजहाँ ने ७ शाबान सन् १०५२ हि० को १६ वें वर्ष में बहुत समझाकर फकीरी वस्त्र उतरवाकर चार हजारी मंसब दिया और मूसवी खाँ के स्थान पर हिंदुस्तान का सदर बना दिया। सैयद ने अच्छे स्वभाव तथा इतने उच्च वंश के संबंध के होते हुए भी बादशाह से प्रार्थना की कि पहिले के सदर मूसवी खाँ की ढिलाई तथा असा-

वधानी से ऐसे बहुतों को मददेमआश मिल गया है, जो कदापि इसके योग्य नहीं हैं तथा बहुतों ने जाली सनदों के आधार पर बहुत सी भूमि पर अधिकार कर लिया है। इसपर साम्राज्य भर में आज्ञा हुई कि जबतक जाँच न हो कुल सनद जब्त कर लिए जायँ। नौकरी के समय इस प्रकार की कठिनाइयाँ आ जाती हैं कि अपना उत्तरदायित्व तथा स्वामी के स्वत्व का ध्यान रखना पड़ता है और यह प्रशंसनीय भी है पर साधारण जनता में सैयद की बड़ी बदनामी हुई।

दैवयोग से इसी समय जहाँआरा बेगम के दामन में आग लग गई, जिससे उसका शरीर अधिक जल गया। खूब खैरात तथा पुरस्कार बँटे, कैदी छोड़े गए तथा बकाया क्षमा किया गया। उक्त आज्ञा भी रोक दी गई। मीर का मंसब बराबर बढ़ने से छ हजारी १००० सवार का हो गया। यदि मृत्यु छोड़ती तो यह बहुत उन्नति करता। २१ वें वर्ष में लाहौर में १म जमादि-उल्‌अव्वल सन् १०५७ हि० (२२ मई सन् १६४७ ई०) को यौवन ही में मर गया।

कहते हैं कि मुल्ला मुहम्मद सूफी माजिंदरानी ने यौवन में ईरान से आकर हिंदुस्तान के बहुत से प्रांतों की सैर की तथा अहमदाबाद में रहने लगा। इसने मीर से संबंध स्थापित कर उसे शिक्षा दिया। मुल्ला के शैर आनंद से खाली नहीं हैं। यह शैर उसके साकीनामा से है। शैर—

यह मदिरा जल से कुछ भी भिन्न नहीं है।
तू कहता है कि सूर्य को हल कर डाला है॥

मुल्ला ने बुतखाने के नाम से साठ सहस्र शैरों का एक संग्रह कवियों के दीवानों से चुनकर तैयार किया। गुजरात का सूबेदार मुल्ला पर विश्वास रखता था पर जहाँगीर के बुलाने पर निरुपाय हो बिदा कर दिया। यह मार्ग में मर गया और उसी हालत में यह रुबाई कहा। रुबाई का अर्थ—

ऐ शाह न राजगद्दी और न रत्न रह जायगा।
तेरे लिए एक दो गज भूमि रह जायगी॥
अपने संदूक तथा फकीरों के प्याले को
खाली करो और भरो कि यही रह जायगा॥

बादशाह ने यह सुनकर विनम्रता दिखलाई।

मीर सैयद जलाल के दो पुत्र थे। पहिला सैयद जाफर सूरत तथा स्वभाव में पिता के समान था। जब मीर सदर के पद पर नियत हुआ तब यह शाहआलम के रौजे का सज्जाद नशीन बनाया गया। दूसरा सैयद अली प्रसिद्ध नाम रिजवी खाँ हिंदुस्तान का सदर हुआ। इसका वृत्तांत अलग दिया गया है। मीर सैयद जलाल ने अपनी पुत्री का सैयद भवः बुखारी दीनदार खाँ के पुत्र शेख फरीद से संबंध किया था।

———

मीरान सद्रजहाँ पिहानी

पिहानी लखनऊ के अंतर्गत एक ग्राम है। मीरान विद्वान तथा अच्छी आकृति का था। अकबर के राज्यकाल में शेख अब्दुन्नबी सदर की मध्यस्थता से साम्राज्य को फतवा देने का कार्य इसे मिला। जब तूरान के शासक अब्दुल्ला खाँ उजबक ने बादशाह को लिखा कि बड़ी निषेधाज्ञाएँ रसूलों के उपदेश में कुछ धार्मिक विरोध रखती है जो विद्वानों पर प्रगट है। अकबर के ३१वें वर्ष (सन् १५८३-४ ई०) में हकीम हुमाम के साथ राजदूतत्व करने के लिए तूरान भेजा गया और पत्र में, जो उसे लिखा गया था, इस संबंध में दो शैर केवल लिखे गए थे। (ये दोनों शैर अरबी भाषा में हैं जिनका अर्थ यहाँ नहीं दिया गया है।)

मीरान ३४वें वर्ष में तूरान से लौटा और काबुल में बादशाह की सेवा में पहुँचा। ३५वें वर्ष के सौर अगहन मास के जशन में दरबार में मदिरापान हो रहा था और मीर सद्रजहाँ मुफ्ती तथा मीर अब्दुलहई मीर अदल भी दोनों प्याले चढ़ा रहे थे। बादशाह ने यह शैर पढ़ा—

दोष को छिपानेवाले तथा क्षमा
करनेवाले बादशाह की मजलिसमें
हाफिज कराबा उड़ानेवाला और
मुफ्ती प्याला चढ़ानेवाला हुआ।

४०वें वर्ष में यह सात सदी मंसब तक पहुँच कर सदर कुल के पद पर नियत हुआ। इसके अनंतर कहते हैं कि उन्नति करता हुआ सर्दार तथा दो हजारी मंसबदार हो गया। जिस समय जहाँगीर अपनी शाहजादगी में शेख अब्दुन्नबी सदर के पास 'चेहल हदीस' पढ़ता था तब सैयद खलीफा की तौर पर वहाँ रहता था। शाहजादा इसे मित्र मानता था। एक दिन सैयद से प्रतिज्ञा की कि यदि मैं बादशाह हुआ तो तुम्हारा देय अदा करूंगा या जो मंसब चाहोगे वही दूंगा। राजगद्दी होने पर मीरान को स्वतंत्रता दी, जिसने देय के बदले में चार हजारी मंसब की प्रार्थना की। जहाँगीर ने उक्त मंसब देकर तथा सदर पद पर बहाल कर इसका सम्मान बढ़ाया। कन्नौज इसे जागीर में मिला। सैयद परोपकारी तथा कृतज्ञ था। जहाँगीर के समय सदर रहते हुए इसने कुछ लोगों को मदद्देमआश दिया जिसपर आसफ खाँ जाफर ने बादशाह से कहा कि अकबर बादशाह ने पचास वर्ष में जितना दिया था उतना मीरान ने पाँच वर्ष में दे दिया है। इसने एक सौ बीस वर्ष की अवस्था पाई थी पर तनिक भी इसकी बुद्धि तथा चेतनता में कमी नहीं आई थी। कहते हैं कि यह मुट्ठी भर हड्डी मात्र रह गया था और घर पहुँचकर बिछावन पर निर्बलता से गिर पड़ता। जब बादशाह के सामने आता तो पद के विचार से देर तक खड़ा रहता और बिना दूसरे की सहायता के सीढ़ी पर आता जाता। शैर का अर्थ—

निर्बलता से निमाज के समय ठहरने की शक्ति तेरी नहीं है
पर बादशाह के सामने बिना छड़ी रात्रि तक खड़ा रहता है।

सन् १०२० हि० (सन् १६११ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई। कहते हैं कि सैयद सहृदय था और पहिले शैर भी कहता था। इसके अनंतर जब इसकी योग्यता फतवा देने में लग गई तब शरीअत के विचार से इसने कविता से अपने को दूर रखा। इसका बड़ा पुत्र मीर बद्रे आलम एकांतवासी था। दूसरा पुत्र सैयद निजाम मुर्तजा खाँ[1] था, जिसका वृतांत्त अलग दिया गया है क्योंकि वह सर्दारी का इच्छुक था।

---

१. इसकी जीवनी इसी भाग में आगे दी गई है।

मुअ़ज़्ज़म खाँ शेख बायजीद

यह शेख सलीम के पौत्रों में से था। इसकी माँ जहाँगीर की धाय थी। अकबर के राज्यकाल के अंत में दो हजारी मंसब पा चुका था। इसके अनंतर जब जहाँगीर गद्दी पर बैठा तब इसका मंसब एक हजारी बढ़ाया गया और मुअज्जम खाँ की पदवी दी गई। ३रे वर्ष इसका मंसब बढ़कर चार हजारी २००० सवार का हो गया। इसके अनंतर यह दिल्ली का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। इसका पुत्र मकरम खाँ था, जो इस्लाम खाँ अलाउद्दीन का दामाद था। यह अच्छा मंसब तथा झंडा पाकर बहुत दिनों तक श्वशुर की सूबेदारी बंगाल में रहा। इसने कूच हाजू की चढ़ाई में दृढ़ता के साथ बहुत प्रयत्न किया और वहाँ के जमींदार परीक्षित को सूबेदार के पास लिवा लाया। जब इसी बीच इसका श्वसुर मर गया और उसका बड़ा भाई मुहतशिम खाँ शेख कासिम उस प्रांत का अध्यक्ष हुआ तब यह एक वर्ष तक कूच हाजू का फौजदार रहा। कासिम खाँ के दुस्वभाव से दुःखी होकर यह दरबार चला आया। २१ वें वर्ष में खानःजाद खाँ के स्थान पर यह बंगाल का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ और इसके नाम आज्ञापत्र भेजा गया। यह नाव पर सवार हो स्वागत को निकला। इसी समय मल्लाहों से कहा कि नाव को कुछ देर तक

किनारे पर रखें कि वह 'असर' की निमाज पढ़ ले। इसी बीच हवा उठी और नाव अंधड़ में पड़ डूब गई। मकरम खाँ साथियों के साथ डूब गया।

मुकर्रब खाँ

यह अमीन खाँ बहादुर[1] का पुत्र था, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है। जब इसका पिता निजामुल्मुल्क आसफजाह की कृपाओं के होते अदूरदर्शिता से उसके स्वत्व को भूलकर हैदराबाद मुबारिज खाँ के पास चला गया तब मुकर्रब खाँ सेना एकत्र कर आसफजाह के पास आ युद्ध में सम्मिलित हुआ। युद्ध के हुल्लड़ में दैवयोग से इसका अपने पिता ही से सामना हो गया। दक्षिण की प्रथानुसार घोड़ों से उतरकर खूब तलवार चली। इसने कई शत्रु अपने हाथ से मार डाले और घायल पड़े हुए पिता के सिर को अपने हाथ से काट डाला। विजय के अनंतर इसे चार हजारी मंसब मिला। जागीरदारी तथा बस्ती बसाने में इसे काफी अनुभव था।

कहते हैं कि बालकुंडा देहात में अच्छी भूमि चुनकर अपने नाम लगा लिया, जिसे वहाँ के आदमी सीरी कहते थे। वहाँ इसके गुमाश्ते खेती करते थे और वहाँ की कृषि का इसी से संबंध था। यहाँ तक कि वह दूध तथा बीज भी बेंच डालता था, ऐसा कहा जाता है और इससे वह बहुत लाभ उठाता था। बालकुंडा दुर्ग की प्राचीर इसी की बनवाई हुई है। इसकी सेना में अधिकतर वहीं के बारगीर थे। दक्षिण में विशेषकर उस स्थान में पुराना

---

१. मुगल दरबार भाग २ पृ० २३४-८ देखिए।

नियम दो या तीन या इससे अधिक रुपए दैनिक देने का प्रचलित था। यद्यपि उक्त खाँ आराम पसंद तथा विषयी न था पर गाने का प्रेमी था। दक्षिण के अच्छे गाने तथा बजानेवाले इसके यहाँ इकट्ठे हो गए थे। सात हजारी मंसबदारों से ऐश्वर्य-वानों के योग्य वैभव तथा सामान इसने इसी एक परगने तथा एलूकंदल सरकार के दो तीन महालों की आय से संचय कर लिया था। तीन चार वर्ष से इसकी पीठ में 'कैंसर' फोड़ा पैदा हो गया था। अंत में चीरफाड़ की आवश्यकता हुई। कई बार माँस काटे गए और सड़े माँस निकाले गए। हरबार घाव भर जाता और फिर पक जाता। अंत में २२ रबीउल्अव्वल सन् ११५८ हि० को घात में बैठे मृत्यु रूपी भेड़िए ने इसे अपने पंजे में पकड़ लिया। पहिले यह नपुंसक कहा जाता था पर बाद को विवाह होने पर इसे कई पुत्र हुए। अभी ये छोटे ही थे कि यह मर गया।

इसका सौतेला भाई नबी मुनौव्वर खाँ आपस में न बनने तथा मनोमालिन्य से थोड़ी जागीर लेकर अलग हो गया था और भाई की मृत्यु पर माँ के साथ, जो उसी के यहाँ रहती थी, शीघ्र आकर कस्बे पर धन वैभव के सहित अधिकृत हो गया और स्वयं भाई का स्थानापन्न होकर सर्दार बन बैठा। वह जानता था कि पुत्रों के रहते हुए उसे कुल नहीं मिल सकता इस लिए दरबार में जाना छोड़कर स्वतंत्रता से विद्रोही हो गया। भाई के लड़कों तथा संबंधियों को कैदकर दुर्ग के बुर्ज आदि को दृढ़ करने लगा। प्रगट में उत्तराधिकारियों की रक्षा के लिए पर वास्तव में कोष के लिए, जिसकी अधिकता प्रसिद्ध थी, आसफजाह ने उस विद्रोही

को दमन करने तथा उस दुर्ग को उसके अधिकार से निकालने को ३ रबीउल्अव्वल सन् ११५६ हि० को उस कस्बे के पास आकर पड़ाव डाला। कर्मचारी गण खाई व मोर्चे बाँधने का प्रबंध करने लगे। वह विद्रोही दो सहस्र सवार और तीन चार सहस्र पैदल सेना से अधिक इकट्ठा कर युद्ध करने के लिए घमंड में कस्बे के बाहर निकल आया था। हर बार युद्ध के लिए जब विजयी सेना से सामना होता तब अपने अच्छे विश्वासी सैनिकों को कटाकर परास्त हो लौट जाता। परंतु इस प्रकार जब सभी वस्तुओं का संग्रह किसी कारण वश होता है और परकोटा भी विशाल था तब भी सभी ओर से वह स्थान घेर लिया गया। भय तथा डर में न पड़कर वर्षाकाल के आरंभ होने की आशा में यह प्रसन्न हो रहा था, जिसका समय आ गया था, कि वर्षा उस स्थान को चारों ओर से घेर लेगी और युद्ध का अवसर न रह जायगा तथा स्यात् घेरा उठाकर शत्रु अपना मार्ग ले। उच्च साहसियों की इच्छा ईश्वरी कृपा है और वह बदलती नहीं इसलिए आसफजाह ने वहाँ दृढ़ छावनी बनवाया जिससे भीतरवालों की हिम्मत कुछ कम हो गई।

कहते हैं कि घेरे के समय इतनी सतर्कता तथा सावधानी पर, जो सर्दार के स्वभाव के अनुसार था, एक दिन विचित्र घटना घट गई। सेनाओं को अपने अपने स्थानों पर छोड़कर महल की अमारियों तथा थोड़े आदमियों के साथ, जो सब एक सहस्र से अधिक न थे, सैर करता हुआ चहार दीवारी के गिर्द घूमने निकला। जब फाटक के पास पहुँचा, जहाँ से सरकारी सेना दो तीन कोस की दूरी पर थी, तब वहाँ के आदमियों ने कहा कि

अच्छा अवसर मिल गया है कम सामान से युक्त (शत्रु) पर धावा कर उन्हें हटा दें। इसने उत्तर में कहा कि हमें दक्षिण की सूबेदारी का दावा नहीं है, केवल इस परगने के लिए लड़ाई कर रहा हूँ। संक्षेप में १ जमादिउल्अव्वल को घेरा होते दो महीने बीते थे कि आसफजाही इकबाल ने आपही आप धावा किया और दुर्गवालों में झगड़ा हो गया।

इसका विवरण इस प्रकार है कि वह निठुर चाहता था कि उस मृत के पुत्रों को समाप्त कर दें परंतु उसके साथ देनेवाले दक्षिणियों में बहुत से मृत के नमक खाए हुए तथा पाले हुए थे और उसके इस विचार की सूचना पाकर स्वामिद्रोह ठीक न समझकर वे उससे बिगड़ गए तथा एक क्षण का भी उसे अवसर न दिया कि आराम कर सके। तुरंत उन सब ने उसकी ओर बंदूक और तोप की नालें फेर दीं। वह निराश होकर साहस छोड़ उसी रात्रि पैदल ही अपने निजी साथियों के साथ राजा रामचंद्र सेन जादून की शरण में चला गया। दूसरे दिन मृत के पुत्रगण ने नानदेर के सूबेदार हर्जुल्ला खाँ बहादुर के द्वारा सेवा स्वीकार कर योग्य मंसब पाया तथा वह कस्बा अन्य मौजों के साथ उन्हें जागीर में मिल गया। क्षमा करना तथा उदारता दिखलाना सरदार की प्रकृति है इसलिए उक्त राजा के द्वारा उस उपद्रवी के दोष क्षमा कर दिए गए। कोष के नौ दस लाख रुपयों में से बचे लगभग दो लाख रुपए, क्योंकि बाकी को उसने अपने अधिकार के समय में नष्ट कर दिए थे, दो सौ तथा कुछ घोड़े, कुछ हाथियाँ और अन्न, बारूद आदि सामान जब्त कर लिए गए। लिखते समय छोटा पुत्र, जिसे पिता की पदवी मिली थी,

महामारी से सन् ११६० हि० में मर गया। उस समय आसफ-जाह निजामुद्दौला की सेना कल्याण दुर्ग के पास ठहरी हुई थी। बड़ा पुत्र इब्राहीम मुनौव्वर खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और अन्य जागीर पाकर सेना सहित कार्य करता रहा। इस समय इसने खानजमाँ खाँ की पदवी प्राप्त की थी।

मुकर्रब खाँ शेख हसन उर्फ हस्सू

यह पानीपत के शेख हसन के पुत्र शेख फतिया[1] का बेटा था। प्रसिद्ध है कि यह अकबर के राज्य काल में चीर फाड़ की हकीमी की सेवा में, जिसमें यह अपने समय में अद्वितीय था, रहता था। इसकी औषधियाँ इसकी विचित्र निजी आविष्कृतियाँ थीं और प्रसिद्ध थीं। मुकर्रब खाँ भी इस गुण में अपना जोड़ नहीं रखता था। यह अपने पिता के साथ चीर फाड़ तथा औषधि बाँटने में बराबर रहता था। ४१ वें वर्ष सन् १००४ हि० में हरिणों का अहेर करते समय एक हिरण ने बादशाह की ओर दौड़ कर सींघ घुसेड़ दी। चोट अंडकोष तक पहुँची तथा सूजन आ गई। सात दिन तक टट्टी नहीं हुई और साम्राज्य में बड़ी अशांति मच गई। यद्यपि हकीम मिसरी और हकीम अली को दवा का काम मिला पर मलहम लगाने तथा पट्टी खोलने और बंद करने के कार्य को इन्हीं पिता व पुत्र ने बड़ी अच्छी प्रकार किया। शेख हस्सू छोटी अवस्था ही से जहाँगीर की सेवा में पालित होकर बड़े २ काम किए। इसी पर जहाँगीर ने कहा था कि हस्सू के समान सेवक कम बादशाहों के पास होंगे। शाह-जादगी के समय शाहजादे के बहुत कहने पर भी इसने शाही सरकार से कुछ भी नहीं लिया। इसके अनंतर जब शाहजादे का

---

१. पाठांतर भनिया या बीना भी मिलता है।

मंसब बढ़ा तब यह पहिला आदमी था जिसे मंसब दिया गया। इसी कृपा से राजगद्दी होने पर इसे मुकर्रब खाँ की पदवी तथा पाँच हजारी मंसब मिला। इसी राज्यकाल में बादशाह की राज-कार्य की ओर से बे परवाही की प्रकृति के कारण हर एक काम का करनेवाला और न हर आदमी का काम पसंद आता था। मुकर्रब खाँ रत्नों की अच्छी पहिचान रखता था इसलिए गुज-रात का अच्छा प्रांत इसे दिया, जिसमें सूरत तथा खंभात से अच्छे बंदर थे, जिनमें हर एक अलभ्य तथा विचित्र वस्तुओं का घर था। यह उस प्रांत के प्रबंध कार्य तथा सेना की अध्यक्षता ठीक तौर से न कर सका तब यह उस पद से हटाया गया और वह प्रांत शाहजादा शाहजहाँ को जागीर में दिया गया। १३ वें वर्ष सन् १०२७ हि० में यह बिहार का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। १६ वें वर्ष में यह प्रांत शाहजादा सुलतान पर्वेज को दिया गया और इसके दरबार पहुँचने पर इसे आगरा प्रांत की अध्यक्षता मिली। इसके अनंतर यह द्वितीय बख्शी नियत हुआ और बाद-शाह के पास रहने का इसे सौभाग्य मिला। शाहजहाँ के राज्य के आरंभ में वार्धक्य के कारण इसे सेवा से छुट्टी मिल गई और कस्बा कीराना इसे मिला कि यह आराम से जीवन व्यतीत करे, जो इसका देश था और इसे पहिले से जागीर में मिला था। कहते हैं कि संसार बराबर उसके भाग्यानुकूल रहा और कभी इसने विपत्ति न देखी। इसके अनंतर जब एकांतवासी हुआ तब भी बड़ी प्रसन्नता तथा आनंद से 'हजार सहेली' के साथ जीवन व्यतीत करता रहा, जो इसके कारखानेवाले भी थे। कहते हैं कि धनाढ्यता के साथ इतनी शक्ति तथा उत्साह और प्रसन्नता तथा

बेफिक्री किसी दूसरे में उस समय नहीं थी। शाह शरफ पानीपती के रौजे का यह मुतवल्ली था और इसलिए अपना कब्रिस्तान वहाँ बनवा लिया था। नब्बे वर्ष की अवस्था में मृत्यु होने पर यह उसी में गाड़ा गया।

कीराना पर्गना देहली प्रांत के सहारनपुर के अंतर्गत है, जो अच्छे जलवायु तथा अच्छी भूमि के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ इसने बड़ा प्रासाद बनवाया। इसने एक सौ चालीस बीघा भूमि में एक बाग बनवाकर उसे पक्की दीवाल से घिरबाया और उसमें एक तालाब २२० हाथ लंबा और २०० हाथ चौड़ा निर्मित कराया। गर्म तथा ठंढे ऋतुओं के वृक्ष इसने उस उद्यान में लगवाए। कहते हैं कि पिस्ते का वृक्ष भी इसमें लग गया था और गुजरात तथा दक्षिण तक के जहाँ कहीं का अच्छा आम सुना उसके बीज मँगवाकर इसमें लगाए। यहाँ तक कि दिल्ली में अब भी कीराने के आम से बढ़कर कहीं का आम नहीं मिलता।

इसका पुत्र रिज़्कुल्ला शाहजहाँ के समय आठ सदी मंसब तक पहुचा। यह जर्राही तथा हकीमी में अच्छी योग्यता रखता था। औरंगजेब के समय में इसे खाँ की पदवी तथा मंसब में उन्नति मिली। १० वें बर्ष में यह मर गया। सादुल्ला खाँ मसीहा कीरानवी मुकर्रब खाँ का पोष्य पुत्र था। यह प्रसिद्ध कवि था और राजा रामचंद्र की स्त्री सीता जी की कहानी पद्य में इसने लिखी थी। ये तीन शैर उसी मसनवी के हैं—

उस मस्त प्रेमिका ने जब अपने हाथ से जल अपने ऊपर डाला तो पानी भी हाथ से चला गया।

स्नान के बाद जब पैर पानी से निकाला तो पानी से आग का वृक्ष निकला।

हिंद के रहनेवालों का कथन मानों पूरा हुआ कि चंद्रमा अवश्य अपने स्थान से बाहर निकला।

मुखलिस खाँ

यह सफशिकन खाँ का पुत्र तथा ईरान के सदर किवामुद्दीन खाँ का पौत्र था जो प्रसिद्ध खलीफा सुलतान का भाई था। यह विलायत का पैदा था। गोलकुंडा दुर्ग के घेरे के समय यह बाहशाही तोपखाने की दारोगागीरी का कार्य पिता के प्रतिनिधि के रूप में करता था। उस दृढ़ दुर्ग के विजय के अनंतर २०० सवार बढ़ने से इसका मंसब एक हजारी ३०० सबार का हो गया और यह उक्त पद पर व्यक्तिगत रूप में नियत हो गया। ३३वें वर्ष में यह अर्ज मुकर्रर नियुक्त हुआ और इसके बाद कोरबेगी हुआ तथा इसका मंसब बढ़कर दो हजारी ७०० सवार का हो गया। ३६ वें वर्ष में पाँच सदी बढ़ने पर इसका मंसब तीन हजारी हो गया। ४४ वें वर्ष में औरंगजेब की विजयी सेना खासपुर से पर्नाला लेने के लिए निकली। २ शाबान को मुर्तजाबाद कस्बा के मोर्चा में जो बीजापुर के अंतर्गत छत्तीस कोस पर था, बादशाह का पड़ाव पड़ा। उक्त खाँ बहुत बीमार हो चुका था और ४ शाबान सन् १११२ हि० (सन् १७०१ ई०) को मर गया। यह जुब्दतुल् उर्फा सैयद शम्सुद्दीन के रौजे में गाड़ा गया, जो उस प्रांत का एक शेख था। यह स्वाभाविक तथा अर्जित गुणों से भरा था। शील सौजन्य भी इसमें बहुत था। इसकी कृपा मित्र तथा अपरिचित पर समान थी और यह आद-मियों के कामों को करने में सतत प्रयत्न करता। मंसबदारों की

मिसिल तथा प्रार्थना पत्रों को उपस्थित करने में रुहुल्ला खाँ के समान यह भी पहिले कठोर तथा लालची था। यह कंजूस लोभी नहीं था प्रत्युत् इसकी प्रकृति में स्वतंत्रता तथा स्वच्छंदता थी तब भी बादशाह के हृदय में इसने अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया था। कई बार औरंगजेब ने कहा था कि युवा खलीफा सुलतान हमारे यहाँ है। उक्त खाँ पर बादशाह की कितनी अधिक कृपा थी वह उसके खास हस्ताक्षर से प्रकट होती है कि उसके पुत्र के लिए इनायतुल्ला खाँ को लिखा है कि शाहजादा बेदारबख्त को लिखे जो इस समय औरंगाबाद में ठहरा हुआ था। वह रिसालए कलमात तैइबात' में उद्धृत है। मृत मुखलिस खाँ का पुत्र माता-पिता हीन है, योग्यता रखता है, व्याकरण आदि खूब पढ़े हुए है, इसलिए उसके पालन-शिक्षण का प्रबंध रखना चाहिए। दैवयोग से वह शत्रुओं तथा दुष्टों के बीच में पड़ गया है। उसको दूध पिलाने वाली धाय मुलतफित खाँ की माँ है तथा उसका दीवान हाजी मुहम्मद खाँ है। इन दोनों में पूरी शत्रुता थी। कायमा, जो पुत्र सहित था, हैदराबाद का दीवान हुआ है इसलिए उस अनाथ पुत्र का रक्षक होवे। जब स्वामी का इतना स्नेह हो तभी नौकरी में मजा है। यह मुलतफित खाँ, मिर्जा मुहम्मद अली, हाजी महम्मद अली खाँ और मीर कायमा तफरशी सभी मुखलिसखानी थे और उसकी मृत्यु पर खाँ की तथा बादशाही पदवियाँ पाई थीं। उक्त खाँ को एक ही पुत्र था, जो (२१वीं) सन् ११०८ हि० में पैदा हुआ था। औरंगजेब ने मुहम्मद हसन नाम रखा था। बहादुर शाह के समय इसे शम्सुद्दीन खाँ की पदवी मिली थी। लिखने के कुछ वर्ष पहिले दिल्ली में इसकी

मृत्यु हो चुकी थी। मुखलिस खाँ विद्वत्ता तथा योग्यता के साथ सहृदय भी था तथा अच्छी कविता भी करता था। एक शैर का अर्थ—

मदिरा पिलानेवाले ने मेरी खुमारी,
तौबा तथा हृदय को मदिरा-पात्र की एक मुस्किराहट से
(क्रमशः) तोड़ दिया, बाँधा और प्रसन्न कर दिया।

विचित्र तो यह है कि मुगल होते तथा विद्वान होते भी सूफी-याना हृदय रखता था और उसका हृदय पीड़ा से खाली न था।

———

मुखलिस खाँ

इसका आलःबर्दी खाँ का बड़ा भाई होना प्रसिद्ध है। आरंभ में यह सुलतान पर्वेज का नौकर था। अपनी योग्यता तथा अनुभव से शाहजादे का दीवान होकर पटना प्रांत का शासक नियत हुआ, जो सुलतान की जागीर में था। जहांगीर के १९ व वर्ष में जब युवराज शाहजादा शाहजहाँ ने बंगाल के प्रांताध्यक्ष इब्राहीम खाँ फतहजंग[1] के मारे जाने पर अग्गल रूप में एक सेना राणा अमरसिंह के पुत्र राजा भीम के अधीन पटना पर भेजी तब मुखलिस खां का साहस छूट गया यद्यपि इफ्तखार खां का पुत्र आलहयार खा और शेर खा अफगान उसके सहायक थे। इसने पटना दुर्ग को ईश्वर पर भरोसा कर दृढ़ नहीं किया और कुछ दिन बादशाही सेना की प्रतीक्षा कर इलाहाबाद की ओर चल दिया। इसके अनंतर बादशाही नौकरों में भर्ती होकर सम्मानित हुआ। शहरयार के उपद्रव में यह ख्वाजा अबुल्हसन के साथ यमीनुद्दौला की हरावली में नियत था। शाहजहाँ की राजगद्दी पर इसे दो हजारी २००० सवार का मंसब, झंडा तथा नरवर

---

१. शाहजहाँ ने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर बंगाल पर अधिकार कर लिया था उसी समय यह मारा गया था। इसका विवरण इसकी जीवनी में मुगल दरबार भाग २ पृ० ४६१–४ पर देखिए।

की फौजदारी मिली। इसके अनंतर मंसब बढ़ाकर तथा डंका देकर यह गोरखपुर सरकार का फौजदार नियत किया गया। ७ वें वर्ष में इसे तीन हजारी मंसब देकर तेलिंगाना की सूबेदारी पर नियुक्त कर वहाँ बिदा किया, जिससे उस समय मुहम्मदाबाद प्रांत के नानदेर आदि महालों से तात्पर्य था। १० वें वर्ष (सन् १६३६ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई। कहते हैं कि इसने अच्छी बहुत सी सवारी इकट्ठी की थी। मृत्यु रोग के समय इसने पाँच सौ असामी छोड़ दिए थे।

इसका पुत्र मिर्जा लश्करी, जो अच्छा विद्वान था परंतु बहुत तथा बेहूदा बकने में प्रसिद्ध था। महाबत खाँ की सहायता से बादशाह के दरबार में परिचित हो गया। कहते हैं कि पहिले यह खानजहाँ लोदी का काम बिगाड़ने का कारण हुआ। एक रात्रि गुसलखाने के प्रबंध में उक्त खाँ के पुत्रों हुसेन खाँ और अजमत खाँ से झगड़ गया। वे भी कड़े पड़ गए तब इसने कहा कि तुम लोगों की बहादुरी कल प्रगट होगी जब तुम्हारे पिता के पैरों में बेड़ी डालकर एक करोड़ रुपया वसूल करेंगे। रात्रि की चौकी खानजहाँ की थी इसलिए लड़के क्रोध में आकर घर आए और पिता से कुल हाल कह दिया। इसका सौभाग्यकाल बीत गया था इसलिए इस ओछी व्यर्थ बात को सुनकर तथा पहिले की आशंकाओं से वह घर बैठ रहा। इस्माइल खाँ ने बादशाही आज्ञानुसार आकर इस एकांतबास का कारण पूछा। उस समय मिर्जा लश्करी की बातें खुलीं। शाहजहाँ ने इसको हथकड़ी पहिरवाकर ग्वालियर के कैदखाने में भेज दिया। खानजहाँ का काम पूरा होने पर इसे कैदखाने से छुट्टी मिली और गरीबी में जीवन

व्यतीत करता रहा। अपनी मृत्यु से यह मरा। दूसरा पुत्र जवाली था, जिसे शाहजहाँ के २० वें वर्ष तक सात सदी १५० सवार का मंसब मिला था।

मुखलिस खाँ काजी निजामा कुर्हदोई

यह पहले शाहजहाँ की सेवा में पहुँच कर बादशाही नौकरी में भर्ती हुआ और बीसवें वर्ष में बलख का बख्शी नियत हुआ। २१ वें वर्ष में यह काबुल प्रांत का बख्शी तथा वाकेआनवीस नियत हुआ। २४ वें वर्ष में उक्त प्रांत के तोपखाने की दारोगा-गिरी भी उक्त पदों के साथ इसे मिली तथा मंसब भी बढ़ाया गया। २५ वें वर्ष में यह राजधानी के प्रांत का दीवान बनाया गया। २६ वें बर्ष में यह मुहम्मद दाराशिकोह के साथ कंधार की चढ़ाई पर गया। २७ वें वर्ष में शागिर्द पेशा वालों का यह बख्शी हुआ। २८ वें वर्ष में सादुल्ला खाँ के साथ चित्तौड़ दुर्ग को तोड़ने के लिए यह भेजा गया। इसके बाद खलीलुल्ला खाँ बख्शी के साथ उसकी अधीनस्थ सेना का यह वाकेआनवीस नियुक्त होकर श्रीनगर की चढ़ाई पर गया। ३१ वें वर्ष में यह दाग़ का अमीन बनाया गया। इसके अनंतर दक्षिण में नियुक्त हो कर ३१ वें वर्ष में आदिल खाँ से भेंट वसूल करने के लिए यह बीजापुर गया। शाहजहाँ के ३१ वें वर्ष तक यह आठ सदी २०० सवार के मंसब तक पहुँचा था। इसके उपरांत जब सुलतान मुहम्मद औरंगजेब बहादुर दक्षिण से आगरे की ओर रवाना हुआ तब इसने साथ देने का साहस किया जिससे इसका मंसब डेढ़ हजारी २०० का हो गया और इसे मुखलिस खाँ की पदवी मिली। महाराज जसवंत सिंह की लड़ाई तथा दाराशिकोह के

प्रथम युद्ध में यह बादशाह के साथ था। मुलतान से लौटने पर यह आगरे भेजा गया और आज्ञानुसार उक्त प्रांत के सहायकों को शाहजादा मुहम्मद सुलतान के साथ कर दरबार चला आया। दाराशिकोह के द्वितीय युद्ध में आगरा प्रांत के सूबेदार शायस्ता खाँ को जब बादशाह के साथ लिवा ले गए तब उक्त प्रांत का शासन इसे सौंपा गया। २रे वर्ष आज्ञानुसार खानखानाँ के पास बंगाल जाकर वहाँ प्रयत्न करता रहा। ३रे वर्ष यह अकबर नगर का शासक नियत हुआ। ७वें वर्ष में बुलाए जाने पर यह सेवा में उपस्थित हुआ। ६वें वर्ष दो हजारी ३०० सवार का मंसब पाकर सुलतान मुहम्मद मुअज्जम के साथ पहिले राजधानी लाहौर गया और वहाँ से लौटने पर बालका दक्षिण में नियुक्त हुआ। इसके बाद का हाल नहीं ज्ञात हुआ।

मुख्तार खाँ कमरुद्दीन

यह शम्सुद्दीन मुख्तार खाँ का पुत्र था। औरंगजेब के राज्य के २१ वें वर्ष में इसे खाँ की पदवी मिली और उसके बाद करावलबेगी नियत हुआ। जब इसका पिता अहमदाबाद गुजरात प्रांत का शासक नियत हुआ तब यह उसके साथ वहाँ नियुक्त हुआ। पिता की मृत्यु पर यह दरबार में आया और इसे मुख्तार खाँ की पदवी मिली तथा घुड़साल का दारोगा नियत हुआ। २६ वें वर्ष में तरकस तथा धनुष पाकर यह होलनकी थाना भेजा गया, जो बीजापुर के महालों में से है और वहाँ से बीजापुर के घेरे पर नियत हुआ। ३१ वें वर्ष में बीजापुर के विजय पर जब बादशाही सेना शोलापुर लौटी तब १५ मुहर्रम सन् १०६८ हि० को शाह आलीजाह मुहम्मद आजमशाह के प्रथम पुत्र शाहजादा मुहम्मद बेदारबख्त के उक्त खाँ की पुत्री से विवाह का जशन हुआ और उस स्त्री की पदवी पोती बेगम हुई। ३३ वें वर्ष में उक्त खाँ मीर आतिश नियत हुआ। इसके अनंतर यह कंगीरी तथा राय बाग के उपद्रवियों को दंड देने पर नियत हुआ। ३७ वें वर्ष में यह फिर मीर आतिश नियत हुआ। ३८ वें वर्ष में फिदाई खाँ कोका के स्थान पर यह आगरे का सूबेदार नियुक्त हुआ। ४१ वें वर्ष के अंत में आगरे के शासन से हटाया जाकर यह मालवा प्रांत का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। ४५ वें वर्ष में यह

फिर आगरा प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। उक्त खाँ तीन हजारी मंसब तक पहुँचा था कि किसी दोष के कारण पाँच सदी घटा दी गई पर फिर वह कमी बहाल कर दी गई। ४६ वें वर्ष में विद्रोही राजाराम जाट के सिनसिनी ताल्लुका के विजय के उपलक्ष में पाँच सदी बढ़ने से इसका मंसब साढ़े तीन हजारी हो गया। यह दुर्ग २ रज्जब सन् १११७ हि० को दुबारा विजय हुआ था।

भाग्य के कर्मचारीगण जब बराबर सौभाग्यशालियों के कार्य में प्रयत्नशील रहा करते हैं तब बुरा चाहनेवाले घर फोड़ों का काम कैसे ठीक उतर सकता है। जिससे वह काम बिगाड़ना चाहता है उसी से भाग्यवानों का काम बन जाता है। बात यों है कि शाहजादा मुहम्मद आजमशाह घमंड तथा साहस के कारण अपने बड़े भाई शाहआलम बहादुरशाह को कुछ नहीं समझता था। जब शाहआलम के द्वितीय पुत्र मुहम्मद अजीम ने बंगाल तथा बिहार प्रांतों में दृढ़ होकर कोष और सेना इकट्ठी कर ली तब इसने उसे गिराने का प्रयत्न किया। औरंगजेब के राज्य के अंत में जब मुहम्मद आजम शाह अहमदाबाद से अहमद नगर आया, जहाँ बादशाह थे, तब मुहम्मद अजीम के बारे में इसने कुछ ऐसी बातें बादशाह से कहीं कि उसे बुलाने का फर्मान तथा गुर्जबरदार तुरंत नियत हुए। परंतु यह नहीं जानता था कि मुहम्मद अजीम का आना इसके लिए बड़ी बला बन जायगी। मुहम्मद अजीम शाहजादपुर के पास पहुँचा था कि औरंगजेब की मृत्यु का समाचार उसे मिला, जिससे वह सेना इकट्ठा करने, चारों ओर फौजदारों तथा आसपास के जागीरदारों

को मिलाने का प्रबंधकर बीस सहस्र सेना के साथ शीघ्र आगरे पहुँचा। वहाँ के शासक मुख्तार ख़ाँ को कैद कर उसका कुल सामान जब्त कर लिया। इस फुर्ती से आगरे पहुँचना, जो प्रांत के विस्तार तथा साम्राज्य की राजधानी होने से अकबर के समय से इस वंश के कोषों तथा रत्नों का आगार हो रहा था, बहादुर शाह के राज्य का प्रथम सोपान हो गया और साहस तथा दृढ़ता एक से सौ हो गई। मिसरा—

यदि खुदा चाहे तो शत्रु भलाई का कारण हो जाता है।

यह स्पष्ट है कि यदि अजीमुश्शान पटने ही में होता तो इतनी फुर्ती से वहाँ कैसे पहुँच सकता। विचित्रता यह है कि आजमशाह ने पिता की मृत्यु पर यह चाहा कि बेदारबख्त को जो मालवा से गुजरात चला गया था, लिखे कि मालवा तथा गुजरात की सेनाओं के साथ शीघ्र आगरे जाकर अपने श्वसुर मुख्तार ख़ाँ के साथ सेना एकत्र करने तथा युद्ध का सामान संग्रह करने में प्रयत्न करे। कहते हैं कि गुजरात का नया प्रांताध्यक्ष इब्राहीम ख़ाँ, जो अपने को आजमशाही समझता था, प्रतीक्षा करता रहा कि यदि आज्ञा आवे तो बेदारबख्त के साथ सेना सजाकर शीघ्र रवानः हो। आजम शाह के द्वितीय पुत्र वालाजाह ने पिता की इच्छा जानकर द्वेष के कारण कि कहीं उसका बड़ा भाई सेना व सामान में बढ़ न जाय पिता से दरबारियों तथा सम्मतिदाताओं को मिलाकर प्रार्थना की कि शाहजादे को इस प्रकार आगे भेजना सावधानी तथा दूरदर्शिता के अनुकूल नहीं है क्योंकि राज्यतृष्णा अहंकार वर्द्धक तथा मनुष्यों का आकर्षक है। यदि वह आगरे के कोषों पर अधिकार कर दो सूबेदारों की सहायता से उपद्रव कर

दे तो बड़ी कठिनाई होगी क्योंकि घर का शत्रु बाहरवालों से बढ़कर है। मुहम्मद आजमशाह के भाग्य में राज्य लिखा न था और दुर्भाग्य उस पर मँडरा रहा था इसलिए जिसमें उसने अपनी भलाई तथा लाभ समझा वही उसके नाश का कारण बन गया। इसने वह बात सुनकर तुरंत शाहजादे को लिखा कि इसके मालवा पहुँचने तक, जो दक्षिण के मार्ग में है, वह वहीं ठहरा रहे।

संक्षेपतः जब बहादुर शाह हिंदुस्तान का सम्राट् हुआ और उसकी दया सूर्य के समान पत्थर तथा मोती पर पड़ने लगी और उसकी उदारता तथा दान से सभी संतुष्ट किए गए तब मुख्तार खाँ का मंसब बढ़ाया गया और खानआलम बहादुरशाही की पदवी सहित इसे आगरे की सूबेदारी की बहाली के साथ खान-सामाँ की उच्च सेवा भी दी गई। यह अपने उन चाँदी व सोने के सामानों को, जो अजीमुश्शान की सरकार में जब्त हो चुका था, लौटाने में सफल भी हुआ। कहते हैं कि इसके सामान के लौटाने की आज्ञा होने के पहिले यह एक दिन जशन में सफेद कपड़े पहिरकर दरबार में उपस्थित हुआ। बहादुर शाह इतना उच्चाशय तथा बुद्धिमान होकर भी लुब्ध हो गया और खानखानाँ मुनइम खाँ से कहा कि हक मुख्तार खाँ की ओर है कि हमारे राज्य करने से क्यों प्रसन्नता हो। खानखानाँ ने इससे कहा कि जशन के समय ऐसे वस्त्र का क्या औचित्य है? इस पर मुख्तार खाँ ने अपनी असमर्थता बतलाई। खानखानाँ ने अपने यहाँ से धन व सामान उसके पास भेजा। मुख्तार खाँ पर कुछ खोजों के साथ

संबंध की शंका थी। नेअमत खाँ हाजी ने इस शैर में इस बात पर संकेत किया है—शैर का अर्थ—

मुख्तार खाँ के गृह में कोई मनुष्य बेकार नहीं है। जिस किसी को मैंने वहाँ देखा वह मुख्तार काम करनेवाला था॥

———

मुख्तार खाँ मीर शम्सुद्दीन

यह मुख्तार खाँ सब्जवारी का बड़ा पुत्र था। शाहजहाँ के २१ वें वर्ष में इसे कुल दक्षिण की बख्शीगिरी का पद मिला तथा इसका मंसब बढ़कर एक हजारी ४०० सवार का हो गया। २३वें वर्ष में यह दुर्ग आसीर का अध्यक्ष नियत हुआ, जो खानदेश प्रांत के दुर्गों में प्रधान था और कुल दक्षिण के प्रांतों में दृढ़ता तथा दुर्भेद्यता के लिए प्रसिद्ध था। २८ वें वर्ष में यह दक्षिण के तोपखाने का दारोगा बनाया गया। इस संबंध से इसने उक्त प्रांत के शासक शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब की सेवा में रहकर खानजादी को दृढ़ किया और वहाँ पहुँचकर उसकी इच्छा के अनुसार काम करके उसका कृपापात्र हो गया। गोलकुंडा की चढ़ाई में यह साथ था। यहाँ संधि होने पर उसी के अनुसार शाहजादे के प्रथम पुत्र सुलतान मुहम्मद से वहाँ के सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह की पुत्री से निकाह हुआ। मीर शम्सुद्दीन मुहम्मद ताहिर वजीर खाँ [1] के साथ दुर्ग के भीतर जाकर उस शीलवती को शाहजादे के पास लिवा लाया। इसके अनंतर ही स्यात् इसके मंसब में १०० सवार बढ़ाए गए। ३०वें वर्ष में हिसामुद्दीन के स्थान पर यह ऊदगिरि का अध्यक्ष नियत हुआ और पाँच सदी ३०० सवार बढ़ने से इसका मंसब डेढ़ हजारी ८०० सवार का हो गया। ३१वें वर्ष में

---

१. अन्य प्रति में पाठांतर मुहम्मद नादिर व जैन खाँ मिलता है।

जब गालिब खाँ आदिलशाही ने दुर्ग परेंदा, जो दक्षिण के दृढ़ दुर्गों में है, दे दिया तब बादशाही आज्ञानुसार मुख्तार खाँ उसका दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। जब वह भाग्यवान शाहजादा सन् १०६८ हि० में बुर्हानपुर से आगरे की ओर साम्राज्य लेने के लिए बढ़ा तब इसके साथ देने का निश्चय करने पर इसका मंसब पाँच सदी २०० सौ सवार बढ़ने से दो हजारी १००० सवार का हो गया और पिता की पदवी तथा झंडा मिलने से यह सम्मानित हुआ। सामूगढ़ के युद्ध तथा दाराशिकोह के पराजय के बाद यह नानदेर की फौजदारी पर भेजा गया।

जब औरंगजेब के २रे वर्ष में उस प्रांत का अध्यक्ष होकर शायस्ता खाँ शिवाजी का दमन करने के लिए औरंगाबाद से उसके राज्य की ओर चला तब उक्त योग्य खाँ को उस नगर का रक्षक नियत कर गया। इसके बाद यह जफराबाद का दुर्गाध्यक्ष तथा फौजदार नियत हुआ। १५वें वर्ष में होशदार खाँ के स्थान पर यह खानदेश का सूबेदार नियुक्त हुआ। इसके बाद यह मालवा का प्रांताध्यक्ष बनाया गया। २२ वें वर्ष में जब पहिली बार बादशाह अजमेर गए तब यह सेवा में उपस्थित हुआ और जब २५वें वर्ष में बादशाह अजमेर से बुर्हानपुर को चले तब उक्त खाँ अपने ताल्लुके की सीमा पर बादशाही सेवा में पहुँचा। बादशाह ने बड़ी कृपाकर इसे यशम के दस्ते का खंजर देकर सम्मानित किया, जो अच्छे तथा पुराने सेवकों को ही मिलते है। इसी वर्ष गुजरात का सूबेदार मुहम्मद अमीन खाँ मर गया और यह उसके स्थान पर नियत किया गया। दो वर्ष अच्छी प्रकार उस प्रांत में व्यतीत कर यह सन् १०९५ हि० (सन् १६८४ ई०)

में वहीं मर गया। उक्त खाँ बनी मुख्तार के कबीले का था। यद्यपि यह खानदान कुछ विशिष्ट गुण रखता था पर इनमें मुख्तार खाँ इनसे अलग था और अनेक गुणों के लिए प्रसिद्ध था।

मुख्तार खाँ सब्जवारी

इसका नाम सैयद मुहम्मद था और यह बनी मुख्तार सैयदों में से था, जो रसूल मुख्तार के वंश से थे। इन उच्चपदस्थ सैयदों का वंश अमीरुल्हज्ज अबुल्मुख्तार अल्नकीब तक पहुँचता है। मशहद की नकीबी तथा हज्ज की अमीरी बहुत दिनों तक इस वंश के बड़ों के हाथ में रही। एराक तथा खुरासान का नकीबुल् नकबा अमीर शम्सुद्दीन अली द्वितीय मिर्जा शाहरुख के राज्यकाल में नजफ अशरफ से खुरासान आकर सब्जवार नगर में बस गया इसके समान दूसरा ऐश्वर्य तथा खेल में एराक में कोई नहीं हुआ। अमीर शम्सुद्दीन अली प्रथम से इसका तीन प्रकार से संबंध था, जो शाह अब्बास के समय का अंतिम नकीब था। जब अमीर शम्सुद्दीन तृतीय का समय आया, जो इस वंश-परंपरा का अंतिम बड़ा आदमी था, तब सम्मान तथा ऐश्वर्य में यह खुरासान के सभी सर्दारों से बढ़ गया। सब्जवार का बहुत सा भाग क्रय कर इसने अपने अधिकार में कर लिया। जिस समय तूरान के शासक अब्दुल्ला खाँ उजबक ने हिरात तथा उसके अधीनस्थ प्रांत पर अधिकार कर लिया तब खुरासान के रईसों तथा निवासियों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली पर अमीर शम्सुद्दीन ने, जो सब्जवार में आ गया था, अधीनता नहीं मानी। अब्दुल्ला खाँ ने एक पत्र उसे इस शैर के साथ लिखा। शैर—

मित्रता का वृक्ष लगा कि मन वांछित फल उसमें लगे। शत्रुता के वृक्ष को खोद डालो क्योंकि वह असंख्य दुःख लाता है ॥

मीर ने कुछ भी संबंध न रखकर निर्भयता से उत्तर में लिखा। शैर—

शराबखाने के अतिथि के समान मस्तों से ससम्मान रहो।
कि प्रेमिका के चांचल्य की पीड़ा इस मस्ती में
कहीं खुमारी लावै ॥

इस साहस तथा उद्दंडता से ईरान के शाह तहमास्प सफवी की इस पर कृपा बढ़ गई। मीर को सुलतान की पदवी के साथ डंका व झंडा प्रदान कर वह कुल प्रांत स्वतंत्रता के साथ उसकी जागीर में नियत कर दिया। सैयद फाजिल मीर मुहम्मद कासिम नसायः भी इस वंश का अंतिम प्रसिद्ध पुरुष था। ऐसा ही मीर शरफुद्दीन भी इस वंश में हुआ, जो सुलतान हुसेन मिर्जा के राज्यकाल में, जब बलख की देहली प्रकट हुई जो हजरत अमीरुल् मोमिनीन से संबंध रखती थी तब उस मृत बादशाह के कष्ट के विचार से बलख आकर यहाँ का नकीबुल् नकबा नियत हुआ। इसके अनंतर जब उक्त बादशाह मर गया और अशांति मची तब यह वहाँ से गरीबी में हिंदुस्तान चला आया। इसकी संतान इसी देश में रह गई।

संक्षेप में जहाँगीर के समय उक्त सैयद महमूद को मुख्तार खाँ की पदवी और दो हजारी १२०० सवार का मंसब मिला। उक्त बादशाह के अंत समय में यह दिल्ली प्रांत का सूबेदार नियत हुआ। शाहजहाँ के राज्य के आरंभ में पटना प्रांत के अंतर्गत जिसकी सीमा बंगाल से मिली हुई है, मुँगेर सरकार की

जागीर इसे मिली। बहुत दिनों तक यह यहीं रहा। १० वें वर्ष में बिहार का प्रांताध्यक्ष अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग यहाँ के कुल सहायकों के साथ प्रताप उज्जैनिया को दमन करने चला, जो उस प्रांत के उपद्रवी जमींदारों में से एक था। मुख्तार खाँ सेना का हरावल चुना गया। उस देश की राजधानी भोजपुर के दुर्ग में वह उपद्रवी जा बैठा और छ महीने घेरे के पर उस पर अधिकार हो गया परंतु प्रताप अपनी हवेली को दृढ़ कर युद्ध करने लगा। उसका विचार था कि इस बीच बाहर निकल जाने का अवसर मिल जायगा। मुख्तार खाँ सेना का प्रबंधक था, इसलिए फाटक पर अपना मोर्चा बाँधकर उसने बहुत प्रयत्न किया। यहाँ तक कि एक दिन-रात्रि से अधिक नहीं बीता था कि वह साहस छोड़कर शरणार्थी हो बाहर निकल आया। इस कार्य के बाद प्रायः एक महीना बीता था कि उसी वर्ष सन् १०४५ हि० के आरंभ में एक अफगान ने, जो इसकी जागीर का प्रबंधकर्ता था, हिसाब जाँच करते समय इसपर तलवार चलाई। यद्यपि मुख्तार खाँ ने भी एक जमधर उसके सिर पर चलाया पर वह सफल नहीं हुआ। उपस्थित लोगों ने उस दुष्ट को मार डाला। मुख्तार खाँ भी उस चोट से मर गया। कहते हैं कि बकाया हिसाब को माँगने में कड़ाई कर इसने आमिलों से स्मृतिपत्र तैयार कराया और फिर महाल भी ले लेना चाहा। उसने बहुत प्रार्थना की पर दया न कर कैद और शिकंजे का दंड दिया। जब उठ कर भीतर जाने लगा तब रास्ता रोककर उसने यह चोट की। अजमेर में ख्वाजगी हाजी मुहम्मद की कब्र के पास घेरे की बाहरी दीवार के भीतर गाड़ा गया। इसके तीन पुत्र

शम्सुद्दीन खाँ मुख्तार खाँ,[१] दाराबखाँ[२] और जानसिपार खाँ[३]
का वृत्तांत अलग अलग दिया हुआ है।

---

१. इसी भाग का पृष्ठ ३६६-७१ देखिए।

२. मुगल दरबार भाग ३ पृष्ठ ४२५-७ देखिए।

३. मुगल दरबार भाग ३ पृ० २७६-८० देखिए।

मुगल खाँ

यह जैन खाँ कोका[1] का पुत्र था। जहाँगीर के समय एक हजारी ५०० सवार के मंसब तक पहुँचा था। शाहजहाँ के राज्य के आरंभ में यह राजधानी काबुल का दुर्गाध्यक्ष होकर वहाँ गया। जब ६वें वर्ष में बादशाह दौलताबाद में जाकर ठहरे और बादशाही सेनाएँ प्रसिद्ध सर्दारों के अधीन आदिलशाही राज्य में लूट मार करने तथा निजामशाही राज्य के बचे हुए दुर्गों को लेने के लिए नियत हुईं तब मुगल खाँ पाँच सदी ५०० सवार मंसब में तरक्की पाकर खानदौराँ नसरतजंग के साथ नियुक्त हुआ। इस वर्ष के अंत में सर्दार के साहस तथा वीरता से ऊदगिरि दुर्ग, जो बालाघाट के दृढ़ दुर्गों में से है और मुहम्मदाबाद बीदर प्रांत के अंतर्गत है, ८ जमादिउल् अव्वल सन् १०४६ हि० को तीन महीने कुछ दिन के घेरे के अनंतर बादशाही अधिकार में चला आया। मुगल खाँ को पाँच सदी ५०० सवार की तरक्की मिली और उस दृढ़ दुर्ग की रक्षा तथा प्रबंध पर नियत हुआ। यहाँ यह बहुत दिनों तक रह कर उदारता तथा वीरता के लिए प्रसिद्ध हुआ।

इन पंक्तियों के लेखक को शाहआलम बादशाह के जलूस के १५वें वर्ष ११८८ हि० में यह दुर्ग देखने में आया और इमारत

---

१. मुगल दरबार भाग ३ पृ० ३३७-४३ देखिए।

की एक दीवार पर, जो दुर्ग के भीतर थी, एक पत्थर लगा था जिस पर दुर्ग के विजय की तारीख तथा उसका मुगल खाँ के नाम होना खुदा हुआ था। स्यात् उक्त खाँ की आज्ञा से ऐसा हुआ था। इसके अनंतर दरबार जाने पर १८वें वर्ष में इसे ढाई हज़ारी २००० सवार का मंसब मिला। इसी समय जब खानदौराँ नसरतजंग दक्षिण का सूबेदार नियत होकर उधर गया तब मुगल खाँ भी डंका पाकर सूबेदार के साथ नियत हुआ। २५ वें वर्ष में ठट्ठा का सूबेदार नियत होने पर यह गुजरात के मार्ग से उस ओर चला। यह साहसी तथा प्रसन्नचित्त मनुष्य था। जो कुछ समय पर आ पड़ता था उसे पूरा करने में कोई कमी नहीं करता था। यह अच्छा नाम अर्जन करने में बराबर दत्तचित्त रहता।

आराम पसंद होने के कारण जब उक्त खाँ ऐसा न कर सका कि अपने को कंधार की चढ़ाई के लिए शाहज़ादा मुहम्मद दाराशिकोह की सेवा में पहुँचा सके तब इस कारण इसका तीन हज़ारी २००० सवार का मंसब तथा जागीर छिन गई। कुछ दिन इसने इसी प्रकार बिताया तथा कष्ट उठाया। अंत में ३० वें वर्ष में दाराशिकोह की प्रार्थना पर इसे पंद्रह सहस्र रुपए की वार्षिक वृत्ति मिल गई। इसकी मृत्यु की तारीख का पता नहीं लगा। कहते हैं कि शिकार का प्रेमी था तथा गाने बजाने का शौकीन था। गाने बजाने वाले वहुत से इसने इकट्ठा किए थे।

मुगल खाँ अरब शेख

यह बलख के ताहिर खाँ का पुत्र था। पिता के समय में अपनी योग्यता से तत्सामयिक बादशाह औरंगजेब का परिचय प्राप्त कर इसने अपना विश्वास बढ़ाया। ६ वें वर्ष में मुगल खाँ की पदवी इसे मिली। इसके बाद यह अर्ज मुकर्रर का दारोगा नियत हुआ। १३ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दो हजारी हो गया और मुलतफित खाँ के स्थान पर गुर्जबर्दारों का दारोगा बनाया गया। इसी वर्ष इसे मीर तुजुक का पद तथा सोने की छड़ी मिली। १५ वें वर्ष में यह कोशबेगी नियत हुआ। १६ वें वर्ष में किसी कारण से इसका मंसब और जागीर छिन गई। बाद में कम मंसब बहाल हुआ। २१ वें वर्ष में रूहुल्ला खाँ के स्थान पर यह आख्त:बेगी नियत हुआ। इसके बाद यह दक्षिण भेजा गया। जब बादशाह उदयपुर से लौटकर अजमेर में आकर रहे तब यह सेवा में उपस्थित होने पर मीर तुजुक नियत हुआ। इसके बाद साँभर तथा डीडवाणा के बलवाइयों को यह दंड देने गया। २६ वें वर्ष में जब दुर्जनसिंह हाड़ा ने बूंदी को घेर कर उस पर अधिकार कर लिया तब यह उसे दमन करने के लिए तैयार हुआ। इसके बूंदी पहुँचने पर दुर्जनसिंह ने दुर्ग का फाटक बंद कर लिया और इसने बड़े वेग के साथ उस पर आक्रमण किया। तीन पहर तक तीर तथा गोली बरसती रही। अंत में रात्रि के अंधकार में वह उपद्रवी असफल हो भाग निकला और

राव भावसिंह हाड़ा का पौत्र अनिरुद्धसिंह आज्ञानुसार अपनी सेना के साथ दुर्ग में गया, जो दरबार से छुट्टी पाकर साथ आया था। मुगल खाँ लौटकर दरबार में सेवा में उपस्थित हुआ और खिलअत पाकर प्रशंसित हुआ। २८ वें वर्ष में खानजमाँ के स्थान पर मालवा का सूबेदार नियत हुआ और जुल्फिकार नामक हाथी के साथ इसका मंसब बढ़कर साढ़े तीन हजारी ३००० सवार का हो गया। उसी वर्ष के अंत में सन् १०६६ हि० (सन् १६८५ ई०) में इसकी मृत्यु हो गई। इसका पुत्र पिता की पदवी पाकर बादशाही सेवा में दत्तचित्त रहा। औरंगजेब की मृत्यु के बाद बहुत दिनों तक इसने राजधानी में अकर्मण्यता में बिताया। लिखने के कुछ वर्ष पहिले इसकी मृत्यु हो गई। मर्यादा के विचार से यह खाली नहीं था। आसफजाह फतहजंग की स्त्री सैयदः बेगम की बहिन इसके घर में थी। जब कि वह सर्दार दक्षिण से दरबार आकर एक सर्दार हो गया तब भी इसने उससे मेल करना दूर आना जाना भी बंद कर दिया।

———

मुजफ्फर खाँ तुरबती

इसका नाम ख्वाजा मुजफ्फर अली था और यह बैराम खाँ का दीवान था। उपद्रव के समय जब बैराम खाँ बीकानेर से पंजाब की ओर चला तब वह मिर्जा अब्दुर्रहीम को, जो उस समय तीन वर्ष का था, परिवार तथा माल के साथ तरहिंद दुर्ग में, जो उसके पुराने तथा पालित सेवक शेर मुहम्मद दीवाना की जागीर में था, छोड़कर आगे बढ़ा। उस स्वामिद्रोही ने कुल माल हड़प लिया और खाँ के साथियों को अनेक प्रकार के कष्ट दिए। बैराम खाँ ने ख्वाजा को देपालपुर से उसे समझाने बुझाने के लिए भेजा पर उस कठोर अत्याचारी ने ख्वाजा को कैद कर दरबार भेज दिया। साम्राज्य के सर्दारों ने उसे मार डालने को बहुत कुछ कहा सुना पर अकबर ने दोषी पर कृपा करके तथा गुणग्राहकता से इसे क्षमा कर दिया। यह कुछ दिन पर्गना पुरसरूर की अमलदारी पर रहा। अपनी मितव्ययिता से यह बयूतात का दीवान नियत हुआ।

जब इसकी कर्मठता तथा अच्छी योग्यता को बादशाह ने समझ लिया तब इसे दीवानी का ऊँचा पद और मुजफ्फर खाँ की पदवी दी। ११ वें वर्ष में उक्त खाँ साम्राज्य के माली जमा को, जो बैराम खाँ के समय से आदमियों की अधिकता तथा देश की कमी से नाम की ओर बढ़ने से नई सम्मति के अनुसार वेतन दिया जाने लगा था, दफ्तर से निकालकर अपने विचार

तथा कानूनगोयों के कथन के अनुसार पश्चिमोत्तर प्रांत का अनुमान कर कर उगाहने के लिए दूसरे जमा (की प्रथा) चलाई। यद्यपि वास्तविक आय न हुई पर पहिले की जमा से यदि वर्तमान आय कम हो, ऐसा दूर नहीं है। अभी तक घोड़ों के दाग की प्रथा नहीं चली थी इसलिए अमीरों तथा शाही नौकरों के लिए मुजफ्फर खाँ ने संख्या निश्चित कर दिया कि हर एक कुछ आदमी रखा करें। अमीरों के यहाँ रहनेवाले सिपाहियों की तीन श्रेणियाँ बनाईं। प्रथम को प्रति वर्ष अड़तालीस सहस्र दाम, द्वितीय को बत्तीस सहस्र और तृतीय को चौबीस सहस्र। १२ वें वर्ष में बादशाह को ज्ञात हुआ कि मुजफ्फर खाँ ने सिधाई से कुतुब खाँ नामक इलाका अपने नाम कर लिया है। बादशाह को यह बुरा कार्य बहुत नापसंद आया इसलिए आज्ञा दी कि उसको मुजफ्फर खाँ से अलग कर रक्षा में रखें। मुजफ्फर खाँ ने अदूरदर्शिता से फकीरी पोशाक परिहकर जंगल की राह ली। बादशाह ने बड़ी कृपा तथा दया से, जो उसपर थी, उसकी फिर इच्छा पूरी कर दी। १३ वें वर्ष में एक दिन बादशाह के सामने चौपड़ का खेल हो रहा था। मुजफ्फर खाँ ने दुस्साहस करके कई खराब हरकतें कीं जिससे बादशाह ने अपने विश्वास से गिराकर इसे काबा बिदा कर दिया। बुद्धिमान बादशाह गण खेलों ही में मनुष्यों की प्रकृति की जाँच कर लिया करते हैं और खेल का बाजार गर्म रखकर चतुर मनुष्यों के भाव समझ लेते हैं। पार्श्ववर्ती दरबारियों के लिए उचित है कि खेल में भी स्वामिभक्ति की मर्यादा तथा नियम न छोड़ें। उच्चवंशस्थ इस जाति की कृपालु प्रकृति को वे सर्वोपरि समझें, जो अपना भला चाहें।

संक्षेपतः अकबर बादशाह ने इसकी अच्छी सेवाओं पर दृष्टि रखकर मार्ग ही में से इसे बुला लिया। जिस समय बादशाह सूरत दुर्ग घेरे हुए थे उसी समय यह सेवा में उपस्थित हुआ। १८ वें वर्ष में अहमदाबाद के पास से यह मालवा में सारंगपुर के शासन पर भेजा गया। उसी वर्ष सन् ९८१ हि० (सन् १५७४ ई०) में बुलाए जाने पर दरबार गया और इसे जुम्लतुल्मुल्क की पदवी के साथ वकील का पद दिया गया। सारे हिंदुस्तान के कुल कार्यों का प्रबंध इसके अधिकार में हो गया। इसपर भी इसने फिर बादशाह की मर्जी के विरुद्ध कुछ कार्य कर डाले जिससे यह पद से गिरा दिया गया। बादशाह के पटना से लौटने के समय जब एक सेना रोहतास विजय करने पर नियत हुई तब इसे बिना मुजरा किए ही सहायक बनाकर साथ बिदा कर दिया। उस प्रांत में ख्वाजा शम्सुद्दीन खवाफी के, जो साथ नियत था, साहस तथा सांत्वना दिलाने से इसने अच्छा कार्य किया और वहाँ के विद्रोहियों तथा उपद्रवियों को अच्छी तरह दंड देकर हाजीपुर को फिर खाली कराया, जिसपर अफगान अधिकृत हो गए थे। इस अच्छी सेवा के उपलक्ष में २० वें वर्ष में दरबार से चौसा उतार से गढ़ी तक के प्रांत का शासन इसे मिला।

कहते हैं कि हाजीपुर के विजय के अनंतर, जिसका हाल प्रसिद्ध हो चला था, समाचार आया कि गंडक नदी के उस पार विद्रोही अफगान इकट्ठा होकर बलवा करना चाहते हैं। मुजफ्फर खाँ ने उस झुंड को दमन करने का साहस कर उसके पास पड़ाव डाला और स्वयं कुछ आदमियों के साथ नदी की गहराई तथा

उतार का स्थान देखने के लिए निकला कि एकाएक उस ओर शत्रु के चालीस सवार दिखलाई पड़े। ख्वाजा शम्सुद्दीन तथा अरब बहादुर को संकेत किया कि आगे दूर बढ़कर नदी उतर इन असतर्क लोगों को दंड देवें। उन सबने भी यह पता पाकर सहायता मँगवाई पर ख्वाजा को देखते ही तुरंत भागने को तैयार हुए। मुजफ्फर खाँ जल्दीकर नदी उतर ख्वाजा से जा मिला पर उसी समय उनकी सहायता भी आ गई जिससे वे एक बार लौट पड़े। खाँ के साथ के थोड़े आदमी परास्त होकर नदी में जा पड़े और नष्ट हो गए। पास था कि मुजफ्फर खाँ भी उन्हीं लहरों में नष्ट हो जाय कि ख्वाजा शम्सुद्दीन इसके घोड़े की बाग पकड़कर पहाड़ की ओर चल दिया और एक तेज दौड़नेवाले को पड़ाव में भेजा कि स्यात् कोई सहायता को पहुँचे। ख्वाजा और अरब बहादुर ने तीरों से शत्रु की फुर्ती में बाधा डाली, जो पीछा नहीं छोड़ रहे थे, पर मुजफ्फर खाँ कष्ट में पड़ गया था।

सेना में मुजफ्फर खाँ के मारे जाने का समाचार फैल गया था और हर एक भागने की फिक्र में था कि इसी बीच वह शीघ्रगामी सहायता माँगने आ पहुँचा। खुदादाद बर्लास आदि तीन सौ सवारों के साथ नदी पार कर वहाँ जा पहुँचे। शत्रु की शक्ति भी बहुत प्रयत्न करने के कारण नष्ट हो चुकी थी अतः इन लोगों के आते आते साहस छोड़कर वे भाग निकले। मुजफ्फर खाँ मानों नया प्राण पाकर अब पीछा करने लगा। इसके दूसरे दिन उनके स्थान पर धावा कर बहुत लूट इकट्ठी की। २२ वें वर्ष में दरबार पहुँचकर यह साम्राज्य के काम में लग गया। राजा टोडरमल और ख्वाजा शाह मंसूर वजीर इससे

मिलकर साम्राज्य में माल तथा नीति के सभी कार्य करते रहे। जब बंगाल का सूबेदार खानजहाँ मर गया तब मुजफ्फर खाँ उस विस्तृत प्रांत का शासक नियत हुआ। २५वें वर्ष में ख्वाजा शाह मंसूर कड़ाई तथा मितव्ययता के विचार से पुराने बाकी धन को बिहार तथा बंगाल के अमीरों से वसूल करने का प्रयत्न करने लगा तब मासूम खाँ काबुली आदि बिहार के जागीरदारों ने इसी कारण विद्रोह कर दिया। मुजफ्फर खाँ, जिसमें सर्दारी तथा अमलदारी दोनों थी, बिहार के उपद्रव को सुनकर भी बंगाल में उस बेहिसाब बाकी को आदमियों की जागीर से वसूल करने लगा। तहसील करनेवाले गुमास्तों का काम कठिन हो गया। अमीर लोग इस कड़ाई के कारण इससे घृणा करने लगे। बाबा खाँ काकशाल ने बंगाल के अन्य जागीरदारों के साथ बलवा कर दिया और बराबर युद्ध करते हुए वे परास्त होते रहे। अंत में बहुत अधीनता तथा नम्रता उन सबने दिखलाई पर मुजफ्फर खाँ घमंड दिखलाता रहा यहाँ तक कि बिहार के विद्रोहियों ने भी पहुँच कर संख्या की अधिकता हो जाने से फिर से उपद्रव आरंभ कर दिया और मुजफ्फर खाँ का सामना करने के लिए आ डटे। प्रतिदिन युद्ध होता रहा और बादशाही सेना विजयी होती रही। अंत में निरुपाय होकर उन सब ने उड़ीसा में जाकर रहने का निश्चय किया। इसी समय बादशाही सेना में से कुछ स्वामिद्रोही उपद्रवी अलग हो कर उनसे जा मिले, जिससे मुजफ्फर खाँ का कुल उपाय बिगड़ गया। यद्यपि इनसे बहुत कहा गया कि इस बाकी हिसाब का रुपया उनसे न माँगा जायगा क्योंकि वह उसी का उठाया हुआ है

पर उन्होंने निराश होने के कारण कुछ नहीं सुना। जब अधिकारी का हृदय स्थानच्युत हो जाता है तब कार्यकर्ता गण का क्या कहा जाय। आदमियों ने अलग होना आरंभ किया और विचित्र यह कि शत्रु साहस छोड़ चुके थे कि मुजफ्फर खाँ से किस प्रकार युद्ध किया जाय कि एकाएक सेनापति खाँ नश्वर जीवन को वीरता से देने के विचार को छोड़कर दुर्ग टाँडा में जा बैठा। शत्रु ने साहस पकड़ कर जान छोड़ने तथा हज्ज को जाने के लिए मार्ग देने का इस शर्त पर संदेश भेजा कि तिहाई हिस्सा माल का दे दें। इसी बीच मिर्जा शरफुद्दीन हुसेन ने कैद से भागकर मुजफ्फर खाँ की घबड़हट की सूचना शत्रुओं को दी जिससे वे और भी उत्साहित हो दुर्ग के नीचे आ पहुँचे। अपने सेवकों के साथ प्राण देने को तैयार मुजफ्फर खाँ को कैदकर उसी वर्ष सन् ९८८ हि० के रबीउल्अव्वल महीने में मार डाला। मियाँ रफीक के कटरा के पास आगरा की जामः मस्जिद को मुजफ्फर खाँ ने बनवाया था।

सैयद मुजफ्फर खाँ बारहा व सैयद लश्कर खाँ बारहा

ये दोनों शाहजहाँ के समय के सैयद खानजहाँ के पुत्र थे। पिता की मृत्यु के समय ये दोनों सैयद शेरजमाँ और सैयद मुनौवर छोटे वय के थे। बड़ा भाई सैयद मंसूर शंका से साहस छोड़कर बादशाही दरबार से भाग गया। शाहजहाँ ने विशेष कृपा दृष्टि से, जो मृत खाँ पर थी, इन दोनों अल्पवयस्कों के पालन करने के विचार से प्रत्येक को एक हजारी २५० सवारों का मंसब प्रदान किया और हर प्रकार के दरबारी कार्य के मुत्सद्दी नियत कर दिए। २० वें में जब बादशाह लाहौर से काबुल की ओर रवानः हुए तब ये दोनों युवक सैयद खानजहाँ के दामाद सैयद अली के साथ राजधानी (लाहौर) के दुर्ग के अध्यक्ष नियत हुए। लौटने पर आगरे जाते हुए भी उक्त पद पर ये दोनों बहाल रहे। २२ वें वर्ष में जब फिर बादशाह काबुल की ओर चले तब ये दोनों लाहौर नगर के अध्यक्ष पुनः नियत किए गए।

जब इन दोनों को कुछ योग्यता और अनुभव हो गया तब शाही आज्ञा से वे उन्नति के मार्ग पर शीघ्रता से बढ़ने को प्रोत्साहित किए गए। ३० वें वर्ष में जब बादशाह ने एक सेना मीरजुमला के सेनापतित्व में दक्षिण के सूबेदार शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ बीजापुर पर भेजा तब सैयद शेरजमाँ

भी उस सेना में नियत हुआ। अभी इस चढ़ाई का कार्य पूरा नहीं हुआ था कि दाराशिकोह ने शाहजहाँ को बहकाकर सहायक सेना को लौट आने की आज्ञा भेज दी। बहुत से सर्दारों तथा मंसबदारों ने शाहजादे से बिना पूछे सामान बाँधकर हिंदुस्तान का मार्ग लिया पर थोड़े लोग भलमनसाहत तथा सौभाग्य से शाहजादे की सेवा में रहने की दृढ़ इच्छा से दरबार नहीं गए। शेरजमाँ भी इन्हीं में से एक था। उसी समय के आसपास जब शाहजादे ने साम्राज्य पर अधिकार करने के विचार से तैयारी की और नर्मदा नदी पार किया तब यह मंसब के बढ़ने और मुजफ्फर खाँ की पदवी पाने से, जिस नाम से इसका पिता पहिले प्रसिद्ध था, सम्मानित हुआ। भयानक युद्धों में हरावली में रहकर यह दृढ़ राजभक्तों का अग्रणी बन गया। शाह शुजाअ के युद्ध के अनंतर का, जो खाजवा युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है, इसका कुछ वृत्तांत हमें नहीं मिला। इसका नाम न जीवित लोगों की सूची में और न नीचे लिखे विवरण में आया है।

सैयद मुनौवर, जो बादशाह की सेवा में था, दाराशिकोह के साथ के युद्ध में उसके बाएँ भाग की सेना में नियत था, जहाँ सभी सैयद लोग और जिलौ के आदमी नियुक्त थे। औरंगजेब के राज्य में खाँ की पदवी पाकर दक्षिण में नियत हुआ और राजा जयसिंह के साथ, जिसने शिवाजी के कार्य में और बीजापुर प्रांत के लूटने में प्रयत्न किया था, इसने भी शत्रुओं पर आक्रमण कर वीरता तथा दृढ़ता दिखलाई। इसके बाद दरबार पहुँचकर १० वें वर्ष में शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम के अधीनस्थों में नियत हुआ, जो दक्षिण का नाजिम बनाया गया था। इसके

अनंतर १२ वें वर्ष में दरबार आने पर ग्वालिअर का फौजदार नियुक्त हुआ। २१ वें वर्ष में शुभकरण बुंदेला के स्थान पर राठ महोबा और जलालपुर खँडोसा का फौजदार हुआ। कुछ दिन यह आगरे का सूबेदार रहा पर वहाँ चोरी डाँके के कारण अशांति फैलने की शंका से यह वहाँ से हटा दिया गया। कुछ समय तक बुढ़ानपुर की रक्षा पर नियत रहा। ३२ वें वर्ष में सैयद अब्दुल्ला खाँ बारहा के स्थान पर यह बीजापुर का अध्यक्ष बनाया गया। इसके पुत्र वजीहुद्दीन खाँ को वहीं के राजदुर्ग[1] की अध्यक्षता मिली। दैवयोग से रामराजा के कुछ सर्दारगण, जिन्हें सैयद अब्दुल्ला खाँ ने अपनी सूबेदारी के समय में शीघ्रता कर पकड़ लिया था और शाही आज्ञा से राजदुर्ग में कैद कर दिया था, जैसे हिंदूराव, भेरजी तथा कई अन्य एक रात्रि में ऐसे कैदखाने से भाग गए। इस पर उक्त खाँ अपने पुत्र के साथ मंसब की कमी होने से दंडित हुआ। इसके बाद यह जिंजी दुर्ग की चढ़ाई पर नियत हुआ। यद्यपि नाम व पद के अनुसार इसके पास सामान आदि न थे, सदा ऋण ग्रस्त रहता और इस पर सरकारी सहायता चढ़ी रहती थी पर तब भी यह बुद्धि या समझदारी से खाली न था। एक दिन, जब शाहजादा मुहम्मद कामबख्श तथा जुमलतुल्मुल्क असद खाँ जिंजी के पास पहुँचे

---

१. यहाँ अर्क किला शब्द दिया हुआ है, जिसका अर्थ राजाओं या बादशाहों के उस दुर्ग रूपी महल से है, जिसमें उनका निवासस्थान रहता है। यह बड़े दुर्ग के भीतर या राजधानी में होता है। अनुवाद में इसका राजदुर्ग नाम दिया गया है।

और जुल्फिकार खाँ नसरतजंग ने, जो पहिले से घेरा डाले हुए था, स्वागत की प्रथा पूरी की, तब शाहज़ादा दरबार में बैठा और उसने जुम्लतुल्मुल्क, नसरतजंग तथा सरफराज खाँ दक्खिनी को बैठने की आज्ञा दी। उक्त खाँ, जो नसरतजंग से बराबरी का दावा रखता था और यह कार्य उसका विरोधी था, इस कारण दुःखी होकर दरबार से बाहर निकल आया और फिर न गया। उसकी मृत्यु का समय नहीं ज्ञात हुआ।

मुजफ्फर खाँ मीर अब्दुर्रजाक मामूरी

यह मामूराबाद के शुद्ध वंश के सैयदों में से था, जो नजफ अशरफ में एक मौजा है। इसके पूर्वज हिंदुस्तान आए। मीर बुद्धिमानी तथा योग्यता में अपने समय का एक था। अकबर के राज्यकाल में कुछ दिन सेवा करने के अनंतर यह बंगाल की सेना का बख्शी नियत हुए। जब वहाँ के प्रांताध्यक्ष राजा मानसिंह कछवाहा शाहजादा सुलतान सलीम के साथ राणा सीसोदिया की चढ़ाई पर नियत हुए और उस प्रांत का कार्य अदूरदर्शिता से अपने अल्पवयस्क पौत्रों पर छोड़ गए तब ४५ वें वर्ष में वहाँ के उपद्रवियों ने कतलू लोहानी के पुत्र को, जो वहाँ के सर्दारों में से एक था, अग्रणी बनाकर बलवा कर दिया। राजा के आदमियों ने कई बार युद्ध किया पर परास्त हो गए। मीर इसी बीच कैद हो गया। इसी समय दैवयोग से शाहजादा भी विद्रोही हो इलाहाबाद में जा बैठा। राजा मानसिंह बंगाल जाने की छुट्टी पाकर बलवाइयों को दंड देने गया। शेरपुर के पास युद्ध हुआ और शत्रु परास्त हो गया। इसी युद्ध में मीर हथकड़ी बेड़ी से जकड़ा हुआ मिला। उसे उसी हालत में हाथी पर रख छोड़ा था और एक मनुष्य को नियत कर रखा था कि पराजय होने पर उसे मार डालें। उस मारकाट में संयोग से वह मनुष्य गोली लगने से मर गया और मीर मृत्यु से बच गया। इसके अनंतर दरबार पहुँचने पर यह बादशाह का कृपापात्र हुआ।

मीर पहिले उक्त शाहजादे के साथ नियत होने पर बिना छुट्टी पाए दरबार चला आया था और बादशाही कृपा से बंगाल की बख्शीगिरी इसे मिली थी इस कारण मीर के प्रति शाहजादे में मनोमालिन्य बना हुआ था। राजगद्दी होने पर सेवकों पर कृपा रखने के कारण इसके दोष क्षमा कर पुराने मंसब पर बहाल कर दिया। इसे मुजफ्फर खाँ की पदवी देकर ख्वाजाजहाँ के साथ द्वितीय बख्शी का कार्य सौंपा। इस कार्य में मीर ने अपनी भलाई तथा बड़प्पन के लिए ख्याति प्राप्त की।

जब मिर्जा गाजी बेग तर्खान की मृत्यु पर ठट्टा प्रांत बादशाही अधिकार में चला आया तब मिर्जा रुस्तम सफवी वहाँ का अध्यक्ष नियत हुआ और मुजफ्फर खाँ उस प्रांत की आय की जाँच के लिए भेजा गया। अपनी योग्यता तथा अनुभव से पहिले की तथा वर्तमान की आय को जाँच कर मिर्जा तथा उसके साथियों के वेतन की जागीर निश्चित कर यह लौट आया। जहाँगीर के राज्यकाल के अंत में यह मालवा का सूबेदार हुआ। जहाँगीर की मृत्यु पर जब शाहजहाँ दक्षिण के सूबेदार खानजहाँ लोदी के दुर्व्यवहार तथा उद्दंडता के कारण जुनेर से अहमदाबाद के मार्ग से राजधानी चला तब यह सुनाई देने लगा कि शाहजहाँ गुजरात से मांडू पर आ रहा है क्योंकि खानजहाँ का कोष तथा उसकी अधिकतर स्त्रियाँ यहीं थीं। खानजहाँ ने अपने पुत्रों को सिकंदर दोतानी के साथ बुर्हानपुर में छोड़कर तथा बादशाही सेना के कुछ नौकरों के साथ मांडू आकर मुजफ्फर खाँ से मालवा ले लिया। जब शाहजहाँ हिंदुस्तान

की गद्दी पर बैठा तब मुजफ्फर खाँ के स्थान पर महाबत खाँ का पुत्र खानजमाँ वहाँ का अध्यक्ष नियत हुआ। इस पर बादशाही कृपा नहीं हुई। यह एकांत में रहते हुए बहुत दिनों पर समय आने पर मर गया।

मुजफ्फरजंग कोकलताश खानजहाँ बहादुर

इसका नाम मीर मलिक हुसेन था। इसका पिता मीर अबुल् मआली खवाफी एक सैयद था, जो बुद्धिमानी तथा आचार के लिए प्रसिद्ध था और फकीरी चाल पर दिन व्यतीत करता था। जब इसकी विवाहिता स्त्री शाहजहाँ महम्मद औरंगजेब बहादुर को दूध पिलाने की सेवा पर नियत हुई तब इसके पुत्रों मीर मुजफ्फर हुसेन तथा मीर मलिक हुसेन को योग्य मंसब मिला और वे साम्राज्य के सरदार हो गए। मुजफ्फर हुसेन का पालन पोषण शाहजहाँ बादशाह के यहाँ हुआ था, इस कारण उसके वृत्तांत से प्रकाश प्रगट होता है। मलिक हुसेन छोटी अवस्था से शाहजादे की सेवा में पालित हुआ और इससे उसका विश्वास बढ़ गया। २७वें वर्ष में शाहजादे की सेवा से दुखी होकर यह अलग हट गया और बादशाही सेवा करने की इच्छा से दक्षिण से दरबार चला आया। शाहजहाँ ने इसको सात सदी ७०० सवार का मंसब देकर सम्मानित किया। शाहजादे को इसकी मित्रता को तोड़ना पसंद न था इसलिए ३०वें वर्ष में अपने पिता से प्रार्थना की कि मलिक हुसेन को होशंगाबाद (हँड़िया) की फौजदारी दी जाय जिस बहाने से इसको दक्षिण की ओर बुलाकर अपनी कृपा से आकर्षित करे। ३१वें वर्ष में जब शाहजादे ने दुर्ग बीदर को विजय करने के अनंतर कल्याण दुर्ग पर अधिकार करने का विचार किया तब मलिक हुसेन को नीलतकः दुर्ग लेने

को नियत किया। दुर्ग के पास पहुँचने पर वहाँ वालों के बहुत प्रयत्न करने तथा रोकने पर भी इसने खड़ी सवारी धावा कर गढ़ पर अधिकार कर लिया तथा वहाँ के रक्षकों को कुल घोड़ों तथा शस्त्रों के साथ कैद कर शाहजादे के पास भेज दिया। जिस समय साम्राज्य के लिए लड़ने को शाहजादा बुर्हानपुर से आगरे की ओर रवाना हुआ उस समय मलिक हुसेन को बहादुर खाँ की पदवी मिली। इसकी वीरता तथा साहस को शाहजादा अच्छी प्रकार जानता था, इसलिए महाराज जसवंत सिंह के युद्ध में यह अग्गल की सेना के अग्रणियों में नियत हुआ। दारा शिकोह की लड़ाई में यह बाएँ भाग का सरदार नियत हुआ। युद्ध के उत्साह के कारण यह आगे बढ़कर हरावल के पास जा पहुँचा। एकाएक रुस्तम खाँ दक्षिणी बाएँ भाग की कुल सेना के साथ इसका सामना कर युद्ध करने लगा। मलिक हुसेन बड़ी वीरता तथा युद्ध कौशल दिखलाकर घायल होगया। इस विजय के अनंतर जब औरंगजेब आगरे से दिल्ली की ओर रवाना हुआ तब इसका मनसब बढ़ाकर एक हजारी ५०० सवार का कर दिया और दारा शिकोह का पीछा करने पर नियत किया, जो युद्ध की तैयारी करने के विचार से लाहौर चला गया था। उक्त खाँ ने सतर्कता तथा कौशल से सतलज पार कर लिया जिसे शत्रु बड़ी दृढ़ता से रोके हुए था तथा जिसे पार करना सुगम न था और बड़ी फुर्ती तथा साहस से उन असवधानों पर आक्रमण कर दिया, जिससे वे साहस छोड़कर भाग गए। दाराशिकोह लाहौर में ठहरने का साहस न कर भक्खर की ओर चला गया। वीर खाँ खलीलुल्ला खाँ के साथ मुलतान तक उसका पीछा करता हुआ

चला गया। खजवा युद्ध में जो शुजाअ के साथ हुआ था, बहादुर खाँ को बादशाही मध्य सेना की सरदारी मिली थी, जहाँ इसने अच्छी बहादुरी दिखलाई। जब दारा शिकोह दूसरी बार अजमेर में युद्ध का सामान कर गुजरात की ओर भागा तब बहादुर खाँ ने राजा जयसिंह के साथ उस भगोड़े का पीछा करने में बड़ी फुर्ती दिखलाई। जब दारा शिकोह ने कच्छ देश की ओर जाने के विचार से भक्खर का मार्ग पकड़ा और सिंधु नदी पार कर घावर के जमींदार मलिक जीवन के पास रवाना हुआ, जिससे इसका पुराना परिचय था। वहाँ कुछ दिन सुस्ताकर कंधार जाने के विचार से जब वह बाहर निकला, तब उस मित्र-द्रोही जमींदार ने दारा को पकड़ लेने ही में अपनी भलाई समझकर मार्ग में उसे कैद कर लिया। उसने यह समाचार बहादुर खाँ को लिख भेजा और यह भी फुर्ती से उस सीमा पर पहुँच गया। दारा को अपने अधिकार में लेकर राजा जयसिंह के साथ भक्खर होता हुआ फुर्ती से दरबार की ओर रवाना हो गया। १६ जी हिज्जा को दूसरे वर्ष दिल्ली पहुँचकर यह सेवा में उपस्थित हुआ। उस दिन दाराशिकोह को उसके पुत्र सिपहर शिकोह के साथ खुले सिर एक हथिनी पर बैठाकर दिल्ली के पुराने शहर तथा बाजार में घुमाकर खिजराबाद के दृढ़ स्थान में सुरक्षित रखा। दूसरे दिन २१ जी हिज्जा सन् १०६६ हि० को उसे मार कर हुमायूँ के मकबरे में गाड़ दिया। उक्त खाँ को एक सौ घोड़े दिए गए, क्योंकि इन अनेक धावों में उसके बहुत से घोड़े नष्ट हो गए थे। इसके अनंतर बहादुर बछगोतों के दमन करने पर यह नियत हुआ, जिसने बैसवाड़े में उपद्रव मचा रखा था। इस कार्य के

करने के अनंतर इसको खानदौराँ के स्थान पर इलाहाबाद की सूबेदारी का फर्मान तथा पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब मिला और यह बहुत दिनों तक उस प्रांत की सूबेदारी करता रहा। १० वें वर्ष यह महाबत ख़ाँ के स्थान पर गुजरात का सूबेदार नियत हुआ और इलाहाबाद से उस ओर जाकर बहुत दिनों तक वहाँ का प्रबंध करता रहा। १६ वें वर्ष इसका मंसब बढ़ कर छ हजारी ६००० सवार दो अस्पा सेह अस्पा का होगया और इसे खानजहाँ बहादुर की पदवी देकर शाहजादा मुहम्मद आजम के वकीलों के स्थान पर दक्षिण की सूबेदारी पर नियत किया। इसके पास अच्छा खिलअत और जड़ाऊ जमधर गुर्ज बर्दारों के हाथ भेजा गया और आज्ञा भेजी गई कि उसे माही मरातिब रखने का स्वत्व भी दिया जाता है, इस लिए वह स्वयं बनवा ले। काम करने के उत्साह में इसने उसी वर्ष साठ कोस का धावा मार कर शिवाजी भोसला को गहरी हार दी और बहुत लूट बटोरा, जिसने उस समय बड़ी लूट मार करते हुए दक्षिण के निवासियों का प्राण संकट में डाल रखा था। इसके अनंतर शिवाजी के उपद्रव को बराबर आक्रमण करके शान्त रखते हुए दक्षिण प्रांत के अन्यान्य विद्रोहियों को भी दंड देने में बहुत प्रयत्न किया और बीजापुर तथा हैदराबाद के शासकों से भेंट उगाह कर यह बराबर दरबार भेजता रहा। गुणग्राही बादशाह ने इस युद्ध विद्या के अग्रणी के स्वतः किए हुए कार्यों के उपलक्ष में १८ वें वर्ष सन् १०८६ हि० में खानजहाँ बहादुर जफर जंग कोकलताश की पदवी दी और मनसब बढ़ा कर सात हजारी ७००० सवार का कर दिया तथा पुरस्कार में एक

करोड़ दाम देकर सम्मानित किया। २० वें वर्ष सन् १०८८ हि० में नल दुर्ग को, जो बीजापुर प्रांत के बड़े दुर्गों में से था, दाऊद खाँ पन्नी के हाथ से, जो चार वर्ष का था, साधारण युद्ध करके शाही अधिकार में ले लिया। इस दुर्ग के मोर्चों के युद्धों में इसका पुत्र महम्मद मुहसिन काम आया। उच्च पदस्थता तथा सरदारी स्वच्छंदता तथा उच्छृंखलता आती है और नायकत्व तथा सफलता से घमंड और अहंकार पैदा होता है। वह कार्योन्मत्तता से पुरानी सेवा को काट देता है। खानजहाँ कुछ दोषों के सिद्ध होने के कारण दरबार बुला लिया गया और पद, पदवी, मनसब तथा संपत्ति सब जब्त हो गई। इसकी सरदारी की धाक चारों ओर बैठ गई थी और इसकी प्रसिद्धि पास और दूर फैल चुकी थी तथा इसकी पुरानी सेवाएँ तथा स्वामिभक्ति भी काफी थी, इसलिए कुछ दिन बाद २१ वें वर्ष में पहिले की तरह मंसब, पदवी तथा पद सब मिल गए। जब २२ वें वर्ष में महाराज यशवंत सिंह स्वर्ग लोक सिधारे और उन्हें कोई पुत्र या उत्तराधिकारी न था इसलिए उनके राज्य को जब्त करने के लिए खानजहाँ नियत हुआ और बादशाह सैर करने के लिए अजमेर की ओर रवाना हुए। खानजहाँ फुर्ती से उस प्रांत की राजधानी जोधपुर के मंदिरों को तोड़ने के लिए वहाँ पहुँचा और कई बोझ ऊँट मूर्तियाँ, जिनमें प्रायः सोने और चांदी पर जड़ाऊ की हुई थीं, लेकर बादशाह के लौट जाने के बाद दिल्ली लाया और बादशाह की आज्ञा के अनुसार दरबार के आगे सीढ़ियों के नीचे डाल दिया, जहाँ बहुत समय तक पैरों के नीचे कुचली जाने के कारण उनका नाम निशान नहीं बच गया।

परंतु उस प्रांत का प्रबंध जैसा चाहिए था वैसा न हो सका। राजपूतों के उपद्रव तथा राणा के विद्रोह के बढ़ने से बादशाह को स्वयं वहाँ जाना पड़ा। खानजहाँ २३ वें वर्ष सन् १०६१ हि० में महाराणा के चित्तौड़ दुर्ग के पास से शाहजादा महम्मद मुअज्जम के स्थान पर दक्षिण का सूबेदार नियत किया जाकर वहाँ भेजा गया। इसने ठीक वर्षाकाल में साल्हेर दुर्ग घेरने का साहस किया, जो बगलाना के बड़े दुर्गों में से है और जिस पर शत्रु ने अधिकार कर लिया था। यह बहुत प्रयत्न कर तथा हानि उठाकर असफल हो औरंगाबाद लौट आया। मीर मुहम्मद खाँ लाहौरी मंसबदारी के सिलसिले में इसके साथ था, जिसने मसनवी मानवी की टीका लिखी थी। इस चढ़ाई का वृत्तांत पद्य में कहकर वह उत्साह के आधिक्य में कहता है—मिसरा—

हुआ गाव बेचारः गावे जमीन।

संक्षेप में इसी वर्ष सन् १०६१ हि० के मुहर्रम महीने में सवाई संभा जी ने पैंतीस कोस का धावा कर बहादुरपुर पर आक्रमण किया और उसे नष्ट कर दिया, जो बुर्हानपुर से दो कोस पर एक बड़ी बस्ती थी। बुर्हानपुर के सूबेदार खानजहाँ का प्रतिनिधि काकिर खाँ कुछ सेना के साथ शहर में घिर गया। उस उपद्रवी ने नगर के चारो ओर के बड़े बड़े पुरों को मनमाना जलाकर नष्ट कर दिया और इस घटना में बहुत से भले आदमियों की अप्रतिष्ठा हुई। कुछ लज्जा से अपनी स्त्रियों को मारकर स्वयं मारे गए। खानजहाँ यह समाचार पाकर औरंगाबाद से धावा कर एक दिन रात में फर्दापुर घाटी में पहुँचा, जो बत्तीस कोस पर है और वहाँ घाटी पार करने के लिए चार पहर ठहर

गया। लोग कहते थे कि शंभाजी के वकील के आने तथा बहुत धन देने का वचन देने के कारण यह असमय की देर हो गई, जिससे शंभाजी जो कुछ लूट उठा सका उसे तथा बहुत से कैदियों को साथ लेकर चोपरा के मार्ग से साल्हेर दुर्ग को चल दिया। खानजहाँ को चाहता था कि उसी मार्ग से उसका पीछा करे पर ठीक मार्ग पकड़कर वह बुर्हानपुर पहुँचा। इस सुस्ती के कारण जनता में इसकी बदनामी हुई और बादशाह का भी मन फिर से बिगड़ गया, जिससे भर्त्सना पूर्ण आज्ञापत्र आया। इसी वर्ष इसके लिए मनसब में जो उन्नति दरबार से निश्चित हुई थी, अस्वीकार कर दी गई। दैवयोग से उसी समय २४ वें वर्ष में शाहज़ादा महम्मद अकबर भाग कर दक्षिण की ओर आया। सभी राजकर्मचारियों को आज्ञा भेजी गई कि अकबर जिस ओर जाय उसका मार्ग रोककर यथासंभव उसे जीवित कैदकर पकड़ लें और नहीं तो मार डालें। जब अकबर सुलतानपुर के पहाड़ों के पास पहुँचा तब खानजहाँ उसे पकड़ने की इच्छा से बड़ी फुर्ती से पास पहुँच गया पर फिर रुक गया, जिससे अकबर बगलाना के पार्वत्य स्थान को पार कर भीलों तथा कोलियों की सहायता से राहिरी पहुँच गया और कुछ दिन शंभा जी के शरण में रहा। यद्यपि समाचार लेखकों ने यह बात दरबार को नहीं लिखी पर थानेसर के फौजदार मीर नूरुल्ला ने जो मीर असदुल्ला का पुत्र तथा निर्भीक मनुष्य था, अपनी खानाजादी तथा विश्वस्तता के भरोसे कुल बातें विस्तार से लिख भेजीं, जिससे बादशाह इसकी ओर से अधिक फिर गया और खानजहाँ की चालाकी तथा द्रोह सब पर प्रगट हो गया।

शम्भा जी को दमन करना और अकबर को दंड देना दोनों ही बादशाह के लिए आवश्यक था, इसलिए २५ वें वर्ष में औरंगजेब स्वयं दक्षिण में पहुँच गया। गुलशनाबाद के अंतर्गत रामसेज दुर्ग को, जो शंभा जी के अधिकार में था, लेने को खानजहाँ भेजा गया, पर अनुभवी मरहठा दुर्गाध्यक्ष की सतर्कता तथा दूरदर्शिता के आगे इसकी कुछ न चली। निरुपाय होकर दुर्ग के नीचे से यह हट गया और यात्रा के दिन मोर्चों के सामान लकड़ी आदि को, जिनपर बहुत धन व्यय किया गया था, जलवा दिया। दुर्ग वाले शेखी से चारों ओर बुर्जों पर निकल आए और नगाड़ा डंका पीटते हुए न कहनेवाली बातें कहते रहे। जब यह औरंगाबाद से तीन कोस पर पहुँचा तब दरबार से खिलअत भेजकर इसे प्रसन्न करते हुए इसको आज्ञा मिली कि सेवा में उपस्थित न होकर यह बीदर में जाकर ठहरे और जिधर अकबर के जाने का पता लगे वहीं उसका पीछा करे। जब इसी समय अकबर शंभा जी के राज्य के बाहर निकलकर जहाज पर चढ़ ईरान की ओर चला गया तब खानजहाँ उपद्रवियों को दंड देने का साहस कर २७ वें वर्ष में तीस कोस का धावाकर उन विद्रोहियों पर जा पड़ा, जो कृष्णा नदी के किनारे उपद्रव करने के विचार से एकत्र हुए थे और उन्हें अस्त व्यस्त कर दिया। बहुत से काफिर मारे गए और उनका सामान तथा स्त्रियाँ लूट ली गईं। इसके उपलक्ष में प्रशंसा का पत्र दरबार से भेजा गया और इसके पुत्रों मुजफ्फर खाँ को हिम्मत खाँ की, नसीरी खाँ को सिपहदार खाँ की, महम्मद समीअ को नसीरी खाँ की तथा इसके भतीजे और दामाद जमालुद्दीन खाँ को सफदर खाँ की पदवियाँ मिलीं।

जब शाहजादा महम्मद आजम शाह बीजापुर का घेरा डाले हुए था तब इसको थाना पेंदीं में ठहरकर शाहजादा की सेना को रसद पहुँचाने में सहायता देने की आज्ञा हुई। वहाँ से २८ वें वर्ष के अंत में शाहजादा महम्मद मुअज्जम के साथ नियत होकर, जो हैदराबाद के अबुल्हसन को दंड देने पर भेजा जा रहा था, यह दस सहस्र सवार सेना लेकर शाहजादे का अग्गल हुआ। सेनापति खलीलुल्ला खाँ और हुसेनी बेग अलीमर्दान खाँ के साथ, जो तीस सहस्र सवार सेना के सहित बादशाही सेना का सामना करने को डटे हुए थे, घोर युद्ध किया। एक दिन प्रातःकाल से युद्ध आरंभ होकर तीन पहर तक खूब लड़ाई होती रही। तीरों और गोलियों से युद्ध करते हुए बहादुर लोग हाथों तथा छूरों की लड़ाई तक पहुँच गए और हर ओर लाशों के ढेर लग गए। इस लड़ाई में इसका पुत्र हिम्मत खाँ, जो हरावल था, बेतरह घिर गया। इसने पिता से सहायता माँगी पर शत्रुओं ने इसे भीड़ कर ऐसा घेर लिया था कि यह एक पैर नहीं उठा सकता था। इसी समय परब खाँ, जो 'हाथ पत्थर' के नाम से प्रसिद्ध था और कुतुबशाही वीर सैनिक होते हुए हाथ से तीर और गोली के समान पत्थर चलाता था, अपने घोड़े को दौड़ाता हुआ हाथ में भाला लिए खानजहाँ के हाथी के सामने पहुँच कर चिल्लाया कि 'सेनापति कहाँ है' और चाहा कि भाला मारे। खानजहाँ ने अकड़कर कहा कि मैं सरदार हूँ और उसको भाला मारने का अवसर न देकर तथा तीर मारकर घोड़े पर से गिरा दिया। शत्रुओं की बहादुरी यहाँ तक पहुँच गई थी कि पास था कि पराजय हो जावे पर एकाएक बादशाही इकबाल ने

दूसरी सूरत पकड़ी। बादशाही सेना का एक मस्त हाथी शत्रु की सेना में जा पड़ा और घोड़ों को कुचलने लगा। घोड़ों और आदमियों के इस उपद्रप में दो तीन नामी सरदार जमीन पर गिर पड़े, जिससे हैदराबाद की सेना भाग खड़ी हुई। ऐसे घोर युद्ध पर भी, जिसके आरंभ के अनंतर पराजय और अंत होते-होते विजय हुई और भारी सेना आगे से मुख मोड़कर हट गई। हैदराबाद के अधिकार करने की 'शुद फतह बजंग हैदराबाद' से (हैदराबाद के युद्ध में विजय हुई) इस घटना की तारीख निकलती है। हैदराबाद का शासक गोलकुंडा में जा बैठा। वास्तव में शाहजादा और खानजहाँ दोनों अबुलहसन को एकदम दमन कर देना नहीं चाहते थे प्रत्युत् उनकी इच्छा थी कि पहिले भय दिखलाकर संधि की बातचीत हो और तब दरबार से उसके दोष क्षमा कराए जायँ। उसके मूर्ख सरदारगण यद्यपि युद्ध के लिए आते थे पर इस ओर से पीछा करने तथा युद्ध और धावा करने में उपेक्षा ही की जाती थी, इस कारण दरबार में इसके विरुद्ध अप्रसन्नता पहिले से बढ़ गई, जिससे खानजाहाँ बुला लिया गया। यह बादशाह के साथ खेला हुआ था और एक ही माँ का दूध पीने के कारण इसमें घमंड बढ़ गया था और हर एक काम तथा सरदारी में, विशेषकर दक्षिण के कार्यों में, मनमाना करता था क्योंकि यह समझता था कि बिना उसके वे काम पूरे न हो सकेंगे। इसके साथ इसका अपनी जिह्वा और हाथ पर अधिकार न था। बादशाह के सामने उद्दंडता से बोल देता था और पीछे न कहने योग्य बातें कह डालता था। राज्य-कार्य को निडरता से इच्छानुसार कर डालता और शाही

आज्ञा के होते ऐसे निषिद्ध कार्य, जिन्हें बादशाह स्वभावत: दूर करना चाहते थे, इसकी सेना में चालू थे। कई बार इसके विरुद्ध आदेश गया पर इसने रोकने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। एक दिन दरबार के बाहर पालकी छोड़ने पर इसके आदमियों तथा मुअज्जम खाँ सफवी के बीच में झगड़ा हो गया। खानजहाँ को छुट्टी दी गई कि जाकर अपने आदमियों को इस उपद्रव तथा युद्ध से रोके पर इसने बाहर आने पर उद्दंडता से अपने आदमियों से कहा कि वे मुअज्जम खाँ के बाजार को लूट लें। इस बात पर बादशाह अप्रसन्न हो गया और इसके प्रति रोष पर रोष बढ़ता गया। तब निरुपाय होकर इसका घमंड तोड़ने के लिए यह उपाय निकाला कि जिस किसी सूबेदारी पर यह नियत होता वहाँ अपना प्रभाव जमा न पाता था कि दूसरे प्रांत में बदल दिया जाता, जिससे वह बराबर हानि उठाता था। २६ वें वर्ष के अंत में यह जाटों तथा आगरा प्रांत के विद्रोहियों को दमन करने पर नियत हुआ और दो करोड़ दाम पुरस्कार पाने से सम्मानित हुआ। हिम्मत खाँ के सिवा, जो बीजापुर की चढ़ाई पर नियत था, अन्य पुत्र गण पिता के साथ लौट आए थे। यह कठिन कार्य बिना भारी सेना तथा घोर प्रयत्न के सर नहीं हुआ, इसलिए महम्मद आजमशाह के बड़े पुत्र शाहजादा बेदार बख्त को भी इस कार्य पर नियत किया। इसके अनंतर शाहजादा और खानजहाँ के प्रयत्न और प्रबंध से सन् १०९९ हि० में राजाराम जाट, जो उस प्रांत के विद्रोहियों का सरदार था, गोली से मारा गया। शाहजादा सिनसिनी तथा अन्य स्थानों को घेर कर उन उपद्रवियों को नष्ट करने लगा। खान-

जहाँ बंगाल का सूबेदार नियत हुआ। ३३वें वर्ष में यह इलाहाबाद प्रांत का अध्यक्ष बनाया गया। ३४ वें वर्ष में पंजाब प्रांत का शासक नियत हुआ और २७ वें वर्ष में आज्ञा के अनुसार लाहौर से आकर सेवा में उपस्थित हुआ तथा फिर यहाँ से कहीं नहीं भेजा गया। ४१ वें वर्ष सन् ११०६ हि० (सन् १६६०) की उन्नीसवीं जमादिउल् अव्वल को इसलामाबाद ब्रह्मपुरी की छावनी में मर गया। जब इसका रोग बढ़ गया तब औरंगजेब शोलापुर से लौटते समय इसको देखने को आया पर यह शैय्या पर पड़ा हुआ था और बिछौने से उठ नहीं सकता था इसलिए यह खूब रोया कि मैं कदम बोसी नहीं कर सकता और न अपनी इच्छा प्रगट कर सकता हूँ। मैं चाहता था कि युद्ध में काम आता। बादशाह ने कहा कि सारी अवस्था सेवा तथा स्वामिभक्ति में व्यतीत कर दिया पर अभी इस अवस्था में यह इच्छा बाकी है। इसका शव पंजाब के दो आब के कस्बा नगोदर में, जहाँ इसका कब्रिस्तान था, भेज दिया गया। इसके पुत्रों में से हिम्मत खाँ तथा सिपहदार खाँ का वृत्तांत अलग दिया गया है। इसके दूसरे पुत्रों में कुछ योग्यता न थी। नसीरी खाँ पागल तथा अपदस्थ मनुष्य था। छोटा पुत्र अबुल्फतह महम्मद शाह के राज्य के आरंभ तक जीवित था और निश्चिंत जीवन व्यतीत कर रहा था।

खानजहाँ बहादुर साम्राज्य का एक सेनापति तथा सरदार था। यह अपने शान, ऊँचे मकान, ऐश्वर्य के सामान के आधिक्य तथा अहंता और विभव की उच्चता में बड़े बड़े सरदों में अपना जोड़ नहीं रखता था। यह कृपालु तथा शीलवान था और बहुतों

पर इसका उपकार था। इसका दरबार बड़े शान का होता था और उसमें सिवाय इसके कम आदमी बोलते थे। यह जो चाहता कहा करता और दूसरे सिवाय 'खूब' 'खूब' और कुछ न कहते थे। यह अधिक बोलना पसंद न करता था। इसके दरबार में अधिकतर बात गद्य-पद्य, तलवार, रत्न, घोड़ा, हाथी तथा औषधि के संबंध में होती थी। इसकी समझ भी विचित्र थी। एक दिन दक्षिण की सूबेदारी के समय इन पंक्तियों के लेखक के परदादा अमानत खाँ मीरक मुईनुद्दीन से, जो उस समय दक्षिण का स्थायी दीवान था, इसने कहा कि बादशाह ने मुझे विदा करते समय कहा था कि 'यदि तू सुने कि मुहम्मद मुअज्जम ने विद्रोह तथा उपद्रव का झंडा खड़ा किया है तो तू उसे ठीक समझ पर उससे झगड़ा न कर और यदि महम्मद आजम के नाम पर ऐसा कहें तो कभी विश्वास न करना चाहिए, वह जो कुछ कर सके करे। मुहम्मद अकबर अभी बालक है। पर मैं जिस बात से डरता हूँ वह यह है कि अकबर के सिवा इस कुमार्ग पर दूसरा कोई न जायगा। उस समय अकबर की सरदारी या उसके विचारों से ऐसा कुछ भी ज्ञात नहीं हो रहा था। परंतु इसके छ महीने बाद क्या गुल खिला और खानजहाँ की बात ठीक घटना के अनुकूल निकली। अहंकार तथा सरदारी भी उसमें बहुत थी। इसकी उच्च कल्पना तथा बड़ी बातें आलमगीर बादशाह से लोगों को, जो अपने उच्च विचार तथा साहस में किसी को कुछ न समझते थे, भड़का देता था। ऐसे ही कारण से अंत में यह बिना जागीर तथा कार्य के दरबार ही में रखा गया था। इसके विरुद्ध इसके युद्धीय विद्या तथा सैन्य-संचालन की प्रशंसा नए खाना-

जादों में कुछ लोग बहुत दिनों से करते थे। सलाबत खाँ का पुत्र तहौव्वर खाँ और जान निसार खाँ ख्वाजा अबुल् मकारम से दैव योग से इसी समय विद्रोही संताजी से युद्ध का संयोग आ पड़ा। कुल सेना तथा तोपखाना लुटाकर जान निसार खाँ आधी जान लेकर भाग निकला और तहौव्वर खाँ ने घायल होकर मुर्दों में मिलकर अपनी जान बचाई। जब यह वृत्तांत बादशाह को सुनाया गया तब कहा कि यह सब भाग्य से होता है, किसी के अधिकार का नहीं है। खानजहाँ ने इस बात को सुनकर कि खैर परलोक में अर्ज मुकर्रर नहीं होता कि दें और फिर लें क्योंकि बहुत दिनों की सर्दारी में मुझे चोट न लगी। झूठी बातें और कहानियाँ इसके बारे में सुनी जाती हैं, जिनपर बुद्धि को विश्वास नहीं होता और व्यर्थ सा ज्ञात होता है। यद्यपि खानजहाँ के बड़प्पन और गुणों में कुछ कहना नहीं है, जो बराबर प्रकट होते थे पर न्यायतः उसमें स्वभाव का ओछापन अवश्य था और क्यों न हो। वह एकाएक सात सदी से पाँच हजारी तक पहुँच गया था तथा भिन्न भिन्न पदों से होकर नहीं बढ़ा था जैसा कि इस बीच होना चाहिए था। ऐसे बादशाह से, जिसके क्रोध तथा भर्त्सना पर कोई जीवित नहीं रहना चाहता था, ऐसा सेवक उद्दंडता करे, विचित्र ही है।

अंतिम दिनों में एक दिन न्यायालय में खानजहाँ ने एक छोटा आफ्ताबः चीनी का बादशाह को भेंट दिया और कहा कि यह हजरत मूसा का है। औरंगजेब ने उस पर एक दृष्टि डाल कर शाहजादा मुहम्मद मुइज्जुद्दीन और मुहम्मद मुअज्जम को दे दिया। इसकी गर्दन पर दो पंक्ति का लेख खुदा था। शाहजादों

ने कहा कि यह लेख इबरानी होगा। खानजहाँ ने लेख को देखकर कहा कि मैं इबरानी मिबरानी नहीं जानता, जिसने इसे बेंचा है उसने यही निशान दिया था। बादशाह ने कहा कि ये जो अक्षर हैं, कुछ बुरे नहीं हैं।

मुजफ्फर हुसेन सफवी, मिर्जा

यह शाह इस्माइल सफवी के पुत्र बहराम मिर्जा के पुत्र सुलतान हुसेन का पुत्र था। जब सन् ९६५ हि० में दुर्ग कंधार शाह तहमास्प सफवी के अधिकार में आया तब वह प्रांत और जमींदावर तथा गर्मसीर से हीरमंद नदी तक की भूमि अपने भतीजे सुलतान हुसेन मिर्जा को सौंप दिया। वह प्राय: बीस वर्ष तक अपने चाचा की रक्षा में रहकर सन् ९८४ हि० में शाह इस्माइल द्वितीय के समय में मर गया। शाह इसकी ओर से सशंकित तथा भयग्रस्त था और पितृव्यों के संतानों को मारने की इच्छा रखते हुए भी उस इच्छानुसार काम नहीं किया। इसकी मृत्यु पर इसके संबंधियों को उसने मारने का साहस किया। उस अवसर पर सुलतान हुसेन के पाँच पुत्रों में से एक मुहम्मद हुसेन मिर्जा, जो ईरान गया हुआ था, मारा गया। अन्य चार भाइयों को मारने के लिए उसने शाह कुली सुलतान को कंधार का शासक नियत किया। उसने अपनी ओर से बिदाग बेग को इन निर्दोषों को मार डालने के लिए भेजा। वह सहायकों के साथ इन्हें मारना चाहता था कि एकाएक शाह के मृत होने का शोर मचा जिससे इन्हें छोड़ दिया।

जब ईरान का राज्य सुलतान मुहम्मद खुदाबंद: को मिला तब उसने सबसे बड़े भाई मिर्जा मजफ्फर हुसेन को कंधार दिया और

जमींदावार से हीरनंद नदी तक के प्रांत पर रुस्तम मिर्जा को नियत किया। दूसरे दो भाइयों अबूसईद तथा संजर मिर्जा को भी उनके साथ कर दिया। हम्ज: बेग जुल्कद्र प्रसिद्ध नाम कोर हमूजा को, जो सुलतान हुसेन मिर्जा का वकील था, मिर्जाओं का रक्षक बनाया। हमजा बेग ने इतना प्रभुत्व प्राप्त कर लिया कि मिर्जाओं का शासन नाममात्र को रह गया। मुजफ्फर हुसेन मिर्जा ने तंग आकर हमजाबेग को दूर करने का निश्चय किया, जो इस बात को जानकर जमींदावर चला गया और रुस्तम मिर्जा को साथ लेकर युद्ध को लौटा। सेना अधिकतर इससे मिली हुई थी इसलिए मिर्जा हारकर कंधार में घिर गया। कजिलबाश लोगों ने बीच में पड़कर संधि करा दी। तीन वर्ष बाद फिर मिर्जा ने हमूजा बेग को मारने का विचार किया। उसने गुप्त रूप से रुस्तम मिर्जा को कंधार बुलाकर मिर्जा को किलात की ओर भेजा, जो हजाराजात के मध्य में है। मुहम्मद बेग को, जो इसका दामाद तथा वृद्ध पुरुष था, पाँच सौ सेना के साथ उसकी रक्षा के लिए नियत किया। मिर्जा उससे मिलकर कुछ दिन बाद सीस्तान चला। वहाँ का शासक मलिक महमूद मिर्जा की स्त्री का पिता था और उससे तथा मिर्जा से बहुत झगड़ा और तर्क वितर्क हुआ जिस पर उसने मध्यस्थ होकर हमजा बेग से संधि कराकर इसे कंधार की गद्दी पर फिर बैठा दिया। इस बार मुहम्मद बेग की सहायता से, जिसे वकील बनाने की आशा दे रखी थी, हमजा बेग को समाप्त कर दिया। इस पर रुस्तम मिर्जा ने कंधार पर चढ़ाई की पर सीस्तान के मलिक महमूद की सहायता के कारण सफल न हो जमींदावर

लौट गया। मुजफ्फर हुसेन मिर्जा दृढ़ चित्त नहीं था इसलिए मुहम्मद बेग से क्षुब्ध होकर सीस्तान चला गया और मलिक महमूद से लड़कर परास्त हुआ। उक्त मलिक मनुष्यत्व को काम में लाकर इसे अपने घर लिवा गया। अंत में मुहम्मद बेग ने प्रार्थना कर इसे कंधार बुलाया। मिर्जा अवसर पाकर मुहम्मद बेग को बीच से हटाकर स्वयं दृढ़ हो गया परंतु खुरासान के उजबक सर्दारों विशेषकर तूरान के शासक अब्दुल्ला खाँ के भांजों दीन मुहम्मद सुलतान तथा बाकी सुलतान ने, जो खुरासान विजय करने को नियत हुए थे, कई बार सेनाएँ कंधार भेजकर मिर्जा से युद्ध किया। यद्यपि उजबक लोग हारे पर उनके लूटमार से कहीं शांति न थी। इन लड़ाइओं में बहुत से सर्दार तथा अच्छे कजिलबाश मारे गए और शाह ईरान से कुछ भी सहायता मिलने की संभावना नहीं रही तथा इधर हिंदुस्तानी सेना के आने आने का समाचार सुनकर यह घबड़ा उठा। इसी समय रुस्तम मिर्जा के हिंदुस्तान पहुँचने तथा उसके मुलतान प्रांत पर नियत होने से यह और भी डर गया। निरुपाय हो इसने हिंदुस्तान में शरण लेना निश्चय किया। यद्यपि अब्दुल्ला खाँ ने स्वयं इसे पत्र लिखा कि ईरान तथा तूरान की शत्रुता पुरानी है पर अब हमारी ओर से सुचित्त होकर कभी पैतृक प्रांत चगत्ता के हाथ में न देना। परंतु मिर्जा का मन कपट से भर उठा था। इसी समय कराबेग कोरजाई, जो सुलतान हुसेन मिर्जा का पुराना सेवक था तथा मुजफ्फर हुसेन के पास से भागकर हिंदुस्तान चला आया था और अकबर के सरकार में फर्राशबेगी का पद पा चुका था, मिर्जा को लाने के लिए नियत होकर कंधार आया।

मिर्जा ने गुप्त रूप से स्वामिभक्ति स्वीकार कर ली पर कुछ आशंका प्रगट की कि मिर्जा अपनी माँ तथा अपने बड़े पुत्र बहराम मिर्जा को सेवा में भेजकर बुलाए जाने की प्रार्थना करे। बादशाह ने बंगश के अध्यक्ष शाह बेग खाँ अर्गून को लिखा कि धावा कर वह दुर्ग पर अधिकार कर ले और मिर्जा को भेज दे। जब शाह बेग खाँ कंधार में जा पहुँचा तब मिर्जा अपने अनुयायियों और यात्रा के सामान के साथ बाहर चला आया। सर्दारों तथा विश्वासी कजिलबाशों के न रहते वह फिर भी सेना सजाकर सामने लाया, जिस कार्य से मिर्जा ने दुखित होकर शाह बेग खाँ से कहलाया कि बाहर आकर एक दिन उसका अतिथि बने क्योंकि कुछ आवश्यक बातें कहनी है। तात्पर्य यह था कि किसी प्रकार अपने को दुर्ग में पहुँचाकर उससे कुछ उज्र करे। शाहबेग खाँ पुराना अनुभवी सैनिक था इसलिए सरलता से हुए कार्य को उसने फिर कठिनाई में पड़ने नहीं दिया। उसने उत्तर में कहलाया कि शुभ साइत में दुर्ग में दाखिल हुआ हूँ इसलिए बाहर आना उचित नहीं है और जो आपको आवश्यक हो वह भेज दिया जाय। लाचार हो मिर्जा ४० वें वर्ष सन् १००३ हि० के अंत में अपने चार पुत्रों बहराम मिर्जा, हैदर मिर्जा, अलकास मिर्जा तथा तहमास्प मिर्जा और एक सहस्र कजिलबाशों के साथ कूचकर जब तीन पड़ाव आगे पहुँचा तब मिर्जा जानी बेग और शेख फरीद बख्शी स्वागत को नियत हुए और तीन कोस से मिर्जा अजीज कोका तथा जैन खाँ कोकल्ताश स्वागत कर सेवा में ले आए। अकबर ने मिर्जा को पुत्र की पदवी देकर सम्मानित

किया । इसे पाँच हजारी मंसब तथा संभल की जागीर दी, जो कंधार से बढ़कर था पर मिर्जा ने सांसारिकता तथा अनुभव की कमी के कारण बेपरवाही और आरामपसंदी से काम अत्याचारियों के ऊपर छोड़ दिया। उस जागीर की प्रजा तथा कुछ व्यापारियों ने न्याय माँगा। इस पर उपदेश का कुछ प्रभाव न पड़ा । अंत में इस न्याय माँगने से तंग आकर इसने हज्ज जाने की छुट्टी माँगी जो स्वीकृत हो गई। इससे लज्जित होकर यह परेशानी में बैठ रहा । अकबर बादशाह ने इसे लज्जा से निकाल-कर फिर मंसब तथा जागीर पर बहाल कर दिया। ४२ वें वर्ष में मिर्जा के आदमियों ने फिर अत्याचार आरंभ किया तब जागीर जब्त कर नगद वेतन नियत किया गया। मिर्जा हज्ज को रवानः होकर और पहिले ही पडाव से लौट कर सेवा में उपस्थित हुआ। परंतु इसका भाग्य बुरा हो गया था और इसके संबंध में ऐसी बातें बादशाह के पास पहुँचाई गईं कि यह विश्वास से गिर गया तथा प्रतिदिन यह छोटा होता गया। कहते हैं कि मिर्जा दुर्भाग्य के कारण किसी हिंदुस्तानी वस्तु से प्रसन्न नहीं था। सिधाई से कभी ईरान जाने का विचार करता और कभी हज्ज का। इसी दुःख तथा क्रोध में शारीरिक रोगों से जर्जरित होकर सन् १००८ हि० (सन् १६०० ई०) में यह मर गया। जहाँगीर के राज्य के ४ थे वर्ष में मिर्जा की पुत्री का शाहजादा सुलतान खुर्रम उर्फ शाहजहाँ से विवाह निश्चित हुआ। यह कंधारी महल के नाम से प्रसिद्ध हुई और सन् १०२० हि० में इसके गर्भ से पर्हेज बानू बेगम पैदा हुई। मिर्जा के पुत्रों में से बहराम मिर्जा, हैदर मिर्जा

और इस्माइल मिर्जा हिंदुस्तान में रह गए। इनमें से मिर्जा हैदर का हाल उसके पुत्र नौजर मिर्जा[1] की जीवनी में दिया गया है।

---

१. मुगल दरबार भाग ३ पृ० ६०२–३ देखिए।

मुतहौव्वर खाँ बहादुर खेशगी

इसका नाम रहमत खाँ था। यह प्रसन्नचित्त, उदार, दृढ़ हृदय, साहसी, उच्चदृष्टि, उत्साहपूर्ण, सुसम्मतिदाता, भला, हितेच्छु, निष्पक्ष न्याय देनेवाला, सत्यनिष्ठ, शुद्ध आचारवान्, गंभीर वक्ता, हरएक गुण तथा विद्या का ज्ञाता और संसार के सुख-दुःख में अनुभव रखनेवाला था। वृद्ध आकाश सहस्रों को भ्रम में डाल देता है यहाँ तक कि इतना गुणी मनुष्य कभी कभी पैदा होता है और पुराना संसार कभी कभी ऐसी रात्रियों का दिन करता है जब ऐसे अच्छे मोती सीप में आते हैं। यह अपने बराबरवालों में सुबुद्धि, अच्छे स्वभाव, ऊँचा मस्तिष्क तथा सुमति में सबका सर्दार था और सदाचार, उच्च साहस, प्रबंध-कार्य तथा सुशीलता में सबसे बढ़कर था। मर्यादा तथा हृदय की विशालता इतनी थी कि जो कुछ कार्य या उपाय मनमें आता उसे दृढ़ होकर पूरा कर डालता। जैसे यदि बहुत से लोग किसी विवादग्रस्त कार्य पर इससे राय पूछते तो हजूम का ध्यान न कर अपनी समझ से ठीक राय दे देता था।

इसका दादा इस्माइल खाँ हुसेनजई था, जो खेशगी खेल के अलीजई की एक शाखा थी। यह शम्सुद्दीन खाँ का दामाद था, जो नज्रबहादुर खेशगी का बड़ा पुत्र था, जिससे बादशाही मंसब तथा पार्श्ववर्तिता के विचार से इस जाति में कोई बढ़कर न था। यह शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के सेवकों में भर्ती

हुआ और उसकी कृपा तथा प्रतिष्ठा पाई। महाराज जसवंतसिंह के युद्ध के बाद जाँबाज खाँ की पदवी तथा झंडा पाया और इसका मंसब पाँच सदी १०० सवार बढ़ने से दो हजारी ६०० का हो गया। शाहजादे के एक बड़े अनुयायी शेख मीर खवाफी से मेल रखने के कारण सभी युद्धों में, जो उसके शत्रुओं से हुए थे, उसके साथ रहकर साहस तथा वीरता दिखलाते हुए यह उसका कृपापात्र हुआ। राज्यारंभ में यह सुलतानपुर तथा नजरबार का फौजदार नियत हुआ। इसके अनंतर कई बार काबुल की चढ़ाई पर नियत हुआ और उस प्रांत में अच्छी सेवा की। इसके दो पुत्र उसमान खाँ और अलहदाद खाँ थे। पहिला शम्सुद्दीन खाँ से बहुत धन पाकर, जिसे सिवा पुत्री के और कोई संतान नहीं थी, अपने देश में बैठ रहा और आराम से दिन व्यतीत करता रहा। दूसरा मीरास के धन पर न भूल सेवाकार्य करता रहा। यह गंभीर प्रकृति का मनुष्य था और इसकी विचारशीलता से वहाँ के प्रांताध्यक्ष अमीर खाँ ने, जिसका स्थायी प्रबंध आदर्श था, इसको सहारा दिया। पहिले यह गरीबखाने का थानेदार और फिर बहुत दिनों तक मंदर का, जो वहाँ के थानों में हरियाली तथा जल के आधिक्य के लिए प्रसिद्ध था, तथा लंगरकोट का थानेदार रहा, जो शासक का निवासस्थान था और जहाँ कुछ दिन के लिए रहमानदाद खाँ खेशगी नियत रहा पर ४७ वें वर्ष में फिर उक्त खाँ को मिल गया। इस बीच इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया। जब काबुल प्रांत का शासन शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम को मिला और खेशगी लोग आजमशाह के पक्षपाती समझे जाते थे तथा यह सुलतान अहमद

का बहनोई था, जो आजमशाही सेवा में था इसलिए शाहजाद
इसे हटाने के विचार में लगा। उक्त खाँ ने यह सूचना पाकर
एक विश्वासी को शाहजादे के पास भेजा। विचित्र बात यह है
कि शाहजादे के सम्मानित हरम उम्मतुल् हबीब की मध्यस्थता से
यह काम हो गया।

इसका विवरण इस प्रकार है कि पहिले ही समय में उक्त खाँ
ने औरंगजेब से प्रार्थना की थी कि इस समय जब हुजूर काफिरों
के विरुद्ध युद्ध करने जा रहे हैं तब हम सब खानःजादों को उचित
है कि साथ में रहकर दृढ़ता से कार्य करें पर सेवा उपासना के
ऊपर है अतः दास जिस कार्य पर नियत है वही करता रहेगा।
केवल स्वामी के सुन्नी होने से यहाँ किसी जाति पर काफिर होने
का, जो काबुल की सीमा के पर्वतों में अधिक हैं, दोष लगाकर
धार्मिक लूटमार किया गया था। वहाँ के कैदियों में से कुछ
लौंडियाँ भेजी गई, जिसपर दरबार से प्रशंसा हुई तथा आज्ञा
मिली कि ये काफिरिस्थान की वास्तव में हैं अतः प्रति वर्ष कुछ
लौंडियाँ भेजा करो। दैवयोग से दूसरे धार्मिक युद्ध का अवसर
नहीं आया इससे पहिले के काफिर कैदियों में से, जो जलाल खाँ
अफगान के हिस्से में आई थीं, उम्मतुल्हबीब को लेकर भेज
दिया। बादशाह ने उसको अपने बड़े पुत्र को दे दिया। यह
मेह्रपरवर के समान, जो भी बादशाह की दी हुई थी, शाहजादे
की कृपापात्र हो सम्मानित हुई तथा तोरा व तोजक पाया और
उसकी बराबरी में, जो अपने भाई नियाजबेग कुलीज मुहम्मद
खाँ की स्वीकृति पर आई थी, इसने भी अपने को अफगान-पुत्री
बतलाया। उक्त खाँ के आनेजाने को गनीमत समझकर इसने

इच्छा प्रकट की कि उसकी बात को सही मान लें। इसपर इसने उसी जलाल खाँ को राजी किया, जिसने शाहजादे के सामने इस बात का समर्थन किया। इसके अनंतर उसने उक्त खाँ के कामों की मध्यस्थ होकर शाहजादे को इसकी ओर से संतुष्ट कर दिया। जब औरंगजेब की मृत्यु पर बहादुरशाह पेशावर से मुहम्मद आजमशाह से युद्ध करने चला तब यद्यपि यह भारी सेना के साथ सेवा में आया पर सेना की परेशानी देखकर इसने अलग हो बीमारी का बहाना किया। सहायता से विरक्त हो यह लाहौर में रह गया यद्यपि यह आजमशाह का विजय होना मानता था पर उसी समय इसकी मृत्यु हो गई।

इसके पुत्रों में से रहमत खाँ सर्व गुण संपन्न और अपने अन्य सभी भाइयों से बढ़कर शाहजादे का कृपापात्र था। जब इसका पिता बीमारी के कारण लाहौर में रह गया तब उसने कह दिया कि हमारे पुत्रों में से कोई भी बहादुरशाह के साथ न जाय परंतु यह अपने सौतेले भाई खुदादाद खाँ के साथ अकेले निकल कर दिल्ली में शाह के पास पहुँच गया। बीस सहस्र रुपया युद्ध के पहिले व इतना ही बाद में सहायता के रूप में इसने पाया। विजय के अनंतर मंसब में तरक्की तथा मुतहौव्वर खाँ की पदवी मिली। कई सेवाओं का इसके लिए प्रस्ताव हुआ। कामबख्श के युद्ध के बाद लखनऊ तथा बैसवाड़े का यह फौजदार हुआ। यहाँ का प्रबंध ठीक न बैठा इसलिए बहादुरशाह की मृत्यु पर बिना किसी स्थानापन्न के आए हुए इस ने राजधानी का मार्ग लिया। शंका के कारण बादशाह के सामने जाने का इसका मुख न था इसलिए मार्ग में शाहजादा एज्जुद्दीन से, जो

खानदौराँ ख्वाजा हुसेन की अभिभावकता में फर्रुखसियर से युद्ध को जा रहा था, जा मिला। जब वह निरुत्साही युद्ध की रात्रि में खजवा की सराय से निकला तब यह वहीं अपने स्थान में ठहर गया। सुबह होते ही जब कुतुबुल्मुल्क वहाँ पहुँचा तब पुरानी मित्रता के कारण इसे अपनी हाथी पर बैठा लिया। जहाँदारशाह के युद्ध में यह हुसेन अली खाँ की सेना में था। जिस समय सर्दार ने बाग ढीली की अर्थात् धावा किया तब यह साथ न दे सका और दूसरी ओर गिर गया पर बच गया। अमीरुल्उमरा इस पर विश्वास रखता था।

जब यह दक्षिण आया तब सरा का फौजदार नियत हुआ। जब दक्खिनी अफगानों ने, जो विद्रोह से खाली न थे, इस विचार से कि स्यात् एक जाति होने से इसके द्वारा पहिले के तथा वर्तमान मामले सुलझ जायँ और मनोमालिन्य दूर हो जाय, पहिले बहादुर खाँ पन्नी तथा अब्दुन्नबी खाँ मियानः भेंट करने आकर इससे मिल गए परंतु शीघ्र ही स्वार्थपरता के कारण वे अलग हो गए। मुतहौवर खाँ ने कुछ दिन बाकी भेंटों को उगाहने का साहस किया पर वह भी ठीक न बैठा और श्रीरंगपत्तन के जमींदार ने, जिससे बढ़कर कोई जमींदार नहीं था, अपना मुकद्दमा अमीरुल् उमरा के यहाँ भेज दिया तथा निरुपाय हो एक जमींदार की सहायता से, जो चीतलदुर्ग का भरया नामक भूम्याधिकारी था तथा उसके कुछ स्थान पर अधिकृत हो चुका था, उस ओर गया। वह घमंडी विद्रोही बीस सहस्र सवार तथा छ सहस्र पैदल के साथ युद्ध को आया और यह परास्त हो भागा। इसी समय इसके बदले जाने का फर्मान आया। जो कुछ

इसके पास सामान था सैनिकों को वेतन में बाँट कर ऋणग्रस्त हो तथा ऋण दाताओं के साथ औरंगाबाद की ओर चला। दक्षिण के सूबेदार आलम अली खाँने इसका सम्मान के साथ स्वागत कर वेतन में जागीर दी।

इसी समय आसफजाह के लौटने का समाचार सुनाई पड़ा। सँगरा मल्हार ही के हाथ में कुल कार्य था पर वह युद्ध के लिए राजी नहीं हुआ तब आलम अली खाँने निजी साहस तथा कुछ मूर्ख सैनिकों के बहकाने से युद्ध का निश्चय कर उस साहसी वीर को हरावल बनाकर युद्ध के लिए आगे बढ़ा। किसी से कोई काम पूरा नहीं हुआ और व्यर्थ अपनी जान खोई। मुतहौवर खाँ घायल हो मैदान में गिर पड़ा और इसका भाई तहौवर दिल खाँ मारा गया। फतहजंग के संकेत करने पर भी इसने पहिले उसका साथ नहीं दिया। इसके अनंतर जब सैयदों की चढ़ाई का अंत होगया और उनसे किसी प्रकार की आशा नहीं रह गई तब आसफजाह की कृपा से इसकी हालत पर विचार कर मंसब तथा जागीर बहाल कर दी गई। इसके बाद एवज खाँ बहादुर की सम्मति से अमीन खाँ दक्खिनी के स्थान पर यह नानदेर का सूबेदार बनाया गया। यह बड़ी बेसामानी से गिरता पड़ता अपने ताल्लुका पर पहुँचा। हटाए गए विद्रोही ने इसके पर्गनों पर अधिकार करने में रुका-वट डालकर वेतन का भी धन देना स्वीकार नहीं किया। जब एवज खाँ के लिखने पढ़ने का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि इससे उक्त खाँ पहिले ही से वैमनस्य रखता था, तब उसने नए नियुक्त सूबेदार को लिखा कि यदि वह सिपाही है तो तुम भी सिपाही हो, क्यों अपना स्वत्व छोड़ते हो। निरुपाय हो इसने

घरैलू झगड़े का निश्चय किया। पहले इसने शुद्ध विचार से उस अदूरदर्शी से, जो चाहता था कि नानदेर से आगे बढ़कर बालकंद में शीघ्र चले जायँ, कहला भेजा कि हम विवश हैं और यदि वह घेरे से बाहर जायेगा तो रुकावट न डालने के संबंध में कहा सुनी केवल कूच करके हो सकेगी। उस मूर्ख घमंडी ने इस बातकी पर्वाह न कर आगे बढ़ने से बाग न रोकी। वीर मुतहोवर खाँ प्रतिष्ठा के लिए मरना निश्चित कर थोड़े आदमियों के साथ, जो पचास सवार से अधिक न थे, मार्ग रोकने के लिए निकला। दैवयोग से कुछ दूर जाने पर कमानदार आदि बिना बुलाए आ मिले जिससे कुछ सेना इकट्ठी हो गई। संध्या को दोनों पक्ष एक दूसरे के पास पहुँचकर उतरे और रात्रि सावधानी में बिताया। जब सबेरा हुआ तब युद्ध छिड़ने ही को था कि संधि की बात चलने से वह रुक गया। निश्चय हुआ कि नानदेर लौटकर वह हिसाब से बचे हुए धन का उत्तर देगा। अभाग्य से चुने हुए सैनिकों के रहते हुए भी इसने दुर्गति कराई कि शत्रु इसे घेर कर आगे बढ़ा। इसके सिपाही परा बाँधकर दूर दूर साथ चले। अपनी मूर्खता से यह बहुत दिनों तक कैद रहा। विचित्र तो यह है कि ऐसा काम करके भी उनमें कोई अमलदारी में न बढ़ा। इसकी बेसामानी तथा घबड़ाहट भी रत्ती भर न घटी। नौकरी से यह हटा दिया गया और इसके बाद फिर किसी सेवा-कार्य के लिए इसने प्रयत्न नहीं किया। यह आश्चर्य से खाली नहीं है कि इतने गुणों के होते हुए भी कहीं इसकी अमलदारी का काम ठीक न बैठा। प्रगट है कि रियासत बिना कठोरता के नहीं होती। वहाँ दया तथा कृपा को

भी प्रतिदिन स्थान है और उदारता उपकार की भी आवश्यकता है। आवश्यक न होने पर विचित्र कामों में ध्यान देना तथा प्रयत्न करना इसकी आदतों में था। इसके सिवा मुबारिज खाँ के युद्ध में यह दो सहस्र सवारों का अध्यक्ष होकर, जिनमें अधिकतर पन्नी अफगान थे, एवज खाँ बहादुर की हरावली में नियत था। उन सबने शत्रु को वचन देकर काम से जी चुराया तथा चुपचाप खड़े रहे। इसने अकेले अपने हाथी को दौड़ाया पर उस समय तक शत्रु युद्ध को आकर अपने को वीरों की तलवारों पर झोंक चुका था। कुछ देर तक यह भी, जिसे झूठा कलंक लगाया जा चुका था, अपनी वाली करता रहा। इसी बीच एक गोली के दाहिने हाथ की कोहनी में लगने से यह घायल हो गया। अच्छा हुआ जो देर किया।

यद्यपि सर्वदा सर्दारों ने इसकी बात स्वीकार की पर नवाब निजामुद्दौला के राज्यकाल में इसकी एक से एक बढ़कर प्रार्थनाएँ स्वीकृत हुईं। इसके द्वारा बहुत लोगों का काम चल गया। जिस समय हिंदुस्तान से आसफजाह लौटा तब यह बुर्हानपुर जाकर उससे मिला। इसने ऊँचा नीचा, सख्त सुस्त, जो न कहना चाहिए, सब निज़ामुद्दौला का पक्ष लेकर कह डाला। यद्यपि सर्दार ने अपने व्यवहार से कुछ भी दुःख प्रगट न किया पर मन में ऐसा मालिन्य बैठ गया कि सत्संग तथा प्रेम का लेश भी न रह गया। मुहम्मदशाही २५ वें वर्ष में जब वह कर्णाटक पर चढ़ाई करने के लिए चले तब इसे राजधानी औरंगाबाद में छोड़ गए। आखिर सफर महीने की दसवीं को कोहनी का घाव सूज गया और एक महीने में आँव तथा पेट के फूलने का रोग हो गया। सन् ११५६

हि० के रबीउस्सानी की प्रथम को सबेरे निराशा हो गई और यह उसी दिन मर गया। उसी महीने की प्रथम तारीख को यह पैदा भी हुआ था। यह साठ वर्ष का हो चुका था।

मिसरा—सबब हुब्बे अली अजर दो सद आयद याफ्त
(अली के प्रेम के कारण पुरस्कार दो सौ पाया)

उक्त मिसरे से तारीख निकलती है। दो सौ शब्द से संख्या से तात्पर्य है अक्षरों से नहीं।

कारीगरी की विद्या का इसे बड़ा लोभ था। इस विषय की बहुत सी पुस्तकें इसने इकट्ठी की थीं और तब भी कहता था कि अभी इतना ज्ञान नहीं हो सका है कि इन्हें काम में ले आऊँ। यद्यपि उसकी इच्छित बातों का आधा भी भेद नहीं खुला था पर कष्टसहिष्णुता से इस फन के दूसरे भेद इसे ज्ञात हो गए थे, जो मानो पहिले तथा अंतिम लोगों में प्रसिद्ध थे। कुरान के बहुत से आयतों व सूरों को विशिष्ट अर्थों के साथ आरंभ से अंत तक बड़ी योग्यता से घटा कर इस प्रकार यह उसकी व्याख्या करता कि सुनने में वह बहुत आकर्षक हो जाता था। इसने हदीसों, बड़ों की बातों तथा शेखों और सूफियों के शेरों को अर्थ सहित प्रकाशित किया। विचित्रता यह कि कठिन आयतों और हदीसों को विभिन्न धार्मिक पुस्तकों से लेकर तथा नियमित रूप से सजा-कर उन्हें तर्क में उपस्थित कर समर्थन करता और उन्हें अकाट्य बना देता। शोक है कि उसका सब ज्ञान संगृहीत न हो सका। अंत समय में इन पृष्ठों के लेखक ने इस बारे में उससे कहा भी पर शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। वह बुजुर्ग भी लेखन का शौक न रखने तथा अपरिचित होने से शोक से हाथ मलता रहा।

पहिले नष्ट हुए इन पृष्ठों को उसने दुहराया था। उसने अपना कुछ हाल स्वयं लिखा था जो थोड़े हेरफेर के साथ यहाँ दिया गया है।

लड़कपन में इसे शिकार का बहुत शौक था, यहाँ तक कि पाठशालों में मकड़ियों से मक्खी का शिकार करता इसलिए इसने लिखने पढ़ने में योग्यता न प्राप्त की। जब अवस्था प्राप्त हुआ तो पक्षियों की तथा उनकी बोली की शिक्षा प्राप्त करने में प्रयत्न किया। गुरुओं से पक्षियों के पालने, बीमारी तथा उनकी दवा के बारे में जो कुछ सुनता तो स्वयं सुलिपि न लिख सकने के कारण दूसरों से लिखआता। अंत में इस विशिष्ट आकांक्षा ने लिपि के अभ्यास की ओर इसे मोड़ा और यह कुछ अक्षरों को बिना शुद्धता के लिखता। अपनी समझ के लिए इसने चिन्ह बनाए थे। जब एक रोग पर कई दवाएँ विभिन्न विवरण के साथ मिलीं तब इसने पता लगाया कि स्यात् रोग भी कई प्रकार के हों। फिर यह पुस्तकें देखने लगा। ये दवाएँ बहुधा अरबी तथा यूनानी थीं तब एक को अनुसंधान के लिए दिया। वहाँ से ज्ञात हुआ कि इनमें लाभदायक गुण बहुत कम हैं। इससे 'कफायः मन्सूरी' को प्रमाण में माना। इसके अनंतर विश्वसनीय पुस्तकें एकत्र कर उनके अध्ययन से बहुत लाभ उठाया और इस प्रकार ज्ञान प्राप्त कर पक्षियों का विवरण तैयार कर चाहा कि पक्षी विद्या पर एक पुस्तक लिखे। इस विद्या के लिए तीन बातों की आवश्यकता है स्वास्थ्य, पक्षियों का ज्ञान तथा पूर्ण उत्साह। विशेष कर अंतिम की कि इसी से प्रथम दो हो जाते हैं। पक्षियों की औषधियों में बहुधा खान की निकली बस्तुएँ भी थीं इससे कीमिया की पुस्तकों पर

भी इसकी दृष्टि गई और कुछ सहज उपाय, जिसे पहिले के बड़ों ने लिखा है, इसे मिला। इसके मन में आया कि यह कई वस्तुओं का मिलावट है, जो मिलकर सोना तथा चाँदी में बदल जाता है पर इस प्रकार यदि हो जाता तो संसार में कोई दरिद्र न रह जाता। इस पर ध्यान देने से रुककर यह इस विद्या की पुस्तकों का मनन करने लगा पर वैसा ही पाया। इसका आश्चर्य बढ़ा कि ये पुस्तकें उन लोगों के नाम पर हैं जो प्रकट तथा आंतरिक विद्याओं के पूर्ण ज्ञाता थे। इन लोगों ने अकारण ही धन का नाश करने को इन्हें लिखकर लोगों को दुःख में डाल दिया है। विचार करने पर प्रकट हुआ कि इन लोगों ने भेदपूर्ण या रहस्यमयी भाषा में सब लिखा है पर यदि यह रहस्य पुस्तक से ज्ञात न हो तो ये लेख झूठ से बढ़कर नहीं हैं। ऐसे गुणियों से इस प्रकार झूठ से लोगों को दुःख में डालना आश्चर्य की बात है। इसलिए इन सब लेखों के अनुसार अनुभव करना छोड़ इसने स्वयं इस पर अनुसंधान करना आरंभ किया। सन् ११२२ हि० तक इन सब बातों पर इसने विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया और समझा कि जिसने जिस विद्या में योग्यता प्राप्त की, हिंदसा, हकीमी, ज्योतिष, रमल, तिलस्म आदि यहाँ तक कि तीरंदाजी तथा कबूतरबाजी की, उसने उस विद्या की गूढ़ बातों को अपनी शैली पर लिख दिया, विशेषकर बनावटी विद्याओं में तफसीर (कुरान की टीका) हदीस, किस्से आदि। शौक के कारण इन सबका इसने खूब परिशीलन किया और कुछ योग्यता प्राप्त कर ली। इसके अनंतर सूफी मत देखना आरंभ किया और उसका भी कुछ हाल मालूम किया। यह ज्ञात हुआ कि यह ज्ञान धर्म तथा संसार की मिलावट

है। अर्थात् अज्ञात के अज्ञात से लेकर सिद्ध मनुष्य तक और उन सब पर विचार इन लोगों के लिए कारीगरी की विद्या की तरह समान है क्योंकि उससे धर्म तथा संसार के विचार ज्ञात होते हैं और उसी से अशुद्ध बातें कट जाती हैं। इसी से कुरान के भेद ज्ञात होते हैं और हदीस की कठिनाइयाँ हल होती हैं। इस पर यह गहरे समुद्र में जा पड़ा और कीमिया का सारा संसार भूल गया। देखता हूँ कि कहाँ पहुँचता है। अंत है बातों का।

इस लिखने के बाद दो महीना न बीता था कि वह मर गया। शुभ बातें कहने में यह निर्द्वंद्व था और सिफारिश भी करता। मिलनसारी तथा शालीनता थी और सहानुभूति के साथ सबसे मिलता तथा दुखियों को सान्त्वना देता। आसफजाह के इस संदेश पर कि ये मुत्सद्दियों के प्रार्थनापत्र हैं और ऐसे लोगों के लिए क्यों कुछ कहते हो, यह कुछ दिन चुप रहा। परंतु इसने फिर वही कार्य आरंभ किया। इसकी बातें ऐसी होती थीं कि चित्त पर असर कर उन्हें स्वीकृत करा देती थीं और यह भूमिका भी अच्छी बाँधता था, जो सर्दार को अच्छी लगती थी पर ऐसा होते भी व्यय में गुंजाइश न थी। यद्यपि इसका मंसब पाँच हजारी था पर यह सिपाहियों की चाल पर रहता प्रत्युत् फकीरों की चाल पर तब भी कुछ न बचता। एक मात्र पुत्र रहीमदाद जो बैसवाड़ा की फौजदारी के समय पैदा होकर पालित हुआ था, आमिल था। उसके मन में जो आता वही उठाकर दे देता। उसको बहुत समझाया गया पर उसने कुछ ध्यान न दिया। कभी बाकी लौटाने का उल्लेख न कर फारखती लिखकर तथा अपनी व संतानों

की मुहर दे देता। इसका धर्म इमामिया था और इसने बहुत सी विभिन्न पुस्तकें तैयार कीं। यद्यपि ये लाभदायक न थीं पर सैयदों के बड़प्पन वर्णन करने में इसने बहुत प्रयत्न किया था। इसका विश्वास था कि यह जाति नबियों के वंश से संबंध रखने के कारण बहुत बुजुर्ग होगी और शरीअत की कितनी आज्ञाओं से सारे मनुष्यों में से केवल ये मुक्त हैं। कहता हूँ कि यदि इनमें विशेपता या अधिकता है तो साधारण स्वरूप से ये कोई विशिष्टता नहीं रखते। उत्तर में कहा जाता है कि विश्वासी बनो। अर्थात् जब खुदा ने अपनी दया तथा प्रेम से अपनी संतानों से बढ़कर उन पर कृपा न की और बराबरी की आज्ञा की तब यदि उम्मत के लोग आदमी की पवित्र नसल पर उसके ऐसे उपकार में विभेद डाल दें, जिसमें दूसरे साझी न थे तो वह उदारता के नियम के बाहर न होगा और न भक्ति तथा सेवा के स्वभाव से दूर होगा। अज्ञान में एक सैदानी से निकाह कर लिया, जिसका पिता हैदर अली खाँ प्रसिद्ध शाह मिर्जा हैदराबादी का पौत्र था जो माजिंदरान के सैयदों में से था। जानने पर इसने छोड़ना चाहा और शोक किया। इसके बाद अपनी जाति तथा मुगलों में निकाह किया, जिनसे हर एक से संतानें थीं। एक लड़के उम्म तुलहबीब को बहादुरशाह की मृत्यु पर पुत्रवत् माना। उसकी मृत्यु पर दक्षिण अपने पिता के पास चला आया। भारी ऐश्वर्य में पला हुआ था इससे वह बेतकल्लुफी से खाली न था। पिता की मृत्यु को छ महीने न बीते थे कि यह भी मर गया। इसके पुत्रों में से एक अलयूम अपने देश में है और फख्रुद्दीन खाँ तथा दूसरे मंसब तथा जागीर पा चुके हैं। इसका भतीजा तथा दामाद

जाँबाज खाँ ढाई हजारी मंसबदार है। इन पंक्तियों का लेखक आरंभ में उसी मृत के प्रयत्न से दक्षिण में जम गया। इसके अनंतर इस दुरंगी दुनिया का ऊँचा नीचा देखते हुए वह आसफ-जाह तक पहुँचा। जिस एकांतवास के कारण यह पुस्तक लिखी गई और बेकारी बिताने में सहायता मिली उसमें दो वर्ष उस बुजुर्ग के पास बैठने तथा साथ रहने का अवसर मिला। खान पान के नियम तथा उठने बैठने की मर्यादा की स्वभाव में बेपर-वाही होते हुए भी वह दोनों पक्ष में देखने में आया। बड़ों में जो बड़प्पन होनी चाहिए था वह कुछ नहीं छोड़ा। इसमें स्वभावतः भलाई भरी हुई थी। शुक्र है खुदा का कि आरंभ तथा अंत उसी की कृपा से हुआ। समाप्ति के शेर उसी के हैं।

मुनइम खाँ खानखानाँ बहादुरशाही

इसका पिता सुलतानबेग बर्लास जाति का था और आगरे के कुछ भाग का कोतवाल था। यह बादशाही काम से कश्मीर भी गया था। इसकी मृत्यु के अनंतर मुहम्मद मुनइम ने रोजगार की खोज में दक्षिण जाकर बादशाही सेना में अपनी योग्यता तथा वीरता से मीर बख्शी रूहुल्ला खाँ की मध्यस्थता प्राप्त की और बख्शीउल्मुल्क ने इसके लिए मंसब प्राप्त कर अपनी मुहर इसे दिया। इसके अनंतर अपने भाग्य के बल से उन्नति कर यह औरंगजेब का परिचित हो गया तथा कई सेवाओं पर नियत हुआ। ३४ वें वर्ष में मीर अब्दुल्करीम मुल्तफित खाँ के स्थान पर हफ्तचौकी का अमीन नियत हुआ। ४६ वें वर्ष में यह फीलखाने का दारोगा बनाया गया। जब खेलना की चढ़ाई में यह मुहम्मद अमीन खाँ की सहायता को नहीं पहुँचा और इसने देर किया तब मंसब कम कर तथा पद से हटाकर इसे दंड दिया गया। इसके अंतर यह बादशाह के बड़े पुत्र शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम की सरकार का आलम खाँ के स्थान पर दीवान नियुक्त किया गया। इसी के साथ काबुल की दीवानी भी इसे मिली। अपनी अच्छी सेवा तथा व्यवहार से यह शाहजादे का कृपापात्र हो गया। ४९वें वर्ष में पंजाब की सूबेदारी जब शाहजादे के वकीलों के नाम हो गई तब शाहजादे के प्रस्ताव पर यह उक्त खाँ का नायब तथा जम्मू का व्यक्तिगत फौजदार नियत हुआ। इसका मंसब

डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया। अच्छे उपायों तथा वीरता से वहाँ के उपद्रवियों तथा विद्रोहियों को दमन कर यह प्रबंध तथा न्याय करता रहा। यह योग्य अनुभवी पुरुष शाहजादे के प्रति दृढ़ राजभक्ति रखता था इसलिए परिवर्तित होते हुए समय को देखते हुए यह गुप्त रूपसे उसके साम्राज्य के लिए प्रयत्न करता रहा। दैवयोग से २५ जीहिज्जा सन् १००८ हि० को औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मुनइम खाँ को मिला। शाहजादे के पेशावर से, जो काबुल का गर्म निवासस्थान है, चित्ताकर्षक राजधानी लाहौर को २ सफर महीने को पहुँचने तक मुनइम खाँ लगभग पाँच सहस्र सवार तथा भारी तोपखाना एकत्र कर और राजगद्दी का समान ठीक कर शाहदौला पुल के उस ओर सेवा में उपस्थित हुआ। सरहिंद पहुँचने तक यह चार हजारी २००० सवार का मंसब, खानजमाँ की पदवी, तोग़ वडंका पाकर सम्मानित हुआ। आगरे पहुँचने तक इसके प्रयत्नों तथा अच्छी सेवाओं से पचीस सहस्र सवार शाहजादे की सेना के सिवा, जो इसका आधा था, बादशाही छत्रछाया के नीचे इकट्ठा हो गया। इसके उपलक्ष में इसका मंसब पाँच हजारी का हो गया और बहादुर जफर जंग की पदवी भी बढ़ाई गई। मुहम्मद आजमशाह के युद्ध में प्रयत्न करने में इसने विजयी का साथ दिया था। जब मुहम्मद आजमशाह अपना निवासस्थान अपनी सौतेली बहिन ज़ीनतुन्निसा बेगम की रक्षा में तथा ग्वालियर जुमलतुलमुल्क असद खाँ के हाथ में छोड़ कर आगे बढ़ा तब बहादुर शाह, जो बहुत विनम्र तथा धर्मभीरु था, मुसलमानों के मारे जाने के भय से अपने भाई को लिखा कि पिता की वसी-

अत के अनुसार दक्षिण, मालवा तथा गुजरात तक तुम्हें मिला है और हिंदुस्तान हमें। यदि शील के विचार से तेलिंगाना बीजापुर के साथ कामबख्श को देदो, जो छोटा भाई पुत्र के समान है तो हम अपने हिस्से से तुम्हारा हिस्सा बढ़ा देंगे और यह बहुत अच्छा होगा। यदि यह बात तुम्हें पसंद न आवे तो यँह क्या ठीक होगा कि अपने स्वार्थ के लिए नश्वर राज्य के लिए लड़ें और बहुत से लोग अपने प्राण और धन गवावें। हम तुम अकेले अकेले युद्ध कर लें। ऐसी सूरत में तुम्हारा ही मन चाहा है क्योंकि अपने तलवार के सामने तुम किसी को कुछ नहीं समझते।

कुछ लोगों का कहना है कि बहादुरशाह को इस वसीअत का ज्ञान नहीं था पर अंतमें औरंगजेब ने उसे फर्मान लिखा, जिसके लिफाफे पर अपने हस्ताक्षर से लिखा था कि अलस-लामोअलैक या वाली उल्हिंद। इसीसे उसने जाना। जो कुछ हो जब यह समाचार मुहम्मद आजमशाह के पास पहुँचा तब उसने लिखा कि यह बँटवारा उसे स्वीकार नहीं है और दूसरा ऐसा बँटवारा पेश किया जो किसी हालत में मानने योग्य न था। शैर का अर्थ—

फर्श से अटारी तक तो मेरा है,
और अटारी से आकाश तक तेरा है।

इसके बाद क्रुद्ध होकर एलची से कहा कि इस बुड्ढे ने शेख सादी का गुलिस्ताँ नहीं पढ़ा है कि एक देश में दो बादशाह नहीं होते। शैर का अर्थ—

जब कल सूर्य ऊँचा होगा तब मैं,
गुर्ज, मैदान व अफरासियाब।

१८ रबीउल् अव्वल को आगरे से दस कोस पर हाजू के पास दोनों का सामना हुआ। खानजमाँ भारी सेना तथा अन्य शाहजादों के साथ बाईं तथा दाहिनी ओर से उस समय पहुँचा जब बेदारबख्त अजीमुश्शान को तीन ओर से घेर चुका था। कड़े धावे तथा घोर युद्ध हुआ। यहाँ तक कि गोला इसके दाहिनी ओर बगल के नीचे पहुँच गया और यद्यपि हड्डियाँ पूरी बच गईं पर कुल माँस व चमड़ा पीठ तक का निकल गया। तब भी युद्ध में पाँव पीछे न हटा यह दृढ़ बना रहा जिससे मुहम्मद आजम अपने दो पुत्रों बेदारबख्त व वालाजाह के साथ मारा गया। 'हाय मुहम्मद आजम' से तारीख निकलती है। खानजमाँ आजमशाह के परिवार तथा माल व सामान की उस उपद्रव में रक्षा करता हुआ अर्द्धरात्रि के लगभग बादशाह के पास पहुँचा और उस घाव से बेहोश हो गया। उसी महीने की २६ तारीख को इसे खानखानाँ बहादुर जफरजंग की ऊँची पदवी तथा सात हजारी ७००० सवार का मंसब और प्रधानमंत्री का उच्च पद मिला। इसके सिवा एक करोड़ रुपया नगद व एक करोड़ का सामान बादशाह की ओर से मिला, जैसा तैमूरिया राजवंश के आरंभ से किसी सर्दार को नहीं मिला था। १० रबीउल्आखिर को बादशाह दहरआरा बाग में इसे देखने आए, जो उसी घाव के कारण शैया पर पड़ा था और इसको बहुत सांत्वना दी क्योंकि यह विजय इसीके तलवार की जोर तथा सम्मति से प्राप्त हुई थी। इसने जो दस लाख रुपए की भेंट दी उसमें से केवल एक

लाख की बादशाह ने स्वीकार किया। ८ जमादिउल्अव्वल को वज़ीर का पद तथा आगरे की सूबेदारी का भार इसने लिया। ३ रे वर्ष में बादशाह के सामने नौबत बजाने की आज्ञा पाकर यह सम्मानित हुआ। ४ थे वर्ष जब बहादुरशाह विद्रोही कर्दी को दमन करने के लिए शाहधौरा पहुँचकर ठहरा तब खानखानाँ शाहज़ादा मुहम्मद रफीउश्शान की अधीनता में उस कार्य पर भेजा गया। वह विद्रोही बहुत लड़ने के बाद लोहगढ़ में जाकर घिर गया। शाही सेना ने पीछा न छोड़कर उस दुर्ग को घेर लिया। उस अदूरदर्शी के सहायक तथा साथी लोग, जो प्राण देने को दूसरे लोक में अविनश्वर जीवन पाना मानते थे, बड़ी वीरता तथा उत्साह से मोर्चों पर धावा करते रहे। बहुत से उनमें मारे गए। एक मुद्दत बाद खाने का सामान न रहने पर कलाबा नाम का तंबाकू बेचनेवाला एक खत्री उस विद्रोही का छद्मवेश धारण कर उसके स्थान पर बैठा और कर्दी एक झुंड के साथ बादशाही मोर्चे पर धावा कर पास के बर्फीराजा के देश को चला गया। उस दुर्ग पर अधिकार होने के बाद बादशाही आदमियों ने कलाबा को इस शान से देखकर उसी को कर्दी समझ लिया और कैद कर खानखानाँ के पास लाए। खानखानाँ ने फुर्ती से यह सुसमाचार भेजकर प्रशंसा पाई। डंका बजने तथा दीवानआम होने की आज्ञा हुई। यह भी आदेश हुआ कि छड़दार पिंजरा भी शीघ्र तैयार हो। इसके अनंतर जब पूछताछ से ज्ञात हुआ कि बाज उड़ गया और उल्लू फँसा है तब खानखानाँ लज्जित हुआ और अपने आदमियों की भर्त्सना करते हुए कहा कि सब पैदल होकर बर्फीराजा के पहाड़ों में चलें व कर्दी

को पकड़ लावें या राजा को कैद करें। इसने राजा को भी लिखा कि उसे कैद करा देने में वह अपनी भलाई समझे। कहते हैं कि जुल्फिकार खाँ के हरकारों ने उक्त खाँ के संकेत पर जो उससे ईर्ष्या करता था पहाड़ों से शाही पड़ाव तक यह प्रसिद्ध कर दिया कि कर्दी पकड़ा गया। खानखानाँ के हरकारों ने भी एक पेशा होने से उनकी बातपर विश्वास कर यही समाचार कई बार सुना दिया और इसने भी बादशाह से कह दिया। जुल्फिकार खाँ ने इसपर कहा कि स्यात् यह भी ठीक नहीं है। इसके अनंतर ज्ञात हुआ कि वह भी झूठ था। यद्यपि राजा को कैद में लाकर दिल्ली में उसी लोहे के पिंजड़े में बंद कर दिया पर खानखानाँ को लज्जा पर लज्जा मिली, जिससे वह क्रोध से बीमार हो गया और दिमाग खराब हो गया। उसी समय उसकी मृत्यु हो गई।

खानखानाँ बहुत उदार तथा सुशील था, उसमें जरा भी घमंड नहीं था और पुरानी मित्रता का विचार तथा गुणग्राहकता का सदा ध्यान रखता। यहाँ तक कि पुराने परिचय के कारण कम मंसबवालों को भी अभ्युत्थान देता। यद्यपि दान पुण्य आदि खुले हाथ न करता पर तब भी उदार काम में कमी न करता। मंत्रित्व के कार्य को बिना स्वार्थ या लोभ के अच्छी प्रकार करता रहा। कचहरी के समय सजावल नियत रहते कि कोई प्रार्थना पत्र बिना हस्ताक्षर के दूसरे दिन के लिए न रह जाय। घोड़े ऊँट आदि पशुओं की खोराक का उत्तरदायित्व मंसबदारों से लेकर उसकी नई तहसील का ढंग निकाल दिया। औरंगजेब के राज्यकाल में मंसबदारों ही पर पशुओं का व्यय था, पर उनकी जागीर की आय के बाकी रहने से या आय थोड़ी होने से तथा

मुद्दत बाद मिलने से आधा या तिहाई व्यय उन पशुओं का नहीं पूरा होता था तब उसके आवश्यक व्यय कैसे पूरे होते। फील-खाने के दारोगा, आख्ताबेगी तथा दूसरे मुत्सद्दी बड़ी कठोरता से वकीलों से खुराक का धन माँगते थे और कहीं कुछ सुना नहीं जाता था। निरुपाय हो वकीलों ने त्यागपत्र दे दिया। खानखानाँ ने निश्चित किया कि वेतन के समय ही पशुओं के व्यय के अनुसार धन जागीर से काटकर बाकी लिखा जाया करे। इस कारण आजतक वही प्रथा चलती है। मिसरा—अच्छे लोग चले गए और प्रथाएँ रह गईं।

इसमें वे अच्छे गुण थे, जिनसे योग्यता समझी जाती है। शैर भी कहता था और इसकी रुचि सूफी धर्म की ओर थी। 'इलहामात मनेअमी' नाम से एक पुस्तक इसने लिखी है पर अच्छे भाव नहीं हैं। यथातथ्य वर्णन के साथ अच्छे शैरों में कुछ गूढ़ बातें कह देता था। साहित्य मर्मज्ञों में कोई प्रशंसा और कोई निंदा से इसके उत्कर्षता का वर्णन करता था। इलहाम में अपने स्वर्ग की सैर तथा वहाँ से खुदा के तख्त के नीचे पहुँचने का वर्णन करते हुए उसे स्वप्न में संपुटित कर दिया है। विरक्ति भाव नहीं है। यद्यपि इलहाम विशेषकर पैगंबरों से संबंध रखता है इससे इसका दावा व्यर्थ है और अदब की ओर शंका पैदा करता है। आराम पसंद तथा कष्ट भीरु होते हुए भी यह चाहता था कि इसका नाम समय-पट पर बना रहे इसलिए इसने हर एक नगर में हवेली, सराय या कटरा बनवाया था और हर जगह भूमि तथा अमले के लिए धन भेजता था। अदूरदर्शी मुत्सद्दीलोग खुशामद के लिए जमीन तथा गृह आदमियों से अत्याचार कर

ले लेते थे। अत्याचार की जड़ खराबी पैदा करती है इससे किस प्रकार स्थायी काम हो सकता था। बहुत से मकान तैयार न हो सके और बनवानेवाले के मरने पर पहिले से भी अधिक खराब होगए। कहते हैं कि खानखानाँ बहुधा नजूल मकान बादशाही सरकार से खरीद लेता था। एक दिन मुखलिस खाँ मुगलबेग ने कुविचार से बादशाह से कहा कि ईश्वर की कृपा से हिंदुस्तान सात इकलीम का जोड़ है। यदि यह बात कि हिंदुस्तान का बादशाह जमीन अपने नौकर के हाथ बेंचता है, ईरान या रूम के शाहों के कान तक पहुँचे तो कैसी अप्रतिष्ठा हो। असावधानी के लिए प्रसिद्ध बादशाह ने कैसी बुद्धिमानी का उत्तर दिया कि ऐ मुखलिस खाँ, हम क्या बुरा करते हैं, पड़ती जमीन बेकार उसे देते हैं और वह उस पर धन व्यय कर गृह बनवाता है। वह वृद्ध होगया ही है, कल मरेगा तब फिर सरकार में सब जब्त हो जायगा।

बहादुर शाह की राजगद्दी के अनंतर इसके बड़े पुत्र नईम खाँ का मंसब बढ़ने से पाँच हजारी ५००० सवार का होगया और इसे महाबत खाँ तथा सुनी सुनाई बात से मकरम खाँ खानजमाँ बहादुर की पदवी मिली। यह तीसरा बख्शी भी उसी समय नियत हुआ। जब जहाँदार शाह बादशाह हुआ तब जुल्फिकार खाँ ने पुराने वैमनस्य के कारण इसे बादशाह के क्रोध में डाल दिया और कैद करा दिया। मुहम्मद फर्रुखसियर की राजगद्दी पर अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ पुराने संबंध तथा मित्रता के कारण इसकी फरियाद को पहुँचा और अपने साथ दक्षिण लिवा गया। अंत में एमादुल् मुल्क मुबारिज खाँ का साथ देकर यह

सन् ११३६ हि० के युद्ध में, जो निजामुल् मुल्क आसफजाह से हुआ था, उपस्थित था। दूसरा पुत्र खानःजाद खाँ बहादुर शाह के राज्य के आरंभ में चारहजारी ३००० सवार के मंसब तक पहुँचा था।

मुनइम बेग खानखानाँ

यह हुमायूँ के राज्यकाल के अच्छे सरदारों में से एक था। इसके पिता का नाम बैरम बेग था। जिस समय हुमायूँ बादशाह को दुर्भाग्य ने घेरा और सिंध के सिवाय कोई स्थान ठहरने योग्य बादशाह की नज़र में नहीं आया तब वह कुछ दिन भक्कर के पास ठहरा रहा। इसके अनंतर यहाँ से हटने पर उसने सेहवन दुर्ग को जाकर घेर लिया। ठट्टा का शासक मिर्जा शाह हुसेन आगे बढ़कर मार्गों को बंद करने और अन्न को हटाने में दत्तचित्त हुआ। बहुत से सरदारगण बिना आज्ञा लिए चल दिए। मुनइम खाँ ने भी, जो इन सबका मुखिया था, चाहा कि अपने भाई फजील बेग के साथ अलग हो जाय पर बादशाह ने उसको सावधानी के कारण कैद कर लिया। यद्यपि यह एराक की यात्रा में हुमायूँ के साथ नहीं रहा पर ईरान से लौटने पर बराबर इसका सम्मान तथा मुसाहिबी बढ़ती गई। यह भी राजभक्ति का ध्यान रखता था। जिस समय हुमायूँ बादशाह बैराम खाँ के बारे में कुसमाचार सुनकर, जिसको अपने स्वार्थ के विचार से कुछ द्वेषियों ने झूठ ही कह दिया था, कंधार गया और वहाँ से लौटते समय उसका विचार हुआ कि मुनइम खाँ को वहाँ का अध्यक्ष नियत करे तब इसने प्रार्थना की कि बादशाह का हिंदुस्तान पर चढ़ाई करने का विचार है इसलिए ऐसे अवसर पर अदल बदल करने का सेना में बुरा प्रभाव पड़ेगा। विजय के

अनंतर जैसा उचित हो वैसा किया जाय। इस पर बैराम खाँ कंधार का अध्यक्ष बना रहा। उसी समय सन् ६६१ हि० में यह काबुल में शाहजादा महम्मद अकबर का शिक्षक नियत हुआ और इस सम्मान के उपलक्ष में इसने मजलिस की और योग्य भेंट दिया। जब इसी वर्ष के अंतमें हुमायूँ बादशाह हिंदुस्तान की चढ़ाई पर रवाना हुआ तब शाहजादा मुहम्मद हकीम को, जो एक वर्ष का था, काबुल में छोड़कर उस प्रांत के कुल कार्य्य को दृढ़ करने के लिए मुनइम खाँ को वहाँ नियत किया। यह बहुत दिनों तक उस प्रांत के कार्य पूरा करता रहा। जब अकबर बादशाह बैराम खाँ से बिगड़ गया तब यह आज्ञा के अनुसार सन् ६६७ हि० जीहिज्जा महीने में ५ वें जलूसी वर्ष में लुधियाना पड़ाव पर, जहाँ बादशाह बैराम खाँ का पीछा करते हुए उपस्थित थे, सेवामें पहुँच कर वकील का पद और खान-खानाँ की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। ७ वें वर्ष में जब शम्सुद्दीन अतगा खाँ अदहम खाँ के उपद्रवी तलवार से मारा गया तब मुनइम खाँ शंका के कारण भाग गया क्योंकि यह गुप्त रूपसे उस षड्यंत्र में मिला हुआ था। अकबर ने मीर मुंशी अशरफ खाँ को भेजा कि इसे समझा बुझाकर लौटा लावे। कुछ दिन नहीं बीते थे कि फिर उसी शंका से काबुल जाने का विचार कर इसने आगरे से निकल कर पहाड़ का मार्ग लिया। छ दिन यात्रा करता हुआ सक्खर परगना में, जो मीर मुहम्मद मुंशी की जागीर में था, यह पहुँचा। वहाँ के आमिल ने इसके मुख पर भय के चिन्ह देखकर हाल पूछा और चाहते न चाहते हुए भी कैदी कर लिया। उस स्थान के पास एक भारी सरदार सैयद महमूद

खाँ बारहा की भी जागीर थी और वह यह वृतांत सुनकर जान गया कि यह खानखानाँ है। समय को गनीमत समझ कर उसने मनुष्योचित व्यवहार किया और बड़े सम्मान से बादशाह के पास लिवा ले गया। अकबर ने पहिले की तरह इसे वकील के पदपर नियत कर दिया। जब इसका पुत्र गनी खाँ, जो अपने पिता का प्रतिनिधि होकर काबुल का प्रबंध कर रहा था और यौवन, प्रभुत्व तथा कुसंग की मस्ती से दूसरों की हानि से अपना लाभ समझ कर उपद्रव करने लगा और मिर्जा मुहम्मद हकीम का कुछ भी हाल चाल न पूछता था तब मिर्जा की माता माह-चूचक बेगम तथा हितैषियों ने निरुपाय होकर अंधे फजील बेग और उसके पुत्र अबुल्फतह के साथ, जो अपने भतीजे की हुकूमत से कुढ़ गया था, निश्चय किया कि जिस समय गनी खाँ पालीज की सैर से लौटकर आवे उस समय शहर का फाटक बंद कर दिया जाय। जब उसने देखा कि कोई प्रयत्न सफल न होगा और कैद हो जाने की आशंका है तब काबुल से मन हटा-कर हिंदुस्तान की ओर चल दिया। बेगम ने फज़ील बेग को मिर्जा का वकील नियत किया और उसके पुत्र को उसका प्रति-निधि बनाया। इसके अनंतर जागीर बाँटी और अच्छी पदवियाँ भी लोगों को दीं। कुछ दिनके अनंतर अबुल्फतह ने औचित्य छोड़कर शाहवली आदि के साथ अपने प्रभुत्व को मस्ती में यहाँ तक पहुँचा दिया कि फज़ील बेग को पकड़ कर मार डाला।

जब काबुल की इस दुरवस्था का अकबर को पता लगा तब उसने मुनइम खाँ को मिर्जा मुहम्मद हकीम का अभिभावक नियत कर, जो वहाँ जाने के लिए बड़ा इच्छुक था, ८ वें वर्ष में अच्छी

सहायक सेना के साथ भेजा, जिसमें वह अपने पुत्र का बदला ले और वहाँ का प्रबंध ठीक करे। मुनइम खाँ काबुलियों को ठीक तौर पर न समझ कर सहायक सेना के आने के पहिले ही जल्दी से रवाना हो गया। बेगम वली अतगा को विद्रोह की शंका में प्राण दंड देकर और हैदर कासिम कोहबर को वकील नियत कर स्वयं राजकाज देखती थी। इस समाचार को सुनते ही वह चारो ओर से सेना एकत्र कर मिर्ज़ा के साथ युद्ध के लिए बाहर निकली। जलालाबाद के पास दोनों पक्षमें युद्ध हुआ, जिसमें मुनइम खाँ परास्त हुआ और उसकी सरदारी का सारा सामान नष्ट हो गया। इससे शत्रु के डर से कहीं ठहरना उचित न समझ कर यह गखरों के देश में चला आया। यहाँ से इसने बादशाह के पास प्रार्थना पत्र भेजा कि दरबार में आने का मेरा मुँह नहीं है इसलिए या तो मुझे मक्का जाने की आज्ञा मिले या इसी जिले में जागीर दी जाय, जिसमें अपना सामान ठीक कर दरबार में आ सकूँ। अकबर ने गुण-ग्राहकता से हिंदुस्तान की उसकी जागीर बहाल रखकर दरबार बुला लिया। इसने नये सिरेसे बादशाह की असीम कृपा प्राप्तकी और बहुत दिनों तक राजधानी आगरा का अध्यक्ष रहा। जब १२ वें वर्ष में खानजमाँ और बहादुर खाँ उचित दंड को पहुँचे तब दोनों भाई के जौनपुर से चौसा नदी तक के ताल्लुके पर यह नियत हुआ।

इसी वर्ष खानखानाँ ने अपनी योग्यता तथा अनुभव से बंगाल और बिहार के शासक सुलेमान किर्रानी से मित्रता कर बंगाल प्रांतमें भी बादशाही सिक्का और खुतबा प्रचलित करा दिया। वह सलीम शाह के सरदारों में से था। जिस समय

बंगाल शेरशाह के हाथ में पड़ा तब वहाँ का शासन मुहम्मद खाँ को सौंपा गया, जो उसका पास का संबंधी था। सलीम शाहकी मृत्यु पर वह साम्राज्य के विरुद्ध स्वतंत्र बनकर मर गया। उसके पुत्र बहादुर खाँने वहाँ का खुतबा और सिक्का अपने नाम कर लिया और प्रसिद्ध अदली को जिसने हिंदुस्तान का दावा किया था, युद्ध में मारडाला। इसके बहुत दिनों के अनंतर बीमारी से यह मर गया। इसका छोटा भाई जलालुद्दीन उत्तराधिकारी हुआ। ताज खाँ किर्रानी, जो अपने भाइयों के साथ अदली के यहाँ से भाग कर बंगाल में रहने लगा था, कभी उससे शत्रुता और कभी मित्रता करता। जब वह भी मर गया तब बंगाल और बिहार का राज्य ताज खाँ को मिल गया और उसके अनंतर उसका भाई सुलेमान खाँ स्वामी हुआ।

खानखानाँ की इस संधिके अनंतर उसने उड़ीसा पर भी अधिकार कर वहाँ के राजा को मार डाला। सन् ९७९ हि० में (सन् १५७२ ई०) वह मर गया। उसके बड़े पुत्र बायजीद ने गद्दी पर बैठकर उद्दंडता से उस प्रांत का खुतबा अपने नाम करा लिया। खानखानाँ को उससे बिहार के पास कई युद्ध करने पड़े। घमंड तथा उद्दंडता के कारण इसने उस प्रांत के सरदारों के साथ कड़ाई का व्यवहार किया था इसलिए एमाद के पुत्र हाँसू ने, जो उसका भतीजा तथा दामाद था, रुष्ट होकर तथा कुछ लोगों को मिलाकर इस कार्य पर वाध्य किया कि वे उसको मार डालें। लोदी खाँ ने, जो उस प्रांत का प्रभावशाली व्यक्ति था, सुलेमान के छोटे पुत्र दाऊद को सरदार बनाकर उक्त हाँसू को मारडाला। गूजर खाँ किर्रानी ने जो अपने को मीर शमशेर

समझता था, बिहार प्रांत में वायजीद के पुत्र को खड़ाकर आपस में शत्रुता करा दी। लोदी खाँ भारी सेना के साथ बंगाल से बिहार को लेने के लिए चला और उपाय तथा कपट से गूजर खाँ को अपना अनुगामी बना लिया।

जब खानखानाँ बादशाह की आज्ञा के अनुसार बिहार प्रांत पर अधिकार करने के लिए सोन नदी के पार उतरा तब दाऊद खाँने लोदी खाँ से सशंकित हो जाने के कारण उसको बीच में से हटा दिया और पटना दुर्ग में जा बैठा। तब खानखानाँ की प्रार्थना पर घेरे में सहायता करने के लिए अकबर १९ वें वर्ष सन् ९८२ हि० में आगरे से बड़ी नावों पर सवार होकर, जो नई तैयार की गई थीं, पूर्व की ओर नदी से रवाना हुआ। मार्ग में कुछ नावें आँधी में डूब गईं तब भी बादशाह दो महीना आठ दिन में पटने के पास पहुँच गए। कहते हैं कि जब बादशाह फुर्ती से पटने की ओर चले तब गंगदासपुर में सैयद मीरक इस्फहानी जफरी से इस कार्य के विषय में भविष्य का हाल पूछा। उसने जफर पुस्तक मँगाकर यह शैर पढ़ा। शैर का अर्थ—सौभाग्य से अकबर ने शीघ्रता से दाऊद के हाथ से देश ले लिया। अकबर ने हाजीपुर को ले लेने पर, जो गंगा नदी के उस पार पटना के सामने स्थित है, पटना के विजय का शुभागम समझ कर उसके घेरे का प्रबंध किया। उसके टूटने पर दाऊद हारकर नदी के मार्ग से बंगाल भाग गया, उसके बहुत से सिपाही भागने में मारे गए और पटना काफी लूट के साथ अधिकार में आया। इस घटना की तारीख 'फतह बलाद पटना' (सन् ९८२ हि०, सन् १५७५ ई०) से निकलती है।

इस विजय के अनंतर खानखानाँ बिहार का जागीरदार नियत होकर बीस सहस्र सवारों के साथ बंगाल पर अधिकार करने और दाऊद को दंड देने पर नियुक्त हुआ। अफगानों ने विजयी सेना के प्रभाव तथा संख्या से साहस छोड़ दिया और बिना युद्ध किए ही दृढ़ स्थानों को छोड़कर भाग गए। खानखानाँ हर स्थान को दृढ़ करता हुआ आगे बढ़ता गया, यहाँ तक कि दाऊद उड़ीसा की ओर भागा। उक्त खाँ सेनापति ने महम्मद कुली खाँ बर्लास के अधीन एक सेना उसका पीछा करने को भेजी और स्वयं टाँड़ा पहुँच कर, जो बंगाल का केंद्र है, प्रांत का प्रबंध करने लगा। दरबार के कर्मचारियों ने बिहार की जागीर के बदले में बंगाल में इसका वेतन कर दिया। जब दाऊद खाँ बंगाल और उड़ीसा के बीच में स्थान दृढ़ कर ठहर गया और महम्मद कुली खाँ बर्लास, जो पीछा कर रहा था, मर गया तब राजा टोडरमल की सम्मति से खानखानाँ स्वयं टाँड़े से उस ओर रवाना हुआ। उसी वर्ष दोनों पक्ष में घोर युद्ध हुआ। गूजर खाँने, जो शत्रु के हरावल में था, खानखानाँ के हरावल तथा मध्य को अस्त व्यस्त कर दिया। खानखानाँ के सेवकों में से किसी ने भी वीरता तथा दृढ़ता नहीं दिखलाई पर इसने स्वयं कुछ सेना के साथ लड़कर चोट खाई। इस पर भी पहुँचने पर कहा कि यद्यपि सिर का घाव अच्छा है पर आँखों को हानि पहुँची और गर्दन पर घाव आ गया है कि अब इतनी शक्ति नहीं है कि पीछे देख सकूँ तथा कंधे की चोट से हाथ ऐसे हो गये हैं कि सिर तक नहीं पहुँचते। ऐसी चोटों के लगने पर भी यह लौटना नहीं चाहता था पर इसके हितैषी बागडोर पकड़ कर लौटा लाये। गूज़र खाँ ने

इस युद्ध में अपनी विजय समझ कर ऊँचे स्वरसे कहा था कि खानखानाँ का काम तमाम हो गया, अब युद्ध में और प्रयत्न का क्या काम है। पर इसके अनंतर धीरे से उसने कहा कि इस विजय के कारण भी मन प्रसन्न नहीं होता और इतने ही में एकाएक एक तीर उसे लगा, जिससे वह मर गया। दाऊद, जो राजा टोडरमल का सामना कर रहा था, यह सुनकर साहस छोड़ कर भाग गया। खानखानाँ ऐसी निराशा के अनंतर इतनी बड़ी विजय पाकर राजा को शाहिम खाँ जलायर के साथ सेना के पीछे नियत कर स्वयं भी घावों को रहते हुए आगे रवाना हुआ। उड़ीसा के अंतर्गत कटक के दुर्ग में दाऊद खाँ जा बैठा और अंत में चापलूसी की बातचीत कर संधिकी प्रतिज्ञा की और बादशाही सेवा स्वीकार करने की शर्त पर भेंट करना निश्चय हुआ। सन् ९८३ हि० के प्रथम मुहर्रम को खानखानाँ ने संधि का जलसा बड़े समारोह के साथ तैयार कराया जिसे देखकर लोग आश्चर्य में पड़ गए। बादशाही सरदार गण स्वागत कर दाऊद को लिवा लाए। खानखानाँ ने गालीचे के सिरे तक जाकर स्वागत किया। दाऊद ने अपनी तलवार खोलकर उसके सामने रख दिया। उसका तात्पर्य था कि सैनिक सरदारी को छोड़ता हूँ और अपने को बादशाही सेवा में सौंपता हूँ तथा बादशाही सरदार गण जो उचित समझें करें। तबकाते अकबरी का लेखक कहता है कि दाऊद ने तलवार रख कर खानखानां से कहा था कि जब तुम्हारे से मित्रों को चोट पहुँची तो मैं सैनिक कार्य से दुखी हूँ।

खानखानाँ ने उसकी तलवार को अपने सेवकों को सौंप दिया। कुछ दिन के अनंतर दरबार से आया हुआ भारी खिल-

अत देकर उसके कमर में जड़ाऊ तलवार बाँध दी और कहा कि हम तुम्हारी कमर बादशाही सेवा से बाँधते हैं। उड़ीसा के कुछ महाल उसके लिए जागीर में नियत कर तथा उसके भतीजे शेख महम्मद को साथ लेकर खानखानाँ लौट गया। इसी समय खान-खानाँ ने गौड़ नगर को अपना निवासस्थान बनाया, जो पूर्व काल में बंगाल की राजधानी थी। इसका यह कारण भी था कि घोड़ा घाट भी पास है, जो विद्रोहियों का मूल स्रोत है और इससे उपद्रव एक बार ही शांत हो जायगा। यह स्थान मनोरंजक भी है, जहाँ भारी दुर्ग तथा बड़ी इमारतें हैं पर उसने इस बात को ध्यान में नहीं रखा कि समय के परिवर्तन तथा इमारतों की दुर्दशा से वहाँ की वायु बिगड़ गई है, विशेष कर पूर्ण वर्षा ऋतु में जब बंगाल के बहुत से नगरों में बाढ़ आ जाती है। इसे समझाने वालों ने बहुत कुछ कहा पर कुछ लाभ न हुआ। अश-रफ खाँ तथा हाजी महम्मद खाँ सीसतानी के समान तेरह बड़े सरदार और बहुत से मध्यम तथा साधारण वर्ग के लोग मर गए पर इसने कुछ ध्यान नहीं दिया, क्योंकि लोगों की सम्मति के विरुद्ध इसने ऐसा किया था। इसके अनंतर जब यह बीमारी बहुत बढ़ गई और बिहार प्रांत में जूनेद किर्रानी के विद्रोह करने पर उसे दमन करना आवश्यक हुआ तब यह युद्ध के लिए वहाँ से बाहर निकला। टाँडा पहुँचने पर साधारण बीमारी से २० वें वर्ष सन् ९८३ हि० (सन् १५७६ ई०) में यह मर गया।

इससे विचित्रतर बात न सुनी गई होगी कि यह अपने समय का वृद्ध तथा सम्मानित सरदार इतना अनुभव तथा सम्मान का ध्यान रखते हुए भी तुर्कों सी मूर्खता कर साधारण लोगों की बात

में पड़ गया और बहुत से आदमियों को मौत के मुख में डाल दिया। दरबार के खास लोगों का विश्वास यह है कि बुद्धि के प्रकाश में, जो सांसारिक कामों का करने वाला है, कार्य का उद्योग करते हुए उसके फल को ईश्वर पर छोड़ दे। यह नहीं कि ऐसी दूरदर्शी बुद्धि होते और प्रकट सामान देखते हुए यदि बुरे जलवायु से हटना भोंड़ा है तो उसमें जाना भी मना है। खान-खानाँ अकबर के पाँच हज़ारी बड़े सरदारों में से था तथा सेना-पति था। यह सरदारी के नियमों का ज्ञाता था, युद्ध कार्य में अनुभवी तथा दरबारदारी और युद्ध के नियमों का जानकार था। यह चौदह वर्ष तक अमीरुल् उमरा तथा प्रधान सेनापति रहा। इसे कोई संतान न थी, इसलिए इसका सब सामान जब्त हो गया। पहिले लिखा जा चुका है कि इसका पुत्र गनी ख़ाँ बड़ी निराशा से काबुल से लौटकर हिंदुस्तान आया था और जब मार्ग में पिता से मिला तब खानखानाँ ने, जो उससे अप्रसन्न था, इसे निकलवा दिया। वह भाग्य के सहारे आदिलशाह बीजापुरी के यहाँ जाकर रहा और कुछ दिन बाद वहीं मर गया। खानखानाँ के बनवाए हुओं में, जो वर्तमान तथा भविष्य में स्मारक रहेंगे, जौनपुर का पुल है, जिसकी तारीख 'सिरातुल्मुस्तक़ीम'[1] (सीधा मार्ग) से निकलती है। यह उत्तरी भारत के बड़े पुलों में से एक है।

---

१. अब्जद से सन् ९८१ हि० निकलता है, जो सन् १५७४ ई० तथा सं० १६३१ वि० होता है।

मुनौवर खाँ शेख मीरान

यह खानजमाँ शेख निजाम[1] का दूसरा पुत्र था। २६ वें वर्ष आलमगीरी में पिता के साथ दरबार में आया। ३१ वें वर्ष में जब इसके पिता ने शंभा जी भोंसला को कैद करने में बहुत परिश्रम किया तब इसे मंसब में तरक्की तथा मुनौवर खाँ की पदवी मिली। ३६ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर चार हजारी २५०० सवार का होगया। ५०वें वर्ष में यह मुहम्मद आजमशाह के साथ नियत हुआ, जो मालवा जा रहा था। औरंगजेब की मृत्यु पर यह उक्त शाहजादे के साथ हिंदुस्तान रवाना हुआ। जो युद्ध उक्त शाह-जादे तथा बहादुर शाह के बीच आगरे के पास हुआ था उसमें यह अपने बड़े भाई खानआलम के साथ हरावली में नियत था। इसने अजीमुश्शान के सामने हाथी दौड़ाया और जब इसका बड़ा भाई तीर से घायल होगया तब संसार इसकी आँखों में अँधेरा होगया। इसी समय जंबूरक के गोले से इसका काम समाप्त होगया। इसका पुत्र मुनौवर खाँ कुतबी था, जिसकी जागीर बरार प्रांत के मुर्तजापुर में थी। निजामुल् मुल्क आसफ-जाह के दक्षिण के राज्य के आरंभ में इसने अपनी शक्ति के बाहर सेना एकत्र कर लिया था। उस अद्वितीय योग्य सर्दार ने उपाय कर इसे कम कर दिया। यह अपनी मृत्यु से मरा। इसके पुत्र

---

१. देखिए मुगल दरबार भाग ३ पृ० ५२२-२६।

गए इख्तसास खाँ, जिसे अंत में खानजमाँ की पदवी मिली थी, एजाज खाँ तथा अन्य थे। हर एक को पैतृक जागीर में भाग मिला था। लिखते समय ये सब मृत हो चुके थे केवल उसका अल्पवयस्क पुत्र फकीर मुहम्मद बचा हुआ था जो इनकी उनकी नौकरी कर काम चलाता था।

मुबारक खाँ नियाजी

यह मुहम्मद खाँ नियाजी[1] के पुत्र का लड़का था। मुबारक खाँ का पिता मुजफ्फर खाँ उन्नति न कर मर गया। यह अवस्था प्राप्त होने पर जहाँगीर की सेवा में नियत हो गया। जब शाहजहाँ के ३रे वर्ष में बादशाह बुर्हानपुर में जाकर ठहरे तब इसका मंसब बढ़ाकर एक हज़ारी ७०० सवार का कर दिया और राव रत्न के साथ तेलिंगाना प्रांत को भेजा। जब उस प्रांत की सेनाध्यक्षता नसीरी खाँ खानदौराँ को फिर मिल गई, जिसके वंश की वीरता तथा साहस पैतृक था और प्रयत्न तथा परिश्रम करना जिसके बाएँ हाथ का काम था, तब मुबारक खाँ भी उक्त खाँ के साथ कंधार दुर्ग के घेरे में बहुत प्रयत्न कर पाँच सदी ३०० सवार की तरक्की पाकर सम्मानित हुआ। थोड़े ही समय में बराबर बढ़ने से इसका मंसब दो हज़ारी २००० सवार का हो गया। खानदौराँ के साथ ऊदगिरि तथा ओसा दुर्गों के विजय करने में इसने बहुत प्रयत्न कर अपनी राजभक्ति तथा वीरता दिखलाई तब उस सर्दार की प्रार्थना पर १० वें वर्ष में इसे झंडा व डंका मिल गया। इसने एक मुद्दत बरार प्रांत में व्यतीत कर दिया। आश्टी कस्बे की बस्ती के लिए इसने बहुत प्रयत्न किया, जिसे इसके दादा ने अपना निवासस्थान बना लिया था और इसके चाचा अहमद खाँ नियाजी ने

---

१. इसकी जीवनी इसी भाग में आगे दी हुई है।

इमारतें बनवाई थीं और इस कारण जो अबतक इसके नाम से प्रसिद्ध हैं। इस्लाम खाँ मशहदी की प्रांताध्यक्षता के समय किसी काम को लेकर एक दिन कड़ी बातें हो गई। क्रोध तथा लज्जा से यह चुप नहीं रह सका और दरबार चल दिया। दरबार में उपस्थित होने पर बादशाही कृपा प्राप्त कर राजधानी काबुल के सहायकों में नियत हुआ। २७ वें वर्ष में दोनों बंगश का थानेदार तथा जागीरदार नियत हुआ, जो सुलेमान शिकोह को पुरस्कार में मिला था। जब उपद्रवियों के उस घर का यथोचित प्रबंध न हो सका तब २६ वें वर्ष में उस पद से हटाए जाने पर उसी प्रांत में नियत हुआ। औरंगजेब के २रे वर्ष में हुसेन बेग खाँ के स्थान पर दूसरी बार बंगश का फौजदार नियुक्त किया गया। इसकी मृत्यु का समय नहीं ज्ञात हो सका। फकीरों का मित्र था और दर्वेशों की सेवा करता। इसके बाद इस वंश में किसी ने उन्नति नहीं की। अब आश्टी में खँडहरों के सिवा कोई चिह्न नहीं रह गया।

———

मुबारिज खाँ एमादुल् मुल्क

इसका नाम ख्वाजा मुहम्मद था और बचपन ही में अपनी माँ के साथ यह स्वदेश बल्ख से हिंदुस्तान आकर जब पंजाब के अंतर्गत गुजरात में ठहरा तब इसको प्रसिद्ध शाह दौला की सेवा में ले गए, जो सूफी और फकीर था और जिस पर पंजाब के निवासियों का विश्वास था। उस ऐश्वर्य तथा भाग्य के शुभ सूचक फकीर ने इस लड़के को अपने फकीरी वस्त्र का एक टुकड़ा दिया। इसके अनंतर अवस्था प्राप्त होने पर यह व्यवसाय की खोज में यौवन के आरंभ में मिर्जा यार अली के पास पहुँचा, जो छोटे मंसब पर होते भी बादशाह के मिजाज में बहुत स्थान कर चुका था। मिर्जा ने अपने हस्ताक्षर किए हुए कागज इसे दिए और इससे काम लेने लगा। यहाँ तक कि मिर्जा की कृपा से इसकी अवस्था बहुत अच्छी हो गई और बादशाही मंसब पाने पर थोड़े दिनों में यह तृतीय बख्शी का पेशदस्त नियत हो गया। इसके बाद सर्दार खाँ कोतवाल का नायब हो कर इसने नाम कमाया। इसी समय इनायतुल्ला खाँ की पुत्री से जो कश्मीर के बड़े लोगों में से था, इसने निकाह किया। इसकी सुदशा के उद्यान में तरी आ गई और ऐश्वर्य के उपजाऊ क्षेत्र में नई तरावट पहुँची। इसका मंसब बढ़ाकर तथा इसे शाहजादा मुहम्मद कामबख्श के सरकार का बख्शी नियत कर सम्मानित किया। पर्नाला दुर्ग के घेरे के समय शाहजादा की सेना के साथ यह मोर्चो का अध्यक्ष

रहा। इसके अनंतर संगमनेर का फौजदार नियत हुआ, जो औरंगाबाद का निश्चित खालसा महाल था। अपनी अच्छी सेवा तथा प्रबंध के कारण इसे अमानत खाँ की पदवी मिली। ४७ वें वर्ष में इसके साथ बैजापुर की फौजदारी, जो औरंगाबाद से चौबीस कोस पर है, और एक हाथी मिला। बहादुरशाह के समय इसे सूरत बंदर की फौजदारी तथा मुतसद्दीगिरी पर नियत कर वहाँ भेज दिया।

जब गुजरात का प्रांताध्यक्ष खाँ फीरोज जंग मर गया तब मुबारिज खाँ ने शीघ्रता से अहमदाबाद पहुँच कर कोप तथा कारखानों को जब्त करने और उस विस्तृत प्रांत की रक्षा तथा प्रबंध करने का साहस दिखलाया। दरबार से इसका मंसब बढ़ाया गया और यह गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत किया गया। जब जहाँदार शाह बादशाह हुआ तब उस प्रांत पर सर बुलंद खाँ नियत हुआ और इसे कोकल्ताश खाँ खानजहाँ की मध्यस्थता से मालवा की सूबेदारी मिली। इसके अनंतर उज्जैन पहुँचने पर, जो उस प्रांत की राजधानी थी, इसने रामपुरा के जमींदार रत्नसिंह चंदावत के साथ पहिले संधि की बातचीत की। इसने औरंगजेब के समय अपने देश में मुसलमान होकर इस्लाम खाँ की पदवी पाई थी पर इस समय राज्य के कुप्रबंध से उसके मूर्ख दिमाग में विद्रोह का विचार पैदा हो गया और सेना इकट्ठी कर वह बादशाही महालों पर अधिकार कर अत्याचार कर रहा था। प्रसिद्ध यह है कि जुल्फिकार खाँ ने कोकल्ताश खाँ से वैमनस्य रखने के कारण राजा को संकेत कर दिया था कि मुबारिजखाँ के अधिकार काल में उपद्रव करे, जिससे इसकी बदनामी से इसके

सरंत्तक की बदनामी हो। इस्लाम में निर्बल पर उपद्रव में सबल उस विद्रोही ने घमंड से संधि की बात स्वीकार न कर झगड़ा बढ़ाया और दिलेर खाँ रुहेला को, जो उस प्रांत के प्रसिद्ध जमींदारों में से था, भारी सेना के साथ कस्बा सारंगपुर पर भेजकर वहाँ के थानेदार अब्दुर्रहीम बेग को हटा दिया और बहुत से लोगों को मार डाला तथा कैद किया। साहसी वीर मुबारिज खाँ उस विद्रोही के इस अत्याचार को अधिक सहन न कर सका और अपनी सेना सहित, जो तीन सहस्र सवार से अधिक न थी, युद्ध करने के विचार से फुर्ती से कूच कर उस कस्बे के पास, जो उज्जैन से तेईस कोस पर है, पहुँचा और युद्ध की तैयारी की। उस विद्रोही ने बीस सहस्र सवारों के साथ मैदान में पहुँचे कर साहस से उक्त खाँ को तीन ओर से तीन सेनाओं से घर लिया, जिससे उसे जीवित ही कैद कर ले। इनमें बहुत से प्रसिद्ध अफगान थे, जिनमें एक दोस्त मुहम्मद रुहेला तीन चार सहस्र सवारों के साथ नौकरी करता था और जिसने अभी तक उस प्रांत में कुछ जमींदारी नहीं जमाई थी। गोली तीर बरसाने के बाद, जो युद्ध की आग को भड़काने वाला है, खूब मारकाट हुई और प्रयत्न भी अच्छे हुए। ईश्वरी कृपा से इसी समय इसकी विजय हुई। विजय के बाद राजा को युद्ध स्थल में किसी ने पड़े हुए देखा तो उसका सिर काट लाया। प्रकट हुआ कि युद्ध काल में रहकले की गोली उसके पाँव में लग गई थी। मुबारिज खाँ ने बहुत लूट प्राप्त होने पर विचार किया कि उस विद्रोही के देश रामपुरा को लूटे पर उसकी स्त्री ने आकर रो-पीट तथा भेंट देकर इसे इस

विचार से रोका। जहाँदार शाह ने प्रशंसा का फर्मान तथा शहामत खाँ की पदवी भेजी।

मुहम्मद फर्रुखसियर के राज्यकाल के आरंभ में इसे दुबारा गुजरात की सूबेदारी मिली। यह दो सप्ताह भी वहाँ का प्रबंध नहीं कर पाया था कि दाऊद खाँ पन्नी को वहाँ की सूबेदारी पर नियत कर दिया। उक्त खाँ को मुबारिज खाँ की पदवी देकर तथा हैदराबाद का सूबेदार बनाकर वहाँ भेज दिया। लगभग बारह वर्ष के यह उस विस्तृत प्रांत में प्रबंध करता रहा। उपद्रवियों का दमन कर के यह कर देने वाली प्रजा का पालन करता रहा। यह अशांति में एकदम भी नहीं सुस्ताता था और पहुँच कर एक सिरे से दूसरे सिरे तक प्रबंध करता रहा। यद्यपि यह तीन सहस्र से अधिक सेना नहीं रखता था पर मराठों की भारी भारी सेना परास्त कर भगा देता था। एक उपद्रवी जब कभी इसकी सीमा में पैर रखता तभी हार खाता और जब इस प्रांत को लूटने का विचार करता तब इसके हाथ की चोट पाकर जान लेकर भागता।

जिस समय अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ दक्षिण का सूबेदार होकर आया तब उक्त खाँ मिलने के लिए औरंगाबाद आया। अमीरुल्उमरा ने इसका परिचय प्राप्त कर इसकी योग्यता के अनुसार इससे व्यवहार कर इसे अपने स्थान को विदा किया। जब आसफजाह मुहम्मदशाह बादशाह के प्रति स्वामिभक्ति का बीड़ा उठाकर मालवा से दक्षिण को चला तब उक्त खाँ मौखिक वचन मित्रता का दे चुका था इसलिए हैदराबाद से रवाना हुआ। इसके बाद जब आसफजाह शत्रुओं के युद्ध से छुट्टी पाकर औरंगाबाद में आकर ठहरा तब वहाँ पहुँच कर इसने

भेंट किया। दोनों ओर से आपस में साथ देने की फिर से बात तै हुई और इसके लिए सात हजारी ७००० सवार का मंसब तथा एमादुलमुल्क की पदवी प्रस्तावित होने से यह सम्मानित हुआ। दैवयोग से इसी समय सैयदों ने, जिनके भय से रात्रि में लोग सो नहीं पाते थे, अपने भाग्य-दिवस बीतने पर असफलता का मार्ग पकड़ा और सब उपद्रव शांत हो गए। उक्त खाँ ने पुत्र के निकाह की तयारी की और महफिल जमाया। इसी समय आसजाह ने दरबार जाना निश्चय किया। दूरदर्शी भला चाहने वाले इस खाँ की इसमें सम्मति न थी और इसने बहुत मना भी किया था। दैवयोग से फर्दापुर की घाटी तक पहुँचने पर दक्षिण में ठहरने के लिए कुछ कारणों को पैदा कर लौट आया और खाँ को उसकी सम्मति की प्रशंसा में पत्र लिखा, जिसमें यह शैर दिया था। शैर—

जवान लोग जो आईने में देखते हैं,
वह वृद्ध पुरानी मिट्टी में देख लेते हैं॥

इसके अनंतर आपस में एक राय निश्चित कर आसफजाह फतहजंग अदौनी की ओर गया और दक्षिण के सरदारों तथा अफगानों से, जो बहुत दिनों से डाकू पन से धन संचित कर रहे थे, भेंट तथा कर माँगा। उक्त खाँ समय को पहिचानने वाला था और वह अपने ताल्लुके पर जाकर वहाँ से थोड़े आदमियों के साथ आकर उससे मिल गया, यद्यपि वह चाहता था कि अच्छी सेना व शक्ति के साथ आकर प्रभाव बढ़ाता। जब इसने मितव्ययिता करने का उपाय न देखा, क्योंकि उस ओर के सरदार गण प्रभुत्व के अधीन होकर जो कुछ कहते वही उन्हें 'तन' से दिया जाता था तब यह आप भी उसी जलाशय से जल पीने

लगा तथा सब आपस में मिल गए। फत्हजंग की जो इच्छा थी वह सौमें एक भी पूरी न हुई। यद्यपि अवसर समझ कर उसने प्रगट में प्रसन्नता नहीं दिखलाई और न चिड़चिड़ाया पर मन में बहुत मालिन्य रख लिया। इस समय से वह तथा दक्षिण के अन्य शासकगण ने एकदम पूछताछ से मन हटा कर सिकाकोल, जो खालसा था और हाथ खींच कर वह कभी कुछ आय कोष में जमा कर देता था, तथा उस प्रांत के दूसरे महलों पर स्वामी की तरह अधिकृत हो गया। जब नवाब फत्हजंग दरबार जाकर वजीर हुआ तब मुबारिज खाँ के, इसके पुत्रों तथा साथियों के मंसबों की स्वीकृति देते समय उनमें कमी कर हानि पहुँचाई और अपने वकील के द्वारा खालसा के धन को भी माँगने का मौखिक प्रयत्न किया तथा अपने हृदय की बात प्रकट कर दी। जब काबुल के प्रबंध की बात आई तब आसफजाह ने बादशाह से कहा कि सिवा मुबारिज खाँ के कोई दूसरा इसके योग्य नहीं है। इसन मित्रता की ओट में अपना काम निकालना चाहा। इसके अनंतर जब दक्षिण प्रांत के बदले वजीरी के साथ गुजरात व मालवा की प्रांताध्यक्षता पर आसफजाह नियत हुआ तब अनजान सूबेदार के होने से यह अच्छा समझ कर कि मुबारिज खाँ उस पद पर होवे क्योंकि दोनों के स्वत्वों को समझते हुए वह अधिकारी है, इसने इसकी बादशाह से भी प्रार्थना की। मुबारिज खाँ को भी लिख पढ़ उसने इस पर राजी कर लिया। परंतु इसी समय इसके ससुर इनायतुल्ला खाँ ने, जो दरबार में खानसामाँ तथा नायब वजीर था, बादशाह के संकेत पर इसे सब्जबाग दिखला कर इसका लालच बढ़ा दिया और उसकी

आशा बलवती कर दी। उक्त खाँ पुराना अनुभव तथा योग्यता रखते हुए अपनी बात से हट गया और नवाब फत्हजंग की कृपाओं के होते भी उसने सेवा तथा स्वामिभक्ति से बादशाही कामों को करना निश्चित किया। फूलझरी गढ़ी के घेरे में, जो मछली बंदर के पास है और जहाँ का उपद्रवी जमींदार आपाराव दुर्ग में बैठ कर वीरता से युद्ध कर रहा था, छ सात महीने बिता दिए थे कि दक्षिण की सूबेदारी का फर्मान आ पहुँचा। उक्त खाँ कुछ दिन घेरे में और व्यतीत कर तथा संधि से दुर्ग पर अधिकार हैदराबाद लौट गया।

दक्खिनी अफगान भी इस काम के लिए प्रयत्न कर रहे थे। कर्नोल का फौजदार बहादुर खाँ पन्नी, कड़प्पा का फौजदार अब्दुलगनी का पुत्र अबुल्फत्ह, अब्दुल् मजीद खाँ, जो दिलेर खाँ के पौत्र था और इसका पोष्य पुत्र अली खाँ तथा कर्णाटक के फौजदार सआदतुल्ला खाँ की ओर से अमीर अबूतालिब बदख्शी का पुत्र गालिब खाँ ने अच्छी सेना एकत्र कर ठीक वर्षाकाल में नानदेर के पास गंगा पार कर औंधिया के पास, जो बालाघाट बरार के सरकार के अंतर्गत एक पर्गना है, वर्षा व्यतीत करना चाहा। इसी समय नवाब फत्हजंग आसफजाह, जो दरबार के आदमियों के वैमनस्य के कारण शिकार के बहाने हट आया था, मालवा में मराठों के जोर का समाचार सुनकर भागीरथी गंगा के किनारे सोरों से उस प्रांत की ओर चल दिया। वहाँ के उपद्रवियों को शांत कर उज्जैन के पास से लौटते हुए पर्गना सिहोर पहुँचा था, जो सिरोंज के पास है, कि मुहम्मद इनायत खाँ बहादुर का पत्र औरंगाबाद से इसे मिला। इसका आशय था कि

कि दूरस्थ दरबार के आदमियों के बहकाने तथा दक्खिनी अफ-गानों के कहने से मुबारिज खाँ दक्षिण की सूबेदारी स्वीकार कर तथा फर्मान आ जाने पर इस ओर आने का विचार कर रहा है और इनकी राय यहाँ तक बढ़ी है कि सूबेदारी पर अधिकार करने के अनंतर दक्खिनी सेना के साथ मालवा जायँ। कुछ लोग दरबार से भी नियत हुए हैं। इस पर सेवकों से व्यर्थ की कष्टकर बात चीत हुई कि इसमें सिर मारना कठिन है। इसी आशंका के समय मुबारिज खाँ के वकील का पत्र उसके हाथ पड़ा जिससे इनायतुल्ला खाँ की मौखिक बातों का समर्थन हुआ और तब आशंका के निश्चित हो जाने पर वह दक्षिण लौटा। फुर्ती से कूच करता हुआ मुहम्मद शाह के ६ठे वर्ष के जीकदा महीने में वह औरंगाबाद पहुँचा। इसने पहिले झगड़ा तै करने के लिए एक पत्र लिखा जिसमें मुसल-मानों के आपस के युद्ध के संबंध में उपदेश थे। साहसी मुबारिज खाँ ने, जबकि काम इस सीमा तक पहुँच चुका था, हृदय छोटा करना तथा लौटना अपनी सरदारी तथा सेनापतित्व के, जो उस समय युद्ध सेवियों के अग्रणियों में से था, योग्य नहीं समझा, विशेष कर नौकरी के समय इस प्रकार के ओछे विचारों से कि जो हो नाम तथा शान के साथ हो, उसने उपदेश को नहीं माना और युद्ध को तैयार हुआ। आसफजाह भी बाजीराव आदि मराठों के साथ छ सहस्र सवार लेकर आगे बढ़ा और चार थाना पर्गना पहुँचा। मृत्यु-मुख में पड़ा हुआ मुबारिज खाँ वीरता तथा अनुभव रखते हुए अदूरदर्शियों के कहने पर जफर-नगर चला जो बहादुर खाँ का स्थान था तथा जहाँ अफगानों की बस्ती थी।

शीघ्रता से दिन रात कूच कर उस कस्बे में पहुँच कर तथा वहाँ एकदम भी न ठहर कर सीधे औरंगाबाद की ओर चला। उसका विचार था कि यदि शत्रु घबड़ा कर पीछा करेगा तो जिस तोपखाने पर उसे गर्व है वह पहुँच न सकेगा और यदि उसे नहीं छोड़ेगा तो देर में पहुँचेगा। इससे दोनों अवस्थाओं में लाभ है और तबतक सरदार के परिवार व कोष, सेना का सामान तथा नगर, जो राजधानी है, अधिकार में लेकर युद्ध के लिए तैयार हो जाऊँगा। पूर्णा नदी पार कर यह दस बारह कोस दूर पर पहुँचा था कि लौट कर फिर इस पार आया। इसने यह समझा कि हिंदुस्तान में शत्रु के सामने से हट जाना भागने तथा शत्रु के विजयी होने के समान माना जाता है। उस समय इन पंक्तियों का लेखक आसफजाह के साथ था। उसी दिन मुबारिज खाँ का रोब और भय जाता रहा और विजय होने की, जो बहुधा निश्चित थी, संभावना हो गई। भयग्रस्त होना तथा भागना छोटे बड़े सबने मान लिया और लोगों ने मुबारकबादी की भेंट भी सरदार को दी। कवियों ने तारीखें कहीं। एक आदमी ने हिंदी में तारीख कही। मिसरा—डर गया मुबारिज खाँ (सन् ११३६ हि०, सन् १७२३ ई०)।

मुबारिज खाँ के नदी पार करते समय आसफजाह की ओर के कुछ अग्गल तथा कराबल के सैनिक वहाँ पहुँच गए और खूब युद्ध हुआ। उसके तोपखाने का दारोगा तथा कुछ पैदल आ गए थे। उन सब ने वहाँ न रुककर कुछ मरहठों से युद्ध करते हुए धावे कर कठिनाई से कुछ कदम आगे बढ़े। निरुपाय हो शकरखीरला कस्बे में अपना सामान सुरक्षित छोड़कर स्वयं ससैन्य बाहर निकला। परंतु इन सब कामों में दो दिन रात बीत गए।

बेसामानी के कारण कि सभी के पास केवल घोड़ा तथा चाबुक थी और इसके सैनिकों को इतना कष्ट हुआ, जो मरने से बढ़कर था। २२ मुहर्रम सन् ११३७ हि० को एक तिहाई दिन शुक्रवार बीता था कि दस सहस्र सवारों से कम सेना के साथ फत्हजंग की ओर चला, जो अपनी सेना के दो भाग कर एक का स्वयं अध्यक्ष होकर और दूसरे का अध्यव अजदुद्दौला एवज खाँ बहादुर को बनाकर उक्त कस्बे से दो कोस पर युद्ध के लिए तैयार था। इसने आसफजाह के दाहिने ओर स्थित एवज खाँ के दाएँ भाग पर धावा किया। एकाएक एक नाला बीच में पड़ गया, जिसके काले दलदल में आदमी तथा जानवर छाती तक घुस जाते थे। इससे लाचारी से व्यूह टूट गया और परे बिगड़ गए। बड़ी कठिनाई पड़ी। यदि घोड़ा अलफ होता है तो स्थान की कमी से उसी प्रकार चलता है और यदि सवार गिरता है तो भूमि पर न पहुँच घोड़ों के दो सिरों तथा चूतड़ों पर रुका हुआ ऊपर ही ऊपर चला चलता है। अंत में बाएं भाग के आदमी मार्ग में आ पड़े। बिजली तथा आग बरसानेवाले ऐसे तोपखाने के होते भी शत्रु को दाईं ओर छोड़कर दहाड़ते हुए शेर की तरह एवज खाँ के मध्य तथा अल्तमश के बीच लड़ते हुए आ पहुँचा। इसी बीच विजयी सर्दारगण घातक तोपों तथा जान लेनेवाली बंदूकों सहित सहायता को पहुँचकर उन वीरों के प्राण लेने लगे। मुबारिज खाँ अपने दो पुत्रों के साथ मारा गया और इसकी ओर के बहुत से सर्दारगण जैसे दाएँ भाग का सेना नायक बहादुर खाँ पन्नी, बाएँ भाग का अध्यक्ष मकरम खाँ खानजमाँ, हरावल का गालिब खाँ, अबुल्फत्ह मियानः, अलीमर्दान खाँ हैदराबादी क

पुत्र हुसेनी खाँ, अमीन खाँ दक्खिनी, जगदेवराव जादून (ये दोनों इसी तरफ आकर मिल गए थे) और मुहम्मद फायक खाँ कश्मीरी (जो उस मृत की सरकार का दीवान और अपने समय के गुणी पुरुषों में से था) साढ़े तीन सहस्र सैनिकों के साथ काम आए।

अनुभवियों पर प्रकट है कि उस असफल खाँ ने बिना समझे बहुत सा ऐसा काम किया जिसे न करना चाहिए था। पहिले फर्मान के मिलते ही यदि गढ़ी फूलचेरी से हाथ हटाकर इधर चला आता तो यहाँ तक काम न पहुँचता। इसके बाद भी इसे ज्ञात न था कि यह कार्य यहाँ तक तूल खींचेगा नहीं तो अधिक सेना व सामान इकट्ठा कर सकता था। यहाँ तक कि युद्ध के समय इससे बराबर वीर मराठा सर्दारों ने साथ देने का संदेश भेजा, विशेषकर कान्होजी भोंसला थोड़ा धन लेकर पाँच सहस्र सवारों के साथ सहायता देने को तैयार था, पर इसने स्वीकार नहीं किया। इसने सोचा कि ये इससे पराजित तथा दमन किए गए हैं और अब इन्हें बराबरी का मानना पड़ेगा, इससे इनसे मिन्नत नहीं करूँगा। यदि बिना धन लिए आवें तो कोई हर्ज नहीं है।

संक्षेप में उसी कस्बे के पास हृदयग्राही जंगल में यह गाड़ा गया। यह वर्तमान सर्दारों का अग्रणी था, प्रत्युत् उस समय के सर्दारों से कुछ भी समानता नहीं रखता था। यह पुराने सर्दारों से मेल खाता था। वीरता तथा समझदारी थी और रईसी तथा शासन की योग्यता समान थी। दृढ़ता तथा साहस में पर्वत के समान था कि समय-परिवर्तन की तीव्र आँधी से इसकी दृढ़ता के स्तंभ

हिलते न थे। ठीक विचार करने तथा उपाय निकालने में इतना सच्चा अनुमान करता कि इसके विचार का तीर निशाने से जरा भी दाएँ बाएँ नहीं जाता था। मिलने जुलने में यह कोई रुकावट नहीं डालता था। यद्यपि यह मित्रों के सत्संग से वंचित न था पर नोकरों के पालन तथा मित्रों पर कृपा करने में बहुत बढ़कर था। अपने शरीर को आराम देने तथा आनंद करने में यह लिप्त न रहता। यह सैनिक चाल पर रहता, कार्यशील था, मामला समझनेवाला था और न्याय को शीघ्र पहुच जाता था। यह झगड़े को बीच में नहीं आने देता था पर शोक कि वह सब व्यर्थ गया और ऐश्वर्य की सीमा तक न पहुचा। इनायतुल्ला खा की पुत्री से इसे पाँच पुत्र तथा एक पुत्री था। इनमें से दो छोटे पुत्र असअद खा और मसऊद खा यौवन ही में पिता के साथ मारे गए। इनमें से एक मतलब खा बनी मुख्तार के पुत्र मतलब खाँ की पुत्री से व्याहा था और दूसरा खानखानाँ बहादुर शाही के पुत्र मकरम खाँ खानजमा की पुत्री से। इनमें सबसे वड़ा ख्वाजा अहमद खाँ था, जिसे इसका पिता बराबर अपता नायब बनाकर नगर में छोड़ जाता था। यद्यपि सब कार्य जलालुद्दीन महमूद खाँ की राय से होता था, जिसपर पुरानी मित्रता तथा सच्चाई के कारण मुबारिज खाँ का इतना विश्वास था कि उसके कृत्यों पर कभी उँगली न उठाता था। पिता की मृत्यु पर अपने सामान से दुर्ग मुहम्मदनगर उर्फ गोलकुंडा को ठीककर और वहाँ के किलेदार संदल खाँ को हटाकर अपने सामान, धन, परिवार आदि के साथ उसमें जा बैठा तथा बुर्ज आदि दृढ़कर एक वर्ष तक उसकी रक्षा की। यद्यपि इसको इन कार्यों से कोई संबंध न था

क्योंकि यह बेचारा सदा दिन को सोता और रात्रि को जागता था पर उसने दूसरे हितैषियों की राय से यह काम किया। इसके अनंतर दिलावर खाँ के बिचवई होने पर, जो इसका श्वसुर था तथा जिसकी सगी मौसी उससे ब्याही थी, इसे छः हजारी मंसब, शहामत खाँ की पदवी, उसी प्रांत में जागीर में वेतन, सेवा-काय से छुट्टी तथा पिता के माल की माफी मिल गई और इसने दुर्ग दे दिया। कुछ दिन बाद हैदराबाद की जागीर के बदले इसे ओठपुर और कवाल मिल गया। अब वह बहुत दिनों से औरंगाबाद में एकांतवास कर रहा है। वह किसी का काम नहीं करता और उसे खानदेश में जागीर मिली है।

दूसरा पुत्र ख्वाजा महमूद खाँ है, जिसने युद्ध में बहुत चोट खाई थी पर अच्छा हो गया था। आसफजाह ने इसे पाँचहजारी मंसब और मुबारिज खाँ की पदवी दी। इस समय अमानत खाँ की पदवी के साथ खानदेश में आमनेरा का जागीरदार है। यह योग्य पुत्र है और पिता के समय दुर्गाध्यक्ष रहता रहा। यह वीर, अनुभवी तथा कर्मठ है। दर्वेशों का सत्संग रखता है और बनके सभी गुणों से युक्त है। यह आसफजाह का साथ कर सम्मानित है। तीसरा पुत्र अब्दुलमाबूद खाँ अपने पिता के जीवनकाल में दरबार चला गया। मुहम्मद शाह ने इसके पिता के मारे जाने के बदले में इसे अच्छा मंसब, मुबारिज खाँ की पदवी तथा गुर्जबरदारों की दारोगागिरी दी। अब वह काम में नहीं है। पुत्री का निकाह इनायतुल्ला खाँ के पौत्र से हुआ। श्वसुर के शासन में सिकाकोल का यह फौजदार था। इसके अनंतर आसफजाह ने इसे बीजापुर का सूबेदार बनाया, जहाँ इसने

मराठा सर्दार ऊदा चौहान से कड़ी हार खाई। अंत में यह परेंदा की दुर्गाध्यक्षता करते मर गया। यद्यपि बेहूदा बोलनेवाला था पर अच्छे ढंग से कहता था। दूसरी संतान भी थी। इनमें एक हमीदुल्ला खाँ है, जिससे नवाब आसफजाह ने अपनी बहिन व्याह दी क्योंकि हिंदुस्तान में खून की शत्रुता को व्याह से नष्ट करने की प्रथा है।

———

मुबारिज खाँ मीर कुल

यह बदख्शाँ के सैयदों में से था। शाहजहाँ के २३ वें वर्ष में अपने कुछ भाइयों तथा संबंधियों के साथ अपने वास्तविक देश से निकलकर बादशाही सेवा में भर्ती होने की इच्छा से हिंदुस्तान आया और सौभाग्य से सेवा में उपस्थित होने पर इसे पाँच सदी २०० सवार का मंसब तथा तीन हजार रुपए पुरस्कार में मिले। २६ वें वर्ष में पंजशेर का थानेदार नियत हुआ, जो काबुल प्रांत के मौजों में से एक है। यह योग्यता से खाली नहीं था इसलिए बराबर उन्नति करता रहा। २६वें वर्ष में डेढ़ हजारी १००० सवार का मंसब तथा काबुल प्रांत के अंतर्गत ऐसा व बहगा मौजों का जागीरदार नियत हुआ। ३१ वें वर्ष में अजीज बेग बदख्शी को, जो काबुल के सहायकों में नियत था, बलगैन मौजा के उपद्रवियों ने, जो महमूद एराकी की जागीर के अंतर्गत थे, धोखे से मार डाला। वहाँ के फौजदार बहादुर खाँ दाराशिकोही ने, जो पेशावर में रहता था, बादशाही आज्ञानुसार मीर कुल को लिखा कि वह काबुल के नायब तथा वहाँ के नियुक्त लोगों और गिलजई एवं सिली अफगानों के साथ उन्हें दमन करने जावे। इसने बड़ी चुस्ती व चालाकी से भारी सेना एकत्र कर चढ़ाई की। बड़े साहस तथा उत्साह से इसने दुर्गम घाटी को सवारी के घोड़ों को हाथ से लेकर पार किया और उपद्रवियों तक पहुँच कर लड़ाई आरंभ कर दी। उनमें से बहुतेरे मारे गए। उनमें चौदह आदमी बहरा

के प्रसिद्ध बलूक थे, जो सहायता को आए थे। लाचार हो बलगैन के उपद्रवी अपने पहाड़ी स्थानों को भागे। इसने भी उनका पीछा किया पर बर्फ तथा पत्थरों के आधिक्य से पैदल चलना पड़ा। बड़े साहस के साथ यह उनके रक्षास्थलों तक पहुँच गया। यद्यपि उन सब ने उन पहाड़ी स्थानों की रक्षा करने में बहुत प्रयत्न किया था पर इसने तथा इसके साथियों ने वीरता से उन सबको नष्ट कर लौटते समय उनके मकानों को जला दिया और अपने स्थान को लौट आए। इस सुप्रयत्न के उपलक्ष में इसे पाँच सदी की तरक्की, झंडा तथा मुबारिज खाँ की पदवी मिली। आलमगीर के राज्यकाल में भी यह बहुत दिनों तक काबुल में रहा। ६ वें वर्ष में यह कश्मीर का सूबेदार नियत हुआ। १३ वें वर्ष में लश्कर खाँ के स्थान पर मुलतान प्रांत का शासक बनाया गया। इसके अनंतर यह मथुरा का फौजदार हुआ। १६ वें वर्ष में यह उस पद से हटाया गया। बाद का हाल नहीं ज्ञात हुआ।

मुबारिज खाँ रुहेला

जहाँगीर के राज्यकाल में सर्दार बनाए जाने पर इसे तीन हजारी ३००० सवार का मंसब मिला। उस बादशाह के राज्य-काल से शाहजहाँ के राज्य के आरंभ तक लश्कर खाँ की सूबेदारी में यह काबुल में नियत रहा। बलख के शासक नजर मुहम्मद खाँ के सेनापति यलंगतोश उजबक के युद्ध में, जो खानजमाँ खानःजाद खाँ के साथ गजनी के पास हुआ था, मुबारिज खाँ बादशाही सेना के हरावल का अध्यक्ष था। उसमें इसने बड़ी वीरता तथा साहस दिखलाया। इसके बाद यह दक्षिण के सहायकों में नियत हुआ। दौलताबाद के घेरे में इसने बड़ी बहादुरी दिखलाई। विशेष कर जिस दिन खानजमाँ कोष तथा रसद जफरनगर से लेकर खिरकी मौजे में दाखिल हुआ, जो दौलताबाद से पाँच कोस पर है और औरंगाबाद कहलाता है, उस दिन आदिलशाही तथा निजामशाही सेनाओं ने एक मत होकर असावधान बादशाही मध्य सेना पर धावा कर दिया। युद्धप्रिय सर्दार ने दृढ़ता से घोर युद्ध किया। शत्रु कुछ न कर सकने पर लौटा और निकल जाने के प्रयत्न में चंदावल पर आक्रमण किया। जादोराय के पुत्र बहादुर जी की ओर से बिजली गिराने वाले बादल के समान धावा होकर अभागे शत्रु को हरा दिया और मुबारिज खाँ

की ओर से, क्योंकि वह भी चंदावल में था, इसने स्वयं पहुँचकर तीव्र तलवार रूपी कैंची तथा तीर के टुकड़ों से थोड़े समय में उस झुंड के बहुतों के सिरों को काट डाला और उन सबका रक्त, जिनपर मृत्यु के हाथ ने मनहूसी तथा दुर्भाग्य की धूल सर से पैर तक डाल रखी थी, मैदान की धूल में मिला दिया।

खानखानाँ महाबत खाँ की मृत्यु पर जब दक्षिण की सूबेदारी ८ वें वर्ष में दो भागों में बाँटी गई, तब बालाघाट खानजमाँ को और पायाँघाट खानदौराँ को दिया गया। उस समय सहायक लोग भी बाँट दिए गए। ये सब एक दूसरे की सम्मति से निश्चित किए गए थे। मुबारिज खाँ खानजमाँ के साथ दौलताबाद में नियत हुआ और इसके मंसब में पाँच सदी ४०० सवार बढ़ाए गए। इसके अनंतर दरबार में उपस्थित होने पर १५ वें वर्ष में इसका मंसब चार हजारी ४००० सवार का हो गया। काबुल में बहुत दिनों तक रहने के कारण यह अफगानों के युद्ध की चाल अच्छी प्रकार जानता था और उस प्रांत के संबंध में तथा वहाँ के युद्ध के सामान की जानकारी के कारण यह फिर वहीं सहायक नियत हुआ। १८ वें वर्ष सन् १०५६ हि० में देपाल-पुर की फौजदारी तथा जागीरदारी के समय घर के गिरने से यह मर गया। बड़प्पन तथा धर्म की आस्था के लिए यह प्रसिद्ध था। रोजा, निमाज तथा धार्मिक किताबों के पढ़ने में यह समय बिताता था। इसके नौकर गण भी सवार या पैदल सभी कलमा याद रखते थे, रास्ते चलते पढ़ते रहते और इससे पहिचाने जाते थे कि मुबारिज खाँ के नौकर हैं। कहते हैं कि यह विरक्ति तथा आचार

में अब्दुल् अजीज के पुत्र उमर के समान था और उपाय तथा बुद्धिमानी में आस के पुत्र उमरू सा था। सारी अवस्था इसने सम्मान तथा विश्वास में बिता दिया।

मुर्तजा खाँ मीर हिसामुद्दीन अंजू

यह अजदुद्दौला मीर जमालुद्दीन का पुत्र था। इसके भाई मीर अमीनुद्दीन ने मिर्जा अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ की दामादी के कारण योग्यता प्राप्त की पर जवानी ही में मर गया। इब्राहीम खाँ फत्हजंग के भतीजे अहमद बेग खाँ की बहिन मीर हिसामुद्दीन को व्याही थी और उस संबंध के कारण इसने बहुत उन्नति की तथा यह उस साध्वी की आज्ञा तथा इच्छा को बहुत मानता था। जब बेगम नौरोज तथा ईदों में बादशाही महल में जाती तो मीर का सामर्थ्य नहीं था कि बिना आज्ञा के अंतःपुर में जा सके। जहाँगीर के राज्यकाल में इसे दृढ़ दुर्ग आसीर की अध्यक्षता तथा शासन मिला, जो दृढ़ता, विशालता तथा दुर्ग की अन्य विशेषताओं में बेजोड़ और साम्राज्य के प्रसिद्ध दुर्गों में से था।

जब युवराज शाहजादा शाहजहाँ ने बादशाही भारी सेना के पीछा करने की फुर्ती देखी और मांडू में रहना उचित न समझा तब १७ वें वर्ष में बुर्हानपुर जाने की इच्छा से नर्मदा के पार उतरा तथा उतार को रोकने और कोष की रक्षा के लिए सेना नियुक्त कर उक्त दुर्ग के पास पहुँचा। इसने शरीफा नामक अपने सेवक को फर्मान के साथ मीर के पास भेजा, जिसमें लोभ तथा भय दोनों दिखलाया गया था। खानःजादी के विश्वास, पिता की प्रसिद्धि, विश्वसनीय कार्य तथा प्रयत्नों की प्रशंसा का स्वामि-

भक्ति के कार्य पर दृष्टि न डालकर, दुर्ग में तोप, बंदूक, सामान तथा रसद के काफी होते, जितना किसी दूसरे बड़े दुर्ग में न होगा और उसकी दुर्गमता के होते कि एक वृद्धा भी रुस्तम का मार्ग रोक सकती थी, मीर शाहजहाँ का फर्मान पाते ही उन्नति के लोभ से, जो उसके सौभाग्य में लिखी थी, एक दम दुर्ग शरीफा को सौंपकर स्वयं स्त्री-पुत्र के साथ शाहजहाँ की सेवा में चला आया। शाहजादा ने उसकी प्रतिष्ठा तथा विश्वास बढ़ाकर बहुत सी कृपाएँ कीं।

शाहजहाँ ने राजगद्दी पर बैठने पर पहिले की सेवा के विचार से इसे चार हजारी ३००० सवार का मंसब दिया और उसी वर्ष मुर्तजा खाँ की पदवी तथा पचास सहस्र रुपए देकर शेर ख्वाजा के स्थान पर, जो ठट्टा के मार्ग से आते समय वहीं मर गया था, उस प्रांत का सूबेदार नियत किया। ईर्ष्यालु आकाश सफल पुरुषों का पुराना शत्रु है, इसलिए यह अपने स्थान पर कुछ दिन भी न रह पाया था कि दूसरे वर्ष के अंत सन् १०३९ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्रों में से मीर समसामुद्दौला ने योग्यता दिखलाई। २१ वें वर्ष में शाहजादा शुजाअ का यह दीवान नियत हुआ। २८ वें वर्ष में शाहजादा का प्रतिनिधि होकर यह उड़ीसा प्रांत का अध्यक्ष हुआ और इसे डेढ़ हजारी ५०० सवार का मंसब मिला। इसी वर्ष के अंत में इसकी मृत्यु हो गई।

मुर्तजा खाँ सैयद निजाम

यह पिहानी के मीरान सद्रजहाँ का द्वितीय पुत्र था। यह ब्राह्मणी के पेट से हुआ था, जिसे मीरान बड़े प्रेम के साथ रखता था। इस कारण इसने इस पुत्र पर विशेष स्नेह रखकर उसकी शिक्षा में बहुत प्रयत्न किया। अपने जीवन ही में इसने बादशाह से इसका परिचय करा दिया और इसे अच्छा मंसब दिला दिया। मीरान की मृत्यु पर जहाँगीर ने इसे ढाई हजारी २००० सवार का मंसब देकर सम्मानित किया। शाहजहाँ की राजगद्दी के प्रथम वर्ष में पाँच सदी बढ़ने से इसका मंसब तीन हजारी २००० सवार का हो गया और इसे डंका मिला। मुर्तजा खाँ मीर हिसामुद्दीन अंजू की मृत्यु पर उक्त सैयद को मुर्तजा खाँ की पदवी मिली। जब महाबत खाँ खानखानाँ दक्षिण का सूबेदार नियत हुआ तब मुर्तजा खाँ भी वहाँ सहायक नियत हो साथ गया। इसके अनंतर जब सेनापति महाबत खाँ की वीरता से दौलताबाद के बाहरी दुर्ग ६ ठे वर्ष सन् १०४२ हि० में टूट गए तब महाबत खाँ ने चाहा कि एक सरदार को स्वामिभक्त सेवकों के साथ दुर्ग के रक्षार्थ छोड़कर स्वयं बुर्हानपुर जाय। इस कारण कि सभी बहुत दिनों तक दुर्ग के घेरे में अनेक प्रकार के कष्ट झेल चुके थे और दिन रात बीजापुरी तथा निजामशाही सेनाओं से लड़ना पड़ता था और खाने का सामान भी नहीं रह गया था इसलिए जिस किसीसे कहा उसीने उन कठिनाइयों के कारण वह

कार्य स्वीकार नहीं किया। प्रसिद्ध है कि महाबत खाँ ने मुर्तजा खाँ से उसके सामान तथा सेना के स्वामी होने के कारण विशेष तर्क किया था। सैयद ने अस्वीकार पर इतना हठ किया कि महाबत खाँ ने उससे स्वाधीनता का पत्र लिखा लिया।

जब खानदौराँ ने सुव्यवहार तथा दृढ़ सहायता के विचार से इस सेवा को स्वीकार कर लिया तब महाबत खाँने चतुराई से सैयद मुर्तजा खाँ को दूसरों के साथ खानदौराँ की सहायता के लिए दुर्ग में छोड़कर उधर चला गया। इन्हीं कुछ दिनों में खानदौराँ के नाम दरबार से आज्ञापत्र आया कि उसने इसके पहिले बहुत कष्ट तथा परिश्रम उठाया है इसलिए वह दुर्ग मुर्तजा खाँ को सौंप कर तथा मालवा जाकर आराम करे, जहाँ का वह सूबेदार था। खानदौराँ मुर्तजा खाँ को दुर्ग में छोड़कर तथा राजकोष का जो धन उसके पास था उसे दुर्ग के कार्य के लिए उसे देकर उस ओर चल दिया। इसके अनंतर मुर्तजा खाँ डलमऊ का जागीरदार नियुक्त किया जाकर वहाँ के उपद्रवियों को दंड देने के लिए भेजा गया। इसका देश उस स्थान के पास ही था अतः इसने भारी सेना एकत्र कर उपद्रवियों को दमन करने में बहुत प्रयत्न किया। बराबर विजय प्राप्त करते हुए इसने अपनी वीरता दिखलाई। बहुत दिनों तक बैसवाड़ा तथा लखनऊ की फौजदारी में इसने दिन व्यतीत किया। अंत में वृद्ध हो जाने से निश्शक्त होकर यह विशेष सेवा कार्य नहीं कर सकता था इसलिए २४ वें वर्ष में इसे मंसब से छुट्टी देदी गई और उसके देश पिहानी की आय से बीस लाख दाम वार्षिक नियत कर दिया, जिसकी आय एक करोड़ दाम थी। इसके पुत्रगण मर चुके थे

अतः इसके पौत्र अब्दुल्मुक्तदर तथा अब्दुल्ला के मंसब बढ़ाकर तथा दूसरे पौत्रों को योग्य मंसब देकर इस पर्गने का बचा अस्सी लाख दाम जागीर में दे दिया। इसके अनंतर बहुत दिनों तक वृत्ति पाते हुए यह समय आने पर मर गया। अब्दुल्मुक्तदर शाहजहाँ के समय में एक हजारी ६०० सवार का मंसब पाकर खैराबाद का फौजदार नियत हुआ।

मुर्तज़ा खाँ सैयद मुबारक खाँ

यह बुखारा का सैयद था। औरंगजेब के राज्यकाल में शिक्षित होने पर यह कुछ दिन रामकेसर दुर्ग का और कुछ दिन आसीर का अध्यक्ष रहा तथा कुछ दिन सुलतानपुर नजरबार का फौजदार रहा। इसके अनंतर सैयद मुहम्मद खाँ के स्थान पर यह दौलताबाद का अध्यक्ष नियुक्त हुआ। २६ वें वर्ष में इसे मुर्तजा खाँ की पदवी मिली तथा तीन हजारी मंसब हो गया। कहते हैं कि खानजहाँ बहादुर से यह विशेष परिचय रखता था। जब इस के पुत्रों सैयद महमूद और सैयद जहाँगीर को खाँ की पदवी देने की बादशाह की इच्छा हुई तब खानजहा बहादुर ने प्रार्थना की कि सैयद महमूद कहता था कि उसके वंश में कोई महमूद खाँ या फीरोज खाँ नहीं हुआ है। बादशाह ने कहा कि तुम्हीं कोई प्रस्तावित करो। कहा कि सैयद महमूद को मुबारक खाँ और सैयद जहांगीर को मुजतबा खाँ की दीजायँ। बादशाह ने कहा कि मुबारक खाँ तो पिता की पदवी है तब इसने प्रार्थना की कि मुर्तजा खाँ पदवी किस बंदे के लिए रोक रखा गया है, इससे अच्छा कोई मनुष्य नहीं है। बादशाह ने स्वीकार कर लिया। मुर्तजा खाँ ४५ वें वर्ष सन् ११११२ हि० (सन् १७०१ ई०) में मर गया। 'किलेदार बिहिश्त' से विशिष्ट शब्द किला हटाने से इसकी तारीख निकलती है। इसकी मृत्यु पर इसका बड़ा पुत्र सैयद महमूद मुबारक खाँ उक्त दुर्ग के महाकोट का अध्यक्ष नियत होकर

मुहम्मद शाह के समय तीन हजारी मंसबदार हो गया। इसके बाद इसका पुत्र मुराद अली मुबारक खाँ हुआ, जिसका मंसब ढाई हजारी था और इसके स्थान पर इसका पुत्र सैयद शेरअली मुबारक खाँ उसी पद पर नियत रहा। दूसरे पुत्र सैयद जहाँगीर मुजतबा खाँ को अंबर कोट की अध्यक्षता मिली। इसके बाद इसके पुत्र सैयद अली रजा को पिता की पदवी के साथ वही कार्य मिला। इसकी मृत्यु पर इसके पुत्र सैयद अली अकबर को मुजतबा खाँ की पदवी के साथ पिता तथा दादा का पद मिला। इसके अनंतर उक्त दुर्ग सलाबतजंग के अधिकार में चला गया। उस समय तक इन स्थानों के दुर्गाध्यक्ष गण दक्षिण के सूबेदारों को जैसे हुसेन अली खाँ अमीरुल्उमरा, निजामुल्मुल्क आसफजाह तथा इसके पुत्रों को सिर नहीं झुकाते थे। जब उक्त सूबेदारों ने स्वतंत्र हो दुर्ग की जागीर जब्त करली तब मुहम्मद शाह ने दो लाख वार्षिक वृत्ति खजाने से इन ताल्लुकेदारों के लिए निश्चित कर दी। एक बार किसी कारण से दुर्गाध्यक्ष से क्षुब्ध होकर आसफजाह ने इस दुर्ग पर सेना भेजी। जब यह समाचार बादशाह को मिला तब फर्मान भेजा गया कि सारे दक्षिण में केवल यही एक दुर्ग हमसे संबंध रखता है उसे भी तुम नहीं चाहते। आसफजाह ने बादशाही आज्ञा का विचार कर संधि कर ली और सेना लौटा ली।

———

मुर्तजा खाँ सैयद शाह मुहम्मद

यह बुखारा के सैयदों में से था। सुलतान औरंगजेब बहादुर की सरकार में यह खास चौकी के आदमियों में भर्ती हो गया। जब उक्त शाहजादा पिता को देखने के बहाने दक्षिण से हिंदुस्तान चला तब इसे मुर्तजा खाँ की पदवी मिली। महाराज जसवंत सिंह के युद्ध में अग्गल का सर्दार नियुक्त होने पर इसने बड़ी वीरता दिखलाई। ७ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर पाँच हजारी ५००० हजार सवार का हो गया। २१ वें वर्ष में सन् १०८८ हि० में इसकी मृत्यु हो गई। बादशाह ने ख्वाजासरा बख्तावर खाँ को हाल पूछने भेजा था। उत्तर में इसने कहा कि चाहता था कि स्वामी के कार्य में प्राण निछावर करूँ पर नहीं हुआ। दूसरे धन व रत्न छोड़ जाते हैं पर मैं अपने बदले कुछ जान छोड़े जाता हूँ। आशा है कि स्वामी के काम आवें।

इसकी मृत्यु पर इसके नौकरों में से हजारी से चार सदी तक मंसबदार हुए तथा प्यादे कारखानों में भर्ती हो गए। सैयद वीर था और सेना को चुनकर तथा नियमित रखता था। इसका पुत्र सैयद हामिद खाँ था, जिसे ४ वे वर्ष में खाँ की पदवी मिली। १५ वें वर्ष में राद अंदाज खाँ के साथ सतनामियों के दमन करने में इसने बड़ी वीरता दिखलाई। १६ वें वर्ष में कमायूँ के भूम्याधिकारी के पुत्र को दरबार लिवा लाया, जिसका राज्य बादशाही सेना द्वारा पददलित किए जाने पर मुर्तजा खाँ

द्वारा दोष क्षमा किया गया था। २० वें वर्ष में सैदय अहमद खाँ के स्थान पर यह अजमेर का सूबेदार नियत हुआ। २१ वें वर्ष में दरबार पहुँचने पर यह पिता के स्थान पर खास चौकी का दारोगा नियुक्त हुआ। २३ वें वर्ष में सोजत व जैतारण के उपद्रवियों को दमन करने और २४ वें वर्ष में मेड़ता की ओर के राठौड़ उपद्रवियों को दंड देने में इसने अच्छी सेवा की। इसके बाद मुजाहिद खाँ की पदवी से सम्मानित होने पर ३५ वें वर्ष में मेवात की फौजदारी मिली और मंसब बढ़कर तीन हजारी १५०० सवार का हो गया। मरने का वर्ष नहीं ज्ञात हुआ।

———

मुर्शिद कुली खाँ खुरासानी

यह सैनिक वृत्ति के तुर्कमानों में से था और अनुभवी तथा योग्य था। आरंभ में कंधार के शासक अली मर्दान खाँ जैक का सेवक था। जब उक्त खाँ ने वह दृढ़ दुर्ग बादशाही सेवकों को सौंपकर दरबार में सेवा स्वीकार कर लिया तब उसके कुछ अच्छे नौकर भी बादशाही सेवा में भर्ती हो गए। इन्हीं में मुर्शिद कुली खाँ भी अपने सौभाग्य से बादशाह का परिचित सेवक होकर कृपापात्र हो गया। शाहजहाँ के १६ वें वर्ष में काँगडा के नीचे के पार्वत्य स्थान का खंजर खाँ के स्थान पर यह फौजदार नियत हो गया। जब बल्ख और बदख्शाँ की सूबेदारी शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर को मिली तब यह उसके साथ की सेना का बख्शी नियत हुआ। २२ वें वर्ष में जान निसार खाँ के स्थान पर यह आख्तः बेगी नियत हुआ। २४ वें वर्ष में यह लाहौर का बख्शी नियत हुआ। जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर २६ वें वर्ष में दक्षिण का शासक नियत हुआ तब इसका मंसब बढ़ाकर डेढ़ हजारी ५०० सवार का कर दिया और बालाघाट दक्षिण का दीवान नियुक्त कर शाहजादे के साथ बिदा कर दिया। उस सेवाकार्य में इसने अच्छी सफलता दिखलाकर अपनी योग्यता तथा दूरदर्शिता प्रगट की जिससे शाहजादे की प्रार्थना पर २७ वें वर्ष में पाँच सदी मंसब बढ़ा और इसे खाँ की पदवी मिली। २६ वें वर्ष में ५०० सवार और बढ़ाकर इसे

मुलतफित खाँ के स्थान पर फिर बालाघाट दक्षिण का दीवान नियुक्त कर दिया।

इसके अनंतर जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब, जिसके भाग्य में विजय लिखी थी, उस कार्य में लगा कि राजधानी पहुँचकर दाराशिकोह के प्रभुत्व को कम करे, जो शाहजहाँ के स्नेह के कारण अपने किसी भाई को अपने बराबर न समझकर मनमाना कर रहा था और राज्य प्रबंध में शाहजहाँ का नाम के सिवा कुछ नहीं बच पाया था तथा कुल प्रबंध इसी बिचार के अनुसार होने लगा था। थोड़े ही समय में भारी सेना तथा सुसज्जित तोपखाना तैयार हो गया। उस प्रांत में जो बादशाही सेवक थे उनमें जिनका भाग्य ने साथ दिया उन सब ने शाहजादे का साथ दिया। मुर्शिद कुली खाँ में योग्यता तथा प्रयत्नशीलता उसके कार्यों से प्रगट थी और अपने बराबर के स्वामिभक्त सेवकों से बढ़कर इसने स्वामिभक्ति के कार्य पूरे किए थे इसलिए मीर जियाउद्दीन हुसेन इस्लाम खाँ के स्थान पर, जो शाहजादा मुहम्मद सुलतान के साथ अग्गल के रूप में औरंगाबाद से बुर्हानपुर गया था, शाहजादे की सरकार के दीवान के उच्च पद पर नियुक्त किया गया और इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी हो गया। जब १० रज्जब सन् १०६७ हि० को शाहजादे की सेना अकबरपुर के उतार से नर्बदा पार कर गई और उसी महीने की २२ वीं की महाराज जसवंत सिंह से, जो मूर्खता तथा साहस से उज्जैन के पास उस शाहजादे के मार्ग में रुकावट बन बैठा था, युद्ध हुआ, जो उक्त विजयी शाहजादे का प्रथम युद्ध था। प्रसिद्ध राजपूत गण ने जैसे मुकुंदसिंह हाड़ा, रत्न राठौड़, दयालदास झाला और अर्जुन गौड़,

जो उस वीर जाति के सर्दार थे, प्राण का मोह छोड़कर धावा कर दिया और पहिले शाहजादे के तोपखाने पर आक्रमण किया, जिसका प्रबंध उस दिन मुर्शिद कुली खाँ की बहादुरी तथा साहस पर निर्भर था तथा जो वीर और विद्वान सर्दारों में से एक था। उक्त खाँ ने हरावल के अधिनायक जुल्फिकार खाँ के साथ शत्रुओं की संख्या के अनुसार योग्य सेना न रखते हुए भी दृढ़ता से डटे रहकर अपना प्राण गँवा दिया। खूब मार काट, प्रयत्न आदि करने पर, जो सैनिकत्व तथा कार्यशक्ति की सीमा है, वीरता से जान निछावर कर दिया और स्वामी के निमक को चुकाकर ख्याति प्राप्त की।

मुर्शिदकुली खाँ बहादुरी के जोश तथा सिपहगरी के नशे में मुत्सद्दियों सी समझ रखता था। सचाई तथा खुदा से डरने में भी अपने ही सा था। दक्षिण की दीवानी के समय प्रजा के रंजन तथा शांति में प्रयत्न करते हुए देश की आबादी बढ़ाने में यह सदा दत्तचित्त रहा। काम समझने तथा न्याय की दृष्टि से इसने खेतों को बाँटकर हर एक जिन्स का नमूना लिया और उसका दस्तूर निश्चित किया। कहते हैं कि सावधानी के लिए कि कहीं कुछ पक्षपात न हो जाय कभी कभी स्वयं जरीब अपने हाथ में लेकर जमीन नापता था। उसकी नीयत का फल है कि अमर अवस्था पाई। अर्थात् इस दस्तूरुल् अमल के कारण इसका नाम जमाने के पृष्ठ पर सृष्टि के अंत तक बना रहेगा।

यह जान लेना चाहिए कि विस्तृत उपजाऊ दक्षिण प्रांत में माल विभाग की आय की जाँच बीघे, जरीब से खेतों की नाप, भूमि के भेद, अन्न के विभेद आदि को लेकर पहिले नहीं हुई

थी। खेतिहर एक हल दो बैल से जो कुछ जोत सकता था उसीके अनुसार हल पीछे थोड़ा सा हर प्रकार का जिन्स नगरों तथा पर्गनों के भेद से हाकिम को दे देता था। इसके बारे में कुछ पूछताछ नहीं होती थी। इसके अनंतर यह प्रांत हिंदुस्तान के सुलतानों की चढ़ाइयों से रौंदा गया तथा प्रजा मुगल और नए प्रबंध से डरकर अपना स्थान छोड़कर भागी। वर्षा की कमी तथा कई वर्ष के अकाल से यहाँ तक उजाड़पन आ गया कि ४ थे वर्ष में शाहजहाँ ने खानदेश प्रांत में चौंतीस करोड़ दाम वास्तविक आय में कम कर दिया। तब भी वह अपनी वास्तविक स्थिति में नहीं आया और इसके बाद मुर्शिद कुली खाँ का समय आया। उक्त खाँ ने बड़ी कर्मठता तथा सहन शीलता से अपनी ही सुसम्मति से राजा टोडरमल के भूमिकर नियमों को, जो अकबर के समय से हिंदुस्तान में जारी था, इस प्रांत में भी जारी किया। पहिले अस्त व्यस्त हुई प्रजाको अपने अपने स्थान पर एकत्र करने का प्रयत्न किया और स्थान स्थान पर समझदार अमीन तथा सच्चे आमिल नियत किए कि पर्गनों के खेतों की नाप कर डालें, जिसे रकबा कहते हैं और खेती योग्य तथा पहाड़ नाले को, जहाँ हल नहीं चल सकते, अलग दिखलावें। जिस गाँव में मुकद्दम नहीं थे या उसके उत्तराधिकारी घटनाओं के कारण अज्ञात हो रहे थे, वहाँ वैसा मुकद्दम नियत कर खेती करवाई, जो आबादी बढ़ाने तथा प्रजा का प्रबंध करने योग्य मिला। बैल तथा खेती का सामान खरीदने के लिए सरकार से धन दिया, जिसे तकावी कहते हैं और आमिलों को आज्ञा दी कि फस्ल पर उसे वसूल करें। खेतिहरों से तीन प्रकार का समझौता तै किया। पहिले जाँच करना, जो

पहिले समय से चला आता है। दूसरा गल्ले का बँटवारा, जिसे तबाई कहते हैं और जो तीन प्रकार का है। प्रथम वह है जो वर्षा के पानी से उसीके बीच पैदा होता है, उसका आधा आधा निश्चित किया। द्वितीय वह जो कुएँ के पानी से उत्पन्न होता है उसमें गल्ले का तिहाई भाग सरकार का और दो तिहाई भाग प्रजा का तै किया। गल्ले के सिवा अंगूर, गन्ना, जीरा, ईसबगोल आदि में सिंचाई के व्यय तथा तैयारी के विचार से नवें से चौथे भाग तक सरकार का और बाकी प्रजा का। तृतीय वह है जो नालों तथा नहरों के जल से, जो नदियों को काटकर लाए गए हैं, खेती करते हैं और जिसे पाट कहते हैं उसमें कुएँ के विरुद्ध एक या अधिक विभिन्न प्रकार से निश्चित किया। तीसरा अमल जरीब अर्थात् हर प्रकार के अन्न, शाक भाजी, मेवे तथा फल का चौथाई उनके निर्ख, थोड़े होने तथा विभिन्नता के विचार से खेती के समय से काटने तक प्रति बीघा निश्चित किया, जिसमें जरीब के बाद उसको वसूल करें। यह नियम दक्षिण के तीन चार प्रांतों में, क्योंकि उस समय तक इतने ही प्रांत बादशाही अधिकार में आए थे, प्रचलित होकर मुर्शिदकुली खाँ के नाम से प्रसिद्ध है।

इसके पुत्र अली बेग को औरंगजेब के ४ थे वर्ष में एहतमाम खाँ की पदवी मिली और दूसरे पुत्र फज्लअली बेग को ३२ वें वर्ष में दीवान आला की कचहरी की वकायानवीसी का पद मिला। खाँ की पदवी देने के समय बादशाह ने पूछा कि अपने नाम के साथ खाँ की पदवी चाहते हो या पिता की पदवी। फज्लबेग ने कुछ बातों के विचार से मुर्शिद कुली खाँ की पदवी स्वीकार की। औरंगजेब ने कहा कि मैंने और कुर्बान अली की माँ ने उस मूर्ख

से कहा कि अली छोड़कर कुली क्यों होते हो, फज्ल अली खाँ अच्छा है। इसके अनंतर यह शाहजादा मुहम्मद मुइज्जुद्दीन का दीवान नियत हुआ, जिसे कैद से छुट्टी मिल चुकी थी। ४२ वें वर्ष में मुलतान प्रांत की दीवानी इसे मिली। उक्त खाँ के एक मित्र के मुख से सुना गया है और विश्वास से खाली नहीं है कि जब दक्षिण से मुलतान जाने को छुट्टी पाई तब कितनी सफलता तथा उत्साह से इसने कूच किया और आशा के हाथ ने हृदय के ताक पर इच्छा के कितने शीशे न चुन दिए पर जब लाहौर पहुँचा तब यात्रा की थकावट मिटाने को कुछ दिन आराम किया। प्रति-दिन सबेरे बाग की सैर और शाम को मजलिस होती। एकाएक इसका भाग्य फूट गया कि उस नगर के शासक के नाम बादशाही फर्मान आया कि फज्ल अली खाँ को हथकड़ी बेड़ी से जकड़कर दरबार भेज दे। उसने आज्ञानुसार काम किया। जब इस घटना का हाल वहाँ के अखबार लेखकों द्वारा बादशाह को सुनाया गया तब ज्ञात हुआ कि वह फर्मान जाली था। वह बेचारा बिना कारण के दंडित हुआ। उसी समय गुर्जबर्दार लोग नियत हुए कि जिस जगह पहुँचा हो वहीं कैद से छुड़ाकर उसका जो सामान लाहौर में जब्त हुआ हो वह उसे सौंप दें।

———

मुर्शिद कुली खाँ तुर्कमान प्रसिद्ध नाम मुरौवत खाँ

जहाँगीर के राज्यकाल में ईरान प्रांत से आकर यह सात सदी २०० सवार के मंसब के साथ बादशाही नौकरों में भर्ती हो गया। शाहजहाँ के राज्य के ३रे वर्ष में एक हजारी मंसब पाकर यह आख्तः बेगी पद पर नियत हुआ। मीर तुजुकी की सेवा पर इसे नियत करना तथा पास रखना बादशाह को मंजूर था और मीर तुजुक खलीलुल्ला खाँ अपने स्वभाव की उद्दंडता से बादशाह की इच्छा के अनुसार कार्य कर नहीं पाता था तथा यह अपनी योग्यता तथा अनुभव प्रगट कर चुका था इसलिए ६ठें वर्ष में यह कार्य पहिले पद के साथ इसे सौंपा गया, पाँच सदी मंसब बढ़ाया गया और इसके चाचा की पदवी मुर्शिदकुली खाँ भी इसे मिली, जो शाह अब्बास प्रथम का अभिभावक था। जिस समय बादशाह आगरे से दौलताबाद की सैर को गए और जिसकी तारीख 'बपादशाहे जहाँ ईसफर मुबारक बाद' से निकलती है उस समय मथुरा तथा महाबन की फौजदारी के अंतर्गत पड़ाव से उस प्रांत के उपद्रवियों को दंड देने के लिए यह नियत हुआ। उस पर अधिकार करने के लिए अधिक सेना की जरूरत थी, इसलिए इसके मंसब में पाँच सदी १३०० सवार बढ़ाकर दोहजारी २००० सवार का मंसब कर दिया तथा झंडा देकर इसे सम्मानित किया। ११ वें वर्ष सन् १०४६ हि० में बरेली के विद्रोही मौज़ों पर आक्रमण करते हुए यह गोली लगने से मर गया,

जहाँ शहर पनाह दीवाल के पास आग लगाकर वे उपद्रव कर रह थे। मथुरा की फौजदारी के समय इसने बहुत सी सुंदर स्त्रियों को कैद कर इकट्ठा कर लिया था, जो प्रत्येक एक दूसरे से सौंदर्य तथा चांचल्य में बढ़कर थीं। कहते हैं कि गोवर्द्धन नगर में जो मथुरा के पास जमुना नदी के उस पार है और जिसे कृष्ण जी का जन्म स्थान मानते हैं, सावन[1] की आठवीं रात्रि को, जिसे जन्माष्टमी कहते हैं, हिंदुओं का बड़ा मेला लगता है। संयोग से उक्त खाँ हिंदुओं की चाल पर टीका लगा तथा धोती पहिर उस भीड़ में घुसकर सौंदर्य देखता हुआ घूमता रहा। जब इसने एक स्त्री को देखा कि वह चंद्रमा के समान सुंदर है तब यह भेड़िए के समान, जो झुंड में आ गया हो, उसे उठाकर चल दिया। इसके आदमी नदी के किनारे नाव तैयार रखे हुए थे इससे उस पर बिठाकर यह आगरे चल दिया। हिंदुओं ने यह तनिक भी प्रकट नहीं किया कि वह किसकी लड़की है। मुर्शिद कुली खाँ शामलू लिल्ला इस्ताजलू का हाल वैचित्र्य से खाली नहीं है इससे उसका विवरण लिखा जाता है।

यह खवाफ तथा बाखरज का शासक था। जब अली कुली खाँ शामलू हिरात का शासक तथा खुरासान का अमीरुल् उमरा हुआ, जो अभिभावकत्व अब्बास मिर्जा के अधीन उसके दादा शाह तहमास्प सफवी के समय से था। उक्त शाहजादे का पिता सुलतान मुहम्मद खुदाबंदः ईरान का जब शाह हुआ तथा आँखों की

---

१. भ्रम से भाद्रपद के स्थान पर सावन मूल लेखक ने लिख दिया है।

रोशनी के जाने पर कजिलबाशों का कार्य ठीक न चला और राज्य उपद्रवियोंका घर बन गया तब दूरदर्शियों की सम्मति से खुरासान के सर्दारों को मिलाकर सन् ९८९ हि० में अब्बास मिर्जा को गद्दी पर बिठा दिया, जो शाह अब्बास कहलाया। मुर्शिदकुली खाँ ने सबसे पहिले इस संबंध में मेल का कमर बाँधकर इसके लिए वचन दे दिया था। पर मुर्तजा कुली खाँ दर्नाक, जो मशहद का शासक था तथा अपने को अलीकुली खाँ के बराबर समझते हुए आधे खुरासान का बेगलरबेगी बन गया था, न मिलने पर काम बिगाड़ने पर तुल गया। सुलतान मुहम्मद खुदाबंद: भारी सेना के साथ खुरासान गया। अलीकुली खाँ सामना करने की अपने में सामर्थ्य न देखकर हिरात दुर्ग में जा बैठा और मुर्शिद कुली खाँ तुर्बत में दुर्गस्थित हो गया। लड़ाई के बाद संधि की बात चली। सुलतान मुहम्मद पहिले के समान अधीनता स्वीकार करने पर हिरात शाहजादे तथा अलीकुली खाँ को पूर्ण रूप से देकर लौट गया। उक्त खाँ के विचार से मुर्तजा कुली खाँ को मशहद से बदल दिया और मुर्शिद कुली खाँ तथा इस्ताजलू लोगों की दिलजमई के लिए उन्हीं लोगों के एक भले आदमी सुलेमान खाँ को उसके स्थान पर नियत कर दिया। अभी इसने उस प्रांत में दृढ़ता नहीं प्राप्त की थी कि मुर्शिद कुली खाँ इमामुल्जिन व अलउन्स के रौजे के दर्शन करने के बहाने नगर में घुस गया और अनेक प्रकार का कपट तथा फरेब करते हुए मीठी बातों तथा चापलूसी से सुलेमान खाँ की अधीनता मानते हुए वहीं रहने लगा। इसके अनंतर जब उसके आदमी झुंड़ों में आकर इकट्ठे हो गए तब सुलेमान खाँ के पास इसने

संदेश भेजा कि तुम्हारे पास इतनी सेना सुसज्जित नहीं है कि इस प्रांत के विद्रोहियों को निकाल बाहर करो इसलिए मेरे वचन पर विश्वास कर इसे छोड़ दो और खवाफ व बाखरज जाकर आराम से वहाँ कालयापन करो। वह लाचार हो यहाँ से चला पर मार्ग में अपना सामान छोड़कर एराक को चला गया। मुर्शिद कुली खाँ ने मशहद में जमकर खुरासान के बहुत से महालों के बलवाइयों को डाँट कर तथा समझाकर अपने अधीन कर लिया और उनके हृदयों में यहाँ तक विश्वास पैदा कर दिया कि इसकी आज्ञा खुरासान भर में चल गई तथा इसका ऐश्वर्य और सम्मान बहुत बढ़ गया। इसके अनंतर अली कुली खाँ से मित्रता तथा प्रेम प्रगट कर अपने भाई इब्राहीम खाँ को उसके पास भेजा कि उसे देश विजय करने का लोभ देकर शाह के साथ मशहद लिवा लावे, जिसमें अधीनता और विश्वास पैदा किया जा सके।

संसार के बहुत से काम इस प्रकार के होते हैं कि आरंभ में सचाई तथा मित्रता प्रगट करते हैं पर अंत में शत्रुता तथा वैमनस्य में समाप्त होते हैं। शामलू के वृद्धगण इसके ऐश्वर्य को मलिन समझकर इसका विरोध करने लगे और आपस में दो सर्दार चुनकर इसके बिगाड़ने का सामान करने लगे। क्रमशः यह षड़यंत्र यहाँ तक पहुँचा कि अली कुली खाँ शाह को उभाड़-कर ससैन्य मशहद आया। मुर्शिद कुली खाँ में युद्ध करने की सामर्थ्य नहीं थी अतः वह चाहता था कि किसी प्रकार संधि हो जाय। सफेद तर्शेज की ओर आकर दोनों एक दूसरे के सामने रुक गए। अली कुली खाँ किसी प्रकार संधि का प्रस्ताव न

मानकर सतर्कता तथा सावधानी छोड़कर स्वयं युद्ध के लिए आगे बढ़ा और एक झुंड पर धावा कर उसे परास्त कर दिया तथा पीछा करने लगा। मुर्शिद कुली खाँ कुछ सेना के साथ अपने स्थान पर डटा रहा। इसकी दृष्टि शाही झंडे पर पड़ी। भाग्य पर भरोसा कर इसने उस पार धावा करने का साहस किया और उस उच्चपदस्थ शाह को अपने अधिकार में कर लिया। उन्हीं थोड़े आदमियों के साथ इसने शत्रु पर आक्रमण कर उसे कड़ी हार दी। इसके बाद जब अली कुली खाँ उस झुंड के पीछा करने से निपटकर लौटा तब सेना के मध्यभाग तथा शाही छत्र का उसाँह कुछ भी चिन्ह न देखा और निराश हो आश्चर्य करता हुआ हिरात को चल दिया। मुर्शिद कुली खाँ ने इस अनसोचे हुए दैव द्वारा प्राप्त सफलता से प्रसन्नता मनाते हुए अली कुली ख को प्रेम से भरा हुआ पत्र अधीनों की चाल पर लिखकर मित्रता की प्रार्थना की और इस घटना को आसमानी कहकर उड़ा दिया।

संक्षेपतः मुर्शिद कुली खाँ ने शाह अब्बास के राज्य का सामान ठीक कर स्वयं दृढ़ता से प्रधान मंत्री तथा अभिभावक बन बैठा। एराक में कुप्रबंध तथा उपद्रव फैला हुआ था और वहाँ की राजधानी कजवीन को, जो सफवी वंश के राज्य का केंद्र था, खाली सुनकर शाहजादे को ले बड़ी फुर्ती से दामगाँ के मार्ग से कजवीन पहुँचा। कजिलबाशों के सर्दारगण हर ओर से मुबारकबादी को आए। जब यह समाचार सुलतान मुहम्मद खुदाबंद के पड़ाव में पहुँचा तब साधारण लोगों से लेकर दरबार के सर्दारों तक, जो सब कजवीन में रहते थे, सब बिना छुट्टी पाए जाने लगे। मृत्यु आ पहुँची थी इसलिए अच्छे सर्दारगण ने भी, जो

राज्य के स्तंभ थे, अच्छी सम्मति छड़ोकर कजवोन में जाना निश्चय कर लिया और मुर्शिद कुली खाँ से वचन लेकर सुचित्त हो गए। जब ये सब उस नगर में घुस आए तब सुलतान मुहम्मद खुदाबंदः, जो संसार के असमान चालों तथा नश्वर जगत के उपद्रव से त्तुब्ध होकर एकांतवास करना चाहता था, अपने पुत्र शाह अब्बास से प्रसन्नता से मिलकर अपनी बादशाही छोड़कर पुत्र के सिर पर राजमुकुट रख दिया। दूसरे दिन मुर्शिद कुली खाँ ने चालीस स्तंभ के महल में सिंहासन सजाकर शाह को उस पर बिठा दिया और सर्दारों को सुलतान हमज़ा मिर्जा के खून में पेश किया। राज्य के प्रधान स्तंभ कुछ बड़े सर्दारों को प्राणदंड देकर बाकी सबको त्तमा कर दिया। इसके अनंतर घोषणा निकाली कि जो कोई वीर तथा साहसी बादशाही राज्य की स्थिरता तथा उसके विस्तार के लिए प्रयत्न करने में परिश्रम उठावेगा वह कभी आराम के बिछौने पर नहीं पड़ा रहेगा और न साकी के हाथ कडुई घूँट के सिवा कुछ और पीयेगा। वह सब मित्रता तथा मेल शत्रुता तथा विरोध में बदल जाता है और स्वत्व नष्ट हो जाता है। अंत में सिर से खेलते हैं। स्यात् इसका यही कारण है कि ऐश्वर्यशाली दूरदर्शी बादशाह उच्च विचार तथा ऐश्वर्य के चिन्ह देखकर बड़े कामों में उसकी पूर्ति होने को अपने लिए उचित समझकर प्रयत्नशील होते हैं। यद्यपि प्रकट है कि बहुतों की प्रकृति सेवा तथा काम सजाने को भूलने की होती है और अहंता दिखलाने के लिए की जाती है, जिसे राज्य की मर्यादा सहन नहीं कर सकती। जब मुर्शिद कुली खाँ का पद तथा सम्मान पूर्णता को पहुँचा और राज्य का कुल प्रबंध उसके हाथ में

आ गया तब उसके बराबरवालों के हृदयों में द्वेषाग्नि भड़क उठी। शाह का लालन पालन शामलू लोगों के बीच हुआ था और मुर्शिद कुली खाँ का अभिभावकत्व तथा इस्ताजलू के बीच में होना उसे रुचिकर नहीं था। इसी बीच इसने जो व्यवहार उस समय किया वह भी शाह को पसंद नहीं आया इसलिए अपने राज्य के २ रे वर्ष सन ९९७ हि० में, जब वह खुरासान की ओर गया था तब एक झुंड को संकेत कर दिया, जिसने एकाएक उसके शयनागार में जाकर उसे सोते में मार डाला।

मुल्तफित खाँ

जहाँगीर के समय के आजम खाँ का यह बड़ा पुत्र था। यह विद्वान तथा गुणवान था। जहाँगीर के राज्यकाल में बादशाह का परिचित होने तथा प्रसिद्धि प्राप्त करने से यह बढ़ गया था। जब इसका पिता शाहजहाँ के राज्य के दूसरे वर्ष के आरंभ में दक्षिण का शासक नियत हुआ तब इसका मंसब चार सदी १५० सवार बढ़ने से एक हजारी २५० सवार का हो गया। इसके अनंतर पिता के साथ खानजहाँ लोदी को दंड देने के लिए यह दक्षिण के बालाघाट की ओर गया और इसका डेढ़ हजारी ५०० सवार का मंसब हो गया। जब खानजहाँ निजामशाहियों के साथ कई बार विजयी (बादशाही) सेना द्वारा दंडित हुआ तब दोनों ओर की सेनाएँ दूर दूर तक दौड़ती रहीं और कभी कभी युद्ध भी भागते हुए हो जाता था। इस कारण साहसी वीर लोग भी उससे पार नहीं पा रहे थे। दैवयोग से एक दिन, जब मुल्तफित खाँ चंदावल में प्रसिद्ध राजपूतों के साथ नियत था, यह सेना मध्य की सेना से प्रायः दो कोस दूर पड़ गई थी। शत्रु अवसर देख रहा था और उसने दस सहस्र सवारों के साथ पहुँच कर युद्ध आरंभ कर दिया। कुछ परिचित मुगल तथा राजपूत खानजादः लोग वीरता दिखला कर मारे गए। मुल्तफित खाँ राव दूदा चंद्रावत के साथ दृढ़ता से जमा न रहा और युद्ध से हट गया। १० वें वर्ष में यह अर्ज मुकर्रर नियत हुआ। १३ वें वर्ष में

यह बंगाल की दीवानी पर नियत किया गया। १६ वें वर्ष में उस सेना का बख्शी बनाया गया, जो शाहजादा मुरादबख्श के सेनापतित्व में बल्ख व बदख्शाँ पर भेजी गई थी। २२ वें वर्ष में जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब विजयी सेना के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियत हुआ तब यह उस सेना का बख्शी नियत हुआ। इसी वर्ष इसके पिता की मृत्यु हो गई और यह दूर सेना के साथ था। इसके मंसब में पाँच सदी की तरक्की हुई। २३ वें वर्ष में पाँच सदी और बढ़ने पर यह दक्षिण में नियुक्त किया गया। उस समय दक्षिण का प्रांताध्यक्ष शायस्ता खाँ था। पुराने परिचय, योग्यता तथा अनुभव के कारण यह बुर्हानपुर का नायब नियत हो गया और इसने उस प्रांत के प्रबंध में अच्छा प्रयत्न कर प्रसिद्धि प्राप्त की तथा अपने अच्छे व्यवहार से सबको प्रसन्न रखा। २५ वें वर्ष में दरबार से इसे पायाँघाट दक्षिण की दीवानी मिली, जिससे तात्पर्य खानदेश तथा आधे बरार से था। २६ वें वर्ष में दक्षिण के सूबेदार शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर की प्रार्थना पर इसका मंसब पाँच सदी ५०० सवार से बढ़ाया गया और शाह बेग खाँ के स्थान पर इसे अहमद नगर की दुर्गाध्यक्षता दी गई।

उक्त शाहजादे की कृपा इस पर बराबर बनी रही थी इसलिए औरंगजेब के साम्राज्य के लिए रवानः होने पर इसने भी उसका साथ दिया। जब शाहजादा बुर्हानपुर से इच्छित स्थान की ओर चला तब इसे डंका पुरस्कार में मिला। महाराज जसवंतसिंह के अनंतर रज्जब महीने के अंत में मुर्शिद कुली खाँ के स्थान पर, जिसने उस युद्ध में वीरता से लड़कर जान दे दी थी, इसे प्रगट

में उज्जैन नगर मिला और साथ में सरकारी दीवानी, आजम खाँ की पदवी और तोग झंडा भी मिला। इसका मंसब बढ़कर चार हजारी २५०० सवार का हो गया। अत्याचारी आकाश और कष्टदायक संसार में प्रसन्नता दुख भरी हुई और शर्बत विषपूरित है तथा वह जिसे बढ़ाता है उसे गिराता है एवं जिसे चाहता है नहीं बनाता। इस ईर्ष्या योग्य भाग्यवान ने अपनी सफलता से अभी कुछ आनंद नहीं उठा पाया था कि इसके जीवन का प्याला भर गया। डेढ़ महीने भी नहीं बीते थे कि दाराशिकोह के युद्ध के दिन विजय के अनंतर ग्रीष्म ऋतु की तीव्रता, लू तथा कवच की दृढ़ता से इसके प्राण निकल गए।

यह बुद्धिमानी और विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध था तथा सुव्यवहार और उदारता भी इसमें काफी थी। सभाचातुर्य भी इतना था कि जो इससे मिलने आता वह प्रसन्न होकर ही जाता था। इसके एक शैर का उर्दू रूपांतर यह है।

ख्वाब में देखा उस तुर्रए परेशाँ को।
तमाम उम्र रही जिक्र ख्वाब में परेशाँ (सी)॥

इसके घर में असदुल्ला खाँ मामूरी की पुत्री थी। इसके पुत्र होशदार खाँ का जीवन वृत्तांत अलग दिया गया है, जो औरंगजेब के समय का एक सर्दार था।

मुल्तफित खाँ मीर इब्राहीम हुसेन

यह असालत खाँ मीर बख्शी का द्वितीय पुत्र था। २६ वें वर्ष शाहजहानी में यह अहदियों का बख्शी नियत हुआ और इसके बाद पेशकश (भेंट) का दारोगा नियत हुआ। उस राज्यकाल में यद्यपि इसका मंसब सात सदी से अधिक नहीं बढ़ा था पर खानःजादी के विश्वास के कारण, जो गुणग्राहक सुलतानों की दृष्टि में अन्य विश्वासों से बढ़कर है, अपने बराबर वालों से यह बढ़ गया था। औरंगजेब के जलूस के अनंतर, जब इसका बड़ा भाई मीर सुलतान हुसेन इफ्तखार खाँ एक अमीर हो गया तब इसे भी दरबार से अन्य कृपाओं के साथ मंसब में तरक्की तथा मुल्तफित खाँ की पदवी मिली और यह अहदियों का मीर बख्शी नियत हुआ। ६ठे वर्ष अपने भाई इफ्तखार खाँ के स्थान पर, जो खानखानां के पद पर नियुक्त किया गया था, यह आख्ताबेगी बनाया गया। इसी वर्ष आलःयार खाँ के स्थान पर यह गुर्जबर्दारों तथा जिलो के सेवकों का दारोगा नियुक्त किया गया, जिस पद पर सिवा विश्वासपात्रों के कोई दूसरा नहीं रखा जाता। इसके साथ साथ यह मीर तुजुक भी बनाया गया। जब १३वें वर्ष में इसका भाई दंडित होकर अटक नदी से निष्कापित कर दिया गया तब यह भी पदवी और मंसब छिन जाने पर कड़े रक्षकों के अधीन रखा गया कि इसको लाहौर पहुँचा दें। इसके अनंतर भाई के साथ इसका भी दोष क्षमा

किया गया और यह मोतमिद खाँ के स्थान पर दिल्ली का अध्यक्ष बनाया गया। १५ वें वर्ष में दूसरी बार यह जिलौ के सेवकों का दारोगा नियुक्त हुआ। इसके बाद पेशावर के अंतर्गत लंगर कोट का यह अध्यक्ष हुआ। १८वें वर्ष सफ शिकन खाँ मुहम्मद ताहिर के स्थान पर यह तोपखाने का दारोगा बनाया गया। इसके अनंतर किसी कारण वश यह मंसब से हटा दिया गया। २२वें वर्ष में एक हजारी १००० सवार का मंसब बहाल हुआ और इसे गाजीपुर जमानिया की फौजदारी मिली। उस फौजदारी के छूटने के बाद आगरे के पास आराम करने लगा। २४वें वर्ष में एकदिन किसी ग्राम पर आक्रमण करने में घायल हो गया। १६ जमादिउल् आखिर सन् १०६२ हि० (सन् १६८२ ई०) को इसकी मृत्यु हो गई। विचित्र संयोग यह हुआ कि इसी वर्ष इसके भाई की भी जौनपुर में मृत्यु होगई।

मुल्ला मुहम्मद ठट्टा

इसका पिता मुल्ला मुहम्मद यूसुफ फकीरी में दिन व्यतीत करता था और सिद्धाई तथा विरक्ति से खाली नहीं था। इसका योग्य पुत्र मुल्ला मुहम्मद यौवन के आरंभ में अपने देश में धार्मिक विद्याओं को तर्क वितर्क द्वारा खूब समझते हुए उनके अध्ययन में दत्तचित्त रहा। थोड़े ही समय में हर एक में कुशल होकर यह विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध हो गया। इसने गणित विद्या में भी योग्यता प्राप्त की। इस योग्यता के अतिरिक्त इसमें दृढ़ता, धार्मिकता, अनुभव तथा आचार विचार भी था। इसके अनंतर इसने विद्यार्थियों को लाभ पहुँचाया तथा उनके पढ़ाने में लग गया। आदमी की प्रतिष्ठा उसकी विद्या से है और विद्या की शिष्य की योग्यता से। यमीनुद्दौला आसफजाही मुल्ला का योग्य शिष्य था। ऐसे उच्चपदस्थ सर्दार का गुरु होने से यह प्रसिद्ध होकर ऐश्वर्य को पहुँचा।

इस वंश को जहाँगीर के समय में बहुत सम्मान प्राप्त हुआ और इसने बहुत उन्नति की यहाँ तक कि इसके संबंधवालों को बहुत सफलता मिली। इस वंश के दासों तथा नौकरों को खाँ तथा तर्खान की पदवियाँ प्राप्त हुईं। आसफजाही भी इसी बड़े आदमी की शिक्षा को अपने विद्या की योग्यता का कारण समझता था तथा अपनी भाग्योन्नति को भी इसी की प्रार्थना से हुआ जानता था, इससे इसका सम्मान बराबर बढ़कर करता

था। उसने इसे कुल साम्राज्य का सदर बनाकर इस की इच्छा पूरी की, इसके सौभाग्य का सितारा चमका, भलाई हुई और ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। कुल अचल संपत्ति, बाग, इमारतें तथा महाल, जो ठट्टा के सुलतान अर्गूनों तथा तर्खानों के थे, क्रय या दान द्वारा बादशाही सरकार से प्राप्त कर उनपर अधिकृत होगया। एक प्रकार यह कुल ठट्टा का स्वामी होगया और धार्मिक विचारों के अनुसार मुल्ला के भाइयों के मंसब नियत हुए। ये सब मुल्ला के प्रभाव तथा विश्वास के कारण शासकों का ध्यान न कर काम करते थे और जैसा चाहते वैसा ही करते थे।

जिस समय शाह बेग खाँ ठट्टा का सूबेदार नियत हुआ उस समय वह आसफजाही से विदा होने गया। उसने मुल्ला मुहम्मद के भाइयों की सिफारिश की। उस सीधे तुर्क ने उनका हाल सुन रखा था, जो मुल्ला के बलपर शासकों की परवाह नहीं करते थे इसलिए उसने कहा कि यदि नियम से रहेंगे तो सम्मान से रहेंगे नहीं तो चमड़ा उधड़वा लूँगा। इस बात पर उसका काम बिगड़ गया और वह मंसब तथा जागीर से भी गया। महाबत खाँ के उपद्रव के समय यदि मुल्ला चाहता तो वह निकल जाता और कोई उसका रास्ता न रोकता पर उसके जीवन की अवधि पूरी हो चुकी थी इसलिए काजी तथा मीर अदल की धार्मिक मित्रता पर भरोसा कर वह महाबत खाँ के पास गया। विद्वत्ता गुण आदि की इसने व्याख्या बहुत की पर उस पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ।

इसके पहिले ज्योतिषी शेख चाँद के दौहित्र मुल्ला अब्दुस्समद और ख्वाजा शम्सुद्दीन मुहम्मद खवाफी के भतीजे मिर्जा अब्दुल

खालिक को आसफ खाँ की मुसाहिबी तथा कृपा के कारण इसने मरवा डाला था। उसने कहा कि ये तीनों कुल उपद्रव के कारण थे। मुल्ला को राजपूतों को सौंप दिया और कुछ दिन कैद रखकर बिना दोष के मरवा डाला, यद्यपि मुल्ला से उस उपद्रव से कोई संबंध नहीं था। वास्तव में मुख्य कारण उसका आसफ खाँ का गुरु होना था। दैवयोग से जिस समय उसके पैरों में बेड़ी डाली गई और वह दृढ़ता से नहीं बंद की गई इसलिए थोड़ा हिलाने से खुल कर निकल गई, जिसको जादू से हुआ समझा गया। मुल्ला ने अंतिम अवस्था में कुरान को कंठाग्र कर लिया था और तलावत में पहुँचते ही पढ़ने लग गया था, जिससे उसके ओठ हिल रहे थे। इस हिलने को देख कर यह निश्चय किया कि वह शाप दे रहा है। इस शंका के कारण उसे मारने की आज्ञा दे दी। ऐसे प्रिय मनुष्य की प्रतिष्ठा न कर उसे नष्ट कर डाला। कहते हैं कि आसफजाही को ऐसे तीन अनुपम प्रिय मित्रों की मृत्यु से ऐसा शोक हुआ कि बहुधा रात्रि में पीड़ित हृदय से उन्हें इस प्रकार याद करता वा मुहम्मदा, वा खालिफा, वा समदा।

मुसाहिब बेग

यह ख्वाजा कलाँ बेग का पुत्र था, जिसका पिता मौलाना मुहम्मद सदर मिर्जा उमर शेख के बड़े सर्दारों में से एक था। इसके छ पुत्रों ने बाबर की सेवामें अपने प्राण निछावर कर दिये थे। ख्वाजा इन स्वत्वों के कारण तथा अपनी योग्यता, बुद्धिमानी, गंभीर चाल तथा विद्वत्ता के कारण बाबर का कृपापात्र होकर उसके सर्दारों का अग्रणी हो गया। इसका दूसरा भाई कुचक ख्वाजा भी विश्वासपात्र तथा मुहृदार था। हिंदुस्तान के विजय के अनंतर, जो शुक्रवार २० रज्जब सन् ६३२ हि० को प्राप्त हुआ था और आगरे में बाबर ने पड़ाव डाला था, चगत्ताई सैनिकोंको यहाँ के निवासियों से स्वजातीयता तथा मित्रता का अभाव खलता था। उस पर यहाँ की गर्म हवा की अधिकता, लू और रोग भी बहुत थे। इसी बीच मार्गों की अगम्यता तथा सामान के देर से पहुँचने में खानपान तथा अन्न का कष्ट होने लगा, जिससे सर्दारगण लौटने का विचार निश्चय कर बहुत से एक एक कर बिना आज्ञा ही के काबुल चले गए। ख्वाजा कलाँ बेग भी, जो सभी युद्धों तथा चढ़ाइयों में, विशेष कर इसमें, बराबर उत्साहवर्द्धक बातें कहा करता था, लौटने को कहने लगा। बाबर यहाँ ठहरना चाहता था इसलिए उसने कहा कि ऐसा देश, जो थोड़े प्रयत्न तथा प्रबंध से हाथ में आ गया है, तनिक से कष्ट तथा दुःख के कारण त्याग देना बुद्धिमान बादशाहों का काम नहीं है

परंतु ख्वाजा के हठ को देख कर उसके विचार से गजनी तथा गर्देज की जागीरदारी उसके नाम करके वहाँ भेज दिया। वाके-आते बाबरी में उस बादशाह ने लिखा है कि हिंदुस्तान की विजय ख्वाजा ही के कठिन प्रयत्नों से प्राप्त हुई है। हुमायूँ को उपदेश देते समय ख्वाजा के साथ अच्छा व्यवहार करने तथा उसके दोषों को क्षमा करने के लिए कह दिया था। बाबर की मृत्यु पर ख्वाजा मिर्जा कामराँ का पक्ष ग्रहण कर उसकी ओर से कंधार का शासन करता था। सन् ९४२ हि० में शाह तहमास्प सफवी का भाई साम मिर्जा कंधार पर चढ़ आया और उसे घेर लिया। इसने आठ महीने तक इसकी रक्षा की पर जब दूसरी बार शाह स्वयं आया तब निरुपाय होकर दुर्ग उसे सौंप लाहौर में मिर्जा कामराँ के पास पहुँचा। चौसा की घटना के बाद ख्वाजा ने हुमायूँ के साथ रहना निश्चय किया पर जब समय के फेर से वह बादशाह सिंध की ओर चला तब ख्वाजा स्यालकोट से लौटकर फिर मिर्जा कामराँ से जा मिला।

जब ख्वाजा की मृत्यु हो गई तब उसका पुत्र मुसाहिब बेग अपने पूर्वजों की अच्छी सेवाओं के कारण सामीप्य तथा विश्वास का पात्र हो गया। परंतु इसकी प्रकृति में कुप्रवृत्ति बहुत थी और इसके स्वभाव में बुराई तथा बदचलनी भी भरी हुई थी, इस कारण बार बार इससे ऐसे कार्य हुए जो बादशाह को पसंद नहीं आए। तब हुमायूँ ने इसका नाम मुसाहिब 'मुनाफ़िक्' (झगडालू, कुविचारी) रखा। इसके अनंतर जब अकबर बादशाह हुआ तब यह कुसम्मति तथा मूर्खता से शाह अबुल्मआली तर्मिजी के साथ रहकर कालयापन करने लगा और कुछ समय पूर्व की सीमा पर

खानजमाँ के मुसाहिबों में रहा। ३ रे वर्ष किसी बुरे विचार से यह दिल्ली आया। बैराम खाँ ने उसे कैद कर हज्ज को विदा कर दिया। नासिरुल्मुल्क ने बहुत कुछ कह सुनकर बैराम खाँ को इस बात पर राजी किया कि एक कागज पर प्राणदंड और एक पर क्षमा लिखकर पासा डाला जाय और जो दैवेच्छा से निकले वही किया जाय। दैवयोग से इसका भाग्य उपाय के अनुसार निकला तब उसी घड़ी आदमियों को भेजकर इसे दंड को पहुँचवा दिया। कहते हैं कि इस घटना से सभी चगत्ताई सर्दार तथा उनके लड़के बैराम खाँ से भयभीत होकर उससे प्रतीकार लेने के इच्छुक हो गए।

मुस्तफा खाँ काशी

यह अफगान जाति का शीआ था। इसका पिता इतना असावधान था कि मरने पर कठिनाई से कफन व दफन का काम पूरा हो सका। उक्त खाँ चौदह वर्ष की अवस्था में माँ से बिदा होकर कमाने की चिंता में निकला। क्रमशः मुहम्मद आजमशाह की नौकरी में पहुँचने पर इसका सब सामान ठीक हो गया। यह शाहजादे का विश्वसनीय पार्श्ववर्ती तथा रहस्य जाननेवाला साथी हो गया। शाहजादे की सरकार में सैनिक व्यय के बढ़ाने की बराबर प्रार्थना रहा करती थी इसलिए उक्त खाँ ने सब समझकर निश्चय किया कि छ सहस्र सवारों से अधिक न रखे जायं। यदि सिफारिश से या अच्छे आदमी के आ जाने से या चढ़ाई के कारण अधिक रखे जाय तो स्थायी सेना के मरे हुए या भागे हुए के स्थान जब तक पूरे न हों तब तक उनका वेतन जारी न किया जाय। इसके प्रयत्नों से शाहजादे के सरकार का काम ठीक होने लगा और सेना तथा शागिर्द पेशावालों का हठ उठ गया। इस पर सेना भी दस बारह सहस्र सवार सदा रहने लगी। इसने शाहजादे के हृदय में इतना स्थान प्राप्त कर लिया था कि कोई काम वह इससे बिना राय लिए नहीं करता था। शाहजादे से बादशाह के मिजाज के विरुद्ध जो कुछ भी होता उसे वह इसी की कृति समझता था। उसका अफगानों पर विश्वास न था इसलिए शाहजादे की सरकार में इसका प्रभुत्व उसे विशेष

खलता था, जिससे इस बारे में कई बार बादशाह ने शाहजादे से कहा। अंत में बहाने से इसे दंडित तथा बिना मंसब का कर दिया और गुर्जबर्दार नियत किए कि शाहजादे की सेना से हटाकर सूरत बंदर पहुंचा दें तथा वहाँ के मुत्सद्दी को आज्ञा भेजी गई कि इसे जहाज पर चढ़ाकर मक्का भेज दे। उक्त खाँ मक्का का दर्शन कर लौट के सूरत पहुँचा। यद्यपि इसके बुलाने की आज्ञा निकली पर उससे इसके क्षमा किए जाने की ध्वनि नहीं निकली इसलिए उक्त खाँ ३६ वें वर्ष में औरंगाबाद पहुँचकर बादशाह की प्रकृति समझते हुए फकीरी पोशाक में सेवा में पहुँचा। बादशाह ने यह मिसरा पढ़ा—जिस सूरत में आवे मैं पहिचान जाता हूँ।

कहते हैं कि मुहम्मद आजमशाह ने बहुत चाहा कि इसे क्षमा दिलाकर साथ में रखे पर यह न हो सका। उक्त खाँ विद्वान था इससे उसने 'इमारातुल्कलम' नामक पुस्तक कुरान के आयतों पर टीका लिखी। शाहजादे ने उसे बादशाह को दिखलाते हुए कहा कि मुस्तफा खाँ की यह रचना है। पढ़ने के अनंतर बादशाह ने कहा कि रचना मत कहो, संकलन कहो। शाहजादे ने प्रार्थना की कि अब तक किसी के ध्यान में ऐसा नहीं आया था इससे रचना कह सकते हैं। बादशाह ने क्रुद्ध होकर पुस्तकालय के दारोगा को आज्ञा दी कि इसी विषय की लिखी हुई पहिले की पुस्तकें लाकर शाहजादे को देवे। उक्त खाँ ने बची अवस्था घर बैठे बिता दी। औरंगाबाद के सुलतानगंज मुहल्ले में एक बड़ा मकान इसके नाम प्रसिद्ध है। यद्यपि औरंगजेब अन्य पुत्रों से मुहम्मद आजमशाह पर विशेष ध्यान रखता था पर दोनों ओर

के स्वभाव के विरोधी होने से विचित्र संघर्ष बीच में आ पड़ा था। कहते हैं कि ३६ वें वर्ष में सुलतान मुहम्मद मुअज्जम के छुटकारा पाने का समाचार प्रसिद्ध होने पर मुअज्जमशाह की ओर से कुविचार की सूचना लोगों के मुँह से सुन पड़ी। बादशाह ने उचित समझ मुहम्मद आजमशाह को बंकापुर के पास से वाकिनकीरा जाने की आज्ञा दी। बादशाही सेना मार्ग में थी इसलिए बादशाह की ओर की विरोधी बातें मुहम्मद आजमशाह को सुनाई पड़ने लगीं। शाहजादे ने बादशाही सेना के पास पहुँचने पर प्रार्थना की कि यद्यपि सेवा में उपस्थित हो कुछ कहने की बहुत इच्छा है पर नियत किए हुए कार्य पर जाना आवश्यक है पर शंका है कि साथ के आदमी सेना तक पहुँचने पर आगे बढ़ने में सुस्ती करें इससे जो आज्ञा हो वैसा किया जाय। उत्तर दिया गया कि मैं भी उस पुत्र को देखने की बहुत इच्छा रखता हूँ पर इस कारण कि सेना में आने की सम्मति नहीं है अतः हम फुर्ती से शिकार के लिए निकलते हैं, तुम भी पाँच सौ सवारों तथा अपने दोनों पुत्रों के साथ आओ क्योंकि उसी समय बिदा मिल जायगी। यह भी आज्ञा हुई कि साधारण खेमा सेना से हटकर नीची जमीन पर लगावें कि दूर से दिखलाई न दे। गुप्त रूप से बख्शियों तथा खास जिलौ के दारोगा गुर्जबर्दारों तथा खास चौकी के आदमियों के दारोगा को कह दिया गया कि चुने हुए बहुत थोड़े सशस्त्र आदमी साथ लें पर प्रकट में कह दिया गया कि ज्यादा आदमी न आवें। बारहा के आदमी तथा मीर तुजुकों को भीड़ रोकने तथा दौलतखाने के चारों ओर का प्रबंध करने के लिए नियत किया कि कोई बिना आज्ञा के भीतर न आ

सके। शिकारगाह में पहुँचने पर शाहजादे के नाम बारबार आज्ञा भेजी गई कि दौलतखाने में स्थान कम है अतः थोड़े आदमी आवें। शाहजादे के पास पहुँचने पर जमाल चेला ने आज्ञा पहुँचाई कि जिस शिकार को तीर के सिर पर ला चुके हैं वह उसे खाएगा और जिलौखाने का मैदान छोटा है इसलिए तीन जिलौ-दार साथ लाइए। जब शाहजादा अपने दो पुत्रों वालाजाह व आलीतबार के साथ जिलौखाने में पहुँचा तब अन्य लोगों के प्रबंध के कारण सिवा दो जिलौदार के कोई साथ न था। ऐसी अवस्था में शाहजादे के चेहरे का रंग उड़ गया और उसने अपने को बला में फँसा देखा। मुख्तार खाँ ने आज्ञा पहुँचाई कि तीनों शस्त्र रखकर आवें। सेवा में पहुँचने और अभिवादन करने पर बादशाह ने स्नेह से बगल में लेकर शाहजादे के हाथ में बंदूक दिया कि शिकार पर गोली चलावे। इसके बाद तसबीहखाने में लिवा जाकर बैठने का आदेश दिया तथा गर्मी से हाल चाल पूछा। यह सुनने पर कि शाहजादा जामे के नीचे कवच पहिरे हुए है, अरगजा का प्याला मँगाकर तथा जामे का बंद खोलकर अपने हाथ से लगाया। बादशाह ने अपने आगे रखी हुई खास तलवार को म्यान से निकालकर शाहजादे के हाथ में दिया। उसने काँपते हाथों से लेकर देखने के अनंतर चाहा कि रख देवे पर वह उसे प्रदान कर दी गई। कुछ उपदेशप्रद बातें, जिसमें इस बात का भी संकेत था कि कैद कर छोड़े देता हूँ, कह कर बिदा कर दिया।

मुस्तफा खाँ खवाफी

इसका नाम मीर अहमद था। इसका पिता मिर्जा अरब खवाफ के शुद्ध सैयद वंश से था और वह हिंदुस्तान चला आया। इसने जहाँगीर की सेवा की और थोड़े ही समय में दरबार का 'वकायानिगार' नियत हुआ। इसके बाद भाग्य से अमीरी पद तक पहुँच कर इसने अपना जीवन प्रतिष्ठा तथा विश्वास के साथ व्यतीत कर दिया। इसके पुत्रगण मिर्जा शम्सुद्दीन तथा मीर अह-मद थे। पहिला पिता के जीवनकाल ही में नौकर को कोड़ा मारते समय उसीके हाथ मारा गया। दूसरा शाहजहाँ के समय कुछ दिनके लिए लखनऊ का बख्शी नियत हुआ। २१ वें वर्ष में जब शाहजादा मुरादबख्श कश्मीर का प्रांताध्यक्ष नियत होकर वहाँ गया तब यह उसका दीवान नियत हुआ। इसके बाद यह दक्षिण में नियुक्त हुआ तथा इसे सात सदी २५० सवार का मंसब मिला। ३ रे वर्ष में यह बालाघाट बरार के अंतर्गत जफर नगर का अध्यक्ष नियत हुआ, जो औरंगाबाद से अट्ठाईस कोस पर है।

सचाई, भलाई, अनुभव तथा समझदारी में विशेषता रखने के कारण दक्षिण का सूबेदार शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर इस पर बहुत प्रसन्न था। इसके सेवाकार्य तथा स्वामि-भक्ति से इस पर विशेष विश्वास हो गया। औरंगजेब की राजगद्दी होने पर इसका मंसब बढ़ाकर इसे सम्मानित किया

गया। बालाघाट कर्णाटक प्रांत को मुअज्जम खाँ मीर जुमला ने हैदराबाद अब्दुल्ला कुतुबशाह के यहाँ रहते समय विजय किया था और बादशाह को शाहजहाँ के यहाँ आते समय उसे बादशाह को भेंट कर दिया था। दरबार से इसके अनंतर यह उसे ही पुरस्कार में दे दिया गया। उस प्रांत के कुछ दुर्ग जैसे कुंजी कोठा,[1] जो उस प्रांत के बड़े दुर्गों में से था, भारी तोपखाने तथा बहुत से सामान के साथ उसके आदमियों के हाथ में था। इस कारण कि कुतुबशाह को उस प्रांत पर अधिकार करने का बहुत लोभ था इसलिए वहाँ का प्रबंध ठीक नहीं हो रहा था। २ रे वर्ष में मीर अहमद को भी उस प्रांत के प्रबंध पर नियत किया गया और इसे मुस्तफा खाँ की पदवी, घोड़ा, हाथी देकर इसका मंसब डेढ़ हजारी १४०० सवार बढ़ाकर तीन हजारी २००० सवार का कर दिया। इसके अनंतर अनुभवी तथा गंभीर प्रकृति का होने के कारण यह दरबार से राजदूत होकर तूरान भेजा गया। दानिशमंद खाँ का लिखा हुआ पत्र तथा डेढ़ लाख रुपए का जड़ाऊ बर्तन व अलभ्य वस्तु बुखारा के शासक अब्दुल्अजीज खाँ के लिए और एक लाख रुपये का सामान उसके भाई बलख के शासक सुबहान कुली खाँ के लिए भेजा गया, जिनमें प्रत्येक बराबर भेंट आदि भेजकर संबंध बनाए हुए था। इसका और कुछ हाल नहीं ज्ञात हुआ। इसका भांजा तथा पोष्यपुत्र मीर बदीउज्जमाँ था। इसका पुत्र मीर अहमद मुस्तफा खाँ द्वितीय कुछ दिन निजामुल्मुल्क आसफजाह के यहाँ दीवान रहा। इसका पुत्र मीर

१. पाठांतर कंची कोठा भी मिलता है।

सैयद् मुहम्मद् अली मकरम खाँ बहादुर था । विद्याध्यन कर इसने हर विषय में योग्यता प्राप्त की । इसके पहिले निजामुद्दौला आसजाह के पुत्र आलीजाह की सरकार का दीवान था । इन पृष्ठों के लेखक से बड़ी मुहब्बत रखता था ।

मुस्तफा बेग तुर्कमान खाँ

जहाँगीर के समय का एक सर्दार था और उस राज्यकाल के अंत तक दो हजारी १४०० सवार के मंसब तक पहुँचा था। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने पर १म वर्ष में इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया तथा इसे खिलअत, जड़ाऊ खंजर, झंडा और चाँदी के साज सहित घोड़ा मिला। ३ रे वर्ष इसे डंका देकर सम्मानित किया। इसके बाद दक्षिण की चढ़ाई पर नियत होकर ६ ठे वर्ष में, जब महाबत खाँ दौलताबाद दुर्ग घेरे हुआ था, यह जफर नगर का थानेदार नियत हुआ। इस चढ़ाई पर नियत मंसबदारों की अधीनता के बहुत से आदमी अन्न लदे बैलों के साथ वहाँ एकत्र हो गए थे और दक्षिण की सेना के आने जाने से वे खानखानाँ की सेना तक नहीं पहुँच पाते थे इसलिए इसने खानखानाँ को यह हाल लिखा। उसने खानजमाँ को ससैन्य नियत किया कि अन्न तथा आदमियों को लिवा लावे। ७ वें वर्ष सन् १०४३ हि० (सन् १६३४ ई०) में यह मर गया। इसका पुत्र हसन खाँ आठ सदी ३०० सवार का मंसब पा चुका था। इसका भाई अलीकुली नौसदी ४५० सवार का मंसब पाकर शाहजहाँ के जलूस के १५ वें वर्ष में मर गया।

मुहतशिम खाँ बहादुर

यह मुहतशिम खाँ शेखमीर का पुत्र था तथा इसका नाम मीर मुहम्मद जान था। यह अपने सब भाइयों से योग्यता तथा अनुभव में बढ़कर था। मुहम्मद आजमशाह की सौतेली बहिन नवाब जीनतुन्निसा बेगम ने, जो अपने माननीय पिता की सेवा में रहती थी और बहादुर शाह की राजगद्दी पर बेगम साहिबा कहलाई, मसऊद की पुत्री को स्वयं पालकर इससे विवाह कर दिया था, जिससे इसपर पुत्र सा विश्वास था। बेगम के कहने से इसे औरंगजेब के समय में सात सदी का मंसब मिला। विद्या की योग्यता काफी थी और इसने अमेठीवाले मुल्ला जीवन का, जो अपने समय के प्रसिद्ध विद्वानों में से था तथा बहुत दिनों तक शाहजहाँ तथा औरंगजेब के साथ रहा था, शिष्य होकर उससे विद्या अर्जित किया था। इसने बहादुर शाह के समय पिता की पदवी पाई। जब साम्राज्य के प्रबंध का निजाम के साथ पट्टा हो गया और खानःजादी का विश्वास तथा नौकरी का ढंग घेरे के बाहर चला गया तब अमीरों के वंशधर तथा अच्छे परिवार के संतान लोग धनी होने के कारण काम छोड़ बैठे। उक्त खाँ भी बेगम की मृत्यु पर नवाब आसफजाह फत्हजंग के साथ मालवा चला आया और डेढ़ सौ रुपया वेतन व्यय के लिए पाता रहा। जब उस उच्चपदस्थ सरदार ने समयानुकूल समझ कर नर्मदा नदी पार किया और साहसी शत्रुओं को भारी सेना से नष्ट कर तथा

सौभाग्य के बल पर विस्तृत दक्षिण प्रांत पर अधिकार कर लिया तब इसको तीन हजारी २००० सवार का मंसब तथा दक्षिण के कुल मंसबदारों के बख्शी का पद प्रदान किया। जब आसफजाह हिंदुस्तान का प्रधान मंत्री बनने के लिए दरबार बुलाया गया तब मुहतशिम खाँ के साथ जाना अस्वीकार करने पर यह पद से हटा दिया गया। कुछ दिन बाद यह राजधानी से दक्षिण में नियत होकर लौट आया। मुबारिज खाँ के युद्ध के अनंतर, जिस युद्ध में इसने चोट खाए थे, यह उक्त पद पर फिर नियत हो गया, जिसे वह स्वयं अपना प्रिय, प्रेमिका तथा मनवांछित कहता था। प्रायः बीस वर्ष तक यह नियमपूर्वं कार्य करता रहा और बहादुर की पदवी के साथ पाँच हजारी मंसबदार हो गया।

यह सच्चा तथा धोखाधड़ी से अनभिज्ञ था। निष्पक्षता तथा दृढ़ता में यह अद्वितीय था। सुव्यवहार तथा विश्वास का दृढ़ था, जैसा कि सर्दारों को होना चाहिए। दरबार के नियमों का यह कभी उल्लंघन नहीं करता था। सेवा कार्य को भी यह अच्छी प्रकार पूरा करता था। राज्य कार्य में उच्चपद तथा विश्वास के होते भी पूछताछ में जरा भी दखल न देता था। आरंभ से अंत तक इसने एक चाल से बिता दिया और कभी आगे पैर न निकाला। प्रगट में यह कठोरता दिखलाता था पर लोगों का कार्य कर देने में कुछ उठा न रखता था और आवश्यकतानुसार प्रयत्न करता। यद्यपि मंसब के अनुसार सेना और सामान नहीं रखता था पर तब भी ऐश्वर्य तथा हाथी का स्वामी था। अंत में बिना डाढ़ीवालों की उपासना में लग गया और इस तृष्णा में सुंदर तथा मसें भींजनेवाले युवकों को एकत्र कर

उनके सजाने तथा आदर करने ही में समय बिताता तथा इसी को सर्वस्व समझता था। जिस समय नवाब आसफजाह त्रिचिनापल्ली दुर्ग घेरे हुए था उसी समय १६ जमादिउल् अव्वल सन् ११५६ हि० को यह मर गया। इसका पुत्र हशमतुल्ला खाँ पिता की मृत्यु पर बख्शी हुआ तथा उसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी हो गया। यह बराबर सलूक करने वाला तथा अपना कार्य जाननेवाला है।

मुहतशिम खाँ मीर इब्राहीम

यह शेख मीर खवाफी का बड़ा पुत्र था, जो आलमगीर बादशाह के शाहजादगी के समय उसके मुसाहिबों का अग्रणी था। यदि मृत्यु उसे छुट्टी दिए होती तो वह उसके साम्राज्य में सर्दारों का सर्दार तथा बादशाही अमीरों का प्रधान हो जाता। राज्य के आरंभ में बड़े बड़े काम कर यह अपनी सेवा का स्वत्व राज्य पर छोड़ गया। गुणग्राहक बादशाह ने इसके पुत्रों के, जो नई अवस्था के थे, पालन पोषण का भार लेना स्वीकार कर सबको उचित मंसब दिया। वे सब अपने दुर्भाग्य से बादशाह की इच्छा के अनुसार योग्य नहीं हुए पर तब भी उनके मंसब बढ़ते हुए अंतिम सीमा तक पहुँच गए। परंतु इसके लिए उस मृत के स्वत्व का उचित उपयोग हुआ। इस पर जो कुछ कृपा हुई वह उसके मर्यादा के अनुसार ही हुआ। मीर इब्राहीम को एक हजारी ४०० सवार का मंसब मिला तथा शाही सेवा में सदा उपस्थित रहने की आज्ञा के साथ इसके मंसब में बराबर उन्नति होती रही। इसके उपरांत किसी कारण से यह हिजाज की यात्रा को गया। १८ वें वर्ष में हज्ज से लौटने पर यह दरबार में उपस्थित हुआ और डेढ़ हजारी मंसब बहाल हुआ। मुहतशिम खाँ की पदवी के साथ यह हसन अब्दाल से लंगरकोट की फौजदारी पर, जो पेशावर से बीस कोस पर है, भेजा गया तथा इसे झंडा मिला। हसन अब्दाल से लौटने पर यह सारंगपुर का फौजदार नियत

हुआ। २० वें वर्ष में यह मेवात का फौजदार बनाया गया। जब शाहजादा मुहम्मद अकबर ने विद्रोह किया तब सहायक सर्दारों में से कितनों ने लोभ से तथा बहुतों ने वाध्य होकर उसका साथ दिया। उक्त खाँ ने कुछ लोगों के साथ अपने विश्वास तथा सुव्यवहार से राजभक्ति का मार्ग न छोड़कर शाहजादे को अधीनता का वचन भी नहीं दिया। कुछ दिन कैद में भी इस कारण रहा। शाहजादे के भागने पर यह दरबार में उपस्थित होने पर प्रशंसित हुआ। इसके अनंतर यह आगरे का सूबेदार बनाया गया। २८ वें वर्ष में सैफ खाँ के स्थान पर यह इलाहाबाद का सूबेदार हुआ। इसके अनंतर मंसब छिन जाने पर बहुत दिनों तक यह एकांतवास करता रहा। ४२ वें वर्ष में इसने दो हजारी १००० सवार का मंसब पाया और कुछ दिन बाद १००० सवार, जो कम थे, बढ़ाए गए और यह औरंगाबाद का शासक नियत हुआ पर कब नियत हुआ, इसका ठीक पता नहीं मिला। ४७ वें वर्ष में यह नल दुर्ग का अध्यक्ष हुआ। फिर बिना मंसब का होकर यह दरबार पहुँचा। ४६ वें वर्ष में बादशाह वाकिनकीरा दुर्ग पर अधिकार करने में व्यस्त थे और बहुत मारकाट के अनंतर दुर्गाध्यक्ष पीरिया नायक ने कपट से संधि की बातचीत आरंभ की। उसने अबुलूगनी कश्मीरी को, जो पड़ाव का 'दस्त फरोश' था और जो धूर्तता तथा कपट से उस उपद्रवी से परिचित हो गया था, अपने लिखे हुए कई प्रार्थनापत्र दिए। उसने 'वाके-आखबान' के द्वारा उन पत्रों को पेश कराकर स्वीकृति प्राप्त कर ली। इसके बाद मुहतशिम खाँ को, जो बिना मंसब का होने से कष्ट में पड़कर इसी कश्मीरी का ऋणी हो रहा था, नायक के

प्रस्ताव पर मंसब बहाल कर तथा वहाँ का दुर्गाध्यक्ष नियतकर भेज दिया। उस उपद्रवी ने उक्त खाँ को कुछ आदमियों के साथ दुर्ग में पकड़ लिया। यहाँ बादशाही पड़ाव में बिजय का नगाड़ा बजा और मुबारकबादी दी गई। यहाँ तक कि उस कश्मीरी ने अपनी माँ से संदेश कहलाया कि पीरिया पागल होकर चला गया। इसपर उसके भाई सोमसिंह को, जो संधि के लिए दरबार आया था, छुट्टी मिली कि जाकर दुर्ग खाली करे। यह आज्ञा भी कार्यान्वित हुई। उसने समझा था कि इस कपटाचरण तथा धोखे से बादशाह कूचकर चल देंगे पर जब वह नहीं हुआ तब पुनः युद्ध होने लगा। मुहतशिम खाँ कैद में पड़ा रहा। वीरों के प्रयत्नों से दुर्ग पर जिस दिन अधिकार हुआ उसी दिन उस उपद्रवी ने मुहतशिम खाँ को एक दृढ़ कोठरी में बंदकर घरों में आग लगा दी। यदि बादशाही मनुष्य एक घड़ी देर कर पहुँचते तो खाँ उस आग में जल मरता। कहते हैं कि उक्त खाँ ने कोई ऐसी वस्तु खा ली थी कि जाड़े में उसके शरीर से पसीना टपकता था। यह सदा स्त्रियों का मुहताज रहा और शक्ति तथा स्त्रियों की अधिकता के लिए प्रसिद्ध था। सिवा भोग विलास, खाने व सोने के उसे और कोई काम नहीं था। कई बार नौकरी छूटने से इसका हाल खराब हो गया था। खेलना से लौटने के समय मार्ग में अच्छे लोगों को अनेक प्रकार की कठिनाई तथा कष्ट उठाने पड़े। हर एक नाला वर्षा के अधिक होने से भारी नदी बन गया और हर कदम पर पुल बनाना पड़ा। मजदूरों तथा बोझ ढोनेवालों का नाम भी न था। चौदह कोस का मार्ग एक महीना सत्रह दिन में पूरा हुआ। उक्त खाँ बिना स्त्री के नहीं

रह सकता था इसलिए स्वयं पैदल अनेक स्त्रियों के साथ डंडा पकड़े पहाड़ों के नीचे नीचे गिरते पड़ते कुछ कदम चलता था। इसे बहुत संतान थीं पर पुत्रों में से किसी ने उन्नति नहीं की। केवल मीर मुहम्मद खाँ को पिता की पदवी मिली थी, जिसका वृत्तांत अलग लिखा गया है।

मुहतशिम खाँ शेख कासिम फतहपुरी

यह इस्लाम खाँ शेख अलाउद्दीन का भाई था। जहाँगीर के राज्यकाल के ३रे वर्ष में इसने एक हजारी ५०० सवार का मंसब पाया। ५वें वर्ष में २५० सवार मंसब में बढ़ाए गए। इस्लाम खाँ की मृत्यु पर भी इसका मंसब बढ़ा। ७वें वर्ष में यह बंगाल प्रांत का शासक नियत हुआ। ६वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर चार हजारी ४००० सवार का हो गया। सर्दारी की योग्यता रखते हुए भी यह सांसारिक व्यवहार नहीं जानता था इसलिए उस प्रांत के आदमी इससे प्रसन्न नहीं थे। इसने अच्छी सेना बिना उचित प्रबंध के आसाम देश विजय करने भेज दिया, जिसका यही फल हुआ कि उसने तीन चार पड़ाव ही तै किया था कि आसामियों ने उस पर रात्रि में आक्रमण कर दिया और उसकी बहुत हानि हुई। जब यह बात बादशाह से कही गई तब यह उक्त पद से हटाया जाकर कृपादृष्टि से गिरा दिया गया। यह ऐसे ही समय में मर गया।

———

मुमम्मद अनवर खाँ बहादुर, कुतुबुद्दौला

यह शाह ईसा जिंदुल्ला के दौहित्रों में से था, जो शाह लश्कर मुहम्मद आरिफ का शिष्य था और जिसका मकबरा बुर्हानपुर नगर में था। शाह लश्कर मुहम्मद का गुरु शाह मुहम्मद गौस ग्वालिअरी था और जिसका मकबरा उक्त नगर के बाहर है। आरंभ में शाह मुहम्मद अनवर शाह नूरुल्ला दरवेश की कृपादृष्टि में था, जिस पर कुतुबुल्मुल्क तथा हुसेन अली खाँ की पूरी श्रद्धा तथा विश्वास था और दरवेश की सिफारिश से उक्त सैयदों ने इसे आसरा देकर फर्रुखसियर बादशाह के राज्यकाल में इसे नौकरी दिला दी। इसे अच्छा मंसब तथा खाँ की पदवी मिल गई। जिस समय आलम अली खाँ प्रतिनिधि रूप में औरंगाबाद में रहता था उस समय यह दक्षिण की बख्शीगिरी तथा बुर्हानपुर की नायब सूबेदारी पर नियत था। इसका मौसेरा भाई मुहम्मद अनवरुल्ला खाँ, जो उस प्रांत का दीवान था, इसकी ओर से उक्त नगर का प्रबंध देखता था।

जब निजामुल्मुल्क फत्हजंग बहादुर के नर्वदा पार करने का समाचार सुनाई पड़ा तब आलम अली खाँ ने इसको शंकर मल्हार नामक ब्राह्मण के साथ बुर्हानपुर की रक्षा को भेजा। निजामुल्मुल्क के बुर्हानपुर के पास पहुँचने पर इसने निकलकर उससे भेंट की और उसके बाद बराबर उसके साथ रहा। नासिर-जंग शहीद के समय यह दक्षिण का बख्शी था। सलाबतजंग के

समय कुतुबुद्दौला की पदवी पाकर यह सम्मानित हुआ। बाद को सन् ११७१ हि०, सन् १७५८ ई० में बुर्हानपुर में इसकी मृत्यु हो गई। यह दयावान था तथा नित्य की उपासना में दत्तचित्त रहता था पर सांसारिकता में भी एक ही था। इसे संतान न थी। इसका मौसेरा भाई अनवरुल्ला खाँ बहुत दिनों तक नवाब आसफ-जाह का दीवान रहा। यह सचाई से खाली न था और भले लोगों की चाल के लिए प्रसिद्ध था। इसके अन्य भाइयों की संतानें हैं।

मुहम्मद अमीन खाँ मीर मुहम्मद अमीन

यह मुअज्जम खाँ मीर जुम्ला अर्दिस्तानी[1] का पुत्र था। जब इसके पिता के वृत्तांत को जानकर बादशाहज़ादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के प्रयत्न से तिलंग के सुलतान कुतुब शाह का अत्याचार बंद हो गया तब उसने इसको कैद से छोड़कर सुलतान मुहम्मद की सेवा में भेज दिया, जो अग्गल रूप में उस प्रांत में आ चुका था। यह हैदराबाद से बारह कोस पर सुलतान की सेवा में उपस्थित हुआ और इसे भय तथा आशंका से छुट्टी मिल गई। ३१वें वर्ष शाहजहानी में यह पिता के साथ बादशाही सेवा में चला। जब बुर्हानपुर पहुँचा तब वर्षा के आधिक्य और बीमारी के कारण यह कुछ दिन साथ न दे सका। इसके अनंतर दरबार पहुँचने पर इसे खिलअत तथा खाँ की पदवी मिली। उसी वर्ष मुअज्जम खाँ को छुट्टी मिली कि शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब के साथ रहकर आदिलशाही राज्य को लूटमार करते हुए उस कार्य को शीघ्र समाप्त करे। मुहम्मद अमीन खाँ भी एक सहस्र जात बढ़ने से तीन हजारी १००० का मंसब पाकर पिता के प्रतिनिधि रूप में वजीर का काम करने पर नियुक्त हुआ। ३१ वें वर्ष में बादशाह की इच्छा के विरुद्ध कुछ काम करने के कारण जब मुअज्जम खाँ दीवान आला के पद से हटाया गया

---

१. इसी भाग का पृष्ठ ३०३-२२ देखिए।

तब मुहम्मद अमीन खाँ भी इस कार्य से रोक दिया गया पर इसकी योग्यता तथा अनुभव शाहजहाँ समझ गया था इसलिए पाँच सौ सवार मंसब में बढ़ाकर तथा जड़ाऊ कलमदान देकर दानिशमंद खाँ के स्थान पर जिसने स्वयं त्यागपत्र दे दिया था, इसे मीर बख्शी बना दिया।

जब शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर ने मुअज्जम खाँ को जो बादशाही फर्मान के आनेपर सेना सहित दरबार चल चुका था और जिसने किसी कारण आज्ञा पालन में कमी न की थी, कैद कर दक्षिण में रोक लिया तब दारा शिकोह न यह समाचार पाकर इसमें मुअज्जम खाँ की शाहजादे के साथ षड्यंत्र समझ कर शाहजहाँ को इसके संबंध में डरावनी बातें समझाईं और मुहम्मद अमीन खाँ पर असंभव बातें लगाकर उसे कैद करने की आज्ञा प्राप्त कर ली। इसे अपने घर बुलाकर कैद कर लिया पर तीन चार दिन बाद ही उक्त खाँ की निर्दोषिता बादशाह पर प्रकट हो गई जिससे यह कैद से छूट गया। दारा शिकोह के पराजय के बाद दूसरे दिन औरंगजेब के विजय का झंडा फहराने लगा और सामूगढ़ के शिकारगाह में, जो जमुना नदी के किनारे है, जब वह बिजयी बादशाह ठहरा हुआ था उस समय मुहम्मद अमीन खाँ सबसे पहिले उसकी सेवा में पहुँच गया। इस पर बादशाही कृपा हो जाने से इसे चार हजारी ३००० सवार का मंसब मिला। इसी महीने में यह मीर बख्शी का पद पाकर सम्मानित हुआ। जब शुजाअ के युद्ध में महाराज जसवंत सिंह ने उपद्रव कर औरंगजेब की सेना से हटकर अपने देश का मार्ग लिया और दारा शिकोह के पास पहुँचने की इच्छा की

तब शुजाअ के युद्ध से छुट्टी पा लौटने पर मुहम्मद अमीन खाँ को भारी सेना के साथ उस काफिर सर्दार को दंड देने के लिए भेजा। उक्त खाँ दाराशिकोह के पास पहुँचने पर जो अहमदाबाद से अजमेर आ रहा था, पुष्कर के पास से लौटकर बादशाह के यहाँ चला आया। २रे वर्ष इसका मंसब पाँच हजारी ४००० सवार का हो गया। ५ वें वर्ष में इसके मंसब में एक सहस्र सवार बढ़ा दिए गए।

जब ६ ठे वर्ष के आरंभ में मीर जुम्ला बंगाल में मर गया तब शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम ने इसके घर जाकर इसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई और इसे सांत्वना दी। इसे वह अपने साथ बादशाह के पास लिवा गया और बादशाह ने कृपा कर इसे खास खिलअत देकर शोक से उठाया। १० वें वर्ष में यूसुफ जई झुंड ने ओहिंद मौजा में, जो पार्वत्य स्थान के मुख पर है, फिर इकट्ठे होकर उपद्रव आरंभ कर दिया था इसलिए मुहम्मद अमीन खाँ भारी सेना के साथ उन्हें दंड देने के लिए भेजा गया। उक्त खाँ के पहुँचने के पहिले शमशेर खाँ तरीं के धावों से वे उपद्रवी पूरा दंड पाकर पराजित हो चुके थे। इसने भी उनके देश में घुसकर उन विद्रोहियों को धावे कर तथा उनके मकानों को यथासंभव नष्ट कर दमन कर दिया। बादशाही आज्ञानुसार लौटने पर इब्राहीम खाँ के स्थान पर यह लाहौर का सूबेदार नियत हुआ। १३ वें वर्ष में महाबत खाँ के स्थान पर काबुल के शासन का फर्मान इसे मिला। इसी वर्ष जाफर खाँ प्रधान मंत्री संसार से उठ गया और कुछ दिन असद खाँ प्रति-निधि होकर उसका कार्य करता रहा। बादशाह की सम्मति थी कि

इस उच्चपद का कार्य बड़े सर्दारों के सिवा दूसरा नहीं कर सकता इसलिए इसे दरबार बुलाया। १४ वें वर्ष में यह सेवा में पहुँचा और बादशाही कृपाओं से सम्मानित हुआ। यद्यपि यह विचार शीलता तथा सुसम्मति देने में प्रसिद्ध था पर यौवन के कारण निर्भीकता भी इसमें थी। इसने मंत्रित्व स्वीकार करने में कुछ शर्तें लगाईं, जो बादशाह की प्रकृति के बिलकुल विरुद्ध थीं और कुछ कष्टों का उल्लेख कर आपत्ति भी की।

इसके भाग्य में दुर्दशा होना लिखा था इसलिए यह काबुल के शासन पर भेजा गया और इसे बादशाही अनेक भेंट तथा चाँदी के साज सहित आलमगुमान हाथी भी मिला। घमंड का कुमकुमा मुखपर सिवा पीलापन के और रंग नहीं लाता और अहंकार सिवा अप्रतिष्ठा की धूल के और कुछ नहीं उड़ाता। झंडे के गर्दन की रग, जिसे वह फहराता है, असफलतारूपी शत्रु है और कुमंत्रणा विचित्र असफलता तथा असम्मान पैदा करता है। मुहम्मद अमीन खाँ भी अपनी शान शौकत दिखलाने में बहुत सा सामान तथा वैभव इकट्ठा कर इस विचार में था कि पेशावर से काबुल में पहुँच कर विद्रोही अफगानों को दमन कर उस देश से इस उपद्रव के काँटे को खोद कर निकाल फेंके। १५ वें वर्ष में ३ मुहर्रम सन् १०८३ हि० को खैबर घाटी के पार करने के पहिले यह समाचार मिलने पर भी कि अफगानों ने यह विचार जानकर मार्ग रोक दिया है और चींटी और टिड्डी की तरह उमड़ पड़े हैं इसने, जिसपर ईश्वरीय कोप पड़ चुका था, साहस कर उनको कुछ न समझा तथा उन्हें भगा देना सहज समझ कर आगे बढ़ा। जैसा कि अकबर के समय जैन खाँ कोका,

हकीम अबुल्फत्ह तथा राजा बीरबल पर बीत चुका था उसी प्रकार घाटी पार करते समय असतर्कता तथा उपद्रवियों के झगड़े से इस पर भी बीता। अफगानों ने चारों ओरसे उमड़ कर तीर व पत्थर बरसाना आरंभ किया, जिससे सेना अस्त व्यस्त हो गई और हाथी, घोड़े तथा आदमी एक दूसरे पर गिरने लगे। इस घटना में सहस्रों मनुष्य पहाड़ों पर से खड्डों में गिर कर मर गए। मुहम्मद अमीन खाँ लज्जा को मारे जान देना चाहता था पर नौकरों ने उसे पकड़ लिया और बाहर लाए। अपनी स्त्रियों का हाल बिना लिए ही दुर्दशाग्रस्त अवस्था में भागता हुआ पेशावर पहुँचा। इसका योग्य जवान पुत्र अब्दुल्ला खाँ उस आपत्ति में मारा गया। सेना का कुल सामान लुट गया। बहुत सी स्त्रियाँ पकड़ ली गईं। मुहम्मद अमीन खाँ की छोटी पुत्री को बहुत सा धन लेकर अन्य पर्देवालियों के साथ छोड़ा।

कहते हैं कि उक्त खाँ ने इस घटना के अनंतर बादशाह से प्रार्थना की कि जो कुछ भाग में लिखा था वह बीत गया पर अब पुनः यह कार्य मुझे दिया जाय तो मैं इसका पूर्ण प्रयत्न तथा प्रायश्चित्त करूँ। बादशाह ने इस बारे में सम्मति ली। अमीर खाँ ने कहा कि घायल भेड़िया कारण अकारण चोट करता है। इसपर इसका मंसब छ हजारी ५००० सवार से पाँच हजारी ५००० सवार का कर इसे अहमदाबाद गुजरात का सूबेदार नियत कर भेज दिया। यह आज्ञा हुई कि दरबार न आकर सीधा वहाँ चला जावे। इसने वहाँ बहुत दिन व्यतीत किया। २३ वें वर्ष में जब बादशाह अजमेर में थे तब यह बुलाए जाने पर दरबार में आया और उदयपुर तक राणा के साथ था। चित्तौड़ में बादशाही

भारी कृपाओं को पाकर यह विदा हुआ। २५ वें वर्ष में ८ जमादिउल् आखिर सन् १०८३ हि० को यह अहमदाबाद में मर गया। सत्तर लाख रुपया, एक लाख पैंतीस सहस्र अशरफी तथा इब्राहीमी और छिहत्तर हाथी के सिवा और बहुत सा सामान जब्त हो गया। इसे पुत्र न थे पर सैयद महमूद नामक एक भांजा था। इसका दामाद सैयद सुलतान करबलाई, जो उक्त स्थान के सैयदों में से था, पहिले हैदराबाद आया और वहाँ के सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह ने इसे अपनी दामादी के लिए चुना। दैवयोग से जिस दिन विवाह होने को था उस दिन इससे तथा मीर अहमद अरब से, जो बड़ा दामाद तथा राज्यकार्य का सर्वेसर्वा और इस संबंध का कर्ता था, किसी बात पर झगड़ा हो गया। यह यहाँ तक बढ़ा कि वह बेचारा सैयद घरों में आग लगाकर बाहर चला गया। यद्यपि मुहम्मद अमीन खाँ शान व सजावट में व्यय करता था पर सचाई व ईमानदारी में एक था। दूसरों की भलाई करने में यह सदा प्रयत्नशील रहता। स्मरण शक्ति इसकी तीव्र थी। अवस्था के अंत में अहमदाबाद गुजरात की सूबेदारी के समय अधिक या कम समय में खुदा के संदेश को स्मरण कर विदा लिया करता। इसीपर औरंगजेब बादशाह ने इसे हाफिज मुहम्मद अमीन खाँकी पदवी दी। यह इमामिया मजहब का कट्टर पक्षपाती था। इसके एकांत स्थान में हिंदू नहीं जा पाते थे। यदि कोई बड़ा राजा इसे देखने जा पहुँचता जिसे रोक नहीं सकते थे तो घर को पानी से धुलवाता और फर्श तथा कपड़े बदलता।

मुहम्मद अली खाँ खानसामाँ

यह तकर्रुब खाँ हकीम दाऊद का पुत्र था तथा विलायत का पैदा था। इसका पिता हकीमी में अत्यंत कुशल था और शाहजहाँ की सेवा में आकर अपनी औषधि तथा कुशलता से बादशाही कृपापात्र होकर शीघ्र एक सर्दार हो गया और इसे भी एक हजारी मंसब मिला। औरंगजेब की राजगद्दी पर जब बादशाह पंजाब से राजधानी लौटे तब इसे खाँ की पदवी मिली। तकर्रुब खाँ को शाहजहाँ की दवा करने के लिए गद्दी से उतारे हुए उस बादशाह के पास छोड़ रखा था इसलिए औरंगजेब का मन उससे फिर गया और वह दंडित हुआ। यह भी पिता के कारण मंसब छिन जाने पर बादशाही कृपादृष्टि से गिर गया। जब ५ वें वर्ष में इसका पिता मर गया तब बादशाह ने इसपर कृपाकर तथा खिलअत देकर इसे शोक से उठाया और मंसब बढ़ाकर डेढ़ हजारी २०० सवार का कर दिया। १७ वें वर्ष में हकीम सालिह खाँ के स्थान पर करकराकखाना[1] का दारोगा का पद देकर इसका मंसब दो हजारी १००० सवार का कर दिया। बाद में चीनीखाना की दारोगागिरी भी साथ में मिल गई।

---

१. इसका पाठांतर करकराकीखाना, करकीराक खाना आदि मिलता है पर इसका अर्थ ज्ञात नहीं हो सका।

इसकी सचाई, मितव्ययिता, अनुभव तथा कार्यशक्ति बादशाह पर अच्छी प्रकार प्रकट थी इसलिए अजमेर जाते समय रूहुल्ला खाँ के स्थान पर खानसामाँ का पद इसे दिया। इसने अपनी चाल की दृढ़ता, सचाई, सुसम्मति आदि से औरंगजेब के हृदय में इतना विश्वास पैदा कर लिया कि यह अपने बराबरवालों से बढ़ गया और एक अच्छा सर्दार हो गया। गोलकुंडा के घेरे में, जो अभी साम्राज्य के अधिकार में नहीं आया था, १८ रज्जब सन् १०९८ हि० को इसकी मृत्यु हो गई। बुद्धिमानी, विद्वत्ता, बड़प्पन आदि में यह प्रसिद्ध था तथा सत्यनिष्ठा और सचाई से बादशाही माल की गिर्दावरी में प्रयत्न करता रहा। यह दयावान भी था और जो इसके पास पहुँचा सफल रहा। धार्मिक बातों को मानता था और निमाज तथा रोजा रखता था। धार्मिक पुस्तकें भी पढ़ता था। नेअमत खाँ हाजी अपने हजलों[1] में इस पर सूखा विरक्त तथा उपासक का व्यंग्य करता था। खानसामानी से संबंधित दारोगागिरियों पर इसका अधिकार था इसलिए यह उनकी रक्षा के लिए कि लूट न हो मना करने के कारण उसके हृदय को रिक्त कर दिया था। उक्त खाँ काजियों की तरह बड़ी पगड़ी बाँधता था, जिसपर नेअमत खाँ ने संकेत किया है—शैर

सिर पर रखता है बड़ी बुजुर्गी।
हमने सिवा पगड़ी के कुछ न देखा॥

---

१. वैसी गजल जिसमें किसी की हजो की जाय या हँसी उड़ाई जाय।

मुहम्मद अली खाँ मुहम्मद अली बेग

यह शाहजादा दाराशिकोह के साथ के मंसबदारों में से कुलीज खाँ का दामाद था। यह साधारण नियम था कि सरकार हिसार युवराज शादजादों को मिला करता था जैसे बाबर के समय हुमायूँ को, हुमायूँ के समय अकबर को और इसी प्रकार जहाँगीर तथा शाहजहाँ को वेतन में मिला था। इसलिए शाहजहाँ के समय भी बड़े शाहजादे को जब वह मिला तब यह उसका फौजदार नियत हुआ। प्रत्येक काम का पूरा होना समय के अनुसार है और काम करने वाले साधारण कारण से प्याले को काम में उलेंड़ देते हैं। इसी समय दीपक की लपट दामन में लगने से बेगम साहबा का शरीर कई जगह जल गया और हकीमों के बहुत दवा करने पर अच्छा हो गया था पर वे घाव कभी कभी बढ़ जाते थे। इस पर इसने प्रार्थना की कि उक्त सरकार में हामू नाम का एक विरक्त फकीर है और उसका मलहम ऐसे घावों के लिए बहुत लाभदायक है। आज्ञा मिलने पर वह लाया गया और उसके मलहम ने बहुत लाभ पहुँचाया। बादशाह ने उस फकीर को धन, खिलअत, घोड़ा, हाथी और गाँव उसी के देश में पुरस्कार में दिया। मुहम्मद अली खाँ पर भी इस कारण कृपा हुई और १८ वां वर्ष में खाँ की पदवी इसे मिली। २६ वें वर्ष में जब मुलतान प्रांत गुजरात प्रांत के बदले में शाहजादे को मिला तब इसे खिलअत दे कर वहाँ के शासन

पर नियत किया। जब उक्त प्रांतों के साथ ठट्टा प्रांत भी शाहजादे को मिला तब यह उस प्रांत की रक्षा पर नियत हुआ। ३० वें वर्ष सन् १०६६ हि० में इसकी मृत्यु हो गई।

मुहम्मद असलम खाँ

यह मीर जाहिद हरवी[1] का पुत्र था, जिसका वृत्तांत अलग लिखा गया है। औरंगजेब के समय यौवन प्राप्त करने पर इसे योग्य मंसब तथा खाँ की पदवी मिली। बहुत दिनों तक काबुल प्रांत का दीवान रहा और इसके बाद साथ साथ में शाह आलम की सरकार का दीवान भी रहा। ३८ वें[2] वर्ष में इन कामों से हटाया जाकर सैयद मीरक खाँ के स्थान पर लाहौर का दीवान हुआ। ४१ वें वर्ष में यह उस पद से हटाया गया और बाद में कुछ वर्ष तक लाहौर का अध्यक्ष रहा। बहादुरशाह के समय वहीं इसकी मृत्यु हो गई। इसके पुत्र मुहम्मद अकबर और मुहम्मद आजम के बादशाही सेवा कर लेने पर शाहजादों के नाम के विचार से इनके नाम मुहम्मद अकरम और मुहम्मद असगर कर दिए गए। प्रथम ने खाँ की पदवी पाकर हिंदुस्तान में अपना जीवन बिता दिया और दूसरा पिता की पदवी पाकर नादिरशाह की चढ़ाई के बाद निजामुल्मुल्क आसफजाह के साथ दक्षिण चला गया। कुछ दिन वहाँ के प्रांतों का दीवान रहा और फिर मीर आतिश हो गया। सलाबतजंग

---

१. मुगल दरबार भाग ३ पृ० ३०६ पर देखिए।

२. इस वर्ष में कुछ शंका है। यहाँ अड़तालीसवाँ वर्ष लिखा हुआ था पर आगे इकतालिसवाँ वर्ष आया है इसलिए यही रखा गया है।

के राज्यकाल में यह दक्षिण का बख्शी हुआ। इसके अनंतर यह हशमतजंग बहादुर की पदवी पाकर बुर्हानपुर का शासक नियत हुआ। निजामुद्दौला आसफजाह के समय जियाउद्दौला इसकी पदवी में बढ़ाया गया। लिखने के कुछ वर्ष पहिले इसकी मृत्यु हो गई। यह छ हजारी ६००० सवार के मंसब तक पहुँचा था। इसके संतान थीं।

मुहम्मद काजिम खाँ

यह इन पंक्तियों के लेखक का बिना संबंध[1] का बड़ा दादा था। जब इसका पिता मीरक मुईनुद्दीन अमानत खाँ[2] मर गया तब गुणग्राहक बादशाह औरंगजेब ने इस सुशील सदाचारी के योग्य पुत्रों के उनके हाल के अनुसार मंसब बढ़ाए तथा पद देकर सफल बनाया। यह सत्यनिष्ठा के बाग का वृत्त युवावस्था ही में मंसब की उन्नति के साथ पहिले बीजापुर की बयूताती पर और फिर औरंगाबाद प्रांत के अंतर्गत जालनापुर की अन्य पर्गनों के साथ फौजदारी पर नियत हुआ। जिस समय ब्रह्मपुरी के पास बादशाही पड़ाव पड़ा हुआ था उसी समय यह राजधानी लाहौर का दीवान नियुक्त हो वहाँ भेजा गया। उन दिनों खाना-जाद सेवकों पर बहुत कृपा रहती थी। कहते हैं कि उन दिनों उक्त खाँ मदिरापान तथा मदिरा उतारने में व्यस्त था और वजीर खाँ शाहजहानी के एक पौत्र ने, जो राजधानी का वाके-आनवीस था, अपनी परतों में यह हाल प्रगट कर दिया और

---

१. इसका तात्पर्य क्या है, यह समझ में नहीं आया। ग्रंथकर्ता नवाब शाहनवाज खाँ का यह पितामह था। स्यात् काजिम खाँ ने पुत्र की मृत्यु के अनंतर इसका जन्म होने से इसे त्याग दिया रहा हो और इसी कारण इसने ऐसा लिखा हो।

२. मुगल दरबार भाग २ पृ० २१४-२३ देखिए।

डाक के दारोगा ने ज्यों का त्यों बादशाह के आगे सुना दिया। यह देखकर उसके बहनोई अर्शद खाँ से, जो खालसे का दारोगा था, यह हाल पूछते हुए बादशाह ने कहा कि अमानत खाँ के पुत्रों से इस प्रकार के काम अनुचित तथा असंभव हैं पर लिखनेवाला भी खानाजाद है। कुछ ठहर कर, यद्यपि वैसी आशंका तथा विचार रखते हुए, इसके पिता की बुद्धिमत्ता तथा उस मृत की अच्छी सेवाओं का स्वत्व ध्यान में रखकर दारोगा से कहा कि उत्तर में लिखो कि दोनों खानाजाद हैं और एक खानाजाद को दूसरे खानाजाद के संबंध में ऐसी घृणित तथा बुरी बात दरबार को सूचित न करना चाहिए।

जब बादशाहजादा मुहम्मद मुअज्जम बहादुरशाह के प्रथम पुत्र शाहजादा मुइज्जुद्दीन मुलतान प्रांत जाते हुए नगर में आया तब उक्त खाँ सेवा में उपस्थित होकर अनेक कृपाओं से सम्मानित किया गया। तीन दिन तक सत्संग रहने पर इन दोनों का ऐसा मन मिल गया कि शाहजादे की दृढ़ इच्छा हो गई कि यह साथ रहे और इसके अनुसार इसने दरबार को प्रार्थनापत्र भेजा। इस पर मुल्तान तथा ठट्टा प्रांतों की और भक्कर व सिविस्तान की दीवानी इसे मिली तथा साथ में सेना की दीवानी भी इसे दे दी गई। जब यह मुलतान गया तब वहीं से दोनों की प्रकृति हर प्रकार से एक सी होने के कारण दोनों में खूब मेल हो गया। खास मजलिस में तथा एकांत में इसका साथ रहता। इस सब के होते उस सरकार के अन्य सर्दारों की चाल पर, कि अपनी स्त्रियों का शाही महल में आना जाना अपनी अमीरी समझते थे और एक दिन रात शाहजादा इस सर्दार की

हवेली के बाग में अपनी खास रखेलियों के साथ सैर करते हुए रहने पर भी इसने उस अप्रशंसनीय चाल को नहीं अपनाया। बलूच की चढ़ाई में, जो शाहजादे ही के कार्यों में से था और जिस पर औरंगजेब को गर्व भी था, सफलता प्राप्त करने पर, कि सेनाओं ने उस देश को दमन कर दिया था तथा उस जाति की शक्ति तोड़ दी थी, शाहजादे ने चाहा कि एक सेना किसी पार्श्ववर्ती सर्दार के अधीन उनके निवासस्थान पर नियत करे पर बहुतों ने स्वीकार नहीं किया। इस सच्चे सर्दार ने अपने स्वामी के कार्य से बिना सोचे मुख न मोड़ा और फुर्ती से चला गया। अच्छे विश्वासवाली वह जाति शक्ति रखते हुए भी केवल सैयद-पन की मर्यादा के विचार से अपना मालमता छोड़कर भाग गई। शाहजादे के लिखने पर इसका मंसब बढ़ा तथा इसे खाँ की पदवी मिली।

औरंगजेब की मृत्यु पर शाहजादा अपने पिता के साथ, जो पेशावर से अपने भाई मुहम्मद आजमशाह से लड़ने की तैयारी कर रहा था, जिसमें प्रत्येक ने समयानुकूल अपने अपने नाम सिक्का तथा खुतबा कर दिया था, मुलतान पहुँचने पर उक्त खाँ को अपना नायब सूबेदार बनाकर वहाँ छोड़ा। यहाँ से हटने पर जब यह लाहौर पहुँचा और बहादुरशाह दक्षिण जा रहा था तब यह दूर की यात्रा में अशक्त होने से वहीं रुक गया। इसने दो तीन वर्ष के लगभग वहीं बेकारी में व्यतीत किया क्योंकि आय न होते भी व्यय बढ़ गया था, जैसा कि धनाढ्यों के यहाँ होता है। इसमें सचाई तथा विश्वस्तता पूर्ण रूप से थी और इसकी जागीर की अधिकतर आय कला-कुशलों में व्यय हो जाती थी,

जिनमें हर एक गुणी के लिए वेतन बँधे हुए थे, इसलिए उस समय सभी पुत्रों की जागीर तथा नगद, जिन सबको बादशाह तथा शाहजादों की ओरसे मंसब मिल चुके थे, इकट्ठा कर व्यय चलाता था। सरहिंद के अंतर्गत साधोरा में यह बादशाह तथा शाहजादे की सेवा में उपस्थित हुआ तब इसे पंजाब प्रांत में आबाद जागीर मिली और शाहजादे के द्वितीय बख्शी का पद पाया, जो अब जहाँदारशाह की पदवी से प्रसिद्ध हो चुका था। इसके अनंतर जब जहाँदारशाह बादशाह हुआ तब इसे चार हजारी मंसब मिला परंतु आलस्य, बेपर्वाही तथा दुनियादारों की चालों को न समझने से नवागंतुकों के आने और कोकल्ताश खाँ की ईर्ष्या से, जो सदा मित्रता की ओट में इसका काम बिगाड़ता रहता था, इसका ऐश्वर्य बढ़ने नहीं पाया प्रत्युत् गुणग्राहकता के अभाव तथा विमनसता से दरबार में आना जाना और मुजरा सलाम सब बंद हो गया। एक दिन दैवयोग से इसका सवारी के समय बादशाह का सामना हो गया और पुरानी कृपा के कारण पूछताछ हुई। इसकी बेकारी तथा दुर्दशा पर शोक भी प्रगट किया गया। कोकल्ताश खाँ की उचित भर्त्सना की गई जिसपर गुजरात या लाहौर की सूबेदारी का प्रस्ताव बीच में आया। घूसखोरी व चालाकी का दुनियादारी से व मीर तथा वजीर का न्याय से सरोकार था। इसका स्वभाव इन बातों से बिलकुल अपरिचित था। अंत में लाहौर दुर्ग की अध्यक्षता इसे पसंद आई पर कुछ महीने नहीं बीते थे कि दूसरा फूल खिल उठा और फर्रुखसियर की राजगद्दी हो गई। जहाँदार शाह की पुरानी मित्रता के कारण यह बादशाही कोप

में पड़ने ही को था कि यह कुतुबुल्मुल्क के पास प्रार्थना लेकर पहुँचा, जो कुछ दिन मुलतान में नियत था और कुल ठीक हाल जानता था। उसने प्रार्थना की कि यह लेने, देने, शोक, इच्छा से दूर रहता है और शाहजादे की इच्छानुसार कोकल्ताश खाँ के हाथ में सब कामों को छोड़कर यह नाम से प्रसन्न रहता था। इस पर यह बला इसके सिर से टल गई। इस बादशाह के राज्यकाल के अंत में जब एतकाद खाँ फर्रुखशाही बादशाह के पार्श्ववर्ती होने तथा सम्मान पाने से बढ़ गया तब पुरानी मित्रता तथा एक साथ काम करने से, क्योंकि यह भी जहाँदार शाही था, इसे कश्मीर प्रांत की दीवानी मिली, जो आराम पसंदों के लिए बहुत ही आकर्षक तथा आराम देने वाला स्थान है। जब मुहतवी खाँ का उपद्रव उस प्रांत में हुआ, जिसका विवरण वहाँ के नायब सूबेदार मीर अहमद खाँ द्वितीय[१] के जीवन वृत्तांत में लिखा जा चुका है, तब यद्यपि इसके वृत्त की छोटी नाव उस उपद्रव की नदी में कुशलपूर्वक रही, जब कि बादशाही मुत्सद्दियों की नावें बहुधा अप्रतिष्ठा तथा खराबी के भँवर में डूब गईं, पर दरबार के कार्य-कर्ताओं ने वहाँ के कार्यों से इसे हटा दिया। इसके अनंतर इसने दिल्ली आकर कई साल तक बेकारी तथा दुर्दशा में व्यतीत किया और सन् ११३५ हि० में इसकी मृत्यु हो गई, जिसकी अवस्था ६० वर्ष से अधिक हो चुकी थी।

---

१. मुगल दरबार भाग २ पृ० २६६-७२ देखिए। यह घटना मुहम्मद शाह के समय सन् १७२० ई० में घटी थी।

इसका बड़ा पुत्र मीर हसन अली, जो इन पृष्ठों के लेखक का पिता था, यौवनकाल ही में लाहौर में सन ११११ हि० में मर गया, जब कि वह उन्नीस वर्ष से अधिक नहीं हुआ था और उसकी इच्छा के वृत्त में फल नहीं लगे थे। मृत्यु के पंद्रह दिन बाद २८ रमजान[1] को इस लेखक का जन्म हुआ। यद्यपि इसके चाचागण तथा इस वंश के कुछ अन्य लोग लाहौर ही में थे पर दादा की जीवित अवस्था ही में, जिस वर्ष[2] अमीरुल्उमरा हुसेन अली खाँ दक्षिण गया उसी वर्ष खानपान की कमी तथा दरिद्रता के कारण यह औरंगाबाद चला आया और यहीं रहने लगा। इसमें बहुत दिन बीतने से यह लौटा नहीं और मित्रों तथा देश से हाथ खींच लिया। अंत में निरुपाय हो सेवा करने का निश्चय किया। सन ११४५ हि० में नवाब आसफजाह से बरार प्रांत की दीवानी इसे मिली। बिखरी हुई इस पुस्तक को फिर से लिख डाला और उस मुर्झाए हुए फूल में निजी प्रयत्नों द्वारा सींचकर नया रंग व सुगंध पैदा किया। अच्छी सेवा तथा कार्य करने का फल प्रगट होने पर आसफजाह के दुभाषिए के मुख से निकला कि अमुक के काम अच्छे होते हैं।

जब उस समय कि उच्चपदस्थ सर्दार निजामुद्दौला बहादुर

---

१. २८ रमजान सन् ११११ हि० अर्थात् ६ मार्च सन् १७०० ई० को लाहौर में मीर अब्दुर्रजाक नवाब समसामुद्दौला शाहनवाज खाँ का जन्म हुआ था। देखिए मुगल दरबार प्रथम भाग पृ० २०-५३।

२. सन् १७१५ ई० में यह औरंगाबाद गए जहाँ इनके अन्य परिवार वाले रहते थे तथा नानिहाल भी था।

नासिरजंग समय देखकर दक्षिण के प्रबंध को निकला तब दैवयोग ने समाचार लेखक को भी औरंगाबाद खींच लिया। इस साहसी तथा भाग्यवान युवक पर ईश्वरेच्छा से उसने बहुत कृपा की। जब ईश्वरी कृपा ने एक पार्श्ववर्ती की सहायता से गुमनामी के कोने को दूर किया तथा भाग्य खोलनेवाले के द्वारा जमे हुए गुमनामी धब्बे को परिचय के दर्पण से हटा दिया तब इस प्रकार बिना किसी प्रयत्न के उस सर्दार ने इस अयोग्य को अपनी सेवा में लेकर विश्वासपात्र बना दिया और इस विश्वास तथा परिचय से बिना किसी साथी के अपना मुसाहिब तथा अंतरंग मित्र बना लिया।

हर एक काम समय के अनुसार ही होता है अतः कुछ समय बाद दक्षिण की दीवानी इसे मिली तथा उस राज्य के अंतर्गत आसफजाह के सरकार का नायब दीवान और खानसामाँ नियत हुआ। स्वामिभक्ति तथा हितैषिता को अनुभव तथा कार्यशक्ति से मिलाकर यह कार्य करने लगा। अपने पूर्वजों की चाल पर घूसखोरी व भेंट लेने की प्रथा को, जिसे अपने प्रयत्न का स्वत्व माँ के दूध से बढ़कर दुनियादार लोग समझते हैं, राज्य से एक दम बंदकर हराम बना दिया। प्रकट है कि ईश्वर के भय से इस प्रथा को काम में लाना अलभ्य है। अधिकतर ऐसा करने में सिवा स्वामी को प्रसन्न करने तथा नई कृपा प्राप्त करने के और कुछ नहीं है, जो ऐश्वर्य तथा सम्मान को बढ़ानेवाली है। यह भी उस समय कल्पना के पक्षी के समान था। सौ में से एक में भी यदि यह गुण हो तो सांसारिक लोगों में वह नादानी और मूर्खता समझा जाता था। ईश्वर की स्तुति है कि यहाँ यह अंतिम इच्छा

न थी। यह हमारा भाग्यशाली सर्दार, जिसकी पैरवी कर भले लोग नेकी का कोष संचित करते हैं, ऊँचे साहस में प्रकाशमान सूर्य था, जो जनसाधारण का पालक था और उदारता में अद्वितीय बादल था, जो पुरस्कारों का पूर्ण दाता था परंतु विचारिणी बुद्धि केवल लज्जा के विचार से, कि उससे चार आँखें न हों तथा सिर ऊँचा न हो सके, दूर रहना उचित समझा। कहा है, शैर—

किसी को लज्जित करने को सिर ऊँचा न करे।
हलके के समान किसी को पकड़ना गुण है॥

इसके अनंतर जब समय ने दूसरा रंग पकड़ा और उस उच्चवंशस्थ सर्दार ने अवसर समझकर एकांतवास किया, जिसका विवरण संक्षेप में नीचे दिया गया है तब इसने भी प्रेम के कारण इन सब कामों से हाथ हटाकर साया के समान उसका साथ दिया तथा शीराजी मदिरा के घूँट से समय की इच्छा तथा मुख को स्वादिष्ट बनाया। शैर—

राजसिंहासन तथा जमशेद के अफ़सर हवा में मिल जाते हैं।
यदि गम खाएँ तो अच्छा न था इसलिए अच्छा है कि खाता हूँ॥

इस प्रकार कुछ दिन एकांत के कुंज में आराम तथा छुट्टी में व्यतीत किया। मैंने कहा है—शैर

संतोष के कारण मैंने कोना अख्तियार नहीं किया है।
कोने में शरीर-पालन के लिए यह विचार किया है॥

संयोग से ईर्ष्यालु आकाश ने इस हालत में भी न छोड़ा और आँचल से पैर पोंछनेवालों को पर्वत तथा जंगल का मार्ग दिखलाकर अबुहर के रौजे से भी लिवा गया। बहुतों का इस परिवर्तन तथा दुर्दशा से साहस का हाथ सुस्त हो गया है तथा

इच्छा का पैर पत्थर से टकरा गया। कुछ स्वाँस न ले पाया था कि आकाश के कुमार्ग प्रदर्शन से युद्ध के झगड़े में पड़ गया। उस दिन भी पहिले की तरह सर्दार[1] के पीछे हाथी पर था। जब मामला बढ़ा और पराजय हुई तब सर्दार गण तथा सेनापति लोग सुरक्षित स्थान में चले गए, जो युद्धस्थल के पास था। सिवा उस सर्दार की हाथी के, जो उस चार दीवारी के फाटक के पास पहुँच गया था, कोई वहाँ न था। भाग्य के ऐसे खेल पर प्रश्न हुआ कि क्या करना चाहिए। मैंने कहा कि वैसे सुरक्षित स्थान से अरक्षित रहना ही अच्छा है, जहाँ गोले गोलियों का अपने को हर ओर निशाना बनाया जाय और मुफ्त में जान दी जाय। इसके सिवा कोइ लाभ नहीं समझा जा सकता। उस दृढ़ हृदय ने यह सुनकर मैदान का मार्ग लिया और देखा कि विपक्षी हाथी सवार उसे अकेला देखकर पीछा कर रहे हैं। उसने साहस से अकेले ही अपनी हाथी को उसी ओर दौड़ाया। वे यह देखकर प्रशंसा करते हुए आक्रमण से हट गए पर उसे घेरकर उसी प्रकार आसफजाह के सामने ले चले। कुछ ही कदम बाकी था कि उस सुरक्षित स्थान से कुछ वीर तलवार खींचे हुए बिजली के समान आपहुँचे। अवसर हाथ से निकल गया था इसलिए उस सर्दार तथा इन पृष्ठों के लेखक ने कड़ाई से उन्हें बहुत मना किया पर सिवा विपक्षियों के आक्रमण के और कुछ न हुआ। निरुपाय हो रक्षा व सतर्कता के लिए उधर दाएँ बाएँ ओर तीर बरसाकर वहाँ से उन्हें दूर रखा। भाग्य का खेल था कि युद्ध में घायल न हो संधि

---

१. नवाब आसफजाह के पुत्र नवाब निजामुद्दौला नासिरजंग।

के समय घायल हो गया। एकाएक उस उपद्रव में कुछ लुच्चे तलवार खींचे हुए मेरी ओर चले और धावा किया। अच्छी आवाज में (यह सुनकर) कि क्यों अपने को मारने को देता है सशंकित हो कर हाथीसे कूद पड़ा। ईश्वर की रक्षा थी इससे हाथियों के घेरे की ओर जो एक साथ वहाँ पहुँचे थे, गिरा। उसी समय दूसरे सर्दार ने उस प्रभावशाली को अपनी हाथी पर चढ़ा लिया और उस उपद्रव स्थल से निकाल ले गया। ऊँचे उठे शोले शांत हो गए। उस उपद्रव तथा निस्सहाय अवस्था में मित्र[1] के मिलने से मृत मुतहौव्वर खाँ[2] के घर गया, जिसका विवरण अलग दिया हुआ है। बिना इच्छा के इस घटना में सम्मिलित होने से बहुत दंड पाने का आशंका थी परंतु नवाब आसफजाह की उदारता से, जो खुदा की आयतों में एक है, केवल मंसब व जागीर जब्त होकर रह गई और कुछ आदमी घर जब्त करने को हम पर बढ़ाए गए।

यद्यपि संसार में शंका तथा कुविचार बहुत वे पर ईश्वर को धन्यवाद है कि एकांत के कोने से संतुष्ट हूँ कि न सुनने योग्य बातें सुनाई नहीं पड़ती और न देखने योग्य बातें दृष्टि में नहीं आतीं। शैर—

ऐ एकांत के कोने तुझी से नम्रता का जल बढ़ता है,
नहीं पहिचानता हूँ यदि तेरी कद्र दर दर हो।

---

१. सादुल्ला खाँ वजीर के पौत्र हर्जुल्ला खाँ ने इन्हें उक्त बात कहकर रोक लिया था नहीं तो उस अवस्था में नवाब आसफजाह के सामने पहुँचने पर इनके प्राण न बचते।

२. इसी पुस्तक का पृ० ४२५-२७ देखिए।

यही एकांतवास इस ग्रंथ के प्रणयन का कारण हुआ, जिसका संकेत भूमिका[1] में है और जिसमें दैवी कथाएँ खिलीं, शंकाहीन कृपा ने मुख खोला तथा इच्छित काम हाथ में पड़ा। इसी मनोहर काम में बेकारी दूर करने का प्रयत्न करता रहा। जानना चाहिए कि इसमें निरर्थक तथा व्यर्थ की बातें अधिक नहीं हैं। इस बलात् की छुट्टी से मन को दृढ़कर और व्यर्थ की चिंताओं को दूर कर समय का आबद्ध हो मैं जो कर सका उसे किया, जिससे बेकारी नहीं खली। छः साल में यह रचना समाप्त हुई। शैर का अर्थ—

अँगड़ाई से भरे ऐश के कलंक से भागा हूँ।
शराब इतनी न थी कि खुमारी का दुःख हो।

यद्यपि थोड़े समय इसके कारण संसार की खींचाखींची से आराम पाया। शैर का अर्थ—

जो आवश्यक है उसे आकाश एक दूसरे पर पटकता है। वह समय आया कि बेकारी मेरे काम आई॥

फिर भी तात्त्विक प्रकृति के अनुसार, कि उसके हृदय का बड़ा होना कंपन से संबद्धित है क्योंकि जितना ही कंपन बढ़ता है उसका चिह्न भी बढ़ता है और उतने स्वाद का जल बहुत देरतक स्थिर पड़ा रहने से खराब हो जाता है तब हृदय क्यों न वैसा हो जाय, प्रकट करने की इच्छा नहीं रखता। शैर का अर्थ—

---

१. यह भूमिका तथा ग्रंथकर्ता की जीवनी मुगल दरबार के प्रथम भाग के आरंभ में दी हुई है।

मुझको अत्याचारी आकाश से कोई उलाहना नहीं है। मुझ से एक पत्र चुप रहने की मुह्र सहित ले लिया गया है।

जब संसार आशा से भरा है तब इच्छा करना दोष नहीं है। मिसरा का अर्थ—

स्यात् हमारी रात्रि का भी प्रातःकाल होने को है।

दो सुगमताओं के बीच एक कठिनाई आ जाती है और रात्रि की स्याही के पीछे सुबह की सफेदी लगी रहती है। शैर—

आशा के मुख का नकाब निराशा से घिरा होता है।
याकूब की आँख की धूल अंत में सुर्मा हो जाती है॥

भाई, काम करने का उत्साह ही साधन नहीं है और बिना साधन के कोई काम पूरा नहीं हो सकता। इस बेचारे का थोड़ा काम भी साधन के बाहर नहीं था। यदि कारण के अभाव में न करे तो कारण को हमारे लिए सहल करो और मुझे मुझी पर न छोड़ो। जो तू उचित समझे वही आगे कर। ऐ खुदा, मुझसे तुमको जो पहुँचे उसके लिए क्षमा माँगता हूँ और जो तुझसे मुझे मिले उसके लिए तेरा धन्यवाद है।

मुहम्मद कासिम खाँ बदख्शी

इसका उपनाम मौजी था और यह मीर मुहम्मद जाल:बान का दामाद था। बदख्शाँ में यह जाल बनाने का काम करता था। जब हुमायूँ अपने ऐश्वर्यशाली पिता के आज्ञानुसार हिंदुस्तान से बदख्शाँ जाकर वहाँ कुछ दिन रहा था तभी इस पर कुछ कृपा हुई थी। यह उस संपत्तिवान की सदा सेवा करने में अपना लाभ तथा भलाई समझ कर बराबर साथ रहने लगा। कुछ लोग कहते हैं कि छोटी उम्र में बाबर की सेवा में पहुँच कर यह बाल्य-काल से बड़े होने के समय तक हुमायूँ की नौकरी में रहा। तात्पर्य यह कि एराक की यात्रा में जो संसार की दुष्कृपा तथा आकाश की कठोरता से पूरी असफलता तथा बेसामानी के साथ करनी पड़ी थी और जो सच्चे साथियों की परीक्षा थी, वह बराबर बादशाह के साथ रहा और कभी विरुद्ध नहीं हुआ। एराक से लौटने और काबुल-विजय के अनंतर सन् ९५४ हि० में हुमायूँ राजनीतिक कारणों से बदख्शाँ में ठहर गया था। मिर्जा कामराँ अवसर देख रहा था और हुमायूँ की अनुपस्थिति को अनुकूल समझकर कपट से काबुल में घुसकर उसपर अधिकृत हो गया। हुमायूँ ने शीघ्र लौटकर काबुल घेर लिया। मिर्जा मूर्खता से निर्दोष बच्चों को दंड देने तथा पतिव्रताओं को भ्रष्ट करने में लग गया और निर्दयता तथा कठोरता से शाहजादा अकबर को, जो चार वर्ष का था तथा काबुल में उपस्थित था,

तोपों के बराबर ला बिठाया। वह ईश्वर की कृपा से, जिसकी रक्षा में वह था, बच गया। एक दिन कासिम खाँ मौजी की स्त्री को स्तनों से बँधवा कर लटकवा दिया था। इस कुकर्म से इसकी भक्ति तथा एकपक्षता के कारण इसकी सेवा में कुछ भी कमी नहीं आई और इसने अपनी स्वामिभक्ति के मर्तबे को ऊँचा कर लिया।

इसके अनंतर अकबर के राज्यकाल में जाल:बानी की पुरानी सेवा के कारण यह हिंदुस्तान का मीर बह्र नियत कर दिया गया। इसने जमुना नदी के किनारे दिल्ली में एक अच्छा मकान बनवाया। अंत में नौकरी से त्यागपत्र देकर उसी में एकांतवास करने लगा। सन् ९७९ हि० के अंतिम महीना में इसकी मृत्यु हुई। यूसुफ जुलेखा के ऊपर इसने छ सहस्र शैरों का एक ग्रंथ तैयार किया था, जिसमें के दो शैरों का अर्थ दिया जाता है—

१—उसकी कारीगरी के हाथ ने नए तौर से नख के एक ही ओर को नया चंद्र तथा पूर्णचंद्र दोनों बना दिया।

२—उसकी कमर वर्णन की सीमा के बाहर है क्योंकि उसी में कुल नजाकतें भरी है।

यह शैर भी उसी का है, जिसका उर्दू रूपांतर नीचे दिया जाता है—

साकिया कब तक करूँ तफसीर बदहाली का मैं।
शीशः पुर कर एक साअत तो करूँ दिल खाली मैं॥

मुहम्मद कुली खाँ तर्कबाई[1]

यह अकबर बादशाह के राज्यकाल का एक हजारी मंसबदार था। ५ वें बर्ष के अंत में अदहम खाँ कोका के साथ मालवा विजय करने भेजा गया। ८ वें वर्ष में यह हुसेन कुली खाँ की सहायता पर नियत हुआ, जो मिर्जा अशरफुद्दीन हुसेन के अपने जागीर से भागने पर वहाँ नियुक्त किया गया था। १७ वें वर्ष में मीर मुहम्मद खान कलाँ के साथ अग्गल की सेना में नियत किया जा कर गुजरात की ओर भेजा गया। गुजरात के धावे में यह आगे भेजे गए लोगों में से था। इसके बाद खानखानाँ मुनइम बेग के साथ बंगाल प्रांत की चढ़ाई पर गया। इसका आगे का वृत्तांत ज्ञात नहीं हुआ।

---

१. पाठांतर तौकबाई भी मिलता है।

मुहम्मद कुली तुर्कमान

यह अकबर का एक सर्दार था। पहिले यह बंगाल में नियत हुआ। जब बंगाल के विद्रोहियों के उपद्रव से मुजफ्फर खाँ का काम बिगड़ गया तब इसने कुछ दिन बलवाइयों का साथ दिया। इसके अनंतर दोष क्षमा होने पर ३१ वें वर्ष में यह कुँअर मान-सिंह के साथ काबुल प्रांत भेजा गया और अफगानों के युद्ध में इसने बहुत प्रयत्न किया। ३६ वें वर्ष में जब काबुल की अध्यक्षता कुलीज खाँ को मिली तब कश्मीर मिर्जा यूसुफ खाँ के स्थान पर इसको, इसके भाई हमज़ाबेग तुर्कमान तथा कुछ अन्य लोगों को जागीर में मिली। ४५ वें वर्ष में बादशाह के दक्षिण ओर जाने पर कश्मीर के कुछ आदमी हुसेन के पुत्र अब्या चक को सर्दार बना कर उपद्रव करने लगे। इसके पुत्र अली कुली ने सेना के साथ आक्रमण कर उन्हें परास्त कर दिया। ४७ वें वर्ष में इसे डेढ़ हजारी ४०० सवार का मंसब तथा हाथी मिला और हमज़ा बेग को सात सदी ३५० सवार का मंसब मिला। ४८ वें वर्ष में छोटे तिब्बत के जमींदार अलीराय ने कश्मीर पर चढ़ाई की और यह सेना सहित सामना करने गया पर वह बिना युद्ध किए रोब में आकर भाग गया। इसी समय कुलीज खाँ का पुत्र सैफुल्ला आज्ञानुसार लाहौर से सहायता को पहुँचा और जहाँ तक घोड़ों के उतरने का स्थान मिला वहाँ तक पीछा किया। ४६ वें वर्ष में मर्ज के जमींदार

ईदर तथा अब्या चक को दंड देने का साहस किया और यद्यपि शत्रुगण पहाड़ियों का ओट लेकर पत्थरों तथा तीरों से लड़ते रहे पर इसने पहाड़ पर पहुँच कर उन्हें परास्त किया। जहाँगीर के राज्य के २ रे वर्ष में यह शासन से हटाया गया। इसके बाद का वृत्तांत नहीं ज्ञात हो सका। हमज़ा बेग ४६ वें वर्ष अकबरी में एक हजारी मंसब तक पहुँचा था।

———

मुहम्मद कुली खाँ नौमुस्लिम

यह पहिले नेतूजी भोंसला था, जो प्रसिद्ध शिवाजी का पास का संबंधी तथा उसके सर्दारों का अग्रणी था। जब मिर्जा राजा जयसिंह के सफल प्रयत्नों से औरंगजेब के ८ वें वर्ष में शिवाजी ने अधीनता स्वीकार करली और अपने अष्टवर्षीय पुत्र शंभाजी को सेवा में भर्ती करा दिया तब यह भी निश्चय हुआ कि यह मिर्जा राजा के संग रहा करे और इसके सैनिक तथा सेवक शाही सेवा किया करें। शिवाजी स्वयं जब उस प्रांत में काम पड़े तब वह सेवा में तैयार रहा करे। उसी समय नेतू जी को, जो विश्वासपात्र तथा सेनापति था, मिर्जा राजा के प्रस्ताव पर पाँच हजारी मंसब मिला। शिवाजी की चढ़ाई के कार्यों से छुट्टी पाकर जब राजा जयसिंह बीजापुर की चढ़ाई पर नियत हुआ तब इस चढ़ाई के आरंभ में नेतू जी ने शिवाजी की सेना की सर्दारी करते हुए अच्छी सेवा की। मंगल बीड़ा दुर्ग तथा बीजापुर की सीमा पर के कई अन्य गढ़ों को अकेले अपने प्रयत्न से आदिलशाहियों के अधिकार से निकाल कर उनमें थाने बैठा दिए।

राजा जयसिंह का बीजापुर घेरने का विचार नहीं था और दुर्ग तोड़ने का सामान भी साथ में नहीं था इसलिए बीजापुर से पाँच कोस इधर ही से उन बीजापुरी सर्दारों को दमन करने लौटा, जो बादशाही राज्य में घुसकर उपद्रव मचा रहे थे। शिवाजी को पर्नाला दुर्ग की ओर भेजा, जो आदिलशाह के बड़े

दुर्गों में से था, कि इससे शत्रु घबड़ाकर कुछ सेना उस ओर भेजेगा और यदि हो सके तो दुर्ग पर भी अधिकार कर ले। शिवाजी ने उक्त दुर्ग के नीचे पहुँचकर उसपर अपनी सेना सहित चढ़ाई की। दुर्गवाले सतर्क थे इसलिए युद्ध होने लगा। शिवाजी अपने कुछ सैनिक कटाकर वहाँ से असफल हो खेलना दुर्ग की ओर जाकर ठहरा, जो वहाँ से बीस कोस पर तथा इसके अधिकार में था। इसी समय इसके तथा इसके सेनापति नेतूजी के बीच वैमनस्य हो गया। इसपर यह अलग होकर बीजापुर वालों के पास चला गया और उस राज्य के सर्दारों से मिलकर बादशाही साम्राज्य में उपद्रव मचाने में कुछ उठा न रखा। मिर्जा राजा ने समयानुकूल तथा उचित समझकर इसे समझा बुझाकर पुरानी सेवा में आने के लिए सम्मति दी। यह ९ वें वर्ष के आरंभ में सौभाग्य से अपने कुकर्म से दूर हटकर शत्रु से अलग हो गया और राजा के पास पहुँचा। जब राजा औरंगाबाद लौटा तब इसे फतेहाबाद धारवर में सुरक्षित रखा।

दैवयोग से इसी समय शिवाजी, जो अपनी खुशी से दरबार गया था, आगरे से जहाँ बादशाह थे, अपनी उपद्रवी प्रकृति से भाग गया। इस पर राजा के नाम आज्ञा पत्र आया कि नेतू जी को उपाय से कैद कर राजधानी भेज दे जिसमें उपद्रव के विचार से वह भी भाग न जाय। राजा ने कुछ सेना भेजकर उसे पुत्र के साथ धारवर से बुलाकर बीड़ के पास दिलेर खाँ को सौंपवा दिया, जो आज्ञानुसार दरबार जा रहा था। उक्त खाँ नर्बदा के किनारे ही से आज्ञानुसार चांदा की ओर नियत हुआ। यह दरबार पहुँचने पर फिदाई खाँ मीर आतिश को सौंपा गया। उसने

तोपखाने के कुछ आदमियों को इसकी रक्षा पर रखा। इसके कुछ दिन बाद समझाए जाने पर इसने मुसलमान होना स्वीकार कर लिया। यह बात उक्त खाँ द्वारा बादशाह से कही गई तब इस पर क्षमा कर कृपा हुई। इस भाग्यवान् ने, जो बहुत अवस्था अंधकार तथा मूर्तिपूजन में बिता चुका था, मुसलमान होकर अपने हृदय के कोने को प्रकाशित किया। इस्लाम धर्म ग्रहण करने पर इस पर शाही कृपा हुई और इसे तीन हजारी २००० सवार का मंसब, मुहम्मद कुली खाँ की पदवी तथा दूसरे पुरस्कार मिले। इसके बाद काबुल के सहायकों में नियुक्त होने पर इसे हाथी मिला। इससे मिलकर इसका चाचा कोंदाजी भी मुसलमान होने पर एक हजारी ८०० सवार का मंसबदार हो गया।

मुहम्मद कुली खाँ बर्लास

यह बरंतक के वंश में से था। यह उच्चपदस्थ वंश सदा चग़ताई सुलतानों के यहाँ विश्वासपात्र तथा संपत्तिवान रहा। इसका बड़ा दादा अमीर जाकूए बर्लास अमीर तैमूर साहिबकिराँ के बड़े सर्दारों में से था। उक्त खाँ उचित वक्ता विद्वान तथा अच्छी चाल का पुरुष था और साहस तथा सर्दारी में अपने समय का अग्रणी था। अपनी पुरानी सेवा तथा प्राचीन राजभक्ति के कारण हुमायूँ के राज्यकाल में उन्नति कर यह एक सर्दार हो गया और इसे मुलतान जागीर में मिला। अकबर के राज्यकाल के आरंभ में शम्सुद्दीन खाँ अतगा के साथ बेगमों तथा सर्दारों और सभी सेवकों के परिवार वालों को लाने के लिए काबुल गया क्योंकि गृहहीनता तथा परिवार की जुदाई से वे उदासीन हो रहे थे और ऐसा हो जाने पर स्यात् वे हिंदुस्तान में रहना निश्चित कर काबुल लौट जाने का विचार स्थगित कर दें। इसके अनंतर इसे नागौर तथा उसके आसपास की भूमि जागीर में मिली। यह कुछ दिन मालवा के शासन पर भी नियत रहा। यह स्वयं बादशाह के दरबार में उपस्थित रहता था इसलिए इसका दामाद ख्वाजा हादी प्रसिद्ध नाम ख्वाजा कलाँ इसका प्रतिनिधि होकर उस प्रांत का कार्य संपादन करता था। विद्रोही मिर्जों ने इस पर आक्रमण कर प्रांत को लूट लिया पर ख्वाजा के उच्च वंश के कारण उसकी जान पर जोखिम नहीं पहुँचाई।

१२ वें वर्ष में इसकंदर खाँ उजबक पर यह भेजा गया, जिसने अवध में घमंड के कारण विद्रोह मचा रखा था। जब इसी समय खानजमाँ और बहादुर खाँ शैबानी ने, जो इन विद्रोहियों के सरदार थे, अपने कर्मों का बदला पा लिया तब इसकंदर खाँ भी भाग गया। अवध की सरकार मुहम्मद कुली खाँ बर्लास को जागीर में मिली। बिहार तथा बंगाल के विजय में इसने खान-खानाँ मुनइम बेग के साथ रहकर अच्छे कार्य किए। जब ईश्वरेच्छा से १९ वें वर्ष में बंगाल विजय हो गया और दाऊद खाँ किर्रानी सात गाँव तथा उड़ीसा की ओर चला गया तब खानखानाँ राजा टोडरमल के साथ टाँडे में रहना निश्चय कर जो उस प्रांत की राजधानी थी, राजनीतिक तथा माली काम देखने लगा। उसने मुहम्मद कुली खाँ बर्लास की अधीनता में कुल सर्दारों को सातगाँव की ओर भेजा कि दाऊद खाँ को तैयारी का अवसर न देकर कैद कर ले। जब उक्त खाँ सातगाँव से बीस कोस पर पहुँचा तब दाऊद खाँ का धैर्य छूट गया और वह उड़ीसा की ओर भागा। सेना के सर्दारों ने चाहा कि यहाँ ठहरकर इस ओर के प्रबंध की विशृंखलता को दूर करें कि राजा टोडरमल मुहम्मद कुली खाँ के पास पहुँच गया और उसे उड़ीसा प्रांत में पहुँचकर दाऊद खाँ को दमन करने के लिए बिदा कर दिया। सन् ९८२ हि०, सन् १५७५ ई० के रमजान महीने में मंडलपुर कस्बा में इसकी मृत्यु हो गई। रोजे के दिनों में इसने रोटी खाई थी और उसीसे ज्वर हो आया था तथा इसके सिवा कोई दूसरा कारण नहीं ज्ञात हुआ। कुछ दूरदर्शी लोग इसकी मृत्यु का कारण इसके अशुभैषी दास

ख्वाजासराओं को बतलाते हैं। मुहम्मद कुली खाँ उस साम्राज्य का संपत्तिशाली पाँच हजारी मंसबदार था। इसकी दृढ़ता तथा गंभीर अनुभव विश्वविख्यात थे। इसका पुत्र फरेदूँ खाँ बर्लास[1] था, जिसका वृत्तांत अलग दिया हुआ है।

---

१. इसी भाग का पृ० ६२ देखिए।

महम्मद खाँ नियाजी

यह अकबर के समय का एक सर्दार था और इस भारी दरबार की सेवा में रहने के कारण अफगानों में इसका सम्मान तथा विश्वास बहुत बढ़ गया। तबकाते अकबरी के लेखक ने लिखा है कि यह दो हजारी मंसब तक पहुँचा था परंतु शेख अबुल् फजल ने ४० वें इलाही वर्ष में इसे पाँच सदी से अधिक नहीं माना है। जहाँगीर के समय में इसने अच्छा मंसब प्राप्त किया और बड़े ऐश्वर्य के साथ नाम कमाया। कहते है कि जहाँगीर के दरबार में तीन आदमियों को पदवियों से कष्ट हुआ और उन्हों ने स्वीकार नहीं किया। ये मिर्जा रुस्तम सफवी, ख्वाजा अबुल् हसन तुरबती और मुहम्मद खाँ नियाजी थे। इसने कहा कि मेरे नाम मुहम्मद से बढ़कर कौन नाम ऐसा है कि उसे चुनूँ। आरंभ में शहबाज खाँ कंबू के साथ इसने बंगाल में वीरता दिखलाई। विशेषकर ब्रह्मपुत्र के युद्ध में साहस तथा वीरता में इसने प्रसिद्धि पाई। कहते हैं कि शहबाज खाँ इसकी मित्रता तथा प्रयत्नों के कारण इसे अपने पास से एक लाख रुपया वार्षिक देता था। यह ठट्टा की चढ़ाई में खानखानाँ[1] का सहायक था।

जब सन् १००० हि० में सिंध के शासक मिर्जा जानी बेग दुर्ग के बाहर, जिसमें वह घिरा हुआ था, निकल कर सिविस्तान

---

१. नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ से तात्पर्य है।

की ओर शीघ्रता से चला कि किश्तियों से विजयी सेना को रोक दे तब खानखानाँ ने एक सेना को, जिसमें मुहम्मद नियाजी भी था, उस ओर आगे भेजकर आप भी उधर चला। भेजे हुए लोग जब नावों तक पहुँच गए तब कुछ ने आशंका से सोचा कि लक्खी को दृढ़ कर सहायता की प्रतीक्षा करें पर वीरों की राय पर आक्रमण करना निश्चित हुआ। मुहम्मद खाँ नियाजी की सर्दारी में लक्खी पार कर शत्रु से युद्ध करने पहुँच गए। शत्रु बादशाही सेना के दाएँ, बाएँ भागों तथा हरावल को भगाकर विजय से उन्मत्त हो गए। मुहम्मद खाँ ने बची हुई सेना के साथ पहुँचकर कड़े धावों से उन्हें परास्त कर दिया। उस समय शत्रु सेना पाँच सहस्र से अधिक थी तथा बादशाही सेना बारह सौ से अधिक नहीं थी। मिर्जा जानी बेग ने भागते हुए भी कई बार लौटकर आक्रमण किया पर कुछ भी लाभ नहीं हुआ। कहते हैं कि उस दिन से खानखानाँ को इसकी सेनाध्यक्षता तथा सर्दारी पर पूरा विश्वास हो गया। जहाँगीर के राज्यकाल में खिरकी के युद्ध में, जो दक्षिण की प्रसिद्ध लड़ाइओं में से है, खानखानाँ ने अपने पुत्र शाहनवाज खाँ के अधिकार को इसके तथा याकूब खाँ बदख्शी के हाथ में दिया क्योंकि दोनों ही पुराने सैनिक थे। उस दिन मुहम्मद खाँ ने बड़ी अच्छी चाल दिखलाई। इसने युद्धस्थल के बीच में स्थित पानी के नाले को बीच में देकर उतारों को बंद कर दिया और नाले के सिरे पर स्वयं डटकर उसे नहीं छोड़ा, जिससे शाहनवाज खाँ फुर्ती करे। मलिक अंबर ने इतने साज व सामान के रहते हुए चाहा कि किसी से सिरे

निकल जाय पर उनपर तीर व गोली की खूब बर्षा हुई। निरुपाय हो मलिक अंबर बहुतों के मारे जाने पर परास्त हो भागा। वीरों के पीछा करने पर वह अपने स्थान तक बीच में न रुक सका।

जब शाहजादा शाहजहाँ दक्षिण की चढ़ाई पर गया तब मुहम्मद खाँ नियाजी ने अपने परिश्रम तथा प्रयत्न में कमी न कर अच्छा काम किया। वास्तव में मुहम्मद खाँ बड़ा सर्दार तथा मिलनसार था। कहते हैं कि इसने जो जीवनचर्या दिन रात्रि की निश्चित की उसमें पचास। वर्ष की अवस्था तक कभी फर्क नहीं डाला। कभी कभी सवारी या चढ़ाई में इसमें भेद पड़ जाता था। एक घड़ी रात्रि से सबेरे तक कुरान पढ़नेवालों के साथ व्यतीत करता। दो घड़ी व्याख्या तथा सैर की पुस्तकों के पढ़ने में व्यतीत करता और अफगानों की वंश परंपरा का विशेष ज्ञान रखता था। इसके बाद खानपान तथा आराम करने में व्यतीत कर दिनके अंत में काम देखता था। रात्रिके पहिले भाग में सैनिकों, विद्वानों तथा फकीरों का साथ करता। बीच की रात्रि महल में व्यतीत होती। खाने में बड़ा तकल्लुफ रखता और केवल इसीके लिए चौकी नियत की थी। इसके सैनिक अधिकतर इसीकी जाति के थे और यदि एक मरता तो उसका पूरा वेतन उसके पुत्र को मिलता। यदि कोई निस्संतान होता तो आधा उसके उत्तराधिकारी को मिलता। धार्मिकता तथा संतोष भी इसमें बहुत था। बिना स्नान के एक दम न रहता और जो लोग ऐसे न थे वे इसकी नकल करते। सन् १०३७ हि० में इसकी मृत्यु हुई। 'बेमुर्द औलिया मुहम्मद खाँ' इसकी तारीख है।

इसका अधिक समय दक्षिण में बीता था और बरार प्रांत के अंतर्गत परगना आश्ती, जो वर्धा नदी के उस पार है, इसे जागीर में मिली थी। उस बस्ती को अपना निवासस्थान निश्चित कर उसमें इमारत बनवाने तथा उसे बसाने में साहस कर बहुत काम किया। उसी कस्बे में यह गाड़ा गया। इसके बड़े पुत्र अहमद खाँ ने मकबरा मस्जिद तथा बाग बनवाया, जो देखने योग्य थे। इस समय वह बस्ती तथा परगना प्रत्युत् वह प्रांत ही उजाड़ पड़ा है। सौ घरमें से एक में दीप जलता है और दस ग्रामों में से एक से कर वसूल होता है। इस वंश परंपरा में कोई ऐसा नहीं हुआ, जिसने उन्नति की हो।

मुहम्मद खाँ बंगश

यह पहिले जमाअतदारी का कार्य करता था। बारहा के सैयदों ने इसे बादशाही सेवा में भर्ती और परिचित भी करा दिया। मुहम्मदशाह के राज्य के २ रे वर्ष के उस युद्ध में, जो सुलतान इब्राहीम के नाम से कुतुबुल्मुल्क से हुआ था, यह कुतुबुल्-मुल्क की ओर था। यह अपनी सेना के साथ बादशाह की सेवा में चला आया और अच्छे प्रयत्न करने के कारण इसने अच्छा मंसब तथा कायमजंग की पदवी पाई। १२ वें वर्ष सन् ११४२ हि० में राजा गिरिधर बहादुर के स्थान पर यह मालवा का सूबेदार नियत हुआ। इसी बीच यह शत्रुसाल बुंदेला पर सेना चढ़ा ले गया। एक वर्ष तक उससे युद्ध करते हुए इसने उन बादशाही महालों को छुड़ा लिया, जिसपर उसने अधिकार कर लिया था। शत्रुसाल अवसर देख रहा था और जब मुहम्मद खाँ ने बढ़ाई हुई सेना को छुड़ा दिया तब मराठों से मिलकर उसने एकाएक इसपर धावा कर गढ़ी में घेर लिया। चार महीने के घेरे में वायु में महामारी का प्रभाव देख कर मराठा सेना हट गई। शत्रुसाल अभी घेरा डाले हुए था कि इसका पुत्र कायम खाँ सेना सहित आ पहुँचा। तब शत्रुसाल ने संधि कर ली और यह छुट्टी पाकर दरबार आया। नादिरशाह के युद्ध में यह चंदावल में नियत था। समय आने पर इसकी मृत्यु हुई।

इसकी मृत्यु पर इसका बड़ा पुत्र कायम खाँ फर्रुखाबाद आदि महालों का, जो आगरा प्रांत के अंतर्गत थे, फौजदार हो गया। इसके अनंतर सफदरजंग के मंत्री होने पर उसके कहने से इसने अली मुहम्मद खाँ रुहेला के पुत्र सादुल्ला खाँ पर चढ़ाई कर उसे बदाऊँ में घेर लिया। उसने बहुत समझाया पर कुछ लाभ नहीं हुआ। निरुपाय हो उसने बाहर निकल कर युद्ध किया, जिसमें कायम खाँ भाइयों के साथ मारा गया। सफदरजंग ने अहमद-शाह बादशाह को उभाड़ कर चाहा कि कायम खाँ के ताल्लुकों को जब्त कर ले। कायम खाँ की माँ दुपट्टा ओढ़ कर आई और साठ लाख रुपए पर मामला तै किया। सफदरजंग ने उसके कुल परगनों को जब्त कर फर्रुखाबाद को बारह मौजों के साथ, जो फर्रुखसियर के समय से कायम खाँ की माँ को पुरस्कार में मिले थे, छोड़ दिया और नवलराय को तहसील करने के लिए वहाँ नियत कर स्वयं बादशाह के पीछे दिल्ली पहुँचा। कायम खाँ के भाई अहमद खाँ ने अफगानों को इकट्ठा कर नवलराय को युद्ध में मार डाला। सफदरजंग नवलराय की सहायता को दिल्ली से रवाना हो चुका था और यह समाचार पाकर साली व सहावर कस्बों के बीच पहुँच कर सन् ११६३ हि० में अहमद खाँ से सामना किया। सफदरजंग ने गहरी हार खाई और यद्यपि यह पीतल की अमारी में बैठा हुआ था पर यह घायल हुआ और इसका महावत तथा खवासी का सवार दोनों मारे गए। दैवयोग से अफगानों से बच कर यह दिल्ली पहुँचा। अहमद खाँ अपने पुत्र महमूद खाँ को अवध प्रांत पर अधिकार करने भेजकर स्वयं इलाहाबाद की ओर चला और सैन्य संचालन आदि में किसी

प्रकार असावधानी न की। सन् ११५४ हि० में सफदरजंग ने पुन: सेना एकत्र कर तथा मल्हारराव होलकर और जयप्पा सीधिंया को साथ लेकर चढ़ाई की।

मराठों ने पहिले अहमद खाँ की ओरके कोल जलेसर के अध्यक्ष शादी खाँ को भगा दिया। जब यह समाचार पाकर अहमद खाँ ने इलाहाबाद के घेरे को उठा कर फर्रुखाबाद का मार्ग लिया तब मराठों ने उसका पीछा कर उसे वहीं घेर लिया। अवसर पाकर यह हुसेनपुर चला आया, जो उससे अधिक दृढ़ था। जिस दिन अली मुहम्मद खाँ का पुत्र सादुल्ला खाँ इसकी सहायता को आया और युद्ध हुआ उस दिन यह परास्त होकर मदारिया पहाड़ के नीचे भाग गया तथा इसका राज्य लुट गया। अंत में शरण आने पर सफदरजंग ने अपनी इच्छा के अनुसार संधि कर ली। बहुत दिनों तक यह अपने ताल्लुके का प्रबंध करता रहा। भलाई के लिए यह प्रसिद्ध था। राजधानी दिल्ली के नष्ट होने पर जो भी अच्छे वंश के स्त्री या पुरुष इसके यहाँ आए उन सबकी इसने अच्छी से अच्छी सेवा की और बिना नौकरी लिए हर एक के गृह पर वेतन भेज दिया करता था। सबसे यह अच्छा व्यवहार करता था। इस कारण भलाई के साथ अपनी अवस्था व्यतीत की। बिना किसी प्रकार के प्रत्युपकार की इच्छा के ऐसा करने की प्रथा अपने स्मारक में छोड़ गया। इसके वंशजों का वृत्तांत ज्ञात नहीं हुआ।

———

मुहम्मद गियास खाँ बहादुर

इसका नाम गियास बेग था और इसका पिता गनी बेग खाँ फीरोजजंग की सरकार में नौकर था। निजामुलमुल्क आसफजाह बहादुर की शरण लेकर यह उसके साथ हो गया। पहिले तोपखाने का दारोगा हुआ और फिर मुरादाबाद की ताल्लुकेदारी में नायब फौजदार हुआ। यह विचारवान तथा दृढ़ आशय का मनुष्य था और साहस के साथ अनुभवी भी था इसलिए विश्वासी सम्मतिदाता बन बैठा। बड़े कार्य बिना इसकी राय के नहीं होते थे। जब आसफजाह मालवा प्रांत से दक्षिण को चला तब इसने दिलावर अली खाँ के युद्धों में विजयी के साथ रहकर हर बार बहुत प्रयत्न किया। एक आँख से यह पहिले ही नहीं देख सकता और दूसरी आँख भी अंतिम युद्ध में तीर लगने से फूट गई। आसफजाह ने इसकी सेवा का विचार कर इसका मंसब पाँच हजारी ५००० सवार का कर दिया और बहादुर की पदवी देकर खानदेश के अंतर्गत बगलाने का फौजदार बना दिया। इसके अनंतर औरंगाबाद प्रांत के महालों की मुत्सद्दीगिरी पर नियत कर दिया। बहुत दिनों तक यह वहाँ रहा। सन् ११४८ हि० में इसकी मृत्यु हुई। औरंगाबाद के मुगलपुरा के पास इसके बनवाए मदरसे के चौक में इसे गाड़ दिया। यह मित्रता, प्रेम तथा उदारता में प्रसिद्ध था। इसका पुत्र रहीमुल्ला खाँ बहादुर आसफजाह की गुणग्राहकता से अच्छा मंसब पाकर बरार के

पास परगना सिउना का जागीरदार नियत हुआ। कुछ दिन खान-देश के बगलाना सरकार का फौजदार और कुछ दिन औरंगा-बाद के पास के महालों का जिलेदार रहा। सलाबतजंग बहादुर के राज्य में इसने अच्छा मंसब तथा मंजूरुद्दौला मुतहौवरजंग की पदवी पाई। कुछ वर्ष पहिले इसकी मृत्यु हो गई। इसने पिता से वीरता रिक्थक्रम में पाई थी। इसके कुछ लड़के थे। सबसे बड़ा फजलुल्ला खाँ है, जिसे पिता की पदवी तथा जागीर मिली है।

मुहम्मद जमाँ तेहरानी

यह जहाँगीर के समय का एक मंसबदार था और बहुत दिनों तक बंगाल में नियत रहकर सिलहट का फौजदार तथा जागीरदार रहा। इसके अनंतर जब शाहजहाँ गद्दी पर बैठा तब १म वर्ष में इसका दो हजारी १००० सवार का मंसब बहाल रहा, जो पहिले का था। ४थे वर्ष में २०० सवार बढ़े और ५वें वर्ष में भी उन्नति हुई। ८वें वर्ष में यह दरबार में उपस्थित हुआ और कुछ दिन बाद इसलाम खाँ के साथ, जो आजम खाँ के स्थान पर बंगाल का सूबेदार नियत हुआ था, उस प्रांत को भेजा गया। आसाम की प्रजा के उपद्रव में, जो कूच हाजू के जमींदार परीछित के भाई बलदेव की सहायता से बलवा कर रही थी, इसलाम खाँ के भाई मीर जैनुद्दीन अली के साथ, जो सयादत खाँ कहलाता था, यह बहुत प्रयत्न कर प्रशंसित हुआ। इससे ११ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दो हजारी १८०० सवार का हो गया। १५ वें वर्ष में २०० सवार बढ़ने से जात तथा सवार बराबर हो गए। जब इस वर्ष उड़ीसा शाहजादा मुहम्मद शुजाअ को बंगाल की सूबेदारी के साथ मिल गया तब यह वहाँ के प्रबंध पर आज्ञानुसार नियत हुआ। १६ वें वर्ष में वहाँ से हटाए जाने पर यह दरबार आया। २० वें वर्ष में शाहजादा मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के पास भेजा गया, जो बलख आदि का प्रबंध करने के लिए गया था। जब शाहजादा बलख को नज्र मुहम्मद खाँ के

आदमियों को सौंपकर २१ वें वर्ष में लौटा तब यह आज्ञानुसार शाहजादे से पहिले दरबार पहुँचा। इसके बाद का हाल नहीं ज्ञात हुआ।

मुहम्मद तकी सीमसाज शाह कुली खाँ

यह यौवन ही से शाहजादा शाहजहाँ के सेवकों में भर्ती हो गया और इसका विश्वास तथा सम्मान बढ़ गया। सौभाग्य से शाहजहाँ के सरकार का बख्शी हो जाने से यह अच्छा सरदार हो गया। जब काँगड़ा की चढ़ाई का कार्य शाहजादे के वकीलों को मिला तब यह राजा सूरज मल के साथ उस चढ़ाई पर नियत हुआ। जब ये दोनों वहाँ पहुँचे तब राजा ने भागने के विचार से इससे वैमनस्य आरंभ कर इसकी बहुत सी बुराई शाहजादे को लिख भेजी। राजा स्वामिद्रोह तथा उद्दंडता से बराबर बुरी इच्छा अपने मन में रखता था और मुहम्मद तकी के साथ रहने से वह सफल नहीं हो सकता था। अंत में उसने खुल कर प्रार्थनापत्र लिख भेजा कि मेरा शााह कुली से साथ नहीं पटता और इस सेवा को वह पूरा नहीं कर सकता इसलिए कोई दूसरा सर्दार भेजा जाय जिससे यह काय सुगमता से हो जाय। इसपर मुहम्मद तकी बुला लिया गया और बाद में मालवा की फौजदारी तथा मांडू दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ, जो शाहजादे की जागीर में थे। जिस समय शाहजादा तैलंग के मार्ग से उड़ीसा में आया उस समय वहाँ का नायब सूबेदार अहमद बेग खाँ अपने में शाहजादे की सेना से सामना करने की शक्ति न देख कर अपने चाचा इब्राहीम खाँ फतहजंग के पास अकबर नगर चला गया। शाहजादे ने उस प्रांत की अध्यक्षता शाह कुला खाँ को देकर उसे

वहीं छोड़ा। इसके अनंतर वे घटनाएँ हुईं जिनके कारण शाहजहाँ बंगाल से लौट कर दक्षिण में रोहनखीरा घाटी के ऊपर देवल गाँव में सेना सहित आ डटा तब मलिक अंबर के कहने से, जिसकी ओर से याकूत खाँ हब्शी बुर्हानपुर के पास रहकर चारों ओर लूटमार कर रहा था, शाहजादे ने भी अब्दुल्ला खाँ को शाहकुली खाँ के साथ भेज दिया कि वह नगर बादशाही अच्छी सेना से खाली है, जिससे सहज में उसपर अधिकार हो जाएगा।

वहाँ का अध्यक्ष राव रत्न हाड़ा नगर के बुर्ज आदि को दृढ़ कर किसी कार्य में असावधानी नहीं कर रहा था इसलिए इसने यह वृत्त शाहजादे को लिख भेजा। इसके अनंतर शाहजादा बुर्हानपुर के लाल बाग में आकर ठहरा और इन दोनों सर्दारों को दो ओर से आक्रमण करने की आज्ञा दी। शत्रु का जोर अब्दुल्ला खाँ की ओर अधिक था और दोनों पक्ष के एक एक जवान युद्ध में मारकाट कर रहे थे। उसी समय शाह कुली खाँ ने अवसर पाकर दुर्ग की दीवाल तोड़ डाली तथा लड़ते हुए नगर में घुस गया। कोतवाली के चबूतरे पर बैठ कर इसने मुनादी करा दी कि शाहजहाँ गाजी का राज्य है।

जब राव रत्न का पुत्र इससे युद्ध कर परास्त हो गया तब राव रत्न काफी सेना अब्दुल्ला खाँ के सामने छोड़ कर स्वयं लौटा और चौक में युद्ध करने लगा। शाह कुली खाँ के बहुत से आदमी लूटपाट करने में हट बढ़ गए थे, इसलिए यह थोड़े सैनिकों के साथ साहस कर लड़ने लगा। जब इसके बहुत से साथी मारे गए तथा सहायता की आशा न रह गई तब निरुपाय हो यह नगर

दुर्ग में जा बैठा। कहते हैं कि अब्दुल्ला खाँ ने इससे वैमनस्य माना और नहीं तो यदि वह सहायता भेजता तो काम पूरा हो चुका था। इसी स्वार्थ के कारण शाहजहाँ में इसकी ओर से मनोमालिन्य आ गया और अब्दुल्ला खाँ के अलग होने का सबब हो गया। संक्षेपतः काम न होकर और मामला बढ़ गया। राव रत्न ने नए सिरे से मोर्चों को दृढ़ कर तथा दुर्ग के चारों ओर के स्थानों का प्रबंध कर शाह कुली खाँ को वचन देकर अपने पास बुला लिया और कैद कर रखा। इसके अनंतर इसके साथियों को बुर्हानपुर में रक्षा में रख कर इसे दरबार भेज दिया। जिस समय महावत खाँ टोंस के युद्ध के बाद बुर्हानपुर पहुँचा तब कुछ 'यकः' जवानों को मरवा डाला और कुछ को चिरवा डाला। दैवयोग से सन् १०३५ हि० में व्यास नदी के किनारे उक्त खाँ का काम पूरा हुआ। अपने दृढ़ समय में जिस दिन, ख्वाजा अब्दुल्ख़ालिक खवाफी को मरवा डाला था, उसी दिन इस साहसी जवान को भी मरवा डाला।

मुहम्मद बदीअ सुलतान

यह नजर मुहम्मद खाँ के पुत्र खुसरू का पुत्र था। शाहजहाँ के राज्य के १९ वें वर्ष में यह पिता के साथ हिंदुस्तान आया। २० वें वर्ष में उपस्थित होने पर इसे खिलअत, जड़ाऊ जीगा तथा सुनहले साज सहित घोड़ा मिला। २७ वें वर्ष में इसे बारह सहस्र रुपए की वार्षिक वृत्ति मिली और इसके बाद इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी हो गया। २८ वें वर्ष में पाँच सदी मंसब बढ़ा। ३१ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी ३०० सवार का हो गया। इसके अनंतर जब औरंगजेब बादशाह हुआ तब यह पिता व चाचा के साथ आगरे में सेवा में पहुँचा। शुजाअ के युद्ध में तथा दाराशिकोह के द्वितीय युद्ध में यह औरंगजेब के साथ रहा। सर बुलंद खाँ मीर बख्शी और राद अंदाज खाँ मीर आतिश के साथ यह कामों पर नियत हुआ। इसके बाद कारण वश इसका मंसब छिन गया। ३६ वें वर्ष में पुनः कृपापात्र होकर यह तीन हजारी ७०० सवार का मंसबदार हुआ। इसके बाद का हाल नहीं ज्ञात हुआ।

———

मुहम्मद बुखारी, शेख

यह हिंदुस्तान के दो हजारी सर्दारों तथा बड़े सैयदों में से था और शेख फरीद बुखारी का मामा था। बुद्धिमान तथा अनुभवी था। बहुत दिनों तक अकबर की सेवा में रहकर इसने विशेषता प्राप्त की। फत्तू खाँ अफगान खास खेल ने चुनार दुर्ग पर अधिकार कर उसे अपना शरण स्थान बना लिया था और जब उस पर अधिकार करने को सेना नियत हुई तब उसने उक्त शेख की मध्यस्थता में दुर्ग सौंप दिया। १४ वें वर्ष में जब ख्वाजः मुईनुद्दीन की दर्गाह के सेवकों में भेंट आदि के लिए झगड़ा हो गया और संतान होने का उनका दावा साबित न हो सका तब यह उक्त दर्गाह का वली (प्रबंधक, सेवायत) नियत किया गया। १७ वें वर्ष में गुजरात प्रांत में खान आजम कोका के सहायकों में यह नियत हुआ। बाद को वहाँ से यह बुलाया गया। जब मुहम्मद हुसेन मिर्जा के उपद्रव की खबर उड़ी, जो शेर खाँ फौलादी से मिलकर विद्रोह कर रहा था, तब खान आजम ने इसको, जो बादशाह के पास सूरत जाने के लिए दोलका में सामान ठीक कर रहा था, लौटा लिया और सेना के बाएँ भाग में स्थान दिया। इसके अनंतर जब युद्ध हुआ तब बादशाही सेना के प्रायः बहुत से आदमी पराजित हुए। शेख भी वीरतापूर्ण प्रयत्न कर घायल हो गया और घावों में घोड़े से अलग हो कर भूमि पर आ गया। भाले की चोट से सन्

९४९ हि० में यह मर गया। गुण ग्राहक बादशाह ने इस प्राण निछावर करनेवाले के जिम्मे जो बाकी था, उसे राजकोष से महाजनों को दिलवा दिया।

———

मुहम्मद मुराद खाँ

यह मुर्शिदकुली खाँ मुहम्मद हुसेन का पुत्र था। इसकी नानी का नाम माहबानू था, जिसे औरंगजेब की मौसी नर्जाबः बेगम ने पाला था। अंत में शाही महल में इसका बहुत विश्वास हो गया। इस संबंध से उक्त खाँ तथा उसका भांजा मीर मलंग, जो काम बख्श का मीर बख्शी था, अहसन खाँ की पदवी से महल में पालित होकर अवस्था को पहुँचे। इसके पिता को मुर्शिदकुली खाँ की पदवी मिली थी। इसका भाई मिर्जा मुहम्मद आरंभ में गुसलखाने का प्रधान लेखक था। २७ वें वर्ष में वह जब अबुल्-हसन के भेंट के बचे भाग को उगाहने के लिए भेजा गया तब आज्ञा हुई कि तू अपने को (बादशाही) मर्जी पहिचाननेवाले खानःजादों में समझता है तो तुझे चाहिए कि उन लोगों के समान जो धन की लालच में पड़कर खुशामद करते हैं, खुशामद न करे परंतु निधड़क बर्ताव करते हुए कड़ाई से बातें करे, जिससे उसे दमन करने के लिए कारण मिल जाय। इस कारण इसने जाकर बाद-शाही इच्छानुसार बातचीत में बड़ी निर्द्वंद्वता दिखलाई तथा उस-पर दोष लगाए। अबुल्हसन ने बहुत बचाया। एक दिन अबुल्-हसन के मुख से निकल गया कि हम इस देश के बादशाह कहे जाते हैं। मिर्जा मुहम्मद ने क्षुब्ध होकर कहा कि बादशाद शब्द आपके लिए उपयुक्त नहीं है और यही सब बातें औरंगजेब बादशाह को अच्छी नहीं लगतीं। अबुल्हसन ने उत्तर दिया कि

मिर्जा मुहम्मद, तुम्हारी यह आपत्ति ठीक नहीं है यदि हम बादशाह नहीं हैं तो आलमगीर को बादशाहों का बादशाह भी न कहलाना चाहिए। संक्षेपतः उक्त खाँ इस हाल पर सआदत खाँ की पदवी प्राप्त कर कुल दक्षिण का 'वाकेआनिगार' नियत हुआ। २८वें वर्ष में बादशाह ने जब सुलतान मुहम्मद मुअज्जम को रामदर्रा की चढ़ाई पर नियत किया तब शाहजादे की सेना का भी इसे वाके आनिगार साथ में बना दिया। इसके बाद जब उक्त शाहजादा अबुल्हसन पर भेजा गया तब खानजहाँ बहादुर की सेना की दीवानी भी उक्त पदों के साथ इसे मिली। वहाँ के एक युद्ध में यह घायल हो गया। इसके अनंतर जब शाहजादों ने अबुल्हसन पर चढ़ाई कर कई युद्धों के बाद संधि कर ली तब पहिले तथा वर्तमान के करों के बकाया को वसूल करने के लिए इसे यहीं छोड़ दिया। जब बादशाह ने इस संधि को पसंद नहीं किया तथा बीजापुर के विजय के अनंतर २९ वें वर्ष में गोलकुंडा की ओर चला तब उक्त खाँ को स्वतः पुराने कर को शीघ्र उगाहने के लिए ताकीद लिखी। अबुल्हसन ने शंका सहित आशा से नौ थाली रत्न उसकी सूची के साथ उक्त खाँ के पास अमानत में सौंप कर तै किया कि जो कुछ नगद मिल जाता है वह उक्त रत्नों के साथ दरबार भेज दे। दैवयोग से इसीके पीछे पीछे बादशाह के लिए कुछ बहँगी मेवे भी भेजे। सआदत खाँ ने भी अपनी ओर से कुछ कँहार तथा डाली साथ भेज दिया। इसी बीच बादशाह के इस ओर आने का निश्चय होने पर अबुलहसन ने उक्त खाँ से वे रत्न माँगे और सेना उसके घर पर नियत किया, जिससे दो दिन युद्ध हुआ। उक्त खाँ ने स्वामिभक्ति न छोड़कर उत्तर में कहलाया

कि हक तुम्हारी ओर है पर जब बादशाही फर्मान से ज्ञात हुआ कि विजयी सेना इसी ओर आ रही है तब अपना बचाव इसीमें देख कर रत्नों के खाँचों को बहँगियों में रखकर भेजवा दिया। सिर मेरा उपस्थित है, निरुपाय हो मुझे ही मारना चाहिए। परंतु बादशाह को दस्तावेज के लेखक को मारने से बढ़कर तुम्हें दमन करना न होगा। इसपर अबुलहसन ने इससे हाथ उठा लिया।

गोलकुंडा की विजय के बाद इसलिए कि यह भलाई से नहीं चाहता था कि यही आग बढ़ाने का कारण हो दो तीन बातें दरबार को नहीं लिखीं और उनका बाहर ही बाहर पता लग गया, जिससे इसे दंड मिला। इसके मंसब से दो सदी २०० सवार घटाए गए और पदवी ले ली गई। उस समय इसने बहुत चाहा कि उक्त खाँ के खाँचों को, जो दस लाख रुपयों की मालियत के थी, कारखानादारों को सौंप दे पर किसी ने हाथ नहीं लगाया। एक वर्ष बाद मुत्सद्दियों ने बादशाह से यह बात कही तब उसने गुणग्राहकता से आज्ञा दी कि हमारे लिए बिना खयानत के उसके पास जमा है इसलिए लेकर उसे रसीद दे दें। इसी समय मंसब की कमी फिर बहाल कर चाहा कि पिता की पदवी भी दी जाय पर इसने केवल अपने नाम के साथ खाँ की पदवी माँगी, जिससे मुहम्मद मुरादखाँ की पदवी पाई। औरंगजेब के राज्य के अंत तक बख्शीगिरी के मुत्सद्दियों से मेल न होने के कारण सात सदी ४०० सवार के मंसब तक पहुँचा था। अनियमित रूप में केवल कृपा के कारण अहमदाबाद के नगरों तथा परगनों की वाकेआनिगारी तथा घटना-लेखन के कार्य कुछ लोगों के स्थान पर तथा उक्त प्रांत के अंतर्गत कादर: और थासर:

की फौजदारी के साथ करता रहा। इसके अनंतर जब बहादुरशाह बादशाह हुआ तब यद्यपि शाहजादगी के समय से हैदरबाद की चढ़ाई तक, जब यह औरंगजेब के दरबार से शाहजादे की सेना का वाकियानिगार नियत था, यह अच्छी सेवा करने के कारण पूरा स्वत्व रखता था पर उस समय इसकी पदवी सआदत खाँ थी जिससे एतमाद खाँ ने जुल्फिकार खाँ के द्वारा, जो इस पदवी के बदलने के वृत्त को नहीं जानता था, प्रार्थना कराई कि मुहम्मद मुराद खाँ काम बख्श के बख्शी से संबंध रखता है और अहमदाबाद प्रांत में नियत है, जो सैनिक पैदा करने वाला डेरा है, इस पर यह नौकरी से हटाकर दरबार बुला लिया गया।

यद्यपि खानखानाँ ने इसका पता पाते ही इसकी निर्दोषिता, जो वास्तव में इसके शत्रुओं ने उठा रखा था, बादशाहको समझाकर उक्त पदों की बहाली का फर्मान भेजवा दिया पर यह अपने दाय के सब कार्यों को मुत्सद्दियों को सौंप कर २ रे वर्ष में दरबार चला आया। सेवा में उपस्थित होने पर इसे खिलअत तथा जड़ाऊ सिरपेच मिला और मंसब बढ़ कर डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया। दूसरी प्रार्थना पर दो हजारी १४०० सवार का मंसब हो गया और दाग का कार्य इसे मिला। ३ रे वर्ष जब बादशाह कामबख्श की लड़ाई से निपटकर हैदराबाद से हिंदुस्तान चला तब इसका मंसब तीन हजारी २००० सवार का हो गया और डंका पाकर यह बीजापुर सूबेदार नियत हुआ। परंतु जुल्फिकारखाँ बहादुर नसरतजंग के सहायता करने पर भी बेसामानी के कारण यह अपने पद पर न जा सका तब औरंगाबाद की सूबेदारी का नायब होकर, जो उक्त बहादुर को व्यक्तिगत

रूप में मिला था, उस प्रांत को चला गया। उसी वर्ष यह वहाँ से हटाया गया। ४ थे वर्ष सन् ११२२ हि० में यह मर गया। साहस तथा काम करने में यह एक था। अंतिम काल में जब औरंगजेब बादशाह को सेना इकट्ठी करने की इच्छा हुई तब प्रांतों के शासकों को फर्मान भेजा गया कि बेकार अच्छे वंशवालों को नौकरी की आशा देकर दरबार भेजें। मुहम्मद मुराद खाँ उस समय कौदरा तथा कासरा का फौजदार था और यह सूचना पाकर उसने प्रार्थना की कि जब हजरत स्वयं काफिरों को दमन करने आवें तब इन बंदों को दीवार का साया लेना तथा आराम से बैठना गवारा नहीं है। जितनी आज्ञा हो उतने अच्छे आदमियों को लेकर यह दास दरबार में उपस्थित हो। बादशाह ने उत्तर में प्रशंसा करते हुए इसे सेना सहित आने को लिखा। अहमदाबाद के सूबेदार शुजाअत खाँ मुहम्मद बेग के नाम भर्त्सना का पत्र गया, जिसने पहिले ही योग्य पुरुषों का अभाव होना लिख भेजा था और उसमें मुहम्मद मुराद खाँ के पत्र का हवाला भी दिया गया था। शुजाअत खाँ ने इस फर्मान के पाते ही नगरवासियों से कहला दिया कि कोई मुहम्मद मुराद खाँ का साथ न दे। इसने यह हालत देखकर लाचार हो उस आदमी से, जो पहिले शुजाअत खाँ के घर का बख्शी था और कुछ दिन से अप्रसन्न हो उसके यहाँ का काम छोड़ दिया था, मिलकर उसे उसके लाए हुओं सैनिकों का अधिनायक बनाने का वचन देकर कुछ आदमी इकट्ठे किए तथा दरबार चला। शाही पड़ाव में पहुँचने पर दुर्ग पर्नाला के घेरे में एक मोर्चे का अध्यक्ष हुआ।

एक दिन इसका एक पुत्र मोर्चे से सैर के लिए निकला और हाथ में तीर कमान लेकर जंगल में चरते हुए गायों भेड़ों के पीछे जाने लगा। ये पशु दुर्ग के थे और निश्चित मार्ग से पहाड़ के ऊपर चले आए थे। उसने यह बात अपने पिता से कही और उक्त खाँ ने अपने साथियों को लेकर पहाड़ के मध्य में मोर्चा स्थापित किया। इसके अनंतर इसने बादशाह के पास प्रार्थनापत्र भेजकर सहायता माँगी। बादशाह ने रूहुल्ला खाँ तथा तरबियत खाँ को सहायता के लिए आज्ञा दी पर उन दोनों ने जानबूझकर आलस्य किया और इसके पास संदेश भेजा कि हमलोग कभी तुम्हारी सहायता न करेंगे इससे अच्छा है कि फिर प्रार्थनापत्र दो कि स्थान ठहरने योग्य नहीं है, गलती से यहाँ पहुँच गया हूँ। जब यह अर्जी पेश की गई तब बादशाह ने कहा कि यह कैसी झूठी चाल है, अपने मोर्चे में चला आवे। परंतु बादशाह को हरकारों से पूरा विवरण ज्ञात हो गया। दूसरे दिन जब उक्त खाँ नियम विरुद्ध अकेले मुजरा को गया तब बादशाह ने पूछा कि तुम्हारे साथी क्यों नहीं आए। इसने उत्तर दिया कि कल के दिन को झूठी चाल के कारण ही थक जाने से नहीं आ सके।

यह किसी बात को समझाने में अच्छी योग्यता रखता था। कहते हैं कि हैदराबाद में रहते समय एक दिन अबुलहसन की मजलिस में, जब वहां के सभी विद्वान इकट्ठे थे, औरंगजेब के गुणों की चर्चा होने लगी। बात यहाँ तक पहुँची कि जब तरबियत खाँ राजदूत के मोजा खींचने से बादशाह तथा ईरान के शाह के बीच वैमनस्य हो गया तब आज्ञा हुई कि उक्त शाह के भेजे हुए घोड़ों को काटकर फकीरों में बाँट दो। पर्हेजगारी के ये

सब दावे ऐसे काम को किस प्रकार सिवा अहंता की दासता के और कुछ सिद्ध कर सकेंगे। चाहिए था कि विद्वानों या भले लोगों में बाँट देते। उक्त खाँ ने कहा कि इस कार्य में ईरान के शाह का किसी प्रकार का हाथ नहीं था। वास्तव में बात यह थी कि उक्त घोड़ों को आख्ताबेगी ने जिस समय बादशाह कुरान पढ़ रहे थे सामने लाकर निरीक्षण को कहा। बादशाह ने चाहा कि बचे हुए पाठ को दूसरे दिन के लिए छोड़कर निरीक्षण को जाय। इसी समय सुलेमान के हाल का कुरान का आयत पढ़ा गया, जिसमें भेंट के घोड़ों का निरीक्षण करने के कारण सुन्नत की निमाज या फर्ज की निमाज का समय बीत गया और इस पर उसने उन घोड़ों को हलाल कर डाला था। इसपर आँखों में आँसू भरकर अपने चंचल स्वभाव को दंड देने के लिए वही अमल में लाए। उन सब ने कहा कि ऐसी सूरत में ईरान के सर्दारों के घर पर घोड़ों के भेजने का क्या कारण था। इसने कहा कि यह झूठी गप्प फैल गई है। वास्तव में शाहजहानाबाद नया बसा हुआ है और ऐसा कोई मुहल्ला नहीं था जहाँ ईरान के एक न एक सर्दार का मकान न हो तथा वह मुहल्ला उस सर्दार के नाम पर प्रसिद्ध हो गया था। फकीरों में बाँटने के लिए एक स्थान पर हलाल करना कठिन था इसलिए आज्ञा हुई कि हर मुहल्ले में एक दो घोड़े जबह कर बाँटे जायँ। यह कथोपकथन वाकियाआनिगार ने बादशाह के पास लिख भेजा, जिससे उक्त खाँ की बड़ी प्रशंसा हुई।

कहते हैं कि जिस समय इब्राहीम खाँ जैक गुजरात का सूबेदार नियुक्त होकर वहाँ पहुँचा और शाहजादा बेदारबख्त

दरबार बुलाया गया उस समय मुहम्मद मुराद खाँ, जो कौदरः तथा थासरः का फौजदार था, रात्रि में शाहजादे से खिलअत पाकर अपने काम पर गया। गृह आने पर तथा इब्राहीम खाँ के बुलाने पर यह उसके यहाँ गया। उसने शाहजादे का हाल पूछ कर औरंगजेब की मृत्यु का समाचार सुनाया, जो उसे मिल चुका था, और कहा कि इसी समय जाकर शाहजादे को सूचित कर आओ। उक्त खाँ आधी रात को दरबार पहुँचा। ख्वाजासरा ने करवट बदलते समय कहा कि मुहम्मद मुराद खाँ उपस्थित है। शाहजादा ने पूछा कि इनायती कपड़े पहिरे है या बदल कर आया है। ख्वाजासरा ने कहा कि श्वेत वस्त्र पहिरे हुए है। शाहजादे ने उसे बुलाकर हाल पूछने के बाद शोक प्रकट किया। खाँ ने भी शोक दिखलाते हुए राजगद्दी के लिए बधाई दी। शाहजादे ने कहा कि कुछ लोग आलमगीर बादशाह की कद्र नहीं जानते। क्या हुआ कि जमाना हमारे काम आया। अब देखेगा कि कैसे दीवाने से काम पड़ता है।

मुहम्मद मुराद को बहुत से बेटा बेटी थे। बड़ा पुत्र जवाद अली खाँ नस्ख तथा सुलूस लिपियाँ बहुत अच्छी लिखता था। वार्द्धक्य में आँखों के निर्बल होने से एकांत में औरंगाबाद में रहने लगा। बड़ी पुत्री अमानत खाँ मीर हुसेन के पुत्र मीर हसन को व्याही थी। अन्य पुत्रों के वंशज गुजरात तथा औरंगाबाद में हैं।

मुहम्मद मुराद खाँ

यह अकबर के एक तीन हजारी मंसबदार अमीर बेग का पुत्र था। ६ वें वर्ष में यह आसफ खाँ अब्दुल् मजीद के साथ गढ़ा कंटक प्रांत विजय करने गया। १२ वें वर्ष में मालवा में जागीर पाकर यह शहाबुद्दीन अहमद खाँ के साथ इब्राहीम हुसेन मिर्जा तथा मुहम्मद हुसेन मिर्जा के उपद्रव को शांत करने के लिए बिदा हुआ। इसके अनंतर जब मिर्जाओं के होश हवास बादशाही सेना को देखकर उड़ गए तथा वे गुजरात की ओर भाग गए और जब सब सर्दार अपनी अपनी जागीरों पर रुक गए तब उक्त खाँ भी उज्जैन में ठहर गया, जो उसकी जागीर में था। १३ वें वर्ष में जब मिर्जे फिर खानदेश की ओर से मालवा प्रांत में चले आए और उज्जैन के पास उपद्रव आरंभ किया तब मुराद खाँ मालवा के दीवान मीर अर्जाजुल्ला के साथ उपद्रवियों के विद्रोह के आरंभ होने के दो दिन पहिले ही से सूचना पाकर उज्जैन दुर्ग के बनाने तथा दृढ़ करने में धैर्य से लग गए। यह समाचार बादशाह तक पहुँचा और एक सेना कुलीज खाँ की सर्दारी में भेजी गई। मिर्जे विजयी सेना के इस दबदबे को देखकर मांडू की ओर भाग गए। उक्त खाँ ने सर्दारों के साथ पीछा किया और मिर्जे नर्मदा नदी के पार चले गए। १७ वें वर्ष में जब मिर्जों का उपद्रव गुजरात में हुआ और मालवा के जागीरदारों के आज्ञानुसार मिर्जा अजीज कोका खानआजम के पास

पहुँचे तब युद्ध के दिन मुराद खाँ सेना के बाएँ भाग में नियत था। इसके अनंतर जब शत्रु-सेना ने प्रबल होकर सेना के दोनों भागों को अस्तव्यस्त कर दिया तब यह एक ओर होकर तमाशा देखता रहा। इसके बाद आज्ञा मिलने पर कुतुबुद्दीन मुहम्मद खाँ अतगा के साथ यह मुजफ्फर का पीछा करने गया। इसके उपरांत मुनइम खाँ खानखानाँ ने इसको फतेहाबाद तथा बगलाना भेजा कि उस जिले में शांति स्थापित करे। जब खानखानाँ की मृत्यु हो गई और दाऊद आदि उपद्रवियों ने वहाँ अशांति मचाई तब मुराद खाँ जलेसर नगर से स्वेच्छा से टाँडा चला आया। २५ वें वर्ष सन् ९८८ हि० में उसी जिले में मर गया।

———

मुहम्मद यार खाँ

यह मिर्जा बहमन यार एतकाद खाँ का पुत्र था। उस पिता को ऐसा पुत्र, स्यात्। बेपरवाही तथा दुष्कृपा में उससे बढ़ गया था। सांसारिक लोगों से कुछ भी समानता नहीं रखता था। इसने कितना भी दुनिया को पीठ तथा पैर दिखलाया पर इच्छा का हाथ बढ़ाता गया। इसने जितना ही दौलत की छाती की ओर हाथ बढ़ाया पर हाथ पीटते हुए मुख चौखट ही पर रह गया। यद्यपि पिता के जीवन-काल में इसने केवल खेल कूद में जीवन व्यतीत किया था पर होशियारी, कायदे की जानकारी तथा उनकी मर्यादा रखने में उससे बढ़कर था। नौकरी करने की कम इच्छा रखता था। औरंगजेब के राज्य के १२ वें वर्ष के आरंभ में, जब इसका पिता जीवित था, इसे चार सदी का नया मंसब मिला और इसके चाचा मिर्जा फर्रुखफाल की पुत्री से इसका निकाह हुआ, जो यमीनुद्दौला आसफजाह का छोटा पुत्र था और मुटाई तथा ऊँचाई के कारण एकांतवास करता था। मजलिस के दिन बादशाही दरबार में उपस्थित होने पर बादशाही पुरस्कार पाकर सम्मानित हुआ। २१ वें वर्ष में यह बादशाही सुनारखाने का दारोगा हुआ। बाद को इसके साथ कोरखाने का भी दारोगा नियत हो गया। क्रमशः मीरतुजुक होते हुए अर्ज मुकर्रर नियत हुआ। इसके अनंतर यह गुसुलखाने का दारोगा बनाया गया। परंतु अपने आराम की धुन में यह महीने दो

महीने दरबार नहीं जाता था। यहाँ तक कि जुल्फिकार खाँ नसरतजंग के मंसब के बहुत बढ़ने से, जिसने सैन्य संचालन में नाम कमाकर दक्षिण के विद्रोहियों को दंड देने तथा दुर्गों को विजय करने के पुरस्कार में तरक्कियाँ पाई थीं, यह उसकी बराबरी सहन न कर सका यद्यपि इसका मंसब भी कई बार बढ़ने से ढाई हजारी १५०० सवार का हो गया था। अपने स्थान से हट कर इसने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और उसके लिए हठ किया। शाहजादा मुहम्मद आजमशाह को आज्ञा हुई कि उसे समझावे। शाहजादे ने बहुत कुछ समझाया पर इसका कुछ असर नहीं हुआ। प्रत्युत् इसने शाहजादे को कहला भेजा कि मेरी नौकरी उस दर्जे की नहीं है कि तुम्हारे समझाने से ठीक हो जावे। शाहजादे ने क्षुब्ध होकर बादशाह से बहुत कुछ कहा। बादशाह ने कहा कि इच्छा होती है कि उसे दुर्ग के मकान में भेज दूँ। जब यह समाचार इसे मिला तब प्रार्थना की कि मैंने सब आदमी हटा दिए हैं, बीजापुर पास में है, यदि दुर्ग के मकानों में से एक मकान मिल जाय तो उसी में सुरक्षित बैठूँ। आज्ञानुसार कुलकुला से वहाँ जाकर बैठ रहा। बादशाह भी पीछे से वहाँ पहुँचे और जब ज्ञात हो गया कि किसी प्रकार नौकरी करने की इच्छा नहीं रखता तब दिल्ली जाने की छुट्टी दे दी।

दैवयोग से उसी समय शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम भी आगरा जाने की छुट्टी पाकर उस ओर जा रहा था इससे यह भी साथ हो लिया पर मार्ग में कहीं भी शाहजादे से न मिला। यहाँ तक कि उसके खेमे के आगे से निकलने पर भी बाहर न

आया। दिल्ली पहुँचने पर स्वतंत्रता तथा संतोष के साथ दिन व्यतीत करने लगा। कुछ महीने इस प्रकार बेकारी में नहीं बीते थे कि भाग्य ने सहायता की। ४० वें वर्ष सन् १००८ हि० में दरबार से इसे आकिल खाँ खवाफी के स्थान पर दिल्ली की सूबेदारी का फर्मान आया, जिससे इसकी इच्छा पूरी हुई। साथ ही पाँच सदी ५०० सवार का मंसब बढ़ने पर इसका मंसब तीन हजारी २०० सवार का हो गया। ४६ वें वर्ष में इसका मंसब साढ़े तीन हजारी ३००० सवार का हो गया, इसे डंका मिला तथा उक्त सूबेदारी के साथ मुरादाबाद की फौजदारी भी मिली, जो उच्चपदस्थ सर्दारों के सिवा दूसरों को नहीं मिलती। औरंगजेब की मृत्यु पर जब बहादुरशाह पेशावर से चलकर दिल्ली से तीन पड़ाव पर पहुँचा तब मुनइम खाँ को, जिसे उस समय तक खानजमाँ की पदवी मिली थी, उक्त खाँ को समझाने के लिए आगे भेजा। मुहम्मद यार खाँ ने अधीनता तथा सेवा की दृष्टि से अपने पुत्र हसन यार खाँ को दुर्ग की ताली तथा साम्राज्य की बधाई की भेंट सहित खानजमाँ के साथ भेज दिया। तीस लाख रुपया नकद और अस्सीलाख रुपए का चाँदी का सामान भी दिया, जिसे आवश्यक समझ कर लेना पड़ा। परंतु यह स्वयं पागलपन की बीमारी के बहाने दुर्ग ही में रह गया। बहादुरशाह की राजगद्दी के बाद आसफुद्दौला असद खाँ के दिल्ली में रहने का निश्चय होने पर भी दुर्ग का प्रबंध तथा रक्षा का भार उक्त खाँ ही के हाथ में बहाल रहा। जब जहाँदारशाह का राज्य हुआ और लाहौर से वह दिल्ली की ओर चला तब यह अगराबाद तक स्वागत को आकर उसी दिन नीमदत्त में आसफुद्दौला को देखा

और फिर अपनी हवेली में आकर बैठा। जुल्फिकार खाँ उस समय हिंदुस्तान का प्रधान मंत्री था और वह कई बार इसे देखने गया और इसके सामने शस्त्र लेकर कोई नहीं जा सकता था इस कारण इसके विचार से जमधर खोल कर तब जाता था। जिस दिन बादशाह मुहम्मद फर्रुखसियर विजय के साथ दिल्ली में गया उस दिन नगर के बीच सवारी में बादशाह से मिलकर दुर्ग के बाहर ही से अपने घर को लौट गया। यद्यपि यह दरबार में आना जाना नहीं रखता था पर कभी कभी सूबेदारी के नाम से मुकद्दमे इसके पास भेजे जाते थे। जब मुहम्मद फर्रुखसियर बारहा के सैयदों के प्रभुत्व से घबड़ा कर आलमगीरी अमीरों की खोज में था तब तकर्रुब खाँ शीराजी के स्थान पर खानसामानी पर इसे बहुत समझा कर नियत किया। इसने दरबार में आने जाने से छुट्टी रहने की शर्त पर स्वीकार किया। कभी यह स्यात् ही बादशाह के सामने गया हो और खानसामानी के दफ्तर में भी जब जाता तो उतरता न था और पालकी में बैठे बैठे हस्ताक्षर कागजों पर कर देता था। पालकी के लिए खंभे खड़े किए गए थे। यह सच्चा तथा समय का प्रभावशाली पुरुष था। फर्रुखसियर के बाद यद्यपि इसे कोई काम नहीं मिला पर जागीर बराबर जीवन भर बहाल रही। मुहम्मदशाह बादशाह के समय दो तीन बार दरबार में बुलाया गया। समय पर इसकी मृत्यु हुई। हसन यार खाँ के सिवा, जो जवानी ही में मर गया, दूसरा पुत्र नहीं था। इसके पास अच्छा कोष तथा अचल संपत्ति थी। दिल्ली में हवेली तथा दूकानें बहुत सी इसकी थीं। बहुतों के पास किराया बाकी रह गया।

मुहम्मद सालिह तरखान

यह मिर्जा ईसा तरखान का द्वितीय पुत्र था। २४ वें वर्ष शाहजहानी में इसका पिता सोरठ की फौजदारी से दरबार बुलाया गया और उक्त सरकार का प्रबंध इसे प्रतिनिधि रूप में मिला। जब इसी वर्ष इसका पिता मर गया तब इसका मंसब पाँच सदी बढ़ने से दो हजारी १५०० सवार का हो गया। ३१ वें वर्ष में मिर्जा अबुल्मआली के स्थान पर यह सिविस्तान का फौजदार नियत हुआ और पाँच सौ सवार बढ़ने से इसका मंसब दो हजारी २००० सवार का हो गया।

भ्रातृयुद्ध में दैवयोग से दाराशिकोह आलमगीरी सेना के पीछा करने पर जब कहीं नहीं ठहर सका तब ठट्टा जाने के विचार से वह सिविस्तान की ओर चला और आलमगीरी तोपखाने का दारोगा सफ शिकन खाँ भी, जो उसका पीछा करने पर नियत था, पीछे पीछे पहुँचा। इसी समय मुहम्मद सालिह का पुत्र उक्त खाँ को मिला कि दाराशिकोह दुर्ग से पाँच कोस पर पहुँच गया है इसलिए चाहिए कि शीघ्र आकर उसके कोष की नावों को रोके। उक्त खाँ ने अपने दामाद मुहम्मद मासूम को ससैन्य आगे भेजा कि दाराशिकोह की नावों से आगे बढ़कर नदी के किनारे मोर्चा बाँधे। स्वयं रातों रात चलकर दाराशिकोह की सेना के पास से आगे दो कोस बढ़कर शत्रु-नावों की प्रतीक्षा करने लगा। यह भी इच्छा थी कि नदी उतर कर शत्रु को दमन

करे। जब शत्रु की नावें आगे आकर उक्त खाँ की नावों के पहुँचने में बाधक हुईं तब इसने मुहम्मद सालिह को संदेश भेजा कि उस ओर नावें भेजे और स्वयं आकर रोकने की शर्तें ठीक करे। दाराशिकोह के धायभाई का पुत्र मुहम्मद सालिह के घर में था पर कुछ भी उससे सेवा न हो सकी प्रत्युत् उसकी हितैषिता का विचार कर उक्त खाँ को संदेश भेजा कि इस किनारे पानी कमर तक है इसलिए उस तट से पार करे। सफ शिकन खाँ ने यह ठीक समझ कर भी आवश्यकतावश नदी पार नहीं किया। दूसरे दिन उस ओर धूल उड़ने से प्रकट हुआ कि दाराशिकोह ने कूच कर दिया और शत्रु नावों को उसी ओर ले गए। इस कारण कि ऐसा विजय का अवसर मुहम्मद सालिह की चाल से हाथ से निकल गया, यह मंसब तथा पदवी छिन जाने से दंडित हुआ। आलमगीरी २ रे वर्ष में फिर डेढ़ हजारी १००० सवार का मंसब बहाल हुआ और बहादुर खाँ के साथ बहादुर बछगोती को दंड देने पर नियत हुआ, जिसने बैसवाड़े में उपद्रव मचा रखा था। इसके अनंतर दक्षिण की चढ़ाई पर नियत होकर मिर्जाराजा जयसिंह के साथ शिवाजी भोंसला के दुर्गों को लेने तथा उसके राज्य में लूटमार करने में इसने अच्छा काम किया। इसकी मृत्यु की तारीख नहीं मालूम हुई। इसका पुत्र मिर्जा बहरोज शाहजहाँ के समय पाँच सदी मंसबदार था।

मुहम्मद सुल्तान मिर्जा

यह मिर्जा वैस का पुत्र था, जो बायकरा के पुत्र मंसूर के पुत्र बायकरा का पुत्र था। सुलतान हुसेन मिर्जा बायकरा के राज्यकाल में, जो इसका मातामह था, यह विश्वासपात्र तथा सम्मानित व्यक्ति था। उक्त सुलतान की मृत्यु पर जब खुरासान में बड़ी अशांति मच गई तब यह बाबर बादशाह की सेवा में पहुँच कर उसका कृपापात्र हुआ और इसी प्रकार हुमायूँ बादशाह के समय तक रहा। इतने पर भी इसमें उपद्रव करने के चिह्न कई बार प्रगट होने पर हुमायूँ ने मुरौव्वत से बदला लेने की शक्ति रखते हुए भी इसे क्षमा कर दिया। इसके दो पुत्र थे–उलुग मिर्जा और शाह मिर्जा। इन दोनों ने भी हुमायूँ के विरुद्ध कई बार विद्रोह किया पर वे कृपापात्र बने रहे यहाँ तक कि उलुग मिर्जा हजारा की चढ़ाई में मारा गया और शाह मिर्जा अपनी मृत्यु से मर गया। उलुग मिर्जा को दो लड़के थे–सिकंदर और महमूद सुलतान। हुमायूँ ने प्रथम को उलुग मिर्जा और द्वितीय को शाह मिर्जा की पदवी दी। जब अकबर का समय आया तब मुहम्मद सुलतान मिर्जा पर पौत्रों तथा कुटुंबियों के साथ विशेष कृपा हुई। अवस्था के आधिक्य के कारण सेवा इसे क्षमा कर दी गई और संभल सरकार में आजमपुरा पर्गना इसे व्यय के लिए मिला। यहीं बुढ़ौती में इसे कई पुत्र हुए—इब्राहीम हुसेन मिर्जा और आकिल हुसेन मिर्जा। बादशाह ने इन सब पर भी कृपा की

और सरकार संभल में अच्छी जागीरें इन्हें मिलीं। ११ वें वर्ष में अकबर मिर्जा मुहम्मद हकीम को दमन करने गया, जो काबुल से आकर लाहौर को घेरे हुए था। उलुग मिर्जा और शाह मिर्जा इब्राहीम हुसेन मिर्जा तथा मुहम्मद हुसेन मिर्जा के साथ विद्रोह का झंडा खड़ाकर लूटमार करने लगे। यहाँ से ये खानजमाँ के पास जौनपुर चले गए। जब उससे मित्रता न बैठी तब लूटमार करते हुए दिल्ली की सीमा पर पहुँचे। इसके अनंतर मालवा जाकर उसपर अधिकृत हो गए, जिसका अध्यक्ष मुहम्मद कुली खाँ बर्लास उस समय दरबार में उपस्थित था। इस कारण मुहम्मद सुलतान बयाना दुर्ग में कैद हुआ और वहीं कैद में मर गया। १२ वें वर्ष में अकबर खानजमाँ के दमन के अनंतर चित्तौड़ गढ़ लेने के विचार से उधर गया और शहाबुद्दीन अहमद खाँ को मालवा की अध्यक्षता देकर मिर्जाओं को दमन करने भेजा। इसी समय उलुग मिर्जा मांडू में मर गया और दूसरे सामना करने का अपने में सामर्थ्य न देखकर चंगेज खाँ के पास चले गए जो सुलतान महमूद गुजराती का दास था और बाद में उससे उस प्रांत के कुछ नगरों पर अधिकार प्राप्त कर दृढ़ता से जम गया था। वह उस समय एतमाद खाँ गुजराती से लड़ने को रवाना हुआ, जिसने अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया था। मिर्जाओं के मुकद्दम ने इसे गनीमत समझा। उस युद्ध में इन लोगों ने अच्छा कार्य दिखलाया इस लिए चंगेज खाँ ने भड़ोच मिर्जाओं को जागीर में दे दिया। परंतु ये स्वभावतः उपद्रवी थे इस कारण वहाँ पहुँचते ही इतना उपद्रव तथा अत्याचार किया कि अंत में निरुपाय होकर चंगेज खाँ ने भड़ोच सेना

भेजी। यद्यपि उन सब ने सैनिकों को परास्त कर दिया पर चंगेज खाँ का सामना करने में अपने को अशक्त देखकर खानदेश की ओर चले गए और वहाँ से पुनः मालवा जाकर उपद्रव मचाने लगे। अशरफ खाँ और सादिक खाँ आदि सर्दार गण ने, जो रणथंभौर विजय करने पर नियत हुए थे, आज्ञानुसार १३ वें वर्ष में इनका पीछा किया। मिर्जे भागकर नर्मदा के उस पार चले गए। इसके बहुत से साथी नष्ट हो गए। जब इन्हें ज्ञात हुआ कि चंगेज खाँ भज्जार खाँ हब्शी के विद्रोह में मारा गया और गुजरात में कोई स्थायी अध्यक्ष नहीं रह गया है तब ये फिर उस प्रांत में गए और चांपानेर, भड़ोच तथा सूरत पर बिना युद्ध और कुछ युद्ध कर अधिकृत हो गए।

जब अहमदाबाद बादशाही साम्राज्य में मिल गया और प्रकाश फैलानेवाला अकबरी झंडा उस प्रांत में पहुँचा तब मिर्जाओं के दल में फूट पड़ गई। इब्राहीम हुसेन भड़ोच से निकल कर बादशाही पड़ाव से आठ कोस पर आकर ठहरा। इसके एक दिन पहिले बादशाही सर्दारगण मुहम्मद हुसेन मिर्जा को दमन करने के लिए सूरत की ओर भेजे जा चुके थे इसलिए यह समाचार पाते ही अकबर ने शहबाज खाँ को सर्दारों को लौटाने को भेजकर स्वयं आक्रमण किया। जब महींदी नदी के किनारे, जो सरनाल के पास है, पहुँचा तब केवल चालीस सवार इसके साथ में थे, जिनमें बहुतों के पास कवच न थे। इतनी देर रुकना पड़ा कि खास कवच लोगों में बाँटे गए। इसी बीच कुछ सर्दार भी लौट आए, जो सब मिलाकर दो सौ हुए। सरनाल कस्बे में घोर युद्ध हुआ। इब्राहीम हुसेन परास्त होकर आगरे की ओर भागा और

उसकी स्त्री गुलरुख बेगम, जो कामराँ की पुत्री थी, अपने पुत्र मुजफ्फर हुसेन के साथ सूरत होती दक्षिण चली गई। उसी वर्ष अकबर ने सूरत विजय करने का विचार कर मिर्जा अजीज कोका को अहमदाबाद में छोड़ा और कुतुबुद्दीन खाँ आदि सर्दारों को मालवा से बुलाकर सहायता पर नियत किया। मुहम्मद हुसेन मिर्जा और शाह मिर्जा पत्तन के पास थे और इन्होंने शेर खाँ फौलादी से मिल कर उस कस्बे को घेर लिया, मिर्जा कोका युद्ध के लिए रवानः हुआ और युद्ध भी घोर हुआ। विद्रोहियों के कार्यों का फल असफलता ही है इसलिए मिर्जे प्रायः विजयी होते होते परास्त हो गए। मुहम्मद हुसेन मिर्जा दक्षिण भागा और इब्राहीम हुसेन मिर्जा मसऊद हुसेन मिर्जा के साथ, जिसे नागौर में विद्रोह करने के कारण दंड दिया जा चुका था, पंजाब की ओर चला। उस समय वहाँ का प्रांताध्यक्ष हुसेन कुलीखाँ नगर कोट घेरे हुए था इसलिए राजा से संधि कर वह शीघ्र इनका पीछा करने आया। मसऊद हुसेन मिर्जा युद्ध में कैद होगया और इब्राहीम हुसेन मुलतान की ओर जाकर बिलूचियों के हाथ घायल होकर पकड़ा गया। मुलतान के सूबेदार सईद खाँ चगत्ता ने यह सुन कर इसे अपनी कैद में ले लिया। इसी घाव से इसकी मृत्यु हो गई। मुहम्मद हुसेन मिर्जा बादशाह के गुजरात से आगरा लौटने पर दक्षिण के दौलताबाद से गुजरात आया और यहाँ के कुछ महालों पर फिर से अधिकृत हो गया। खंभात के पास कुतुबुद्दीन खाँ के पुत्र नौरंग खाँ आदि बादशाही सर्दारों से परास्त होकर इख्तियारुल्मुल्क तथा शेर खाँ फौलादी के पुत्रों के पास पहुँचा, जो विद्रोही हो चुके थे। इन सबने मिलकर अहमदाबाद में मिर्जा

अजीज कोका को घेर लिया। अकबर यह समाचार सुनते ही आगरे से धावा कर नौ दिन में, जिनमें अधिकतर लोग शीघ्रगामी साँड़नियों पर सवार थे, ५ जमादिउल् अव्वल सन् ९८१ हि० को अहमदाबाद से तीन कोस पर एक सहस्र सवारों से कम के साथ पहुँच गया। मुहम्मद हुसेन मिर्जा के साथ घोर युद्ध हुआ, जो इख्तियारुल्मुल्क को नगर के घेरे पर छोड़कर स्वयं युद्ध के लिए सन्नद्ध हुआ था। बादशाह ने स्वयं अग्गल होकर सौ सवारों के साथ खूब प्रयत्न किया। मुहम्मद हुसेन मिर्जा घायल होकर भागा पर उसके घोड़े का पैर कुहरे के कारण थूहड़ वृक्ष से लगने से यह पृथ्वी पर आगिरा। बादशाही दो सैनिकों ने समय पर पहुँच कर इसे घोड़े पर सवार कराया और बादशाह के सामने लाए। हर एक इसके पुरस्कार के लोभ में इस सेवा का कर्ता अपने को बतलाता। आज्ञानुसार राजा बीरबल ने मिर्जा से पूछा कि किसने उसे पकड़ा था। उत्तर दिया कि मुझे बादशाह के निमक ने पकड़ा है। सत्य ही, ये क्या शक्ति रखते हैं। इसके अनंतर लूट के लिए लोग अस्त व्यस्त हो गए। प्रतापी बादशाह के पास कुछ ही मनुष्य बच गए थे कि इख्तियारुल्मुल्क पाँच सहस्र सैनिकों के साथ होते भी मिर्जा के कैद होने का समाचार सुनकर भाग खड़ा हुआ। लोगों का ध्यान था कि युद्ध होगा इस लिए बड़ा उपद्रव मचा था। भय से नक्कारचों लोग घबड़ा कर कभी युद्ध का कभी आनंद का नगाड़ा बजाते थे। परंतु शत्रु ऐसा घबड़ाते हुए भागे कि बादशाही सेना के बहादुरों ने पीछा कर उन्हीं के तरकश से तीर निकालकर बहुतों को मार डाला। इख्तियारुल् मुल्क अपनी सेना से अलग होकर थूहड़ की टट्टी में

जा निकला। इसने चाहा कि घोड़े को कुदावे पर भूमि पर गिर पड़ा। तुर्कमान सुहराब इसका सिर काट कर ले आया, जो उसका पीछा कर रहा था। इसी गड़बड़ी में मुहम्मद हुसेन मिर्जा को उसके रक्षक रायसिंह ने मार डाला। शाह मिर्जा युद्ध के आरंभ ही में भाग गया था।

इसके अनंतर २२ वें वर्ष में मुजफ्फर हुसेन मिर्जा ने, जिसे उसकी माँ दक्षिण लिवा गई थी, विद्रोहियों के एक झुंड के प्रयत्न से गुजरात पहुँच कर विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। राजा टोडरमल इसके पहिले ही उस प्रांत के प्रबंध को ठीक करने के लिए वजीर खाँ की सहायता को आ चुके थे इससे उक्त खाँ के साथ उस पर आक्रमण कर उसे कड़ी पराजय दिया। मिर्जा जूनागढ़ की ओर भागा। जब राजा दरबार को रवानः हुआ तब मिर्जा ने अहमदाबाद को आकर फिर घेर लिया और उसके आदमियों को मिलाकर नगर में घुसने का प्रबंध करने लगा। इसी समय एकाएक मेह्र अली कोलाबी गोली लगने से मर गया, जिसने इस अल्पवयस्क मिर्जा को उपद्रव की जड़ बनाकर यह विद्रोह कर रखा था। मिर्जा यह हाल देखकर ठीक विजय के समय अपना स्थान छोड़कर नदरबार की ओर भागा। जब यह खानदेश पहुँचा तब वहाँ के शासक राजा अली खाँ ने इसे कैद कर लिया और अकबर के पास भेज दिया। यह कुछ दिन कैद में रहा। जब मिर्जा की हालत से लज्जा और सुव्यवहार प्रगट हुआ तब इस पर कृपा हुई। ३८ वें वर्ष में अकबर ने अपनी बड़ी पुत्री खानम सुलतान का मिर्जा से निकाह कर दिया और कन्नौज सरकार उसे जागीर में दिया। जब उपद्रव तथा विद्रोह के

इसके पैतृक विचारों की सूचना मिली तब यह जागीर पर से बुलाया जाकर कैद कर दिया गया। ४५ वें वर्ष सन् १००८ हि० में आसीरगढ़ के घेरे में मिर्जा को सेना के साथ ललंग दुर्ग लेने में सहायतार्थ भेजा। मिर्जा पहिले की असफलताओं का लाभ न उठाकर उपद्रवी तथा घमंडी प्रकृति से ख्वाजगी फतहुल्ला से लड़ गया और एक दिन अवसर पाकर गुजरात को चल दिया। इसके साथवाले इससे अलग हो गए। इस बेकार ने सूरत तथा बगलाना के बीच विरक्ति का वस्त्र पहिरा। उसी घबड़ाहट के समय ख्वाजा वैसी ने, जो पीछा कर रहा था, पहुँचकर तथा कैद कर दरबार में ले आया। बादशाह ने इसको क्षमाकर शिक्षा के के कारागार में रखा। ४६ वें वर्ष में इसे पुनः कैद से निकाल कर इस पर कृपा की। इसके अनंतर यह अपनी मृत्यु से मरा। मिर्जा की बहिन नूरुन्निसा बेगम शाहजादा सुलतान सलीम से ब्याही थी। कहते हैं कि गुलरुख बेगम, जो जहाँगीर की सास थी, अजमेर में सन् १०२३ हि० में बीमार हुई। जहाँगीर बादशाह देखने के लिए उसके घर पर गए। बेगम ने खिलअत भेंट किया। बादशाह ने तोरः की रक्षा में सम्राट् होने का ख्याल न कर उसे स्वीकार किया और उसे पहिर लिया।

मुहम्मद हाशिम मिर्जा

यह दो नाते से खलीफा सुलतान का पौत्र तथा तीन नाते से शाह अब्बास प्रथम का नाती लगता था। बहादुरशाह के ४ थे वर्ष में यह गरीबी के कारण सूरत बंदर आया। बहादुरशाह बड़ा दयालु था और यह समचार पाकर गुणग्राहकता से तथा कृपा करके तीन सहस्र रुपया वेतन तथा मेहमानदार नियत करके उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। गुजरात के प्रांताध्यक्ष फीरोजजंग के नाम फर्मान गया कि जब वह अहमदाबाद पहुँचे तब पहिले के गुजरात के सूबेदार मुहम्मद अमीन खाँ की चाल पर, जिसने खलीफा सुलतान के भाई किवामुद्दीन की ईरान से मुहताज आने पर आज्ञानुसार किया था, उसकी सब आवश्यकताएँ पूरी कर दरबार भेज दे। खाँ फीरोजजंग ने अपने छोटे पुत्र को स्वागत के लिए भेजा और आने पर स्वयं कुछ कदम आगे बढ़कर इससे मिला। पंद्रह सहस्र रुपया नगद, हाथी व घोड़ा इसे दिया। इसके अनंतर जब मिर्जा बादशाह के पड़ाव के पास पहुँचा तब कोका खाँ, जिसकी माँ बादशाह की मुसाहिब थी, इसकी मेहमानी करने पर नियत हुआ। सेवा में उपस्थित होने पर इसे अनेक प्रकार की भेंट मिली। गर्मी के कारण इसके मुँह पर थकावट मालूम हो रही थी, इसलिए आज्ञा हुई कि इसे खसखाने में लेजा कर यख का पानी पिलावें।

इसी समय खानखानाँ की मृत्यु से मंत्री की नियुक्ति की बातचीत चल रही थी। बादशाह का द्वितीय पुत्र मुहम्मद अज़ीमुश्शान का जिसका साम्राज्य के कार्यों में पूरा अधिकार था, हठ था कि जुल्फिकार खाँ मंत्री बनाया जाय और मृत खानखानाँ के पुत्रों को मीर बख्शी तथा दक्षिण का सूबेदार नियत किया जाय। जुल्फिकार खाँ का कथन था कि जबतक उसका पिता जीवित है तबतक मंत्रित्व पर उसीका स्वत्व है। उसका विचार था कि इस बहाने तीनों कार्य उसीके हाथ रहेंगे। इस बातचीत में बहुत समय बीत गया। एकांत स्थान में कई बार बादशाह के मुख से निकला कि इन बातों से मैं तंग आ गया, चाहता हूँ कि मंत्री पद पर ईरान के शाहजादे को नियत कर तन या खालसा के दीवानों में से किसी एक को उसका स्थायी नायब बना दूँ और नायब ही से काम लूँ। परंतु मिर्जा के आने के पहिले तथा बाद शाहजादों की ओर से बादशाह तक इसके बारे में बहुत सी बातें कहलाई गई थीं, विशेष कर इसके अहंकार तथा निरंकुशता की। मिर्जा शाहजादों के सामने भी सिर नहीं झुकाता था और इससे सभी सर्दार क्षुब्ध रहते थे, यहाँ तक कि मिर्जा शाहनवाज खाँ सफवी के संकेत पर, जो इससे बहुत द्वेष रखता था और उसकी छाती में इतनी ईर्ष्याग्नि जल रही थी, कि मेहमानदार से बादशाह को प्रार्थनापत्र लिखवाया कि शाहजादों को सवारी में तथा दरबार में किस प्रकार आदाब करे और सर्दारों से कैसा बर्ताव करे। बादशाह के आने के पहिले यदि वह दरबार में पहुँच जाय तो किस स्थान पर बैठे। बादशाह ने उसी प्रार्थनापत्र लिख दिया कि शाहजादों को सवारी के समय घोड़े से उतर कर

आदाब करे और दरबार में सर्दारों की तरह करे। तीन हजारी तक, जो पहिले सलाम करते हैं, हाथ सिर पर लगावे। तीसरी बात पर पहुँचते ही बादशाह ने मिर्जा शाहनवाज खाँ की ओर घूमकर पूछा कि क्या लिखना चाहिए। उसने प्रार्थना की कि बादशाह के आने तक खानः जाद खाँ के घर में बैठे। दूसरे दिन बादशाह के आने के पहिले यह दरबार पहुँच गया और सजावल ने शाहनवाज खाँ के कहने के अनुसार इसे उक्त खाँ के घर लिवा जाकर बैठा दिया। मकान के मालिक ने मिर्जा की इच्छा के अनुसार उससे तपाक के साथ व्यवहार नहीं किया। यद्यपि दूसरे दिन मिर्जा शाहनवाज खाँ ने इसके घर आकर क्षमा याचना की पर यह प्रार्थना पत्र तथा इस प्रकार आना हलकेपन का कारण बन मजलिसों में बातचीत का एक साधन बन गया। अंत में इसे पाँच हजारी ३००० सवार का मंसब तथा खलीफा सुलतान की पदवी मिली, जिसके लिए इसने स्वयं प्रार्थना की थी। इसकी प्रकृति दुनियादारी की न थी। दरबार के सरदार गण इससे कितनी भी बेरुखी और कुव्यवहार करते थे पर इसके अहंकार पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। अभी वेतन में इसे जागीर नहीं मिली थी कि बहादुर शाह की मृत्यु हो गई। फिर किसी ने इसकी बात भी न पूछी। बहुत दिनों तक यह राजधानी में रहा और समय आने पर मर गया।

मुंतखबुल्लुबाब इतिहास के लेखक खवाफी खाँ, जो इस ग्रंथ के लेखक से बहुत प्रेम रखता था और दैवयोग से खाँ फीरोजजंग ने अहमदाबाद में अपनी ओर से इसे शाहजादे का मेहमानदार नियत किया था तथा शाहजादे ने मार्ग में इसे अपनी दीवानी

का कार्य सौंपा था, लिखता है कि मिर्जा का वंश आकाश-सा ऊँचा था और सिवा पूर्वजों की हड्डी बेंचने तथा वंश की पूजा करने के इसने और कुछ अभ्यास नहीं किया था। वंश की बातें इतनी उड़ाता कि मानों जमीनवालों से कोई संबंध न था और इससे अपरिचित था कि कहा गया है। शैर—

मोती के ऐब से बढ़कर वंश का घमंड है व मूर्खता है।
नगीने की तरह दूसरे के नाम से कुछ दिन जी सकना है॥

जब यह अहमदाबाद से राजधानी दिल्ली पहुँचा तब साथियों ने, जो उन्नति की आशा से साथ हो गए थे, बहुत कह सुनकर इसे आसफुद्दौला से मुलाकात करने को लिवा गए। आसफुद्दौला ने अपनी मसनद के पास दूसरी गद्दी इसके लिए बिछवा रखी थी। यह बात इसे बहुत बुरी लगी और इसके बाद आसफुद्दौला ने बहुत उत्साह दिखलाया पर यह टस से मस न हुआ। प्रसन्न करने के लिए एक बार आसफुद्दौला के मुख से निकल पड़ा कि जिस दिन बादशाही सेवा में उपस्थित होगा उसी पहले दिन सात हजारी मंसब दिलवाऊँगा, जो हिंदुस्तान के ऐश्वर्य की सीमा है। इस पर इसने एक बार ही खफा होकर कहा कि यहाँ हरएक पाजी सात हजारी हैं, हमारे लिए यह कोई प्रतिष्ठा नहीं रखता। ईश्वरेच्छा कि इसी के बाद ईरान में उपद्रव हुआ और सफवी राज्य का अंत हो गया, जिससे इस वंश के बहुत से लोग हिंदुस्तान की शरण में चले आए। जब यहाँ के साम्राज्य की भी शोभा कम होगई और प्रबंध बिगड़ गया तब कुछ भी पहिले की प्रतिष्ठा तथा विश्वास नहीं रह गया, जिसका कुछ भी गुमान न करते थे। हर एक इधर उधर छिपकर रोजगार करने लगे।

आश्चर्य है कि कुछ लोग इस वंश को अपनी पुत्री देकर उसे खलीफा-सुलतानी प्रकट करते थे। इसी प्रकार बंगाल के एक हाकिम ने ऐसे ही एक आदमी से संबंध किया पर बाद में ज्ञात हुआ कि वह झूठा है। इसी प्रकार इनमें से कुछ दक्षिण आए और वंश के नाम पर सम्मान भी प्राप्त किया। इसके अनंतर जब वास्तविक मिर्जे इस वंश के पहुँचे तब मालूम हुआ कि वे उस वंश से कुछ भी संबंध नहीं रखते।

मुहम्मद हुसेन ख्वाजगी

यह कासिम खाँ मीर बहर[1] का छोटा भाई था। उसका वृत्तांत अलग लिखा गया है। अकबर के राज्य के ५ वें वर्ष में मुनइम बेग खानखानाँ के साथ काबुल से आकर सेवा में भर्ती हुआ तथा बादशाही कृपा से बड़ा सम्मान पाया। जब खानखानाँ का पुत्र मियाँ गनी खाँ और हैदर मुहम्मद खाँ आख्तः बेगी जिन दोनों को खानखानाँ काबुल में छोड़ आया था, असफल हो गए तब बादशाह ने हैदर मुहम्मद खाँ आख्तः बेगी को लौट आने का आज्ञा पत्र भेजा और खानखानाँ के भतीजे अबुल् फतह को गनी खाँ की सहायता के लिए भेजा। यह भी उसके साथ काबुल में नियत हुआ। कुछ दिन वहाँ व्यतीत कर यह दरबार चला आया और कशमीर की यात्रा में बादशाह के साथ गया। सचाई तथा औचित्य के विचार में साहसी था, इसलिए बादशाह के स्वभाव से इसका मेल खा गया और अंत में एक हजारी मंसब और बकावल बेग का पद इसे मिला। जहाँगीर के राज्य के ५ वें वर्ष में जब कश्मीर की अध्यक्षता इसके भतीजे हाशिम खाँ को मिली, जो उड़ीसा का शासक था, तब इसको हाशिम खाँ के पहुँचने तक उक्त प्रांत का प्रबंध करने को भेजा। ६ ठे वर्ष दरबार पहुँच कर यह सेवा में उपस्थित हुआ।

---

१. देखिए मुगल दरबार भा० २ पृ० ५१-४।

इसी वर्ष के अंत में सन् १०२० हि० में इसकी मृत्यु हुई। इसे पुत्र न थे। बादशाह ने जहाँगीर नामा में लिखा है कि वह कोसा था और इसकी डाढ़ी मूछ पर एक बाल भी न थे। बोलते समय इसकी आवाज ख्वाजा सराओं तक पहुँचती थी।

मुहिब्ब अली खाँ

यह बाबर बादशाह के साम्राज्य-स्तंभ मीर निजामुद्दीन अली खलीफा का पुत्र था, जो पुरानी सेवा, विश्वास की अधिकता, बुद्धि की कुशाग्रता, अनुभव, विशेष साहस तथा प्रत्युत्पन्नमति के कारण उस बादशाह के यहाँ ऊँचा पद रखता था। गुणों तथा विद्याओं में विशेषतः हकीमी में बहुत योग्य था। संसार के कुछ अवश्यंभावी कार्यों के कारण यह हुमायूँ से शंका तथा भय रखते हुए उसके बादशाह होने में प्रसन्न न था। बाबर की मृत्यु के समय यह चाहता था कि हुमायूँ के अपने उत्तराधिकार के अनुसार राजगद्दी का स्वत्व रखते हुए भी बाबर के दामाद मेहदी ख्वाजा को जो बड़ा उदार था तथा इससे मुहब्बत प्रकट करता था, गद्दी पर बैठावे। जब इसका यह निश्चय लोगों को ज्ञात हुआ तब ख्वाजा ने भी शाही चाल पकड़ी। दैवयोग से उन्हीं दिनों एक दिन मीर खलीफा मेहदी ख्वाजा के साथ खेमे में था। जब मीर बाहर आया तब ख्वाजा, जो पागलपन से खाली न था, इससे असावधान होकर कि वहाँ दूसरा भी उपास्थित है डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा कि यदि ईश्वर ने चाहा तो तेरी खाल निकलवाऊँगा। एकाएक उसकी दृष्टि ख्वाजा निजामुद्दीन बख्शी के पिता मुहम्मद मुकीम हरवी पर पड़ी, जो उस समय बयूतात का दीवान था तथा खेमे के कोने में खड़ा था। ख्वाजा

का रंग उड़ गया और उसका कान उमेठते हुए कहा कि ऐ ताजीक[1]। मिसरा—

लाल जबान और हरा सिर बर्बाद कर देता है।

उसी समय मुहम्मद मुकीम ने यह बात मीर खलीफा से जा सुनाई और कहा कि स्वामिद्रोह का यही फल है तथा किसलिए चाहता है कि खान्दानी राज्य गैर को दे दे। मीर खलीफा ने इस अनुचित विचार से अलग होकर लोगों को ख्वाजा के घर पर जाने से मना कर दिया। इसके अनंतर इसने बाबर की मृत्यु पर हुमायूँ को राजगद्दी पर बिठा दिया।

मुहिब्ब अली खाँ ने भी बाबर और हुमायूँ के समय में युद्धों में बहुत प्रयत्न किया था। इसकी स्त्री नाहीद बेगम थी। यह नाहीद बेगम कासिम कोका की पुत्री थी, जिसने स्वामिभक्ति से अब्दुल्ला खाँ उजबक के युद्ध में जब बादशाह शत्रुओं के हाथ में पड़ गए तब आगे बढ़कर कहा कि बादशाह तो मैं हूँ पर इस नौकर ने कैसे बहाने से अपने को पकड़वा दिया है। शत्रुओं ने उसे छोड़ दिया। बादशाह उस घातक स्थान से छूटकर इसके परिवार वालों पर बराबर कृपा करते रहे। सन् ९८५ हि० में नाहीद बेगम अपनी माँ हाजी बेगम से मिलने के लिए ठट्टा गई, जो अमीर जुल्नून के पुत्र मिर्जा मुकीम की पुत्री थी और कासिम कोका की मृत्यु पर मिर्जा हसन के यहाँ पहुँची तथा उसके बाद जिसने ठट्टा के शासक मिर्जा ईसा तर्खान के साथ

---

१. वह मनुष्य जो अरब में पैदा हो तथा फारस में पलकर बड़ा हो और व्यापार आदि करे।

शादी की। दैवयोग से बेगम के पहुँचने के पहिले मिर्जा मर गया और उसका पुत्र मुहम्मद बाकी उस प्रांत का प्रबंधक हुआ। इसने नाहीद बेगम का स्वागत नहीं किया और हाजी बेगम के साथ भी बुरा सलूक करने लगा। हाजी बेगम ने कुछ उपद्रवियों के साथ मुहम्मद बाकी को पकड़ लेना चाहा पर उसने सूचना पाकर इसे कैद कर दिया, जहाँ वह मर गई। नाहीद बेगम वीरता तथा उपाय से उस प्रांत से निकलकर भक्कर पहुँची तब वहाँ के शासक सुलतान महमूद से मेल की बातें कर कि यदि मुहिब्ब अली खाँ इस ओर आवे तो मैं ठट्टा विजय कर दे दूँगा। बेगम ने समय के अनुसार उसे सच्चा समझकर हिंदुस्तान आने पर अकबर से इसके लिए बहुत हठ किया। बादशाह ने १६ वें वर्ष में सन् ६७८ हि० में मुहिब्ब अली खाँ को, जो एक मुद्दत से काम छोड़कर बैठा हुआ था, झंडा व डंका देकर मुलतान और वहाँ के जागीरदार से पाँच लाख तनका व्यय के लिए वेतन करा दिया। उसके दौहित्र मुजाहिद खाँ को भी, जो साहसी युवक था, साथ कर दिया। मुलतान के प्रांताध्यक्ष सईद खाँ को आदेश लिख भेजा कि इसकी सहायता करे। उक्त खाँ मुलतान पहुँचने पर सुलतान महमूद के वचन पर विश्वास कर सहायता की प्रतीक्षा न कर कुछ सेना के साथ, जिसे एकत्र कर सका था, भक्कर चल दिया। जब यह पास पहुँचा तब सुलतान महमूद ने संदेश भेजा कि वह एक बात थी जो मुँह से निकल गई थी पर मैं ऐसे कार्य में साथ नहीं दे सकता इसलिए या तो वह लौट जाय या जैसलमेर के मार्ग से उस प्रांत में जाय।

मुहिब्बअली खाँ लौटने का मुख नहीं रखता था इसलिए कुछ

साथियों के साथ, जो दो सौ से अधिक नहीं थे, भक्कर विजय करने का विचार किया। सुलतान महमूद ने दस सहस्र सेना सजाकर दुर्ग मान्हीला की सीमा के आगे भेज दिया। खुदा की कृपा से इस छोटे झुंड ने उसे हरा दिया। पराजित उक्त दुर्ग में जा बैठे। घेरे के अनंतर वह दुर्ग टूटा और इस सेना का कुछ सामान ठीक हो गया। तब यह भक्कर गया। संयोग से शत्रुओं में फूट पड़ गई। सुलतान महमूद का खास खेल मुबारक खाँ, जो उसका प्रधान कार्यकर्ता था, डेढ़ सहस्र सेना के साथ मुहिब्बअली खाँ के पास चला आया। प्रकट में इसका कारण यह था कि उस प्रांत के उपद्रवियों ने इसके पुत्र बेग ओगली का सुल्तान के एक पार्श्ववर्ती से मनोमालिन्य करा दिया। उस मूर्ख ने बिना जाँच किए ही इसके वंश का दमन करने का निश्चय किया। इससे उसकी मित्रता नहीं थी इसलिए सम्मान की रक्षा की आशंका से यह अलग हो गया। मुहिब्बअली खाँ ने उसके सामान आदि के लोभ में उसे अपने यहाँ रख लिया और दूसरी शक्ति बढ़ाकर भक्कर का घेरा करता रहा। यह तीन वर्ष तक चलता रहा। दुर्ग में अन्नकष्ट हो गया और महामारी फैली। विचित्र संयोग था कि उसी ओर सूजन की बीमारी भी आ पहुँची। जो कोई सिरिस के वृक्ष की छाल का काढ़ा पीता अच्छा हो जाता। वह सोने की तरह बिकता था। अंत में सुलतान महमूद ने अकबर से प्रार्थना की कि दुर्ग शाहजादा सलीम को भेंट कर दूँगा पर मेरे तथा मुहिब्बअली खाँ के बीच वैमनस्य हो गया है इसलिए उससे हानि पहुँचने के भय से निश्चिंत नहीं हूँ। किसी दूसरे को नियत करें कि उसे सौंप कर दरबार में उपस्थित

होऊँ। अकबर ने सुलतान की प्रार्थना पर उस प्रांत के शासन पर मीर गेसू बकावलबेगी को नियत किया और वह अभी वहाँ पहुँचा भी न था कि सुलतान बीमार होकर मर गया। कहते हैं कि मुहिब्बअली खाँ ने सुलतान महमूद की बीमारी का समाचार पाते ही पत्र लिखा कि योग्य हकीम साथ में है और यदि कहें तो दवा करने को भेज दूँ। सुलतान ने उसी पत्र पर यह लिखा।
शैर—

शत्रु के हकीमों से पीड़ा का छिपा रहना ही अच्छा है।
गैब के कोषागार से कहीं दवा न हो जाय।

जब मीर गेसू उस सीमा पर पहुँचा तब मुजाहिद खाँ दुर्ग गंजाब के घेरे में दत्तचित्त था। इसकी माँ तथा मुहिब्बअली खाँ की पुत्री सामेआ बेगम ने मिर्जा का आना सुनकर क्रुद्ध हो युद्ध के लिए कुछ नावें भेज दीं जिससे इसे बहुत कष्ट हुआ और नजदीक था कि मीर कैद हो जावे। ख्वाजा मुकीम हरवी ने, जो अमीनी के काम से उस ओर गया था, मुहिब्बअली खाँ को इस अनुचित युद्ध से रोका। मीर गेसू सन् ९८१ हि० में दुर्ग में पहुँचा और वहाँ के आदमियों ने, जो प्रतीक्षा ही में थे, दुर्गकी कुंजी सौंप दी। मुहिब्बअली खाँ तथा मुजाहिद खाँ लालच के मारे उस प्रांत से मन न हटा सके और बिना आज्ञा वहाँ ठहरना भी कठिन था इसलिए सुलह की बातचीत करने लगे। अंत में मीर गेसू ने निश्चय किया कि मुजाहिद खाँ ठट्टा की ओर जाय और मुहिब्बअली खाँ अपने सामान के साथ लोहरी कस्बे में ठहरे। जब यह काम हो गया तब मीर ने काफी सेना नावों में बैठाकर मुहिब्बअली खाँ पर भेजी, जिसका सामना करने का

साहस न कर वह मान्हीला की ओर चला गया। सामेआ बेगम हवेली दृढ़ कर एक दिन रात्रि सामना करती रही। इसी बीच मुजाहिद खाँ धावा करता हुआ आ पहुँचा और शत्रुओं को परास्त कर तीन मास और नदी के इस पार अधिकृत रहा।

जब तर्सून खाँ भक्कर में नियत हुआ तब मुहिब्ब अली खाँ दरबार चला आया। २१ वें वर्ष में बादशाह ने मुहिब्ब अली खाँ को अनुभवी तथा योग्य समझकर अच्छा खिलअत देकर आज्ञा दी कि वह बराबर प्रजा की आवश्यकताएँ तथा दरबार में जो कुछ सभ्यतापूर्वक विचार होते हों उन्हें अपने स्थान से सुनाया करे। मुहिब्ब अली योग्य मुसाहिब तथा अनुभवी था अतः बादशाह ने २३ वें वर्ष में चुने हुए चार बड़े कामों में से एक पर इसे नियत किया। ये चार काम दरबार के मीर अर्ज का मंसब, खिलवत खाने की सेवा, दूर के प्रांतों की अध्यक्षता तथा दिल्ली नगर का शासन थे। परिश्रम करने की शक्ति उसके शरीर में कम थी इसलिए न्यायपूर्ण तथा आज्ञाकारिता के मार्ग से हटकर आराम के कामों में लगा रहता। यह सन् ९८९ हि० में दिल्ली का शसन करते हुए मर गया। यद्यपि तबकाते अकबरी के लेखक ने इसे चार हजारी मंसबदारों में लिखा है पर शेख अबुल् फज्ल ने इसे हजारी की सूची ही में रखा है।

भक्कर नाम एक दुर्ग का है जो पुराने समय का है। पुराने लेखों में इसका नाम मंसूरा लिखा मिलता है। उत्तर की छहो नदियाँ मिलकर इसके बस्ती से जाती हैं। बस्ती का दो भाग दक्षिण का और एक उत्तर का सक्खर के नाम से नदी के किनारे पर बसा है। दूसरी बस्ती लौहरी के नाम से प्रसिद्ध है। ये मिले

हुए सिंध प्रांत में हैं। ठट्टा के स्वामी मिर्जा शाह हुसेन अर्गून ने नए सिरे से इसे अत्यंत दृढ़ बनवा कर अपने धायभाई सुलतान महमूद को वहाँ का अध्यक्ष नियत किया। सुलतान महमूद की भक्कर में मृत्यु पर, जो अत्याचारी तथा दीवाना था, मिर्जा ईसा तर्खान ठट्टा में अपने नाम खुतबा तथा सिक्का प्रचलित कर कभी संधि से और कभी शत्रुता से समय व्यतीत करता था। जब ठट्टा के पहिले भक्कर अकबर के अधिकार में चला आया तब वह मुलतान प्रांत में मिला दिया गया।

मुहिब्बअली खाँ रोहतासी

यह अकबर के राज्यकाल का चार हजारी मंसबदार था। यह उदारता तथा साहस में प्रसिद्ध था और सैन्य-संचालन तथा सेनापतित्व में विख्यात था। यह बहुत दिनों तक रोहतास दुर्ग का अध्यक्ष रहने से रोहतासी प्रसिद्ध हो गया। यह दुर्ग बिहार प्रांत में हिंदुस्तान के उच्चतम दुर्गों में से है, कारीगरी की दृष्टि से प्रशंसनीय, टूटने की शंका से सुरक्षित, पर्वत की ऊँचाई आकाश तक दुर्गम, घेरा चौदह कोस और लंबाई चौड़ाई पाँच कोस से कम नहीं है। समतल भूमि से दुर्ग की सतह तक एक कोस ऊँचा है, जिसपर युद्ध होता है। उसपर बहुत से तालाब हैं। विचित्र यह है कि उस ऊँचाई पर चार पाँच गज खोदने पर मीठा पानी निकल आता है। इस दुर्ग के बनने के आरंभ ही से कोई भी बादशाह उसपर अधिकृत न हो सका था। राजा चिंतामणि ब्राह्मण के समय में सन् ९४५ हि० में जब हुमायूँ ने बंगाल पर विजय प्राप्त किया तब शेरशाह सूर बंगाल के सभी अफगानों तथा कोष को लेकर झारखंड के मार्ग से रोहतास आया और राजा से पुराने उपकारों का स्मरण दिलाकर मित्रता कर ली। साथ ही प्रार्थना किया कि आज हम पर आपत्ति पड़ गई है इसलिए चाहता हूँ कि मनुष्यता दिखलाओ और मेरे परिवार तथा साथियों को दुर्ग में स्थान दो तथा मुझे अपना कृतज्ञ बनाओ। इस प्रकार चापलूसी तथा चालाकी से उस सीधे

राजा से अपनी बात स्वीकार करा लिया। दूसरों के राज्य के भूखे (शेरशाह) ने छ सौ डोली तैयार कराई और प्रत्येक में दो सशस्त्र जवानों को बैठा दिया। डोलियों के चारों ओर दासियाँ घूमती रहीं। इस बहाने सेना भीतर पहुँचा कर उसने दुर्ग को अधिकार में ले लिया। अपने परिवार तथा सेना को दुर्ग में छोड़कर उसने युद्ध की तैयारी की तथा बंगाल का मार्ग बंद कर दिया। इसके बाद फिर यही दुर्ग फत्ह खाँ पट्टनी के हाथ पड़ा, जो उसके तथा उसके पुत्र सलीमशाह के बड़े सर्दारों में से था। इसने दुर्ग की दुर्भेद्यता के कारण सुलेमान खाँ किर्रानी से, जो बंगाल का शासक बन चुका था, सामना तथा युद्ध किया। कुछ दिन बाद जुनेद किर्रानी ने इसपर अधिकार कर अपने एक विश्वासी सर्दार सैयद मुहम्मद को सौंप दिया। जब उसका काम पूरा हुआ तब उस सैयद ने कैद की डर से वहाँ का प्रबंध किया परंतु उचित सहायता के अभाव में अपने ऊपर आशंका करने लगा कि दरबार के किसी विश्वासी सर्दार के द्वारा यह दुर्ग भेंटकर उस साम्राज्य का सर्दार बन जावे। इसी समय बिहार प्रांत की सेना के साथ मुजफ्फर खाँ ने चढ़ाई की। इसने मेल की इच्छा से शहबाज खाँ कंबू से प्रार्थना की जिसने उस समय राजा गजपति को बहुत दंड देकर भगा दिया था और उसके पुत्र श्रीराम को दुर्ग शेरगढ़ में घेर लिया था। उसने फुर्ती से आकर सन् ९८४ हि० २१ वें वर्ष में दुर्ग पर अधिकार कर लिया। उसी वर्ष वह आज्ञानुसार वहाँ की अध्यक्षता मुहिब्बअली खाँ को सौंपकर दरबार चला गया। तब से यह बराबर वर्षों तक वहाँ का योग्यता से तथा न्यायपूर्वक प्रबंध करता रहा और सदा

योग्य सेना के साथ बंगाल के सहायकों में रहा। वहाँ के उपद्रव को जड़ से खोद डालने में यह बराबर प्रयत्नशील रहता था। इसका पुत्र हबीब अली खाँ साहसी युवक था और पिता का प्रतिनिधि होकर रोहतास तथा आस पास के प्रांत का प्रबंध करता था। जब बिहार प्रांत के अधिकतर जागीरदार बंगाल में सेवा के लिए चले गए तब ३१ वें वर्ष में यूसुफ मत्ता ने कुछ अफगान एकत्र कर लूटमार आरंभ कर दिया। हबीबअली खाँ ने यौवन के उत्साह में ठीक प्रबंध न होते युद्ध की तैयारी की और बहुत वीरता दिखला कर मारा गया। मुहिब्बअली खाँ यह अशुभ समाचार सुनकर पागल हो गया। इसने बहुत घबड़ाहट दिखलाई पर बंगाल के सर्दारों ने नहीं छोड़ा। जब शाह कुली खाँ महरम दरबार को जा रहा था उसी समय उस उपद्रवी को दंड देने के लिए नियत होकर उसने थोड़े समय में उस अशांति को मिटा दिया। जब ३१ वें वर्ष में हर प्रांत के शासन पर दो अच्छे सर्दार नियत किए गए कि यदि एक दरबार आवे या बीमार हो जावे तो दूसरा वहाँ का कार्य देखे तब बंगाल के अध्यक्ष वजीर खाँ तथा मुहिब्बअली खाँ नियत हुए। ३३वें वर्ष में बिहार प्रांत पर राजा भगवंतदास नियत हुआ तब इसकी जागीर कछवाहा को वेतन में मिल गई। मुलतान इसे जागीर में देने के विचार से इसे आज्ञापत्र लिखा गया। ३४ वें वर्ष के आरंभ में दरबार पहुँचने पर इसकी इच्छा पूरी हुई और इसपर कृपाएँ हुईं। जब इसी वर्ष सन् ६६७ हि० में बादशाह पहिली बार कश्मीर गए तब यह भी साथ गया। उस नगर में इसके मिजाज में कुछ फर्क आ गया और लौटते समय कोह सुलेमान के पास

इसकी मृत्यु हो गई। एक दिन पहिले अकबर ने इसके पड़ाव पर जाकर इसका हाल भी पूछा था। कहते हैं कि उसी हालत में जब प्राण निकल रहा था और बोलने में कष्ट हो रहा था तब किसी ने कहा कि 'लाइल्ला अल्ललाहो' कहो। इसने उत्तर दिया कि अब समय लाइल्ला कहने का नहीं है, समय वह है कि कुल हृदय अल्लाह में लगा दे।

मूसवी खाँ मिर्जा मुइज

यह सैयदुस्सादात मीर मुहम्मद जमाँ मशहदी का दौहित्र था, जो उस स्थान के विद्वानों का अग्रणी था। यह यौवनकाल में अपने पिता मिर्जा फखरा से, जो कुम के मूसवी सैयदों में से था, क्रुद्ध होकर राजधानी इस्फहान चला आया, जो विद्वानों तथा गुणियों का केंद्र है। अल्लामी आका हुसेन ख्वानसारी की सेवा में रहकर यह विद्याध्ययन करते हुए अपनी बुद्धिमानी तथा प्रतिभा से शीघ्र विद्वान हो गया। सन् १०८२ हि० में यह हिंदुस्तान चला आया।

इसका भाग्य इसके अध्यवसाय के समान ऊँचा था इसलिए औरंगजेब की कृपा हो जाने से यह योग्य मंसब पाकर सम्मानित हो गया तथा शाहनवाज खाँ सफवी की पुत्री से, जो शाहजादा मुहम्मद आजमशाह की मौसी थी, निकाह हो गया। कहते हैं कि हसन अब्दाल में ठहरने के समय एक दिन मिर्जा को शेख अब्दुल् अजीज से विद्या तथा वैद्यक संबंधी वाद विवाद करने का सौभाग्य मिला और खूब देर तक होता रहा। शेख ने कहा कि तुम्हारे पास इन पर किसका प्रमाण है। इसने कहा कि शेख बहाउद्दीद मुहम्मद का है। उसने कहा कि मैंने शेख पर बाईस स्थानों पर आक्षेप किया है। मीर ने उत्तर दिया कि वर्णमाला उसका सेव्य होगा। यहाँ तक विवाद बढ़ा कि शेख आपे से बाहर होकर बोला कि तुम शीआ लोग लोथ को नहलाते समय गज

करते हो, इसका क्या कारण है? मीर ने मुस्किरा कर कहा कि लाहौर में इस बात को एक कंचनी के भँडुए ने पूछा था या आज तुमने पूछा है। संक्षेपतः आरंभ में यह पटना-बिहार प्रांत का दीवान नियत हुआ पर वहाँ के प्रांताध्यक्ष बुजुर्ग उम्मेद खाँ से मेल ठीक न बैठा और आपस में कहा सुनी हो गई। उक्त खाँ अपने उच्च वंश तथा अमीरुल्उमरा शायस्ता खाँ के संबंध से तना था और दूसरे में रचा कम से कम देखता था। मीर बादशाह से संबंध रखते और अपनी विद्वत्ता के कारण अपने को कुछ समझकर तना रहता। कोई दबना नहीं चाहते थे और एक दूसरे की बुराई बादशाह को लिखता। मिर्जा मुइज दरबार बुला लिया गया। ३२वें वर्ष में इसे मूसवी खाँ की पदवी मिली और मोतमिद खाँ के स्थान पर दीवान तन नियत हुआ। उक्त खाँ मितव्ययिता की दृष्टि से नए भर्ती हुए मंसबदारों से मुचलका लेता कि याददाश्त बनने के बाद जागीर पाने तक के समय का वेतन न माँगें और जागीर बदली जाने पर दूसरी के मिलने तक के बीच का हिसाब लिखा रहे। जब इसकी यह बदनामी प्रसिद्ध हुई तो उसे दूर करने के लिए यह प्रयत्न किया कि जागीरी वेतन मिलने तक यह नए सेवक को बिना उसके प्रार्थनापत्र दिए कहीं नियत नहीं करता था। कहते हैं कि पुराने समय में बहुधा जागीरदारी के हिसाब में भी मंसबदारों के जिम्मे सरकारी रुपया निकलता था, जिसके लिए सजावल नियत होते थे और उन्हें कुछ देकर बहाने करते थे। दक्षिण की चढ़ाई में कोष की कमी, राज्यकर के कम वसूल होने तथा वेतन देने की अधिकता से, विशेषकर नए दक्खिनी नौकरों को, यहाँ तक काम पहुँचा कि मूसवी खाँ के मुचलकों के

होते भी बहुत सा वेतन मंसबदारों का सरकार में निकला। इस कारण मंसबदारों ने हिसाब माँगा पर किसी ने कुछ नहीं दिया। इसी समय यह जाब्ता नष्ट होगया। ३३वें वर्ष में मूसवी खाँ हाजी शफीअ खाँ के स्थान पर दक्खिन का दीवान हुआ। ३४ वें वर्ष सन् ११०१ हि० में यह मर गया। 'कुजा शुद मूसवी खाँ' (मूसवी खाँ कहाँ हुआ) से मृत्यु की तारीख और 'अफजल औलाद जमानः' (समय का बड़ा संतान) से पैदा होने की तारीख निकलती है। अच्छी कल्पना तथा सुकुमार भाव में कुशल और अच्छे लेखन कला तथा मर्मज्ञता में निपुण था। आरंभ में अभ्यास करते समय 'फितरत' उपनाम रखता पर बाद में 'मूसवो' रखा। उसके एक शैर का आशय निम्नलिखित है—

हमारी घबड़ाहट दोषों के मार्ग में रुकावट हो गई।
नंगेपन ने दामन के कलुषित होने पर निगाह रखी॥

मूसवी खाँ सद्र

कहते हैं कि यह मशहद के सैयदों में से था तथा सैयद यूसुफ खाँ रिजवी से पास का संबंध रखता था। जहाँगीर के समय में बादशाही परिचय प्राप्त कर १५ वें वर्ष में आबदार खानः का दारोगा नियत हो गया। क्रमशः सद्रकुल के पद तथा दो हजारी ५०० सवार के मंसब तक पहुँच गया। जहाँगीर की मृत्यु पर यमीनुद्दौला का साथ देने के कारण शाहजहाँ के प्रथम वर्ष में वह सद्रकुल के पद पर बहाल होगया और इसका मंसब तीन हजारी ७५० सवार का होगया। ५ वें वर्ष चार हजारी ७५० सवार का मंसब होगया। १६ वें वर्ष जब बादशाह से प्रार्थना की गई कि जैसा चाहिए यह कोई सामान उपयुक्त नहीं रखता है तब यह पद से गिरा दिया गया। १७-१८ वें वर्ष सन् १०५४ हि० में यह मर गया। इसके दो पुत्रों पर योग्य कृपा हुई। कहते हैं कि वे कुछ भी योग्यता न रखते थे। गुणियों का साथ करने तथा बातचीत से योग्यता प्राप्त कर ली थी।

———

मेहतर खाँ

हुमायूँ का एक दास अनीस नाम का था, जो कड़ा मानिक पुर से पकड़कर आया था और महल में दरबानी की सेवा पर नियत था। एराक जाते समय यह साथ था और खजीनःदारी की सेवा इसे मिली थी। अकबर के १४वें वर्ष में रणथम्भौर दुर्ग अधिकृत होने पर इसे सौंपा गया। जब २१ वें वर्ष में कुँवर मानसिंह मेवाड़ नरेश राणा प्रताप को दमन करने गया तब मेहतर खाँ भी साथ में नियत हुआ। युद्ध के दिन यह चंदावल नियुक्त किया गया। इसके बाद पूर्वी प्रांत के सर्दारों की सहायता को नियत होकर इसने वहाँ अच्छी सेवा की। कुछ दिन बाद यह राजधानी आगरा में नियत हुआ। तीन हजारी ३००० सवार का मंसब पाकर जहाँगीर के ३रे वर्ष सन् १०१७ हि० में यह मर गया। इसकी अवस्था चौरासी वर्ष की थी। इसकी सिधाई बहुत प्रसिद्ध है। कहते हैं कि आगरे के शासन के समय सौदागरों का एक काफला नगर के बाहर उतरा हुआ था, जिनके ऊँटों को चोर ले गए। जब यह बात खाँ ने सुनी तब उस स्थान पर आकर दाएँ बाएँ देखा और कहा कि मिल गया, एक दिन बाद कुछ लोगों ने पूछा कि क्या पाया? उत्तर दिया कि यह काम चोरों का है। पड़ोसियों को इकट्ठा कर बक झक करते हुए कहा कि आज रात्रि की मुहलत देता हूँ, इसी कुंजखाने में रहो और यदि कल ऊँट न मिले तो दंड दिया जायगा। सादगी के

साथ प्रकृति भी अच्छी थी। सैनिकों को प्रतिमास वेतन दे देता था। साहस तथा वीरता से खाली नहीं था। वास्तव में यह कायथ जाति का था इससे उस जाति की पक्षपात करता था। इसके पुत्र मूनिस खाँ को जहाँगीर के राज्य काल में पाँच सदी १३० सवार का मंसब मिला था। मेहतर खाँ का पौत्र अबूतालिब उसी राज्यकाल में बंगाल का कोषाध्यक्ष था। कहते हैं कि वहाँ के सूबेदार कासिम खाँ से एक दिन दरबार में अबूतालिब ने बहाने से कहा कि नवाब को मेरे पद का हाल ज्ञात है। आरंभ में कासिम खाँ भी उस प्रांत का खजांची था इससे यह सुनकर परेशान हो दरबार से उठ गया। आदमियों ने अबूतालिब से कहा कि यह बात तूने क्यों कही, नहीं जानता कि पहिले नवाब भी इसी पद पर रहे। दूसरे दिन आकर दरबार में प्रार्थना की कि बंदे को कुछ भी नहीं मालूम था कि नवाब भी पहिले इसी पद पर रहे। कासिम खाँ ने खिजलाकर कहा कि यह तुम्हारे दादा का असर है।

मेहदी कासिम खाँ

यह पहिले बाबर के तृतीय पुत्र मिर्जा अस्करी की सेवा में नियत था, और विश्वसनीय तथा सम्मानित भी था। एक ही स्त्री का दूध पीने के कारण मिर्जा इस पर कृपा रखता था। इसका भाई गजनफर कोका था। हुमायूँ गुजरात विजय के अनंतर मिर्जा अस्करी को अहमदाबाद देकर मांडू लौट गया तब एक दिन मिर्जा ने शराब की मजलिस में मस्ती से कहा कि हम बादशाह हैं और ईश्वर की यही कृपा है। गजनफर ने धीरे से कहा कि मस्ती और अपने आप नष्ट होना। साथ बैठने वाले मुस्किराने लगे। मिर्जा ने क्रोध से गजनफर को कैद कर दिया। जब इसे छुट्टी मिली तब यह गुजरात के शासक सुलतान बहादुर के पास पहुँचा, जो दीप बंदर को चला गया था और उससे कहा कि हम मुगलों के विचार से अभिज्ञ हैं, वे भागने को तैयार हैं। इस बहाने से अहमदाबाद जाना हुआ और सुलतान ने सेना एकत्र कर पुनः उस प्रांत पर अधिकार कर लिया।

साथही इसके अनंतर मेहदी कासिम खाँ ने हुमायूँ की सेवा में नियत होकर बहुत सा अच्छा सेवा कार्य किया। अकबर के राज्यकाल में अच्छे पद का सर्दार हो गया और चार हजारी

मंसब पाकर सम्मानित भी हुआ। १० वें वर्ष में आसफ खाँ अब्बुल्‌मजीद, जो खानजमाँ का पीछा करने पर नियत हुआ था, सशंकित होकर विद्रोही हो बैठा और गढ़ा कंटक से, जहाँ का शासक नियत हुआ था, भाग गया। अकबर ने ग्यारहवें वर्ष के आरंभ सन् ९७३ हि० में जौनपुर से आगरा लौटने पर मेहदी कासिम खाँ को उस प्रांत का शासक नियत किया कि वहाँ का प्रबंध ठीक कर आसफ खाँ को हाथ में लावे, जिसने ऐसा बड़ा दोष किया है। उक्त खाँ ने बड़ी दृढ़ता तथा धैर्य के साथ इस कार्य में हाथ लगाया। आसफ खाँ ने बादशाही सेना के पहुँचने के पहिले ही सहस्रों शोक तथा पश्चात्ताप के साथ उस प्रांत को छोड़कर जंगलों में भाग गया। मेहदी कासिम खाँ ने वहाँ पहुँच कर आसफ खाँ का पीछा किया। वह अदूरदर्शिता से खानजमाँ के पास पहुँचा तब मेहदी कासिम खाँ वहाँ से लौटकर अपने प्रांत का शासन करने लगा। यद्यपि बिना किसी झंझट या कष्ट के उस प्रांत का शासन इसे मिल गया था पर उसकी विशालता तथा खराबी के कारण यह कुछ कार्य नहीं कर सका। दुःख और अधैर्य के कारण इसी वर्ष के बीच में यह अप्रकृतिस्थ हो उठा और इसका मस्तिष्क बिगड़ गया। बादशाही आज्ञा बिना लिए ही यह दक्षिण प्रांत छोड़कर हज्ज को चला गया और वहाँ से एराक होता कंधार आया। १३ वें वर्ष के अंत में रंतभँवर दुर्ग के घेरे में यह लज्जा तथा पश्चात्ताप करता हुआ सेवा में पहुँचा और एराक का सामान तथा क्रीत वस्तुएँ भेंट में दीं। इसकी पुरानी सेवाएँ विश्वास का कारण थीं इसलिए बादशाह अकबर ने शील से इस पर बहुत कृपा की और

वही ऊँचा पद तथा लखनऊ और उसकी सीमाओं की जागीर-दारी देकर सम्मानित किया। इसके बाद का हाल मालूम नहीं हुआ।

मेह्र अली खाँ सिल्दोज

यह एक हजारी सर्दार था। अकबरी राज्य के ५ वें वर्ष के अंत में अदहम खाँ के साथ, मालवा विजय करने पर नियत होकर बाज बहादुर से युद्ध करने में इसने बहुत प्रयत्न किया। १७ वें वर्ष में मीर मुहम्मद खाँ खानकलाँ के साथ गुजरात को आगे भेजी गई सेना में यह भी गया था। मुहम्मद हुसेन मिर्जा के युद्ध में यह हरावल के सर्दारों में से था। इसके अनंतर कुतुबुद्दीन मुहम्मद खाँ के साथ उक्त मिर्जा का पीछा करने गया। २२ वें वर्ष में जब अकबर शिकार खेलने के लिए हिसार को चला तब इसीने पड़ाव की कुल तैयारी की थी। २३ वें वर्ष में सकीना बानू बेगम के साथ, जो मिर्जा हकीम की प्रार्थना पर काबुल जा रही थी, यह भेजा गया था। २४ वें वर्ष में राजा टोडरमल की अधीनता में अरब बहादुर को दंड देने पर नियत हुआ, जिसने पूर्व के प्रांत में उपद्रव मचा रखा था। अच्छी सेवा के कारण इसका सम्मान भी हुआ। आगे का हाल ज्ञात नहीं हुआ।

मोतकिद ख़ाँ मिर्ज़ा मकी

यह इस्तखार खाँ का पुत्र था, जो बंगाल में जहाँगीर के समय ६ ठे वर्ष में उसमान खाँ लोहानी के युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाकर मारा गया था। मिर्जा ने भी इस युद्ध में बहुत प्रयत्न किया था। ये दोनों पिता-पुत्र तीर चलाने में प्रसिद्ध थे। पिता की मृत्यु पर सौभाग्य से इसने युवराज शाहजहाँ का साथ दिया और अपनी सेवा तथा बराबर साथ रहने से कृपापात्र होकर उसका विश्वासपात्र हो गया। कहते हैं कि शाहजहाँ का इसका एक स्त्री के दूध पीने का संबंध था।

जब शाहजादा पहिली बार दक्षिण का प्रबंध ठीक करने गया और अफजल खाँ तथा विक्रमाजीत, जो शाहजहाँ के अच्छे सर्दारों में से थे, आदिलशाह बीजापुरी को समझा कर मार्ग पर लाने के लिए भेजे गए तब मोतकिद खाँ बयूतात के दीवान जादोदास के साथ हैदराबाद भेजा गया कि वहाँ के सुलतान कुतुबशाह को समझाकर शाहजादे की अधीनता स्वीकार करने को कहें। यह शीघ्रता से अपने गंतव्य स्थान पर पहुँच कर कुतुबशाह से बड़ी नम्रता तथा विश्वास से मिलकर और पंद्रह लाख रुपए भेंट रत्न, प्रसिद्ध भारी हाथी और अच्छे सामान लेकर लौट आया। इसकी इस अच्छी सेवा के कारण दरबार से प्रशंसा हुई और विश्वास बढ़ा। शाहजहाँ की असफलता के समय, जो संसार की अकृपा से किसी प्रकार लाभदायक नहीं होता, यह

अपने हार्दिक सत्यता तथा स्वामिभक्ति से, जो अच्छे गुणों के सिरमौर हैं, अपने वास्तविक स्वामी का साथ छोड़ना उचित न समझकर शाहजहाँ का कभी साथ नहीं छोड़ा। यहाँतक कि आश्चर्यजनक जमाने ने शीघ्र ही दूसरा बाग सजा दिया और शाहजहाँ के ऐश्वर्य के बहार में फूल खिल उठा। सन् १०३७ हि० में जहाँगीर की मृत्यु हो गई और शाहजहाँ दक्षिण जुनेर से आकर १७ रबीउल् आखिर को काँकडिया तालाब पर उतरा, जो अहमदाबाद गुजरात के बाहर है। उस प्रांत का प्रबंध उस समय शेर खाँ तौनूर को सौंपा गया। राजधानी में पहुँचने और राजगद्दी पर बैठने के पहिले ही मोतकिद खाँ को चार हजारी २००० सवार का मंसब देकर औरों के साथ अहमदाबाद में छोड़ा। २ रे वर्ष यह अजमेर का फौजदार नियत हुआ। इसके अनंतर यह मालवा का सूबेदार बनाया गया। ५ वें वर्ष उस प्रांत का शासन नसरत खाँ खानदौराँ को मिला और यह राजधानी के चारों ओर की भूमि का फौजदार नियत हुआ। उसी वर्ष उड़ीसा के प्रांताध्यक्ष बाकर खाँ नज्मसानी के विरुद्ध दोष लगाया गया कि वह प्रजा के साथ अच्छा सलूक नहीं करता। मोतकिद खाँ मंसब में सवारों के बढ़ाए जाने पर उड़ीसा का सूबेदार बनाकर भेजा गया।

विचित्र घटना यह है कि बाकर खाँ ने कुछ काम कर बहुत धन वसूल कर लिया था, जिसमें प्रत्येक बदनामी के लिए काफी था। वह चाहता था कि सब को छिपा डालें। उस ओर के जमींदारों को देशमुखों, देशपांडों तथा मुकद्दमों द्वारा इकट्ठा कर जिनसे उपद्रव होने के आशंका हुई उन्हें कैद कर दिया। इनमें

से एकबार ही सात सौ आदमियों को मारने की आज्ञा दे दी। दैवयोग से इन दंडितों में से एक भाग कर दरबार पहुँचा और बाकर खाँ के नाम चालीस लाख रुपया निकाल कर सूची दिया। इसी समय इस मुकद्दमे की जाँच भी मोतकिद खाँ को दी गई। संयोग से बाकर खाँ का दामाद मिर्ज़ा अहमद, जो उस प्रांत का बख्शी होकर उसके साथ था, एक दिन इलाहाबाद से नाव में बैठ कर जा रहा था और इसने बहाने से उक्त सूची निकाल कर उस जमींदार से पूछना आरंभ किया। सूची देखने के बहाने उसके हाथ से लेते समय मिर्ज़ा अहमद ने फुर्ती से उस जमींदार पर तलवार का ऐसा हाथ मारा कि उसका सिर कट कर नदी में जा गिरा और सूची को फाड़ कर जल में डाल दिया। इसके बाद मोतकिद खाँ से कहा कि तुम्हारी राजभक्ति के कारण ऐसा कार्य हुआ क्योंकि तुम्हारे नाम भी इसी प्रकार की सूची यह तैयार करता। मोतकिद खाँ ने इसे पसंद किया पर कुछ दिन बादशाह की ओर से दंडित रहा।

मोतकिद खाँ एक मुद्दत तक उस प्रांत में न्याय करने, अधीनों पर कृपा तथा उपद्रवियों को दमन करने में व्यतीत कर दरबार आया और फिर १६ वें वर्ष में उसी प्रांत का शासक नियत हुआ। २२ वें वर्ष में यह दरबार बुला लिया गया। इसी समय जब जौनपुर का हाकिम आजम खाँ मर गया तब उस सरकार का प्रबंध मोतकिद खाँ को मिला। उक्त खाँ मार्ग ही से लौट कर अमरमर की ओर रवानः हुआ। वृद्धता के कारण काम न कर सकने से २५ वें वर्ष १२ जीकदा सन् १०६१ हि० को शाहज़हाँ को सूचना मिली कि वह जौनपुर के इर्द गिर्द अधिकार नहीं रख

सकता। इसपर वह ताल्लुका मुराद काम सफवी के नाम लिख गया। दैवयोग से वह भी उसी तारीख को जौनपुर में मर गया।

मोतमिद खाँ मुहम्मद सालह खवाफी

यह आरंभ में बादशाही तोपखाने का अध्यक्ष था और योग्य मंसब पा चुका था। शाहजहाँ ने कामों में इसकी योग्यता तथा सुप्रबंध देख कर २४ वें वर्ष इसे सेना का कोतवाल नियत किया तथा मंसब बढ़ा दिया। २५ वें वर्ष में यह लाहौर का कोतवाल नियत हुआ। इसके बाद सुलतान मुहम्मद औरंगजेब के साथ कंधार की चढ़ाई पर गया। २६ वें वर्ष में सुलतान दाराशिकोह के साथ फिर उसी चढ़ाई में इसने अच्छा प्रयत्न किया था इसलिए २८ वें वर्ष में राय मुकुंद के स्थान पर, जो अवस्था अधिक होने से यथोचित कार्य नहीं कर सकता था, इसे बयूतात का दीवान नियत कर दिया तथा इसे मंसब में तरक्की, खिलअत और सोने का कलमदान भी दिया। इसी वर्ष के अंत में इसका मंसब बढ़कर एक हजारी २०० सवार का हो गया और मोतमिद खाँ की पदवी पाकर बयूतात की दीवानी से हटाए जाने पर सुलतान दाराशिकोह का दीवान शेख अब्दुल्करीम के स्थान पर नियत हुआ, जो वृद्ध होने के कारण काम नहीं कर सकता था। २९ वें वर्ष में मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी २०० सवार का हो गया। ३० वें वर्ष मंसब बढ़कर दो हजारी २०० सवार का हो गया। इसके अनंतर जब जमाना बदल गया और सुलतान मुहम्मद औरंगजेब बहादुर दक्षिण से अपने पिता से मिलने के लिए दरबार चला तथा सामूगढ़ के पास उससे तथा

सुलतान दाराशिकोह से युद्ध हुआ तब उसी मारकाट में यह, जो दाराशिकोह की ओर से वजीर खाँ की पदवी पा चुका था, सन् १०६८ हि० में मारा गया।

मोतमिनुद्दौला इसहाक खाँ

इसका पिता शुस्तर से हिंदुस्तान आकर दिल्ली में रहने लगा और बादशाह मुहम्मद शाह के समय में बादशाही सेवा में भर्ती हो कर गुलाम अली खाँ की पदवी से सम्मानित हुआ। यह बकावल के पद पर नियत हुआ। उक्त सज्जन हिंदुस्तान में पैदा हुआ था और अवस्था प्राप्त होने पर योग्य भी हुआ। मुहम्मद शाह के समय यह खानसामाँ नियत हुआ और विश्वासपात्र हो गया। २२ वें वर्ष सन् ११५२ हि० में यह मर गया। शैर कहता था। इसके एक शैर का अर्थ इस प्रकार है—

इस कारण कि हमारे तंग दिल में उस गुल का ख्याल था।
आज की रात स्वप्न हमारा नफीर और बुलबुल दूत था॥

इसने तीन पुत्र छोड़े। पहिला मिर्जा मुहम्मद अपने पिता के समान ही मुहम्मद शाह का विश्वास-पात्र हो कर अपने बराबर वालों की ईर्ष्या का पात्र हो गया था। इसे पहिले इसहाक खाँ और अंत में नज्मुद्दौला की पदवी मिली। यह चौथा बख्शी नियत हुआ। मुहम्मद शाह ने इसकी बहिन का निकाह सफदर जंग के पुत्र शुजाउद्दौला से करा दिया। मुहम्मद शाह की मृत्यु के बाद अहमद शाह के समय भी यह बख्शी रहा। साथ में यह दिल्ली का करोड़ी भी हुआ, जो सीर से प्राप्त होती थी। जब सफदर जंग का बंगश अफगानों से, जो दिल्ली प्रांत के उत्तर-पूर्व में थे, झगड़ा हुआ और साली तथा सहावर कस्बों के बीच में

युद्ध हुआ तथा सफदर जंग हार गया तब नज्मुद्दौला उसके साथ रहकर सन् ११६३ हि० में वीरता दिखलाते हुए मारा गया। मोतमिनुद्दौला के अन्य दो पुत्र मिर्जा अली इफ्तखारुद्दौला और मिर्जा मुहम्मद अली सालारजंग आलमगीर द्वितीय के समय दिल्ली से सफदर जंग की सेना की ओर चल दिए। दैवात् इसी समय सफदर जंग की मृत्यु हो गई और ये दोनों भाई सन् ११६८ हि में अवध नगर में शुजाउद्दौला के पास पहुँचे। इसके बाद सालारजंग को शाह आलम की ओर से बख्शी तन का पद मिला।

———

यक: ताज खाँ अब्दुल्ला बेग

यह बलख के हाजी मंसूर का पुत्र था, जो बुद्धिमान तथा अनुभवी था और बल्ख-बदख्शाँ के शासक नज्र मुहम्मद खाँ का एक सर्दार था। उक्त खाँ ने १२ वें वर्ष में इसको कुछ भेंटों के साथ शाहजहाँ के पास राजदूत बनाकर भेजा। दरबार से इसे पचास सहस्र रुपए नगद तथा अन्य वस्तुएँ पुरस्कार में मिली और इस शाही कृपा के साथ इसे जाने की छुट्टी मिली। इसके पुत्र गण भी साथ में थे और प्रत्येक योग्य उपहार पाकर अपने देश लौटे। जब शाहजादा मुराद बख्श के प्रयत्नों से बदख्शाँ और बलख बादशाही अधिकार में चला आया और नज्र मुहम्मद खाँ जंगलों में भटकने लगा उस समय हाजी मंसूर तर्मिज दुर्ग का अध्यक्ष था। अपने पुत्रों की भलाई तथा सौभाग्य के लिए इसने मुहम्मद मंसूर तथा अब्दुल्ला बेग को शाहजादे की सेवा में भेजकर अधीनता प्रकट की। उस समय बादशाह की ओर से एक पत्र खिलअत के साथ एक विश्वासी आदमी द्वारा भेजा गया और जैन खाँ कोका का पौत्र सआदत खाँ तर्मिज की रक्षा पर नियत हुआ। इसने दुर्ग को उक्त खाँ को सौंपा दिया और दरबार पहुँचा। इसे एकाएक दो हजारी १००० सवार का मंसब तथा बल्ख के सदर का पद मिला। इसके पुत्रों को भी योग्य मंसब मिले। इसी समय इसका बड़ा पुत्र मुहम्मद मुहसिन बादशाही दरबार में पहुँच गया। २१ वें वर्ष में इसे एक हजारी ४००

सवार का मंसब मिला और यह बंगाल में खाँ की पदवी के साथ नियत हुआ। २३ वें वर्ष में बहुत मदिरा पीने से इसकी मृत्यु हो गई। अब्दुल्ला बेग २१ वें वर्ष में बल्ख से आकर सेवा में उपस्थित हुआ और इसे खिलअत, जड़ाऊ खंजर, मंसब में उन्नति तथा पाँच सहस्र रुपया पुरस्कार में मिला। २४ वें वर्ष में पाँच सदी बढ़ने से इसका मंसब डेढ़ हजारी ५०० सवार का हो गया। २७ वें वर्ष में मीर तुजुक का पद और मुखलिस खाँ की पदवी मिली तथा इसका मंसब बढ़ कर दो हजारी ८०० सवार का हो गया। शाहजहाँ के राज्य के अंत में महाराज जसवंत सिंह के साथ मालवा में नियत हुआ। दाराशिकोह की ओर से, जिसके हाथ में साम्राज्य का सारा अधिकार था, संकेत मिला कि दक्षिण तथा गुजरात के शासक गण यदि दरबार जाने की इच्छा करें तो उन्हें आगे बढ़ने से रोके। जिस समय औरंगजेब की सेना नर्मदा पार कर आगरे की ओर बढ़ी तब राजा ने सेना का व्यूह ठीककर उज्जैन से सात कोस पर रास्ता रोका। घोर युद्ध हुआ। मुखलिस खाँ तूरान के नामी सैनिकों के साथ करावली में था। जब राजपूत सेना मारी गई तब राजा भागना ठीक समझ कर तथा लज्जा की कालिमा अपने मुख पर लगा कर घायल राजपूतों के साथ चला गया। बादशाही सर्दारों में बहुतेरे धीरे धीरे बाहर निकल गए। मुखलिस खाँ अन्य झुंड के साथ शत्रुओं से अलग हो कर सौभाग्य से औरंगजेब की सेवा में चला आया।

इसके पहिले औरंगजेब के दक्षिण से रवानः होने के समय मुखलिस खाँ की पदवी काजी निजामाई कुरःरोदी को मिल चुकी थी इस लिए इसको यकः ताज खाँ की पदवी, तीन हजारी

१५०० सवार का मंसब और बीस सहस्र रुपए पुरस्कार में मिले। खजवा युद्ध के अनंतर जब शुजाअ परास्त हो कर बंगाल की ओर भागा तब यह शाहजादा सुलतान मुहम्मद के साथ पीछा करने पर नियत हुआ। जब शाहजादा अदूरदर्शिता तथा मूर्खता से शुजाअ से जा मिला तब मुअज्जम खाँ ने जो इस चढ़ाई का प्रधान तथा बादशाही सेना का अध्यक्ष था, बरसात के बीतने पर पुराने पुल के पास, जो अकबर नगर (राजमहल) से चौबीस कोस पर है, गहरे नाले के पीछे ठहरना निश्चय किया और आध कोस की दूरी पर दो पुल उस नाले पर बाँधा। पुलों के उस ओर मोर्चे लगाकर उन्हें तोपों बंदूकों आदि से दृढ़ किया। शुजाअ २रे वर्ष के रबीउल् आखिर में आकर सामने डट गया और गोले गोलियों की लड़ाई करने लगा। जब उसने देखा कि मुअज्जम खाँ के पास का पुल आग्नेयास्त्रों की अधिकता से दृढ़ है तब सुलतान मुहम्मद की हरावली में दूसरे पुल की ओर बढ़ा। यक: ताज खाँ अपने साथियों सहित वीरता तथा साहस से मोर्चा की रक्षा करने के लिए नदी के इस ओर आया। मुअज्जम खाँ ने यह सूचना पाकर जुल्फकार खाँ को रुजानियों तथा रोज-बिहानियों के साथ सहायता को भेजा। शुजाअ की ओर मकसूद बेग कदर अंदाज खाँ और सरमस्त अफगान मारे गए। इस ओर के यक: ताज खाँ अपने छोटे भाई के साथ मारा गया। अन्य बहुत से लोग भी इसमें मारे गए तथा घायल हुए।

यलंगतोश खाँ

औरंगजेब के राज्य के १४ वें वर्ष में तलवार, जमधर और बर्छी पाकर सम्मानित हुआ। १६ वें वर्ष में विवाह के दिन इसे खिलअत, हीरे का सिरपेच, सोने के साज सहित घोड़ा और चाँदी के साज सहित हाथी मिला। २० वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दो हजारी ७०० सवार का होगया। २५ वें वर्ष में अबू नस्र खाँ के स्थानपर कौरबेगी नियत हुआ। इसके अनंतर दंडित होकर २८ वें वर्ष में इसका मंसब फिर से बहाल हुआ और यह बख्तावर खाँ के स्थानपर खवासों का दारोगा नियुक्त हुआ। २६ वें वर्ष में इसका पद व मंसब फिर छिन गया। इसके बाद का हाल नहीं मिला।

याकूत खाँ हब्शी

खुदावंद खाँ की दासता के कारण यह याकूब खुदावंद खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। योग्यता तथा साहस के कारण यह निजामशाही सरकार का एक उच्चपदस्थ सर्दार हो गया और मलिक अंबर के बाद इससे बढ़कर कोई सर्दार नहीं था प्रत्युत् चढ़ाई तथा सेना के प्रबंध में अंबर के जीवनकाल ही में इसीका अधिकार रहता था। बादशाही साम्राज्य में कई बार इसने लूटमार किया और बुर्हानपुर को घेरा था। निजामशाह ने हमीद खाँ नामक हब्शी दास को अपना पेशवा बनाकर राज्य तथा कोष का कुल प्रबंध उसे सौंप दिया। अपनी स्त्री की चतुराई से, जो प्रतिदिन लोगों की स्त्रियों को अपनी वाक्पटुता से भुलाकर उसके पक्ष में लाती थी, वह इतना आकर्षित तथा आसक्त होगया था कि स्वयं नाम-मात्र के अधिकार से प्रसन्न होकर उसने कुल राज्यकार्य उस दल्लालः के हाथ में छोड़ दिया। एक बार आदिल शाह ने एक सेना निजामशाह की सीमा पर भेजी। उस स्त्री ने साहस तथा वीरता से सेना की सर्दारी की प्रार्थना कर नकाब डाल घोड़े पर सवार हुई और सामना कर बहुत से शत्रु पक्ष के सर्दारों तथा सैनिकों को मारकर तथा घायल कर सही सलामत लौट आई। आदमियों को बहुत सा धन बाँटा और क्रमशः यहाँ तक होगया कि सेना के अध्यक्षगण तथा राज्य के अच्छे सर्दार लोग पैदल उसके साथ चलकर अपनी आवश्यकताओं को उससे

कहते थे। याकूत खाँ प्रसिद्ध तथा अच्छी सेना रखनेवाला सर्दार था, इसलिए इसने क्षुब्ध होकर निजामशाह की नौकरी छोड़कर बादशाही सेवा में आना उचित समझा। २१ वें वर्ष जहाँगीरी में पाँच सौ सवारों के साथ जालनापुर के पास आकर राव रत्न हाड़ा को लिखा, जो बालाघाट का शासक था, कि मैं मलिक अंबर के पुत्र फत्हखाँ तथा अन्य निजामशाही सर्दारों से पहिले बादशाही सेवा का निश्चय कर आया हूँ। राव्रत्न ने इसको सान्त्वना देकर इसका प्रबंध किया और दक्षिण के तत्कालीन सूबेदार खानजहाँ लोदी को सूचना दी। उक्त खाँ ने इसके लिए पाँच हजारी जात या सवार का मंसब तथा इसके साथियों के लिए उचित मंसब प्रस्तावित कर, जो सब मिलाकर बीस हजारी १५००० सवार का होता था, बादशाही सेवा में भर्ती कर लिया। शाहजहाँ के राज्य के आरंभ में यह झंडा व डंका पाकर सम्मानित हुआ। यह दक्खिनी सर्दारों का मुखिया था इसलिए इस दरबार में इसका सिक्का जम गया था और यहाँ सूबेदार लोग बिना इसकी सम्मति के बड़े काम नहीं करते थे। ६ ठे वर्ष में महाबत खाँ खानखानाँ ने दौलताबाद दुर्ग को भारी सेना के साथ घर लिया, मोर्चे बाँधे गए और खान खोदने, रक्षित गली बनाने तथा दुर्ग तोड़ने के अन्य प्रबंध किए जाने लगे। वृद्ध याकूत खाँ बादशाही सेवा में होते हुए भी निजामशाह की भलाई चाहना नहीं छोड़ सका था और दुर्ग के शीघ्र टूटने की संभावना देख कर समझा कि इसके बाद उस राजवंश का बिल्कुल अंत हो जाएगा और वह सारा राज्य बादशाही अधिकार में चला आवेगा। इस विचार से इसने दुर्गवालों की गुप्त रूप से सहायता करना निश्चय

किया। इसने बहुत कुछ प्रयत्न किया कि रसद, बंदूकची तथा अन्य युद्धीय सामान दुर्ग में पहुँचावे पर मोर्चेवालों की सावधानी से यह कुछ न कर सका। यद्यपि अन्न इस विद्रोही के बाजार से होकर कई बार दुर्ग में गया पर इसे जिसकी आशंका थी वह दिन आया ही। यह द्रोही डर कर आदिलशाहियों के यहाँ भाग गया, जैसी कि दासों की प्रकृति है। बादशाह का सौभाग्य उन्नति पर था, और जो कार्य प्रकट में शक्ति की निर्बलता का कारण हो सकता था वह वास्तव में शत्रु के पराजय का सबब बन गया। यह कि इस स्वामिद्रोही ने बीजापुर के सर्दारों से बहुत डींग हाँका। दौलताबाद दुर्ग की नगर दीवाल अंबर कोट के विजय के बाद एक दिन रनदौला खाँ और साहू भोंसला खानजमाँ के सामने थे, जो कागजीवाड़ा घाट पर था, कि याक़ूत खाँ आदिलशाही सेनापति मुरारी दत्त के साथ भारी सेना लेकर आ पहुँचा। खानखानाँ ने अपने पुत्र मिर्जा लहरास्प को सेना सहित उसपर नियुक्त किया और स्वयं भी कुछ सेना के साथ रवानः हुआ। लहरास्प की सहायता करने के पहिले ही घूमते हुए शत्रु के एक टुकड़ी से सामना हो गया। वे भाग खड़े हुए। इसी बीच एक दूसरा झुंड बीच में आ पड़ा और यह ज्ञात हुआ कि याक़ूत खाँ भी इसी में है। इसके पीछे मुरारी ने सेना सजाकर हरावल को लहरास्प पर भेजा कि उसे भागती लड़ाई लड़ते हुए इसी ओर खींच लावे। प्रधान सेनापति ने सिवा युद्ध के दूसरा उपाय न देख कर सेना के कम होते भी ईश्वर की कृपा पर भरोसा कर युद्ध का साहस किया और तलवार खींच कर शत्रु पर धावा कर दिया। शत्रु युद्ध में दृढ़ न रह कर भागे। दैवात्

भागते समय बीच में पुल के आजाने से मार्ग की तंगी होने से शत्रु सेना अस्त व्यस्त हो गई और इधर के बहादुर पीछे से याकूत खाँ पर जा पड़े। अपने सर्दार की रक्षा के लिए हब्शियों ने रुक कर बहुत मारकाट की पर इधर के वीर सैनिकों ने उनमें से बहुतों को मारडाला और दूसरों ने याकूत खाँ पर आक्रमण कर भाले तथा तलवार के सत्ताईस चोट दे उसे समाप्त कर दिया। चींटी तथा मक्खियों की तरह हब्शियों ने इकट्ठे होकर चाहा कि उस कृतघ्न के शव को उठा ले जायँ पर इस ओर के वीरों ने उस झुंड को सफल न होने देकर उस शव पर अधिकार कर लिया। ऐसे सर्दार के मारे जाने पर जिसका सैन्य संचालन तथा सेनापतित्व में कोई जोड़ नहीं था उस समय शत्रु सर्दारों में बड़ा निरुत्साह फैला और दुर्गवालों में भी हतोत्साह पैदा होने का कारण होने से दुर्ग टूटने का कारण बन गया।

इसका पुत्र फख्रुलमुल्क भी साम्राज्य में तीन हजारी २००० सवार का मंसब पाकर सेवा में भर्ती हो चुका था। पिता के भागने के पहिले ५ वें वर्ष में मर चुका था। फख्रुलमुल्क के हसन खाँ आदि पुत्रगण याकूत खाँ के मारे जाने पर आदिल्-शाह के यहाँ नौकर हो गए। हसन खाँ का पुत्र सौभाग्य से शाहजहाँ की सेवा में अधीनता दिखला कर भर्ती हो गया। ६ वें वर्ष में एक हजारी ५०० सवार बढ़ने से इसका मंसब तीन हजारी २००० सवार का हो गया और दक्षिण में वेतन रूप जागीर पाकर सुचिन्त हो गया।

याकूत खाँ हब्शी, सीदी

शाहजहाँ के समय में जब निजाम शाही कोंकण मुगल सम्राट् के अधिकार में चला आया तब नए विजित महालों के बदले में बीजापुर के शासक का ताल्लुका उसको दिया गया, जिसकी ओर से फत्ह खाँ अफगान वहाँ का अध्यक्ष नियत हुआ और उसने डंडा राजपुरी दुर्ग को, जो आधा स्थल और आधा जल में स्थित है, अपना निवासस्थान बनाया। औरंगजेब के समय में शिवाजी भोसला ने बीजापुरियों को निर्बल देखकर उपद्रव कर पहले राज-गढ़ दुर्ग को अपना निवासस्थान बनाया और फिर राहिरीगढ़ को, जो डंडा राजपुरी से बारह कोस की दूरी पर था, दृढ़ कर वहीं रहने लगा। बहुत प्रयत्न कर वहीं के आस पास के कई अन्य दुर्गों पर उसने अधिकार कर लिया। फतह खाँ ने उससे डर कर डंडा राजपुरी छोड़ दिया और और जजीरा दुर्ग में जो कोस भर पर पानी में बना हुआ था, जाकर इस विचार में था कि अमान लेकर उसे सौंप दे और जान बचा ले। सीदी संभल, सीदी याकूत और सीदी खैरु ने जो तीनों उक्त अफगान के दास थे, इस विचार से अवगत हो कर उसे कैद कर उसके पैरों में बेड़ी डाल दिया और इस वृत्तांत की सूचना बीजापुर के सुलतान और दक्षिण के सूबेदार खानजहाँ बहादुर को लिख कर भेज दिया। खानजहाँ बहादुर ने कृपापात्र के साथ खिलअत तथा पाँच सहस्र रुपया भेजा और प्रथम के लिए चार सदी २०० सवार, द्वितीय

के लिए तीन सदी १०० सवार तथा तृतीय के लिए दो सदी १०० सवार के मंसब पुरस्कार में देने के निश्चय की प्रार्थना की। वेतन में सूरत बंदर के पास सीर हासिल जागीर दिया। उन सब ने प्रसन्न हो शिवाजी को दमन करने लिए साहस की कमर बाँधी। सीदी संभल नौ सदी मंसब तक पहुँच कर मर गया। सीदी याकूत ने, जो उसका स्थानापन्न था, नावों को एकत्र करने में बहुत प्रयत्न किया और डंडा राजपुरी लेने की हिम्मत बाँधी होली की रात्रि में, जब हिंदू थककर सोए पड़े थे, एक ओर से याकूत खाँ और दूसरी ओर से सादी खैरियत पहुँच कर कमंद के सहारे दुर्ग में घुस गए। इसी समय दुर्ग का बारूदघर आग के पहुँच जाने से सर्दार के साथ उड़ गया। उस समय शिवाजी की सेना लूटमार के लिए दूर चली गई थी और सहायता पहुँचाने की शक्ति उसमें नहीं थी इसलिए आसपास के दुर्ग भी छीन लिए गए। इस वृत्त की सूचना का प्रार्थनापत्र दक्षिण के सूबेदार सुलतान मुहम्मद मुअज्जम के पास पहुँचने पर सीदी याकूत तथा सीदी खैरियत के मंसब बढ़े और खाँ की पदवी मिली। जब ३६ वें वर्ष में सीदी खैरियत मर गया तब उसका माल याकूत खाँ को मिल गया और उस मृत के सिपाहियों का वेतन उसी के जिम्मे नियत किया गया। ४७ वें वर्ष सन् १११४ हि० (सन् १७०३ ई०) में यह भी मर गया। सीदी अंबर को, जिसे अपना स्थानापन्न बनाया था, इस कारण कि इस जाति ने उस ओर की अमलदारी में नाम कमाया था और हज्ज को जानेवाले जहाजों के मार्ग जारी रखने में बहुत पुण्यकार्य किया था, उक्त तालुका बहाल रखा और उसे सीदी याकूत खाँ की पदवी देकर सम्मानित

किया। लिखते समय इस जाति के बाकी लोग डंडा राजपुरी पर अधिकृत थे और मरहठों से लड़ते भिड़ते कालयापन करते थे।

उक्त खाँ प्रशंसनीय वीरता तथा प्रजापालन के साथ साथ कार्यों का बहुत अनुभव रखता था। सबेरे से एक पहर रात्रि तक शस्त्र धारण किए दीवानखाने में बैठता था। इसके बाद जनाने में जाकर एक प्रहर वहाँ उसी प्रकार व्यतीत करता और तब कमर खोलकर आवश्यकता पूरी करता। राज्य के अंत में बादशाह ने उसे दरबार बुलाया। इसके पहिले सीदी खैरियत खाँ बादशाही दरबार में जाकर वहाँ के आदमियों की शकल व शान के आगे अपने को कुछ न पाकर उसका कार्य लज्जा से बीमार हो जाने तक पहुँचा था और सीदी याकूत खाँ के प्रयत्न से वहाँ से निकल आया था इसलिए यह आशंका कर अंत में भेंट की स्वीकृति तथा काम की अधिकता बतला इस कष्ट से छुटकारा पागया।

याकूब खाँ बदख्शी

आरंभ में इसे नौ सदी ५० सवार का मंसब मिला था और यह अब्दुर्रहीम खानखानाँ के साथ दक्षिण में नियत था। जिस युद्ध में शाहनवाज खाँ मिर्जा एरिज ने मलिक अंबर को परास्त किया था और अच्छा कार्य हुआ था, उसमें पुत्र के अधिकार की बागडोर इसी को खानखानाँ ने दिया था। इसके द्वारा अच्छे कार्य दिखलाए गए थे इसलिए जहाँगीर के ८ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दो हजारी १५०० सवार का हो गया। अंत में काबुल प्रांत में होने पर शाहजहाँ के राज्य के १ म वर्ष में जब बलख के शासक नज्रमुहम्मद खाँ ने काबुल आकर उसे घेर लिया और चाहा कि कपटपूर्ण संदेशों से उस नगर पर अधिकार कर ले तब यह काबुल ही में था। स्वामिभक्ति सबके ऊपर समझ कर यह ठीक ठीक उत्तर देता रहा। समय पर इसकी मृत्यु होगई।

———

मिर्जा यार अली बेग

यह सच्चा और ठीक आदमी था और घूसखोरी जानता भी न था। इस कारण औरंगजेब का कृपापात्र होने से इसका विश्वास बढ़ा। आरंभ में यह रूहुल्ला खाँ बख्शी का पेशदस्त था। यह कटु बोलने में प्रसिद्ध था। इसके बाद डाक तथा कचहरी का दारोगा नियुक्त होने पर प्रजा के कार्य में इसने बहुत प्रयत्न किया। ३० वें वर्ष में इसे चार सदी ४० सवार का मंसब मिला तथा ३१ वें वर्ष में १५ सवार और बढ़े। बादशाह बहुत चाहते थे कि इसका मंसब बढ़ावें पर यह स्वीकार नहीं करता था। प्रार्थना करने में उद्दंडता रखता था। कहते हैं कि यह सादगी को मंसब से बढ़कर मानता था। बादशाह ने कहा कि यह अल्पवयस्क है। इसने उत्तर दिया कि जागीर पाने तक 'नीमटर' हो जायगा। हिंद की भाषा में नीमटर से तात्पर्य उस मनुष्य से है जो अवस्था की अंतिम सीमा तक पहुँच चुका हो। और भी कहते हैं कि एक दिन इसे बचा हुआ खास खाना इनायत हुआ पर दरबार की उपस्थिति के कारण यह भूल गया। बादशाह ने स्वाद पूछने के बहाने से इसे याद दिलाया। इसने सावधान होकर भोजन प्राप्ति के उपलक्ष में चहार तसलीम किया और दुबारा फिर चहार तस्लीम किया, जिसे 'सहो सिजदा' कहते हैं। यह भी कहा कि एक दिन शरई मुकदमे में एक तूरानी के गवाही के बहाने कहा गया कि यह तूरानी है, इसकी गवाही

का क्या विश्वास ? पर इसने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि बादशाह भी तूरानी थे। गोलकुंडे के घेरे में अन्न का बड़ा अकाल पड़ा। बादशाह ने इसकी सचाई पर चाहा कि इसे रसद का दारोगा नियत करे पर इसने बदनामी के भय से स्वीकार नहीं किया। मुहम्मद आजमशाह इससे अप्रसन्न था। इसलिए उसने प्रार्थना की कि इस पाजी की कैसी हिम्मत कि स्वामी की आज्ञा से सिर हटाए। बादशाह को भी यह बात अनुचित ज्ञात हुई इसलिए आज्ञा हुई कि इस दंडित को दीवान खाने से बाहर निकाल दो। औरंगजेब की मृत्यु पर आजमशाह से विदा हो मक्का चला गया। बहादुरशाह के राज्य के ३ रे वर्ष लौट कर सेवा में पहुँचा। इसी वर्ष सन् ११२१ हि० में मर गया।

यूसुफ खाँ

यह हुसेन खाँ टुकड़िया का पुत्र था और पिता की मृत्यु पर अकबर बादशाह का कृपापात्र होने पर इसे योग्य मंसब मिला। ५० वें वर्ष में इसे दो हजारी ३०० सवार का मंसब मिला। जहाँगीर की राजगद्दी पर ५०० सवार इसके मंसब में बढ़े। ५ वें वर्ष में खानजहाँ के साथ यह दक्षिण की चढ़ाई पर गया। जब इस प्रांत में इसके उद्योगों की सूचना मिली तब ८ वें वर्ष में इसे झंडा प्रदान किया गया। १२ वें वर्ष में शाहज़ादा सुलतान खुर्रम की प्रार्थना पर इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी १५०० सवार का हो गया, गोंडवाना की फौजदारी मिली और खिलअत तथा हाथी दिया गया।

यूसुफ खाँ कश्मीरी

इसका पिता अली खाँ चक कश्मीर का शासक था। चौगान खेल की दौड़ धूप में जब वह मर गया तब आदमियों ने इसको बड़े होने के कारण शासक बनाया। इसने पहिले अपने चाचा अब्दाल के घर को घेर लिया, जिसपर उपद्रव करने की आशंका हो गई थी। मारकाट में गोली से उक्त अब्दाल मारा गया। वहाँ के आदमियों ने सैयद मुबारक को खड़ा कर ईदगाह के मैदान में लड़ाई की तैयारी की। युद्ध में यूसुफ खाँ का हरावल मारा गया। यूसुफ खाँ उस जगह न पहुँच कर भागा और अकबर के राज्यकाल के २४ वें वर्ष में दरबार पहुँच कर कृपापात्र हुआ। जब दो महीना न बीतते हुए कश्मीर प्रांत के उपद्रवियों ने मुबारक खाँ को हटा कर उक्त खाँ के भतीजे लौहर चक को सर्दार बनाया तब २५ वें वर्ष में इसे दरबार से जाने को छुट्टी मिली। पंजाब के सर्दारों को आज्ञा मिली कि इसके साथ सेना भेजें। यह समाचार पाकर कश्मीरियों ने चापलूसी से इसे अकेले ही बुलाया। यह सर्दारों को बिना सूचित किए ही उस ओर चल दिया। बिना अच्छी लड़ाई के लौहर चक को कैद कर वहाँ अधिकृत हो गया। जब सालिह दीवानः ने यह वृत्तांत बादशाह को सुनाया तब २७ वें वर्ष में बादशाह ने शेख याकूब कश्मीरी नामक एक विश्वासपात्र सरदार को उसके पुत्र हैदर के साथ सांत्वना के लिए भेजा। २९ वें वर्ष में इसने अपने पुत्र याकूब

को उस प्रांत के सौगात के साथ दरबार भेजा। ३१ वें वर्ष में जब बादशाह पंजाब गए तब इसको भी दरबार में बुलाया। याकूब सशंकित हो कर भागा। हकीम अली और बहाउद्दीन कंबू वहाँ भेजे गए कि यदि वह स्वयं दरबार न आना चाहे तो अपने लुब्ध पुत्र को भेज दे। जब वहाँ से लौटकर इन्होंने उसके घमंड की बात कही तब मिर्जा शाहरुख भारी सेना के साथ उस प्रांत पर अधिकार करने भेजा गया। इसके अनंतर जब पखली के मार्ग से सेना वलबास के पास पहुँची तब सिवा शरण आने के कोई उपाय न देखकर यह सर्दारों से आकर मिला। इन लोगों ने चाहा कि उसे पकड़ कर लौट आवें पर बादशाह को यह बात पसंद नहीं आई और उस प्रांत पर अधिकार करने की आज्ञा हुई। इसपर कश्मीरियों ने पहिले हुसेन खाँ चक को और फिर यूसुफ खाँ के पुत्र याकूब खाँ को सर्दार बनाकर युद्ध किया और हारे। अंत में संदेश भेजा कि यहाँ का शासक दरबार में उपस्थित होगा और अशर्फियों पर बादशाह का नाम रहेगा। टकसाल, केशर, रेशम तथा शिकारी जानवर बादशाही सरकार के हो जायँगे। वर्षा तथा बर्फ से सर्दार गण घबड़ा गए थे इसलिए उक्त कार्यों पर दारोगे नियत कर तथा स्वीकृति दरबार से आने पर यूसुफ खाँ के साथ लौटे और ३१ वें वर्ष में दरबार पहुँचे। यूसुफ खाँ टोडरमल के हवाले किया गया। जब याकूब खाँ आदि कश्मरियों ने संधि के विरुद्ध कार्य किए तब कासिम खाँ को भारी सेना के साथ उधर भेजा, जिसने अच्छे उपायों से उस प्रांत पर अधिकार कर लिया। यूसुफ खाँ के पुत्र याकूब खाँ तथा अन्य कश्मीरियों ने आक्रमण किए पर हार गए। ३२ वें वर्ष में इसे

कारागार से निकालकर बिहार की सीमा पर जागीर दी गई और बंगाल प्रांत में नियत किया गया। ३७ वें वर्ष तक उसी प्रांत में काम करता रहा। इसका पुत्र याकूब खाँ था, जिसे पिता के दरबार चले आने के बाद कश्मीरियों ने उपद्रव का नेता बना कर बहुत दिनों तक सर्दार माना था। जब मीर बह्र कासिम खाँ उस प्रांत पर अधिकार करने के लिए भेजा गया तब उस झुंड में विरोध पड़ गया। इस कारण उक्त खाँ श्रीनगर, चला आया। बाद को यह भी उपद्रव करता रहा। ३४ वें वर्ष जब बादशाह कश्मीर में थे और उसके संतोष के लिए खास जूती भेजी गई तब यह सेवा में चला आया।

मिर्जा यूसुफ खाँ रिजवी

यह पवित्र मशहद के अच्छे वंश का सैयद था। अकबर की सेवा में इसने बहुत उन्नति की और अच्छा विश्वास पैदा किया। ३१ वें वर्ष में इसने ढाई हजारी मंसब पाया। जब शहबाज खाँ बिहार से बंगाल गया तब मिर्जा अवध से उस प्रांत की रक्षा को भेजा गया। ३२ वें वर्ष सन् ९९५ हि० में जब कश्मीर के प्रांताध्यक्ष कासिम खाँ ने वहाँ के निरंतर उपद्रव से घबड़ा कर त्यागपत्र लिखा तब मिर्जा ने उस प्रांत का शासक नियत होकर अपने उपायों से वहाँ के आदमियों को शांत कर दिया और शम्स चक को, जो उस प्रांत के राज्य का दावा कर रहा था, मिला कर दरबार भेज दिया। ३४ वें वर्ष सन् ९९७ हि० में अकबर कश्मीर की सैर को गया, जिसके ऐसे सैर के स्थान का किसी यात्री ने पता अब तक नहीं दिया है। अनुभवी योग्य आदमियों को आज्ञा हुई कि महाराज तथा कामराज अर्थात् व्यास नदी के ऊपर तथा नीचे के स्थानों में जाकर चौथ उगाहें। उस प्रांत में भूमि के हरएक टुकड़े को पट्टा कहते हैं और वह इलाही गज से एक बीघा तथा एक बिस्वा होता है। कश्मीरी लोग ढाई पट्टे तथा कुछ को बीघा जानते हैं और दीवान को निश्चय के अनुसार तीन तोदा जिन्स देते हैं। इनमें से हर एक गाँव कुछ नाप धान देते थे। यह खरवार तीन मून आठ सेर अकबर शाही होता था। कुछ को तर्क से नापते थे, जो आठ

सेर का होता है। रबीअ में एक पट्टा से गेहूँ तथा मसूर दो तर्क लगान में दिए जाते थे। इस समय मुंशियों ने प्रयत्न कर फर्क भी निकाल लिया पर जमींदारों के रंज होने से काम ठीक न हुआ। अधिकतर जरगर सिपाही थे और प्रांताध्यक्ष की बेपरवाही तथा आलस्य था। इस पर जमा बढ़ाने से कृषकों में अस्तव्यस्तता आ गई। इससे खासः की आय न हुई। तब जमा वास्तविक निश्चित की गई। बीस लाख खरवार धान पर दो लाख बढ़ाकर हर खरवार का सोलह दाम निर्ख काट कर मिर्जा यूसुफ खाँ को सौंप दिया।

३९ वें वर्ष में दैवयोग से मिर्जा का एक मुत्सद्दी भाग कर दरबार में आया और कहा कि खरवार दस पंद्रह बढ़ गया है और प्रत्येक अट्ठाइस दाम का हो गया है। जब मिर्जा से पुछ-वाया गया तब इसने जमा का बढ़ना स्वीकार नहीं किया। इस पर काजी नूरुल्ला तथा काजी अली पता लगाने भेजे गए। मिर्जा के आदमी लोग बेईमानी से कुविचार में पड़ गए। काजी नूरुल्ला ने लौटकर सब कह सुनाया। हुसेन बेग शेख उमरी को सहायता को भेजा। पहिला दीवानी और दूसरा तहसीलदारी के कार्य पर नियत हुआ। मिर्जा के कुछ नौकरों ने मिलकर वहाँ के कुछ उपद्रवियों के बहकाने से मिर्जा के भतीजे यादगार को सर्दार बनाया। दो एक बार युद्ध भी हुआ पर संधि हो गई। इन दोनों के आलस्य से थोड़े समय में उपद्रवियों का हंगामा बहुत बढ़ गया। लाचार हो काजी अली और हुसेन बेग नगर से निकलकर हिंदुस्तान को चल दिए। शत्रुओं ने इसके पहिले ही घाटियों तथा दर्रों के मार्ग रोक लिए थे इसलिए कुछ ही युद्ध के बाद काजी

अली कैद हो मारा गया और हुसेन बेग किसी प्रकार जान बचा कर निकल गया। कहते हैं कि जब यादगार ने सर्दारी का विचार किया और मुह्र खोदने वाले को बुलाया कि नगीना उसके नाम बनावे। खोदते समय फौलाद का चूर उड़कर उसकी आँख में चला गया और सोने में कँपकँपी के ज्वर ने उसे धर दबाया। जब मजलिस सजाकर तख्त पर बैठा उस समय पंखा लेकर एक फर्राश ने जो वहाँ खड़ा था, तुरंत यह शैर पढ़ा। शैर—

बड़ों के स्थान पर झूठ भी कोई बैठ नहीं सकता।
पर बड़प्पन का सामान इस प्रकार तू तैयार करता है॥

यादगार को आश्चर्य हुआ और उससे पूछा कि क्या तू पढ़ा हुआ है। उसने कहा नहीं। तब यह शैर कहाँ से याद किया है। कहा यह भी नहीं मालूम। आश्चर्य तो यह है कि अभी तक अकबर को इस विद्रोह की सूचना नहीं थी। सुलतान तथा राज्य-कर्मचारी गण को दैवी सूचना होती है इसलिए ३७ वें वर्ष सन् १००० हि० में लाहौर से कश्मीर की चढ़ाई की आज्ञा हुई। यद्यदि लोगों ने मार्ग की कठिनाई कहकर रोकना चाहा और कुछ ने कहा कि बादशाही राज्य हर ओर एक वर्ष की राह तक फैला हुआ है इसलिए किनारे तक पहुँचता है तथा उस पार्वत्य प्रांत में जाना उचित नहीं है पर बादशाह ठीक बर्षाकाल में उस ओर चल दिए। दैवयोग से यह वही दिन था जब यादगार कुल ने कश्मीर में विद्रोह किया था। इससे विचित्र तर यह है कि बादशाह ने रावी नदी के पार करने पर पूछा कि यह शैर किसके बारे में है। शैर—

बादशाही टोपी तथा शाही ताज
हर कुल को कैसे पहुँची ।

अभी कुछ पड़ाव यात्रा हुई थी कि कश्मीर का उपद्रव शांत हो गया और दैहीम खदीव की भविष्य वाणी प्रकट हुई । शेख फरीद बख्शी बेगी को ससैन्य आगे भेजकर स्वयं भी पहिले से अधिक फुर्ती से आगे बढ़ा । मिर्जा यूसुफ खाँ शेख अबुल् फजल को दिया गया । जब इसके पुत्र मिर्जा लश्करी ने उस विद्रोही की इच्छा से अवगत होकर बाल बच्चों को लाहौर लिवा जाने को बाहर निकाला पर उस बलवाई ने मिर्जा के कैद होने का समाचार सुनकर झट उन सबको हटा दिया । मिर्जा के सम्मान की रक्षा के लिए इसे छुट्टी मिल गई । यादगार ने बादशाह के आने का समाचार पाते ही बहुतों को घाटी में भेजकर उसे दृढ़ कर लिया परंतु वीर गण थोड़े युद्ध पर शत्रुओं को हटा उस प्रांत में घुस गए । यादगार कश्मीर की राजधानी श्रीनगर से निकल कर हीरापुर चला आया । मिर्जा के नौकरों का झुंड घात में लगा हुआ था और अर्द्ध रात्रि में बादशाह के पहुँचने का शोर कर इसके पड़ाव पर धावा कर दिया और लूटने लगे । वह घवड़ा कर कनात से निकल कर जंगल में भागा तथा यूसुफ परस्तार के सिवा किसी ने साथ नहीं दिया । इसको घोड़ा लाने को भेजा । इसकी अनुपस्थिति से चकित होकर आदमियों ने यूसुफ को शिकंजे में डाल दिया । अंत में इसके बतलाने से वह पकड़ा गया तथा मार डाला गया । शैर—

बाग में कद्दू सरो के साथ सिर उठावे,
अर्थात् इस प्रकार सर उठाना सर्दारी हो ।

आकाश जानता है कि सरो और कद्दू क्या हैं।
स्वयं सिर सर्दारी का दंड है।

कहते हैं कि एक दिन जब इस दुष्ट के उपद्रव का समाचार मिला और उसकी माँ नुकरा अपने पुत्रों की बदकारी से साहस नहीं रखती तब अकबर ने यह शैर पढ़ा। शैर—

यह हराम का बच्चा मेरा द्वेषी हो, यह मेरा भाग्य है।
हराम के बच्चे को मारने वाला यमन के सितारा सा आया।

कहा कि मेरे विचार में आता है कि इस उपद्रवी का मारा जाना और यमन के सुहेल सितारे का निकलना संबंध रखता है। ज्योतिषियों ने कहा कि तीन महीने में दंड को पहुँचेगा। कहा कि चालीस दिन से कम और दो महीने से अधिक न चलेगा। कुल इक्यावन दिन बीते थे और जिस दिन वह मारा गया उसी दिन यह यमन का सितारा निकला। बादशाह जब कश्मीर पहुँचे तब मिर्जा यूसुफ ने जमा बढ़ाए जाने पर भी उस प्रांत को स्वीकार नहीं किया। इसपर खालसा का ख्वाजा शम्सुद्दीन खाफी को तीन सहस्र सवारों के साथ उस शासनपर नियत किया। इसके अनंतर शाहजादा सुलतान सलीम की प्रार्थना पर फिर मिर्जा यूसुफ को जागीर में मिला। ३९वें वर्ष में मिर्जा तोपखाने का दारोगा नियत हुआ। उसी वर्ष सन् १००२ हि० में कुलीज खाँ के स्थान पर जौनपुरकी जागीर पर नियत हुआ। ४१ वें वर्ष में गुजरात प्रांत जागीर-तन में पाकर दक्षिण का सहायक नियत हुआ। जब सादिक खाँ हरवी ४२ वें वर्ष में मर गया तब मिर्जा शाहजादा सुलतान मुराद का अभिभावक नियत होने पर फुर्ती से अपने

जागीर के महाल से बरार के अंतर्गत बालापुर आकर शाहज़ादे की सेवा में पहुँच गया। उक्त सुलतान की मृत्यु पर अल्लामी शेख अबुल्फजल के साथ दक्षिण में अच्छी सेवा की और अहमद नगर के घेरे तथा अधिकार करने में शाहज़ादा सुलतान दानियाल के साथ सबसे बढ़कर प्रयत्न किया। यह बराबर दक्षिण में मन न लगने की प्रार्थना किया करता था अतः ४६ वें वर्ष के आरंभ में आज्ञा मिलने पर बुर्हानपुर में बादशाह की सेवा में पहुँचा जब बादशाह आगरे को लौटे तब शाहज़ादा दानियाल बड़े २ सर्दारों के साथ नर्मदा से बिदा हुआ। मिर्ज़ा भी उसके साथ नियत हुआ। इसी वर्ष सन् १०१० हि० में शाहज़ादे ने मिर्ज़ा को मिर्ज़ा रुस्तम सफवी के साथ शेख अबुल्फजल तथा खान-खानाँ की सहायता को बालाघाट में नियत किया। मिर्ज़ा जमादिउल् आखिर महीने में शूल की पीड़ा से जालनापुर में मर गया। इसके शव को मशहद ले गए। सुलतानपुर इसके देश के समान था। बहुधा रुहेले नौकर रखता था। वेतन महीने महीने देता था। जब महीना बढ़ाता था तब ड्योढ़ा कर देता था और इसको बराबर एक वर्ष का जोड़कर देता था। इसके पुत्रों में मिर्ज़ा सफशिकन खाँ लश्करी था, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है। दूसरा मिर्ज़ा एवज था, जो गद्य बहुत अच्छा लिखता था। संसार का हाल लेकर एक इतिहास लिखा, जिसका नाम चमन रखा। तीसरा मिर्ज़ा अफलातून अपने भाई के साथ रहता था। अवस्था के अंतिमकाल में यह बिहिश्ताबाद सिकंदरा के मुतवल्ली का पद पाकर वहीं मर गया। इसका दामाद मीर अब्दुल्ला

शाहजहाँ के समय में डेढ़ हजारी ५०० सवार का मंसब पा चुका था। कुछ दिन धरूर का अध्यक्ष भी था। ८ वें वर्ष में मर गया।

हाजी यूसुफ खाँ

पहिले यह मिर्जा कामराँ का अनुयायी था। अकबर के राज्य काल के २२ वें वर्ष में यह किया खाँ के साथ मिर्जा यूसुफ खाँ की सहायता को भेजा गया, जो कन्नौज दुर्ग में घिर गया था और जिसके आस पास अली कुली खाँ विद्रोह मचाए हुए था। १७ वें वर्ष में गुजरात पर अधिकार हो जाने के बाद यह इब्राहीम हुसेन मिर्जा को दंड देने के लिए खान आलम के साथ नियत हुआ। जब बादशाह की आज्ञा सेनाओं को लौटने की हुई तब सरनाल युद्ध में यह भी शाही सेना में आ मिला और १९ वें वर्ष में खान खानाँ मुनइम खाँ के साथ बंगाल भेजा गया। गुजर युद्ध में इसने अच्छा प्रयत्न किया। २० वें वर्ष में बंगाल के गौड़ नगर में, जो अपने खराब जल वायु के लिए प्रसिद्ध है, उस समय जब खानखानाँ मुनइम खाँ वहाँ छावनी डाले हुए था और महामारी फैल रही थी तथा बहुत से सरदार मर गए थे यह भी सन् ९८३ हि० (सं० १६३३) में काल कवलित हो गया। यह पाँच सदी मनसबदार था।

यूसुफ मुहम्मद खाँ कोकल्ताश

यह खान आजम अतगा का बड़ा पुत्र था। यह अकबर के साथ दूध पीने का संबंध रखता था। जब इसका पिता सेना सहित दरबार भेजा गया कि पंजाब की ओर जाते हुए बैराम खाँ को मार्ग में पकड़ ले तब यह भी बारह वर्ष का होते हुए पिता के साथ नियत हुआ। युद्ध के दिन सैनिकों के साथ अग्गल तथा मध्य में इसे भी स्थान मिला। जब अतगा खाँ ने दाहिने और बाएँ की सेनाओं के अस्त व्यस्त होने पर अवसर पाकर बैराम खाँ की सेना पर धावा किया तब यह भी पिता के आगे आगे रहकर उद्योग करता रहा। इसे खाँ की पदवी मिली। जब इसका पिता अदहम खाँ कोका के हाथ मारा गया तब यह अपने साथियों के साथ सशस्त्र हो कर अदहम खाँ और माहम अतगा को पकड़ने गया पर बादशाह के द्वारा अदहम खाँ को जो दंड मिला उसे सुनकर इसे कुछ सांत्वना मिली। इसके अनंतर यह तथा इसका भाई अजीज मुहम्मद कोकलताश बराबर बादशाही कृपापात्र रहकर युद्ध तथा रागरंग में सेवा में रहे। १० वें वर्ष जब स्वामि-द्रोही अली कुली खाँ खानजमाँ, बहादुर खाँ व इसकंदर खाँ के उपद्रव का समाचार मिला तब बादशाह उसे दमन करने के लिए साहस कर आगरे से बाहर निकले। गंगापार करने पर सूचना मिली कि अभी इसकंदर खाँ लखनऊ में अपने स्थान ही पर है इसलिए बादशाह ने उस प्रांत के प्रबंध का निश्चय किया। आज्ञा

हुई कि उक्त खाँ शुजाअत खाँ आदि कुछ वीरों के साथ एक पड़ाव अगल रहकर आगे आगे चले। अकबरी कृपा की साया में रहते हुए यह पाँच हजारी मंसब तक पहुँचा था कि यौवन ही में मदिरापान की अधिकता से बीमार हो ११ वें वर्ष सन् ६७३ हि० में मर गया।

यद्यपि अंगूर के (उपदेश) पानी को हकीमों ने मानव मस्तिष्क की शक्ति को बढ़ानेवाला तथा अन्य बहुत से गुणों से युक्त पाया है और उसके सेवन के लिए उसकी मात्रा आदि निश्चय कर दी है पर वह बुद्धि को आच्छादित करने वाला तथा अनेक बीमारियों का पैदा करने वाला भी है इसलिए उसके बहुत पीने को कड़ाई के साथ मना भी किया है। इसलिए यह सब अर्थ पुस्तकों में स्पष्ट लिखा हुआ है। इस्लाम की शरीअत में (अरबी में एक कलमा उपदेश का आया है) इसी हानि को दृष्टि में रखकर इसके थोड़े या अधिक सेवन की आज्ञा नहीं दी है और थोड़े लाभ के लिए अधिक हानि को नियमित नहीं माना है। फिर एक कलमा है।

यूसुफ मुहम्मद खाँ ताशकंदी

ताशकंद फर्गानः प्रांत का एक नगर है, जो पाँचवो इकलीम में है और ज्ञात संसार की सीमा पर स्थित है। इसके पूर्व में काशगर, पश्चिम में समरकंद, दक्षिण में बदख्शाँ के पार्वत्य प्रांत की सीमा और उत्तर में यद्यपि इसके पहिले कई नगर थे जैसे अलमालीग, अलमातू और बानकी, जो अतरार के नाम से प्रसिद्ध था पर अब उजबेगों के उपद्रव से रस्म रिवाज आदि का कुछ चिन्ह नहीं रह गया। पश्चिम ओर के सिवा, जिधर पहाड़ न थे, अन्यत्र कोई उतार नहीं है। सैहून नदी, जो खुजंद नदी के नाम से प्रसिद्ध है, उत्तर-पूर्व के बीच से इस प्रांत में आकर पश्चिम की ओर बहती है। खुजंद के उत्तर तथा फनाकत, जो शाहरुखी प्रसिद्ध है, के दक्षिण होती हुई तुर्किस्तान के नीचे बालू में गुम हो जाती है। इस प्रांत में सात बस्तियाँ हैं। दक्षिण में पाँच अंदजान, ओश, मार्गीनान, असफरा और खुजंद हैं तथा उत्तर में आखमी और शाश। ये दोनों पुराने नगरों में से हैं, पहिले ये प्रसिद्ध थे और अब ताशकंद तथा ताशकनीयत नामों से प्रसिद्ध हैं। यहाँ का लालः पुष्प बुखारा के गुलेसुर्ख की तरह प्रसिद्ध है और विशेष कर सप्तरंगी लालः इस ओर का खास फूल है।

जब यूसुफ मुहम्मद खाँ अपने देश से हिंदुस्तान में आया तब कुछ दिन अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग के साथ व्यतीत किया।

अंत में भलाई तथा सौभाग्य से शाहजादा शाहजहाँ की सेवा में पहुँचा और अपनी सेवा तथा बराबर की हाजिरी से सम्मानित हुआ। यात्रा या दरबार में सेवा कार्य करता रहा। शाहजहाँ की राजगद्दी पर दो हजारी १००० सवार का मंसब, डंका, झंडा, घोड़ा, हाथी और पंद्रह सहस्र रुपए पाकर प्रसन्न हुआ। मांडू के पास इसे जागीर भी मिली। ४ थे वर्ष दक्षिण की चढ़ाई में दैवयोग से विशेष घटना में यह पड़ गया अर्थात् बहादुर खाँ रुहेला के साथ आदिलशाही सर्दार रनदौला खाँ के युद्ध में बड़ी वीरता दिखला कर घायल हो युद्धस्थल में गिर पड़ा। शत्रु भारी सफलता समझ इसको बहादुर खाँ के साथ उठा ले गए। बहुत दिनों तक यह बीजापुर में कैद रहा। जब ५ वें वर्ष यमीनुद्दौला आसफ खाँ ने बीजापुर तक धावा करते और लूटते हुए वहाँ पहुँच कर उसे घेर लिया तब आदिलशाह ने दोनों को यमीनुद्दौला के पास भेज दिया। जब ये सेवा में पहुँचे तब गुणग्राही बादशाह ने शाही कृपा से, जो स्वामिभक्त सेवकों के लिए सुरक्षित थी, जाँच करना छोड़ दिया। हर एक को खिलअत, सुनहले मीना-कारी के साज सहित तलवार तथा ढाल, घोड़ा और हाथी दिया। यूसुफ मुहम्मद खाँ का मंसब बढ़कर तीन हजारी २००० सवार का हो गया और डंका तथा बीस सहस्र रुपए पाकर सम्मानित हुआ। इसके बाद ठट्टा का सूबेदार नियत हुआ।

पहिले यह तूरान के मुगलों को नौकर रखता था पर जब इस घटना में आशा के विरुद्ध इनकी कृतघ्नता तथा बेवफाई देखी कि अपने स्वामी को शत्रु के हाथों में छोड़ कर युद्ध से साफ निकल कर अपने जागीर के महालों को चले गए और इसके पिता के

विरुद्ध, जो काम छोड़ कर फकीर की तरह रहता था, उपद्रव कर बहुत सा धन वेतन में ले लिया। इस कारण यह मुगल को हेय दृष्टि से देखता और हिंदुस्तानियों को बहुधा नौकर रखता। इसके बाद यह भकूर का फौजदार नियत हुआ। जब ११ वें वर्ष कंधार दुर्ग बादशाह के अधिकार में चला आया तब उसके प्रबंध होने तक यह सिविस्तान के फौजदार के साथ वहाँ की रक्षा पर नियत हुआ। वहाँ के सूबेदार कुलीज खाँ के साथ यूसुफ खाँ ने बुस्त दुर्ग लेने में बहुत प्रयत्न किया। १२ वें वर्ष में भक्कर की फौजदारी से बदल कर यह मुलतान का सूबेदार हो गया और इसके मंसब में एक सहस्र सवार बढ़ाए गए। इसी वर्ष सन् १०४६ हि० में इसकी मृत्यु होगई।

इसके दो पुत्र मिर्जा रूहुल्ला और मिर्जा बहराम थे। पहिले को २८ वें वर्ष के अंत में डेढ़ हजारी ८०० सवार का मंसब और मांडू की फौजदारी तथा जागीरदारी मिली। किसी कारण से दंडित होने पर एक हजारी मंसब बहाल रहा। इसके बाद कांगड़ा का यह फौजदार तथा दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। औरंगजेब की राजगद्दी के आरंभ में शत्रु के कुछ कार्यों पर बादशाही इच्छा से मंसब तथा जागीर से हटाए जाने पर यह एकांत में रहने लगा।

इसके पुत्रगण खानःजादी के होते हुए भी बादशाह औरंगजेब के मिजाज बिगड़ने से मंसब न पा सके और कुछ दिन खानजहाँ बहादुर कोकल्ताश के साथ व्यतीत किया। इसके बाद मिर्जा अब्दुल्ला शाहजादा मुहम्मद आजमशाह की सरकार में कोरबेगी नियुक्त हुआ और अपना सम्मान तथा विश्वास बढ़ाया। मीर आतिश होने पर जाजऊ के युद्ध में निमक का हक अदा

करता हुआ उस शाह के साथ रह कर मारा गया। इसका पुत्र मिर्जा फतहुल्ला छोटा था। आजमशाही सर्दार बसालत खाँ सुलतान नज्र ने मित्रता तथा एक स्वामी के नौकर होने के नाते इसके पालन करने का भार उठाया। उसकी मृत्यु पर आसफजाह निजामुल्मुल्क की सरकार में नौकर होकर दीवानखानः तथा हरकारों का दारोगा नियत हुआ। ऐसी ही कृपा से उस बड़े सर्दार ने इसे पिता का मंसब तथा पदवी देकर सम्मानित किया। लिखते समय जीवित था और इसके लेखक से मित्रता तथा प्रेम था।

अनुक्रम (क)

(वैयक्तिक)

झ

ट

त

थ

द

ल

व

अनुक्रम (ख)

(भौगोलिक)

आ

इ

ई

उ

द

———